



स्व. पूज्य गुरुदेव



श्री जोरावरमल जी महाराज

की स्मृति में आयोजित



संयोजक एवं प्रधान संपादक-

युवाचार्य श्री मधुकर मुनि



# राजप्रश्नीयसूत्रम्



( मूल-अनुवाद-विवेचन-टिप्पण-परिशिष्ट-युक्त )

ॐ अर्ह

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क - १५

[परम श्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति में आयोजित]

द्वितीय-उपाङ्गम्

# राजप्रश्नीयसूत्रम्

[मूल पाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

प्रेरणा

(स्व.) उपप्रवर्तक शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलालजी महाराज

आद्यसंयोजक तथा प्रधान सम्पादक

(स्व.) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादक—विवेचक—संपादक

वाणीभूषण श्री रतनमुनि

देवकुमार जैन

प्रकाशक

श्री आगमप्रकाशन समिति,

ब्यावर (राजस्थान)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क - १५

निर्देशन

अध्यात्मयोगिनी विदुषी महासती श्री उमरावकुंवरजी म.सा. 'अर्चना'

सम्पादक मण्डल

अनुयोग प्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'

आचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म.सा.

श्री रतनमुनि

सम्प्रेरक

मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'

संशोधन

श्री देवकुमार जैन

तृतीय संस्करण

वीर निर्वाण सं० २५२६

विक्रम सं० २०५७

ई० सन् मार्च, २००१

प्रकाशक

श्री आगमप्रकाशन समिति

ब्रज-मधुकर स्मृति भवन

पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)-३०५९०१

दूरभाष : ५००८७

मुद्रक

श्रीमती विमलेश जैन

अजन्ता पेपर कन्वर्टर्स, लक्ष्मी चौक, अजमेर-३०५००१

कम्प्यूटराइज्ड टाइप सैटिंग

सनराईज कम्प्यूटर्स, नहर मोहल्ला, अजमेर-३०५०११

मूल्य : ७०/- रुपये

Published at the Holy Remembrance occasion

of

Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

SECOND UPĀNGA

# RĀJAPRASHNIYA SŪTRAM

[With Original Text, Hindi Version, Annotations and Appendices etc.]

---

Inspiring Soul

Up-Pravartaka Shasansevi  
(Late) Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Founder Editor  
(Late) Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotators

Shri Ratan Muni  
Deo Kumar Jain

Publishers

Shri Agam Prakashan Samiti  
Beawar (Raj.)

**Jinagam Granthamala Publication No. 15**

**Direction**

**Sadhwi Shri Umrav Kunwar 'Archana'**

**Board of Editors**

**Anuyoga-Pravartaka Muni Shri Kanhaiyalaji 'Kamal'**

**Acharya Shri Devendra Muniji Shastri**

**Shri Ratan Muni**

**Promotor**

**Muni Shri Vinay Kumar 'Bhima'**

**Corrections and Supervision**

**Shri Dev Kumar Jain**

**Third Edition**

**Vir-Nirvana Samvat 2526**

**Vikram Samvat 2057**

**March, 2001**

**Publisher**

**Shri Agam Prakashan Samiti,  
Brij-Madhukar Smriti Bhawan,**

**Piplia Bazar,**

**Beawar (Raj.) - 305 901**

**Phone - 50087**

**Printers**

**Smt. Vimlesh Jain**

**Ajanta Paper Converters**

**Laxmi Chowk, Ajmer-305 001**

**Laser Type Setting by :**

**Sunrise Computers**

**Ajmer - 305 001**

**Price : Rs. 70/-**

## समर्पण

जिन्होंने अन्धकारपूर्ण युग में  
दिव्यज्योतिस्तम्भ का कार्य किया,  
जो सम्यग्ज्ञान और चारित्र के परमाधारक थे,  
जिनमार्ग के प्रचार-प्रसार के लिए जिन्होंने  
अपने जीवन की आहुति दी,  
उन परम पुनीत संयतात्मा आचार्य

श्री लवजीऋषि जी महाराज  
के कर-कमलों में।

—मधुकर मुनि

(प्रथम संस्करण से)



# प्रकाशकीय

राजप्रश्नीयसूत्र का यह तृतीय संस्करण है।

प्रस्तुत सूत्र द्वितीय अंग-आगम सूत्रकृतांगसूत्र का उपांग माना गया है। सूर्याभदेव के कथानक के द्वारा इसमें सरल सुबोध रोचक शैली में जैनदर्शन के सैद्धान्तिक पक्ष को स्पष्ट करने के साथ सूर्याभदेव द्वारा श्रमणभगवान् महावीर के समवसरण में नृत्य-नाट्य कलाओं के प्रदर्शन के माध्यम से श्रमण संस्कृति की कलाओं का प्रांजल रूप भी उपस्थित किया है।

सूर्याभदेव की जीवनकथा से यह भी उजागर किया गया है कि अभिनिवेशों और भ्रान्त धारणाओं से ग्रस्त व्यक्ति जब योग्य मार्गदर्शक का सहवास पाकर प्रगति पथ पर प्रयाण करता है तब आत्मकल्याण करने के साथ-साथ जनकल्याण की ओर उन्मुख—अग्रसर हो सकता है।

उपर्युक्त विशेषताओं के कारण इस सूत्र का आधार लेकर उत्तरवर्ती काल में अनेक विद्वान् आचार्यों ने देशी भाषाओं में रासों की रचनार्ये की हैं।

संक्षेप में कहा जाये तो यह सूत्र भारतीय कलाओं के अन्वेषकों और दार्शनिकों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण सामग्री उपस्थित करता है।

प्रस्तुत सूत्र का अनुवाद आदि वाणीभूषण श्री रतनमुनिजी म. ने किया है और श्री देवकुमारजी जैन शास्त्री साहित्यरत्न ने संपादित कर सर्वोपयोगी बनाया है। एतदर्थ वे धन्यवादार्ह हैं।

श्रमणसंघ के सर्वतोभद्र स्व. युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी म. की प्रबल आगमभक्ति के फलस्वरूप जो आगम प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ हुआ था, वह दिनानुदिन विस्तृत होता गया। विज्ञानों के साथ-साथ सामान्य पाठकों में आगम साहित्य के पठन-पाठन का व्यापक प्रचार-प्रसार होने से समिति द्वारा अप्राप्य आगमों के तृतीय संस्करण प्रकाशित किये जा रहे हैं।

समिति अपने सभी सहयोगियों, पाठकों की आभारी है, जिन्होंने आगमबत्तीसी के प्रकाशन, प्रचार-प्रसार करने में सहयोग दिया है।

सागरमल बैताला  
अध्यक्ष

रतनचन्द मोदी  
कार्याध्यक्ष

सायरमल चोरडिया  
महामन्त्री

ज्ञानचंद बिनायकिया  
मन्त्री

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर ( राजस्थान )

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

कार्यकारिणी समिति

अध्यक्ष	:	श्री सागरमल जी बैताला	इन्दौर
कार्याध्यक्ष	:	श्री रतनचन्दजी मोदी	ब्यावर
उपाध्यक्ष	:	श्री धनराजजी विनायकिया	ब्यावर
		श्री भंवरलालजी गोठी	मद्रास
		श्री हुक्मीचन्दजी पारख	जोधपुर
		श्री दुलीचन्दजी चोरडिया	मद्रास
		श्री जसराजजी पारख	दुर्ग
महामन्त्री	:	श्री जी. सायरमलजी चोरडिया	मद्रास
मन्त्री	:	श्री ज्ञानचन्दजी विनायकिया	ब्यावर
		श्री ज्ञानराजजी मूथा	पाली
सहमन्त्री	:	श्री प्रकाशचन्दजी चौपड़ा	ब्यावर
कोषाध्यक्ष	:	श्री जंवरीलालजी शिशोदिया	ब्यावर
		श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरडिया	मद्रास
परामर्शदाता	:	श्री माणकचन्दजी संचेती	जोधपुर
		श्री तेजराजजी भण्डारी	जोधपुर
सदस्य	:	श्री एस. सायरमलजी चोरडिया	मद्रास
		श्री मूलचन्दजी सुराणा	नागौर
		श्री मोतीचन्दजी चोरडिया	मद्रास
		श्री अमरचन्दजी मोदी	ब्यावर
		श्री किशनलालजी बैताला	मद्रास
		श्री जतनराजजी मेहता	मेड़ता सिटी
		श्री देवराजजी चोरडिया	मद्रास
		श्री गौतमचन्दजी चोरडिया	मद्रास
		श्री सुमेरमलजी मेड़तिया	जोधपुर
		श्री आसूलालजी बोहरा	जोधपुर
		श्री बुधराजजी बाफणा	ब्यावर

# आदि वचन

( प्रथम संस्करण से )

विश्व के जिन दार्शनिकों—दृष्टाओं/चिन्तकों ने “आत्मसत्ता” पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होंने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनों तथा पद्धतियों पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामों से विश्रुत है।

जैनदर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारों—राग-द्वेष आदि को साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है और विकार जब पूर्णतः निरस्त हो जाते हैं तो आत्मा की शक्तियां ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप में उद्घाटित-उद्भासित हो जाती हैं। शक्तियों का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा— “आगम” के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यतः सर्वज्ञ के वचनों/वाणी का संकलन नहीं किया जाता, वह बिखरे सुमनों की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, संघीय जीवन पद्धति में धर्म-साधना को स्थापित करते हैं, वे धर्मप्रवर्तक/अरिहंत या तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्हीं के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर संकलित कर “आगम” या शास्त्र का रूप देते हैं अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनों की मुक्त वृष्टि जब मालारूप में ग्रथित होती है तो वह “आगम” का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

“आगम” को प्राचीनतम भाषा में “गणिपिटक” कहा जाता था। अरिहंतों के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र द्वादशांग में समाहित होते हैं और द्वादशांग/आचारांग-सूत्रकृतांग आदि के अंग-उपांग आदि अनेक भेदोपभेद विकसित हुए हैं। इस द्वादशांगी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशांगी में भी बारहवां अंग विशाल एवं समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एवं श्रुत सम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यतः एकादशांग का अध्ययन साधकों के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, लिखने के साधनों का विकास भी अल्पतम था, तब आगमों/शास्त्रों को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कंठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवतः इसलिए आगम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दों का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमों का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणों के लिए यह जहां चिन्ता का

विषय था, वहां चिन्तन की तत्परता एवं जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के संरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणों का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एवं संजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्पत्ति से आगमों को लिपि-बद्ध किया गया। जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुतः आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। संस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) में आचार्य श्री देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमों की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रों का अन्तिम स्वरूप-संस्कार इसी वाचना में सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-संघों के आन्तरिक मतभेद, स्मृति दुर्बलता, प्रमाद एवं भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणों के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारों का विध्वंस आदि अनेकानेक कारणों से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एवं विलुप्त होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्त्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विछिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव में, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नहीं होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणों से आगम की पावन धारा संकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी में वीर लोकाशाह ने इस दिशा में क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमें भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह तथा लिपिकारों का अत्यल्प ज्ञान आगमों की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियों को शुद्ध प्रतियां मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठकों को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत् प्रयासों से आगमों की प्राचीन चूर्णियां, निर्युक्तियां, टीकार्यें आदि प्रकाश में आईं और उनके आधार पर आगमों का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा में प्रकाशित हुआ। इसमें आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनों को सुविधा हुई। फलतः आगमों के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढ़ी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कहीं अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ी है, जनता में आगमों के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण में अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानों तथा भारतीय जैनेतर विद्वानों की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते हैं।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय-श्रुत-सेवा में अनेक समर्थ श्रमणों, पुरुषार्थी विद्वानों का योगदान रहा है। उनकी सेवायें नींव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हों, पर विस्मरणीय तो कदापि नहीं। स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखों के अभाव में हम अधिक विस्तृत रूप में उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं, पर विनीत व कृतज्ञ तो हैं ही। फिर भी स्थानकवासी जैन

परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरों का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेंगे।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमों—३२ सूत्रों का प्राकृत से खड़ी बोली में अनुवाद किया था। उन्होंने अकेले ही बत्तीस सूत्रों का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष १५ दिन में पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ़ लगनशीलता, साहस एवं आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वतः परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय में प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपाठ बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापंथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

### गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रातःस्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म. के सान्निध्य में आगमों का अध्ययन अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलांक की टीकाओं से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्हीं के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह संस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी हैं, अब तक उपलब्ध संस्करणों में प्रायः शुद्ध भी हैं, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठों में व वृत्ति में कहीं-कहीं अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिए दुरूह तो हैं ही। चूंकि गुरुदेवश्री स्वयं आगमों के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हें आगमों के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अतः वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमों का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्यज्ञान वाले श्रमण-श्रमणी एवं जिज्ञासुजन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तड़प कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियों के कारण उनका यह स्वप्न-संकल्प साकार नहीं हो सका, फिर भी मेरे मन में प्रेरणा बनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल में आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज, श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य जैनधर्म-दिवाकर आचार्य श्री आत्मारामजी म., विद्वदरत्न श्री घासीलालजी म. आदि मनीषी मुनिवरों ने आगमों की हिन्दी, संस्कृत, गुजराती आदि में सुन्दर विस्तृत टीकायें लिखकर या अपने तत्त्वावधान में लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान श्रमण परमश्रुतसेवी स्व. मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम सम्पादन की दिशा में बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानों ने उसे बहुत ही सराहा किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस में व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान में आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान में तेरापंथ सम्प्रदाय में आचार्य श्री तुलसी एवं युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व में आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए हैं उन्हें देखकर विद्वानों को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठनिर्णय में काफी मतभेद की गुंजाइश है, तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालालजी म. “कमल” आगमों की वक्तव्यता को अनुयोगों में वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमों में उनकी कार्यशैली की विशदता एवं मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम-साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् पं. श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, विश्रुत मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमों के आधुनिक सम्पादन की दिशा में स्वयं भी कार्य कर रहे हैं तथा अनेक विद्वानों का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहंगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन में एक संकल्प उठा। आज प्रायः सभी विद्वानों की कार्यशैली काफी भिन्नता लिए हुए है। कहीं आगमों का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कहीं आगमों की विशाल व्याख्यायें की जा रही हैं। एक पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम-मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमों का ऐसा संस्करण होना चाहिए जो सरल हो, सुबोध हो, संक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य में रखकर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि.सं. २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ़ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय में गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलालजी म. की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरों तथा सद्गृहस्थों का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किए बिना मन सन्तुष्ट नहीं होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म. "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म. शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म. के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्द्रजी म. एवं प्रवचनभूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वदरत्न श्री ज्ञानमुनिजी म., स्व. विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुंवरजी म. की सुशिष्याएं महासती दिव्यप्रभाजी, एम.ए., पी-एच.डी., महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकुंवरजी म. 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् पं. श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, स्व. पं. श्री हीरालालजी शास्त्री, डॉ. छगनलालजी शास्त्री एवं श्रीचन्द्र जी सुराणा 'सरस' आदि मनीषियों का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एवं महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकुंवरजी, महासती श्री झणकारकुंवरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसंग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व. श्रावक चिमनसिंहजी लोढ़ा, स्व. श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप में हो आता है, जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नों से आगम समिति अपने कार्य में इतनी शीघ्र सफल हो रही है। चार वर्ष के अल्पकाल में ही सत्तरह आगम ग्रन्थों का मुद्रण तथा करीब १०, १५ आगमों का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियों की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ़ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओं के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसंघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-संत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म. आदि मुनिजनों के सद्भाव-सहकार के बल पर यह संकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"  
(युवाचार्य)

# प्रस्तावना

( प्रथम संस्करण से )

राजप्रश्नीयसूत्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन

## धर्म : विश्लेषण

भारतीय साहित्य में 'धर्म' शब्द व्यापक रूप से व्यवहृत हुआ है। आध्यात्मिक हो या दार्शनिक साहित्य, आयुर्वेदिक हो या ज्योतिषशास्त्र हो, सर्वत्र 'धर्म' शब्द के सम्बन्ध में चिन्तन किया गया है। उस सम्बन्ध में विशालकाय ग्रन्थ निर्मित हुए हैं। विभिन्न व्याख्याएँ और परिभाषाएँ धर्म शब्द को लेकर लिखी गई हैं। वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक लाखों चिन्तकों ने धर्म शब्द को अपना चिन्तन का विषय बनाया है और धर्म के नाम पर अनेक विवाद भी हुए हैं। पारस्परिक मतभेदों के कारण धर्म के विराट् सागर में विवाद के तूफान उठे हैं, तर्क-वितर्क के भंवरो ने जनमानस को विक्षुब्ध किया है। तथापि धर्म के स्वरूप की जिज्ञासा प्रत्येक मानव में आज भी है। हम धर्म शब्द की विभिन्न परिभाषाओं पर चिन्तन न कर संक्षेप में ही जैन मनीषियों ने धर्म पर जो गहराई से अनुचिन्तन किया है, उसे यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

परमार्थतः धर्म वस्तु का स्वभाव है। व्यवहारतः क्षमा, निर्लोभता, सरलता आदि सद्गुणों की अपेक्षा से वह दश प्रकार का है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय की दृष्टि से धर्म के तीन प्रकार हैं। जीवों की रक्षा करना भी धर्म है,<sup>१</sup> इसलिए यह स्पष्ट है जो आत्मा के निज गुण हैं, वह धर्म है और जो पुद्गलों का स्वभाव है, वह आत्मा के लिए धर्म नहीं किन्तु परभाव है, विभाव है और वही अधर्म है। जो स्वभाव है, वह सदा बना रहता है और जो विभाव है वह सदा बना नहीं रहता है। पानी को गर्म करने पर भी पानी हमेशा गर्म नहीं रहता, क्योंकि पानी का स्वभाव शीतलता है। मात्र आग के कारण उसमें उष्णता आती है। वैसे ही क्रोधादि भाव कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं, वे आत्म-स्वभाव नहीं, किन्तु विभाव हैं। इसलिए उन्हें अधर्म कहा गया है।

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत की—आत्मा का स्वरूप क्या है ? कषाय आदि आत्मा का स्वरूप है या समता आदि ? समाधान में भगवान् ने कहा—समता ही आत्मा का स्वभाव है, न कि कषाय। समत्व को प्राप्त कर लेना ही आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर लेना है।<sup>२</sup> श्रमण भगवान् महावीर का ही नहीं, आधुनिक युग के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड का भी यह मन्तव्य है—“चेत-जीवन और स्नायु-जीवन का स्वभाव यह है कि वह विक्षोभ और तनाव को नष्ट कर समत्व की संस्थापना करता है।”<sup>३</sup> विक्षोभ, तनाव और मानसिक द्वन्द्व से ऊपर उठ कर शान्त निर्द्वन्द्व मनःस्थिति को प्राप्त करना ही वस्तुतः धर्म है। भगवान् महावीर ने भी आचारांग में स्पष्ट शब्दों में कहा—“समियाए धम्मो आरियेहिं पवेइए”<sup>३</sup>—आर्यों ने समत्व भाव को धर्म कहा है।<sup>३</sup>

१. धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो ।

रणणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥

२. आया सामाइए ।

३. आचारांग—१/८/२

भाषाशास्त्र की दृष्टि से धर्म शब्द 'धृ' धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ है—धारण करना। आत्मा का धर्म है सद्गुणों को धारण करना। ये सद्गुण बाहर से लाये नहीं जाते, वे विभाव के हटते ही स्वतः प्रकट हो जाते हैं। उदाहरण के रूप में अग्नि के संयोग के हटते ही पानी स्वतः शीतल हो जाता है। धर्म के लिए अधर्म को छोड़ना होता है, विभाव को दूर करना होता है। जैसे—बादल के हटने पर सूर्य का चमचमाता हुआ प्रकाश प्रकट हो जाता है, वैसे ही अधर्म के बादल छंटते ही धर्म का दिव्य आलोक जगमगा पड़ता है। धर्म ऊपर से आरोपित नहीं होता और जो आरोपित है, वह अधर्म है। उस अधर्म ने ही मानव में धर्म के प्रति घृणा पैदा की। धर्म का दम्भ अधार्मिकता से भी अधिक भयावह है। क्योंकि इसमें अधर्म को छिपाने के लिए ढोंग किया जाता है। यह धर्म के नाम पर आत्म-प्रवञ्चना है। धर्म से आकुलता-व्याकुलता नष्ट होकर निर्मलता प्राप्त होती है।

### धर्म के दो प्रकार : श्रुतधर्म और चारित्रधर्म

धर्म के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए स्थानांग में धर्म के दो भेद बताये हैं—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। ये दोनों धर्म मोक्ष रूपी रथ के चक्र हैं। श्रुतधर्म से धर्म का सही स्वरूप समझा जाता है, इसलिए चारित्रधर्म से पूर्व उसका उल्लेख किया गया है। यहां हम चारित्रधर्म का विश्लेषण न कर श्रुतधर्म पर चिन्तन करेंगे। श्रुतधर्म पर चिन्तन करने से पूर्व श्रुत शब्द को जानना आवश्यक है। सामान्यतः श्रुत का अर्थ है—सुनना। क्योंकि 'श्रु' धातु से श्रुत शब्द निष्पन्न हुआ है। पूज्यपाद<sup>४</sup> ने लिखा है—'श्रुत-ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर निरूप्यमान पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनना या सुनाना मात्र है, वह श्रुत है।' आचार्य अकलंक<sup>५</sup> ने भी यही अर्थ 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' में प्रस्तुत किया है। पूज्यपाद ने यह स्पष्ट किया है कि 'श्रुत शब्द' शब्द सुनने रूप अर्थ का मुख्य रूप से प्रतिपादक होने पर भी वह ज्ञानविशेष में ही रूढ है।<sup>६</sup> केवलमात्र कानों से सुना गया शब्द ही श्रुत नहीं है।<sup>७</sup> जैन दार्शनिकों को मुख्य रूप से श्रुत से ज्ञान अर्थ ही इष्ट है, पर उपचार से श्रुत का शब्दात्मक होना भी उन्हें ग्राह्य है। विस्तार में न जाकर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर मन और इन्द्रिय की सहायता से अपने में नियत अर्थ को प्रतिपादन करने में समर्थ ज्ञान श्रुतज्ञान है।<sup>८</sup>

प्रोक्त 'सुय' शब्द के संस्कृत में चार रूप होते हैं—श्रुत, सूत्र, सूक्त (सुत्त) और स्यूत। आचार्यों ने इन रूपों के अनुसार इनकी व्याख्या की है। आचार्य अभयदेव ने श्रुत का अर्थ किया है—'द्वादश अंगशास्त्र अथवा जीवादि

४. दुविहे धम्मे पन्नत्ते, तं जहा—सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव । —स्थानांग. स्थान २, उ. १
५. तदावरणकर्मक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रूयते अनेन श्रृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम् । —सर्वा. सि. (१/९) पृ. ६६
६. श्रुतशब्दः कर्मसाधनश्च । २। किंच पूर्वोक्तविषयसाधनश्चेति वर्तते । श्रुतावरणक्षयोपशमाद्यन्तरंग-बहिरंग हेतुसन्निधाने सति श्रूयतेस्मेति श्रुतम् । कर्तरी श्रुतपरिणम आत्मैव श्रृणोतीति श्रुतम् । भेदविवक्षायां श्रूयतेऽनेनेति श्रुतम्, श्रवणमात्रं वा । —(त. वा [१/९/२])
७. श्रुतशब्दोऽयं श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढविशात् कस्मिंश्चिज्ज्ञानविशेषे वर्तते । —सर्वा.सि. (१/२०) पृ. ८३
८. ....ज्ञानमित्यनुवर्तनात् ।  
श्रवणं हि श्रुतज्ञानं न पुनः शब्दमात्रकम् ॥  
—त. श्लो. वा. व. (३२/०/२०), पृष्ठ ५९८
९. इंदियमणोणिमित्तं जं विण्णाणं सुताणुसारेणं । णिअयत्थुत्ति समत्थं तं भावसुतं मती सेसं ।  
—विशे. आ. भा. (भा. ५), गाथा ९९

तत्त्वों का परिज्ञान ।<sup>१०</sup>

जैसे सूत्र में माला के मनके पिरोये हुए होते हैं उसी प्रकार जिसमें अनेक प्रकार के अर्थ ओत-प्रोत होते हैं, वह सूत्र है। जिसके द्वारा अर्थ सूचित होता है वह सूत्र है। जैसे—प्रसुप्त मानव के पास यदि कोई वार्तालाप करता है पर निद्राधीन होने के कारण वह वार्तालाप के भाव से अपरिचित रहता है, वैसे ही बिना व्याख्या पढ़े जिसका बोध न हो, वह सूत्र है। अपर शब्दों में यों कह सकते हैं—जिसके द्वारा अर्थ जाना जाय अथवा जिसके आश्रय से अर्थ का स्मरण किया जाय या अर्थ जिसके साथ अनुस्यूत हों, वह सूत्र है।<sup>११</sup>

इस प्रकार श्रुत या सूत्र का स्वाध्याय करना, श्रुत के द्वारा जीवादि तत्त्वों और पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जानना श्रुतधर्म है।

### श्रुतधर्म के भेद

श्रुतधर्म के भी दो प्रकार हैं—सूत्ररूप श्रुतधर्म और अर्थरूप श्रुतधर्म।<sup>१२</sup> अनुयोगद्वारा सूत्र में श्रुत के द्रव्यश्रुत और भावश्रुत ये दो प्रकार बताये हैं। जो पत्र या पुस्तक पर लिखा हुआ है वह 'द्रव्यश्रुत' है और जिसे पढ़ने पर साधक उपयोगयुक्त होता है वह 'भावश्रुत' है।

श्रुतज्ञान का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—जैसे सूत्र—धागा पिरोई हुई सूई गुम हो जाने पर भी पुनः मिल जाती है, क्योंकि धागा उसके साथ है। वैसे ही सूत्रज्ञान रूप धागे से जुड़ा हुआ व्यक्ति आत्मज्ञान से वंचित नहीं होता। आत्मज्ञान युक्त होने से वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

नन्दीसूत्र में श्रुत के दो प्रकार बताये हैं—सम्यक्श्रुत और मिथ्याश्रुत। वहां पर सम्यक्श्रुत और मिथ्याश्रुत की सूची भी दी है और अन्त में स्पष्ट रूप से लिखा है—“सम्यक्श्रुत कहलाने वाले शास्त्र भी मिथ्यादृष्टि के हाथों में पड़कर मिथ्यात्व बुद्धि से परिगृहीत होने के कारण मिथ्याश्रुत बन जाते हैं। इसके विपरीत मिथ्याश्रुत कहलाने वाले शास्त्र सम्यग्दृष्टि के हाथों में पड़कर सम्यक्त्व से परिगृहीत होने के कारण सम्यक्-श्रुत बन जाते हैं।”<sup>१३</sup>

श्रुत के अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत, संज्ञीश्रुत और असंज्ञीश्रुत आदि चौदह भेद किये गये हैं। उनमें सम्यक्श्रुत वह है जो वीतरागप्ररूपित है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् ने अपने आपको देखा एवं समूचे लोक को भी हस्तामलकवत् देखा। भगवान् ने सत्य का प्रतिपादन किया। उन्होंने बन्ध, बन्धहेतु, मोक्ष और मोक्षहेतु का स्वरूप प्रकट किया। भगवान् की वह पावन वाणी आगम बन गई। इन्द्रभूति औतम आदि प्रमुख शिष्यों ने उस वाणी को सूत्र रूप में गूथा, जिससे आगम के सूत्रागम और अर्थागम ये दो विभाग हुए। भगवान् के प्रकीर्ण उपदेश को 'अर्थागम' और उसके आधार पर की गई सूत्ररचना 'सूत्रागम' कहा गया। यह आगमसाहित्य आचार्यों के लिए महान् निधि थी।

१०. दुर्गतौ प्रपततो जीवान् रुणद्धि, सुगतौ च तान् धारयतीति धर्मः । श्रुतं द्वादशांग तदेव धर्मः श्रुतधर्मः । —स्थानांगवृत्ति
११. सूत्र्यन्ते सूच्यन्ते वाऽर्था अनेनेति सूत्रम् । सुस्थितत्वेन व्यापित्वेन च सुसूक्तत्वाद् वा सुक्तं, सुसमिव वा सुसम् । सिंचति क्षरति यस्मादर्थं तस्मात् सूत्रं निरुक्तविधिना वा सूचयति श्रवति श्रूयतेः स्मर्यते वा येनार्थः । —स्थानांगवृत्ति
१२. सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुत्तसुयधम्मे चैव अत्थसुयधम्मे चैव । —स्थानांग, स्था. २
१३. एआई मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिगगहियाइं मिच्छासुयं ।  
एआई चैव सम्मदिट्ठिस्स सम्मतपरिगगहियाइं सम्मसुयं ॥

—नन्दीसूत्र-श्रुतज्ञान प्रकरण

इसलिए वह 'गणपिटक' कहलाया। उस गुम्फन के १. आचार, २. सूत्रकृत, ३. स्थान, ४. समवाय, ५. भगवती, ६. ज्ञाताधर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृद्दशा, ९. अनुत्तरौपपातिकदशा, १०. प्रश्नव्याकरण, ११. विपाक, १२. दृष्टिवाद, ये मौलिक बारह भाग हुए, इसलिए उसका दूसरा नाम 'द्वादशांगी' है। इस तरह प्रणेता की दृष्टि से आगम-साहित्य 'अंगप्रविष्ट' और 'अनंगप्रविष्ट' इन दो भागों में विभक्त हुआ। भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य गणधरों ने जिस साहित्य की रचना की, वह 'अंगप्रविष्ट' है। स्थविरों ने भगवान् महावीर की वाणी के आधार से जिस साहित्य की संरचना की वह 'अनंगप्रविष्ट' है। बारह अंगों के अतिरिक्त सारा आगमसाहित्य अनंगप्रविष्ट के अन्तर्गत आता है। द्वादशांगी का आगम-साहित्य में प्रमुखतम स्थान रहा है। वह स्वतः प्रमाण है। द्वादशांगी के अतिरिक्त जो आगम हैं, वे परतःप्रमाण हैं अर्थात् जो द्वादशांगी से अविरोद्ध हैं, श्रेष्ठ अप्रमाण हैं।

### राजप्रश्नीय : नामकरण

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैनों का आधारभूत प्राचीनतम साहित्य आगम है और वह श्रुत भी है। राजप्रश्नीय-सूत्र की परिगणना अंगबाह्य आगमों में की गई है। वह द्वितीय उपांग है। आचार्य देववाचक ने इसका नाम 'रायपसेणिय' दिया है।<sup>१४</sup> आचार्य मलयगिरि ने 'रायपसेणीअ' लिखा है। वे इसका संस्कृत रूप 'राजप्रश्नीयम्' करते हैं। सिद्धसेनगणी ने तत्त्वार्थवृत्ति में 'राजप्रसेनकीय' लिखा है। तो मुनिचन्द्र सूरि ने 'राजप्रसेनजित' लिखा है।

### अक्रियावाद : एक चिन्तन

आचार्य मलयगिरि ने रायपसेणीय को सूत्रकृतांग का उपांग माना है। उनका मन्तव्य है कि सूत्रकृतांग में क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानीवादी, विनयवादी प्रभृति पाखण्डियों के तीन सौ तिरेसठ मत प्रतिपादित हैं, उनमें से अक्रियावादी मत को आधार बनाकर राजा प्रदेशी ने केशी श्रमण से प्रश्नोत्तर किये। सूत्रकृतांग<sup>१५</sup> और भगवती<sup>१६</sup> में चार समवसरणों में एक अक्रियावादी बताया है। वहां पर अक्रियावादी का अर्थ अनात्मवादी—क्रिया के अभाव को मानने वाला, केवल चित्तशुद्धि को आवश्यक और क्रिया को अनावश्यक मानने वाला—क्रिया है। स्थानांग सूत्र में<sup>१७</sup> अक्रियावादी शब्द का प्रयोग अनात्मवादी और एकान्तवादी दोनों अर्थों में मिलता है। वहां अक्रियावादी के एकवादी, अनेकवादी, मितवादी, निर्मितवादी, सातवादी, समुच्छेदवादी, नित्यवादी, असत्परलोकवादी ये आठ प्रकार बताये हैं। उनमें से छह वाद एकान्त दृष्टि वाले हैं। समुच्छेदवाद और नास्तिक-मोक्षपरलोकवाद ये दो अनात्मवाद हैं। नयोपदेश ग्रन्थ में उपाध्याय यशोविजयजी ने धर्म्यश की दृष्टि से जैसे—चार्वाक को नास्तिक अक्रियावादी कहा है वैसे ही धर्माश की दृष्टि से सभी एकान्तवादियों को नास्तिक कहा है।<sup>१८</sup>

सूत्रकृतांगनिर्युक्ति में अक्रियावादियों के चौरासी प्रकार बताये हैं। यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि

१४. नन्दीसूत्र, सूत्र-८३

१५. सूत्रकृतांग—१/१२/१

१६. भगवती—३०/१

१७. अट्ट अक्रिय्यावाइ पण्णत्ता तं जहा—एगावाइ, अणेगावाइ, मितवाइ, णिम्मितवाइ, सायवाइ, समुच्छेदवाइ, णित्तावाइ, णसंतपरलोगवाइ ।  
—स्थानांग ८/२२

१८. धर्म्यशे नास्तिको ह्येको, बाहस्पत्यः प्रकीर्तितः ।

धर्माशे नास्तिका ज्ञेयाः, सर्वेऽपि परतीर्थिकाः ॥

—नयोपदेश, श्लोक १२६

उस समय जिन वादों का उल्लेख किया गया है उनकी कौनसी दार्शनिक धारयें थीं ? पर वर्तमान में उन धाराओं के संवाहक दार्शनिक इस प्रकार हैं—

### १. एकवादी—

१. ब्रह्माद्वैतवादी— वेदान्त ।
२. विज्ञानाद्वैतवादी— बौद्ध ।
३. शब्दाद्वैतवादी— वैयाकरण ।

ब्रह्माद्वैतवादी की दृष्टि से ब्रह्मा, विज्ञानाद्वैतवादी की दृष्टि से विज्ञान और शब्दाद्वैतवादी की दृष्टि से शब्द पारमार्थिक तत्त्व है। शेष तत्त्व अपारमार्थिक हैं। अतः ये सारे दर्शन एकवादी हैं। अनेकान्त दृष्टि के आलोक में सभी पदार्थ संग्रहनय की दृष्टि से एक हैं और व्यवहारनय की दृष्टि से अनेक हैं।

### २. अनेकवादी—

वैशेषिक दर्शन अनेकवादी है। उसके अभिमतानुसार धर्म-धर्मी, अवयव-अवयवी पृथक्-पृथक् हैं।<sup>१९</sup>

### ३. मितवादी—

१. जीवों की संख्या परिमित मानने वाले—इनके मन्तव्य पर स्याद्वादमञ्जरी टीका में चिन्तन किया गया है।<sup>२०</sup>
२. आत्मा को अंगुष्ठपर्व या श्यामक तंदुल जितना मानने वाले—इस सम्बन्ध में बृहदारण्यक उपनिषद्,<sup>२१</sup> छान्दोग्योपनिषद्,<sup>२२</sup> कौषीतकी उपनिषद्,<sup>२३</sup> मुण्डक उपनिषद्<sup>२४</sup> आदि विविध उपनिषदों का मत है।
३. लोक को केवल सात द्वीप समुद्र का मानने वाले—इस विचारधारा का उल्लेख भगवती आदि में हुआ है।

### ४. निर्मितवादी—

नैयायिक, वैशेषिक आदि—जो लोक को ईश्वरकृत मानते हैं।<sup>२५</sup>

१९. स्वतोनवृत्ति-व्यतिभाजो, भावा न भावान्तरनेयरूपाः ।  
परात्मतत्त्वादतथात्मतत्त्वाद्, द्वयं वदन्तोऽकुशलाः स्खलन्ति ॥

—अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशत्तः, श्लोक ४

२०. मुक्तोपि वाभ्येतु भवं भवो वा भवस्थशून्योस्तु मितात्मवादे ।  
षड्जीवकार्यं त्वमनन्तसंख्यमाख्यस्तथा नाथ ! यथा न दोषः ॥

—अन्ययोग०, श्लोक २९

२१. अस्थूल मन एव ह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्वेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागऽश्नोऽतेजस्कम-  
प्राणमसुखमनन्तरमबाह्यम् । यथा ब्रीहिर्वा यवो वा !

—बृहदारण्यक उपनिषद् ३/८/८ ५/६/१

२२. प्रदेशमात्रम् !

—छान्दोग्य उपनिषद् ५/१८/१

२३. एष प्रज्ञात्मा इदं—शरीरमनुप्रविष्टः ।

—कौषीतकी उपनिषद् ३५/४/२०

२४. सर्वगतः ।

—मुण्डक-उपनिषद् १/१/६

२५. ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ।

न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः ॥

तत्कारितत्त्वाद्देहेतुः ।

—न्यायसूत्र, ४/१/१९-२१

## ५. सातवादी—

आचार्य अभयदेव के<sup>२६</sup> अनुसार 'सातवाद' बौद्धों का मत है। सूत्रकृतांग से भी इस कथन की पुष्टि होती है।<sup>२७</sup> चार्वाकदर्शन का साध्य सुख है। तथापि वह सातवादी नहीं है। क्योंकि "सातं सातेण विज्जति" सुख का कारण सुख ही है। प्रस्तुत कार्य-कारण का सिद्धान्त चार्वाकदर्शन का नहीं है। बौद्धदर्शन पुनर्जन्म में निष्ठा रखता है। उसकी मध्यम प्रतिपदा भी कठिनाइयों से बचकर चलने की है, इसलिए वह सातवादी माना गया है। चूर्णिकार ने भी सातवाद को बौद्ध माना है। "सातं सातेण विज्जते"—इस पर चिन्तन करते हुए चूर्णिकार ने लिखा है—'इदानीम् शाक्याः परामृश्यन्ते' अर्थात् अब बौद्धों के सम्बन्ध में हम चिन्तन कर रहे हैं। भगवान् महावीर ने कायक्लेश पर बल दिया। "अत्तहियं खु दुहेण लब्भई"—आत्महित कष्ट से सिद्ध होता है। जैनदर्शन ने बौद्धों के सामने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया। बौद्धों का मन्तव्य है—शारीरिक कष्ट की अपेक्षा मानसिक समाधि का होना आवश्यक है। कार्य-कारण के सिद्धान्तानुसार दुःख, सुख का कारण नहीं हो सकता। इसलिए सुख, सुख से ही प्राप्त होता है। आचार्य शीलांक ने बौद्धों का सातवाद सिद्धान्त माना ही है, साथ ही जो परिषद को सहन करने में असमर्थ हैं, ऐसे जैन मुनियों का भी अभिमत माना है।<sup>२८</sup>

## ६. समुच्छेदवादी—

प्रत्येक पदार्थ क्षणिक है। उत्पत्ति-अनन्तर दूसरे ही क्षण में उसका उच्छेद हो जाता है, ऐसा बौद्ध मन्तव्य है। इसलिए बौद्धदर्शन समुच्छेदवादी माना गया है।

## ७. नित्यवादी—

सांख्यदर्शन के सत्कार्यवाद के अनुसार पदार्थ कूटस्थ नित्य है, कारण रूप में प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व रहता है। कोई भी पदार्थ नूतन रूप से पैदा नहीं होता और न वह विनष्ट ही होता है। पदार्थ का आविर्भाव और तिरोभाव मात्र होता है।<sup>२९</sup>

## ८. असत् परलोकवादी—

चार्वाकदर्शन न मोक्ष को मानता है और न परलोक आदि को स्वीकार करता है।

## राजा प्रदेशी : एक परिचय

राजा प्रदेशी अक्रियावादी था और उसी दृष्टि से उसने अपनी जिज्ञासायें केशीश्रमण के सामने प्रस्तुत की थीं। डा. विन्टरनीत्ज का मन्तव्य है कि प्रस्तुत आगम में पहले राजा प्रसेनजित की कथा थी। उसके पश्चात् प्रसेनजित के स्थान पर 'पएस' लगाकर प्रदेशी के साथ इस कथा का सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास किया है। पर प्रबल प्रमाण नहीं दिया है, अतः हमारी दृष्टि से वह कल्पना ही है। प्रसेनजित महावीर और बुद्ध के समसामयिक राजाओं में एक राजा था। संयुक्तनिकाय<sup>३०</sup> के अनुसार उसने एक यज्ञ के लिए ५०० बैल, ५०० बछड़े, ५०० बछड़ियाँ, ५०० बकरियाँ,

२६. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०४

२७. सूत्रकृतांग—३/४/६

२८. सूत्रकृतांगवृत्ति, पत्र ९६ : एके शाक्यादयः स्वयूथ्या वा लोचादिनोपतसाः ।

२९. सांख्यकारिका—९

३०. संयुक्तनिकाय—कौशलसंयुत, यज्जसुत्त, ३/१/१

५०० भेड़ आदि एकत्रित किये थे। बुद्ध के उपदेश से बिना मारे ही उसने यज्ञ का विसर्जन किया।<sup>३१</sup> उसने बुद्ध से छोटे-बड़े अनेक प्रश्न पूछे, उसका संकलन संयुक्तनिकाय के 'कौशलसंयुक्त' में हुआ है। दीघनिकाय के अनुसार<sup>३२</sup> राजा प्रदेशी प्रसेनजित के अधीन था और राजप्रश्नीयसूत्र के अनुसार जितशत्रु प्रदेशी राजा का आज्ञाकारी सामन्त था। क्योंकि जैन आगमसाहित्य में कहीं भी प्रसेनजित राजा का नाम प्राप्त नहीं है। श्रावस्ती के राजा का नाम उपासक-दशांग<sup>३३</sup> तथा राजप्रश्नीय<sup>३४</sup> सूत्र में 'जितशत्रु' है। यों वाणिज्यग्राम, चम्पा, वाराणसी, आलम्बिया आदि अनेक नगरियों के राजा का नाम जितशत्रु मिलता है।<sup>३५</sup> हमारी दृष्टि से यह ऐसा गुणवाचक शब्द है, जिसका प्रयोग प्रत्येक राजा के लिए प्रयुक्त हो सकता है। यह बहुत कुछ सम्भव है कि प्रसेनजित का ही अपरनाम 'जितशत्रु' जैन साहित्य में आया हो। प्रसेनजित पहले वैदिक परम्परा का अनुयायी था। उसके पश्चात् वह तथागत बुद्ध का अनुयायी बना। वह जैन-धर्म का अनुयायी नहीं था, इसलिए उसका जैन साहित्य में वर्णन न आया हो, यह भी सम्भव है। श्रावस्ती के अनुयायी निर्ग्रन्थ धर्म पर पूर्ण आस्थावान् थे। गणधर गौतम और केशीकुमार का मधुर संवाद भी वहीं पर हुआ था।<sup>३६</sup> तथा अन्य अनेक प्रसंग भी भगवान् महावीर के जीवन के साथ जुड़े हुए हैं।<sup>३७</sup>

### प्रस्तुत आगम

प्रस्तुत आगम दो भागों में विभक्त है। इनमें प्रथम विभाग में 'सूर्याभ' नामक देव श्रमण भगवान् महावीर के समक्ष उपस्थित होता है और वह विविध प्रकार के नाटकों का प्रदर्शन करता है। द्वितीय विभाग में राजा प्रदेशी का केशी कुमारश्रमण से जीव के अस्तित्व और नास्तित्व को लेकर मधुर संवाद है।

प्रस्तुत आगम का प्रारम्भ 'आमलकप्पा' नगरी के वर्णन से होता है। यह नगरी पश्चिम विदेह में श्वेताम्बिका के समीप थी। बौद्ध साहित्य में वुल्लिय राज्य की राजधानी 'अल्लकप्पा' थी। सम्भव है, अल्लकप्पा ही आमलकप्पा हो। यह स्थान शाहाबाद जिले में 'मसार' और 'वैशाली' के बीच अवस्थित था। आमलकप्पा के बाहर 'अम्बसाल' नामक चैत्य था। वह चैत्य वनखण्ड से वेष्टित था। वहां के राजा का नाम 'सेय' और रानी का नाम 'धारिणी' था। भगवान् महावीर का वहां पर शुभागमन हुआ और वे अम्बसाल चैत्य में विराजे। राजा-रानी तथा अन्य नगर-निवासी प्रभु महावीर के पावन प्रवचन को श्रवण करने के लिए पहुंचे। आगमसाहित्य में राजा 'सेय' का अन्यत्र कहीं भी विशेष परिचय नहीं आया है। स्थानांगसूत्र के आठवें स्थान में भगवान् महावीर ने जिन आठ राजाओं को दीक्षित किया, उन में एक राजा का नाम 'सेय' है। आचार्य अभयदेव के अनुसार यही सेय राजा था, जिसने भगवान् महावीर के पास प्रब्रज्या अंगीकार की थी।<sup>३८</sup> आचार्य गुणचन्द्र ने लिखा है—एक बार भगवान् महावीर पोतनपुर में पधारे, तब

३१. धम्मपद-अट्टकथा, ५-१ Buddhist Legends, Vol. II, P. 104 ff.

३२. दीघनिकाय—२/१०

३३. उपासकदशांगसूत्र—अध्ययन ९/१०

३४. राजप्रश्नीयसूत्र

३५. उपासकदशांगसूत्र—अध्ययन १/अ. २, अ. ३, अ. ५

३६. उत्तराध्ययन, अध्ययन-२३, गाथा ३

३७. (क) भगवतीसूत्र, शतक-१५वां

(ख) भगवतीसूत्र—शतक-२, उद्देशक-१

३८. स्थानाङ्ग वृत्ति, पत्र-४०८

शंख, वीर, शिव, भद्र आदि राजाओं ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की थी।<sup>३९</sup> इससे विज्ञों का यह अभिमत है कि सभी राजागण एक ही दिन दीक्षित हुए थे।<sup>४०</sup> मलयगिरि ने 'सेय' का संस्कृत रूपान्तर श्वेत किया है। इसी तरह धारिणी नाम अन्य आगमों में अनेक स्थलों पर आया है। औपपातिक सूत्र में राजा कूणिक की रानी का नाम भी धारिणी है तथा अन्यत्र भी इस नाम का प्रयोग हुआ है। सम्भव है, गर्भ को धारण करने के कारण 'धारिणी' कहलाती हो। भले ही उसका व्यक्तिगत नाम अन्य कुछ भी रहा हो।

### वास्तुकला का उत्कृष्ट रूप : विमान

सौधर्म स्वर्ग के 'सूर्याभ' नामक देव ने अपने दिव्य ज्ञान से निहारा—श्रमण भगवान् महावीर आमलकप्पा के अम्बसाल चैत्य में विराज रहे हैं। उसने वहीं से भगवान् को वन्दन किया और अपने आभियोगिक देवों को आदेश दिया कि वे शीघ्र ही प्रभु महावीर की सेवा में पहुंचें और वहां की आसपास की भूमि को साफ कर सुगन्धित द्रव्यों से महका दें। तदनुसार आज्ञा का पालन किया गया। सूर्याभ देव ने अपने सेनापति को बुलाकर अत्यन्त कलात्मक विमान की रचना करने की आज्ञा दी। विमान का वर्णन वास्तुकला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अपूर्व एवं अद्भुत है। विमान के तीन ओर सोपान बनाये गये थे। तीनों सोपानों के सामने मणि-मुक्ताओं और तारिकाओं से रचित तोरण लगाये गये। उन तोरणों पर आठ मंगल स्थापित किये गये। रंग-बिरंगी ध्वजायें, छत्र, घण्टे और सुन्दर कमलों के गुच्छे लगाये गये। विमान का केवल बाह्य भाग ही सुन्दर नहीं था अपितु अन्दर के भाग में इस प्रकार कलात्मक मणियां जड़ी गई थीं कि दर्शक देखते ही मंत्रमुग्ध हो जायें। तथा इस प्रकार के चित्र उद्दंकित किये गये थे कि अवलोकन करने वाला ठगा-सा रह जाय। विमान के मध्य में प्रेक्षागृह का निर्माण किया गया, जिसमें अनेक खम्भे बनाये गये। ऊंची वेदिकायें, तोरण, शाल-भंजिकायें स्थापित की गईं। ईहामृग, वृषभ, हाथी, घोड़े, वनलता प्रभृति के सुन्दर चित्र अंकित किये गये। स्वर्णमय और रत्नमय स्तूप स्थापित किये गये। सुगन्धित द्रव्यों से उसे महकाया गया। मण्डल के चारों ओर वाद्यों की सुरीली स्वर-लहरियां झनझनाने लगीं। मण्डप के मध्यभाग में प्रेक्षकों के बैठने का स्थान निर्मित किया गया। उनमें एक पीठिका स्थापित की। उस पर सिंहासन रखा, जो कलात्मक था। सिंहासन के आगे मुलायम पादपीठ रखा। सिंहासन श्वेत वर्ण के विजयदूष्य से सुशोभित था। उसके मध्य में अंकुश के आकार की एक खूंटी थी, जिस पर मोतियों की मालायें लटक रही थीं। अनेक प्रकार के रत्नों के हार दमक रहे थे। इस विमान में सूर्याभ देव की मुख्य देवियों तथा अन्य आभ्यन्तर परिषद्, सेनापति आदि के बैठने के लिए भद्रासन बिछे हुए थे। सूर्याभ देव अपने स्थान पर आसीन हुआ और अन्य देवगण भी अपने-अपने आसनों पर अवस्थित हुए। विमान अत्यन्त द्रुत गति से चला। असंख्यात द्वीप, समुद्रों को लांघता हुआ जहां भगवान् महावीर विराज रहे थे, वहां उतरा। सूर्याभदेव अपने परिवार सहित भगवान् के श्री-चरणों में पहुंचा।

भगवान् महावीर के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए उपदेश को श्रवण कर आमलकप्पा के नागरिक यथास्थान लौट गये। सूर्याभ देव ने अपने अन्तर्हृदय की जिज्ञासाएं प्रस्तुत कीं। भगवान् से समाधान पाकर वह परम संतुष्ट हुआ। प्रेक्षामण्डप की संरचना की। विविध प्रकार के चमचमाते हुए वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एक सौ आठ देवकुमार तथा एक सौ आठ देवकुमारियां आविर्भूत हुईं।

३९. "पत्तो पोयणपुरं, तहिं च संखवीरसिवभदपमुहा नरिन्दा दिक्खा गाहिया ।"

—श्री गुणचन्द महावीरचरित्त, प्रस्ताव ८, पत्र ३३७

४०. टाणं—जैन विश्वभारती, लाडनूं, पृष्ठ ८३७

## वाद्य : विश्लेषण

उसके पश्चात् सूर्याभ देव ने निम्न प्रकार के वाद्यों की विक्रियाशक्ति से रचना की—शंख, श्रृंग, श्रृंगिका, खरमुही (काहाला), पेया (महतीकाला), पिरिपिरिका (कोलिक मुखावनद्ध मुखवाद्य), पणव (लघुपटह), पटह, भंभा (ढक्का), होरंभा (महाढक्का), भेरी (ढक्काकृति वाद्य), झल्लरी<sup>४१</sup> (चर्मावनद्धा विस्तीर्णवलयाकारा), दुन्दुभि (भेर्याकारा संकटमुखी देवातोद्य<sup>४२</sup>), मुरज (महाप्रमाण मदंल), मृदंग (लघु मर्दल), नंदीमृदंग (एकतः संकीर्णः अन्यत्र विस्तृतो मुरजविशेषः), आलिंग (मुरज वाद्यविशेष<sup>४३</sup>), कुस्तुंब (चर्मावनद्धपुटो वाद्यविशेषः), गोमुखी, मर्दल (उभयतः सम<sup>४४</sup>), वीणा, विपंची (त्रितंत्री वीणा), वल्लकी (सामान्यतो वीणा, महती, कच्छभी, भारती वीणा), चित्रवीणा, बद्धीस, सुघोषा, नंदिघोषा, भ्रामरी, षड्भ्रामरी, वरवादनी (सप्ततंत्री वीणा), तूणा, तुम्बवीणा (तुंबयुक्त वीणा), आमोट, झंझा, नकुल, मुकुन्द (मुरज वाद्यविशेष), हुडुक्का<sup>४५</sup>, विचिककी, करटा<sup>४६</sup>, डिंडिम, किणित, कडंब, दर्दर, दर्दरिका (यस्य चतुर्भिश्चरणैखस्थानं भुवि स गोधाचर्मावनद्धो, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, १०१), कलशिका, महुया, तल, ताल, कांस्यताल, रिंगिसिका (रिंगिसिगिका, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति), लत्तिया, मगरिका, शिशुमारिका, वंश, वेणु, वाली (तूणविशेषः, स हि मुखे दत्त्वा वाद्यते), पिरिलि और बद्धक (पिरिलिबद्धकौ तूणरूप वाद्यविशेषौ, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, पृष्ठ—१०१)<sup>४७</sup>, (५९)।

वाद्यों की संख्या के सम्बन्ध में पाठभेद है। मूलपाठ में वाद्यों की संख्या ४९ है और पाठानुसार इनकी संख्या ५९ है। इस पर चिन्तन करते हुए टीकाकार ने इस भिन्नता का समन्वय किया है।<sup>४८</sup> उन्होंने कुछ वाद्यों को एक दूसरे में मिलाकर उनकी संख्या का स्पष्टीकरण किया है। यों आगमसाहित्य में अनेक स्थलों पर वाद्यों का उल्लेख है। आचारांग<sup>४९</sup> में 'किरिक्किया' वाद्य का वर्णन है, जो बांस आदि की लकड़ी से बना हुआ होता था। सूत्रकृतांग में 'कुक्कयय' और 'वेणुपलाशिय' बांसुरियों का वर्णन है, जो दांतों में बांधे हाथ से पकड़ कर वीणा की भांति दाहिने हाथ से बजाई जाती थी।<sup>५०</sup> भगवतीसूत्र की टीका में,<sup>५१</sup> जीवाभिगम,<sup>५२</sup> जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति,<sup>५३</sup> निशीथसूत्र<sup>५४</sup> आदि में भी

४१. यह बायें हाथ में पकड़कर दायें हाथ से बजाई जाती है —शांगंधर, संगीतरत्नाकर—६, १२३७  
 ४२. मंगल और विजय सूचक होती है तथा देवालियों में बजाई जाती है —शांगंधर, संगीतरत्नाकर—६, ११४६  
 ४३. गोपुच्छाकृति मृदंग जो एक सिरे पर चौड़ा और दूसरे पर सकड़ा होता है —वासुदेवशरण अग्रवाल हर्षचरित, पृष्ठ ६७  
 ४४. संगीतरत्नाकर, १०३४ आदि  
 ४५. इसे आवज अथवा स्कंधावज भी कहा जाता है —संगीतरत्नाकर १०७५  
 ४६. संगीतरत्नाकर १०७६ आदि  
 ४७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—सूत्र ६४  
 ४८. मूलभेदापेक्षया आतोद्यभेदा एकोनपञ्चाशत्, शेषास्तु एतेषु एव अन्तर्भवन्ति, यथा वंशातोद्यविधाने वालीवेणुपिरिलिबद्धगाः इति —राजप्रश्नीय सटीक, पृष्ठ १२८  
 ४९. आचारांग—२, ११, ३९१, पृष्ठ ३७९  
 ५०. सूत्रकृतांग—४. २. ७.  
 ५१. भगवतीसूत्र टीका—५. ४. पृष्ठ-२१६ अ  
 ५२. जीवाभिगम—३, पृष्ठ-१४५-अ  
 ५३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—२, पृष्ठ-१००-अ आदि  
 ५४. निशीथसूत्र—१७. १३५-१३८

अनेक वाद्यों का उल्लेख है। बृहत्कल्पभाष्य<sup>५५</sup> में भंभा, मुकुन्द, मद्दल, कडम्ब, झल्लरी, हुडुक्क, कांस्यताल, काहल, तलिमा, वंश, पणव, शंख इन बारह वाद्यों का उल्लेख है। रामायण<sup>५६</sup> व महाभारत<sup>५७</sup> में मड्डूक, पटह, वंश, विपञ्ची, मृदंग, पणव, डिंडिम, आडंबर और कलशी का उल्लेख है।

भरत के नाट्यशास्त्र में, ततवाद्यों में, विपञ्ची और चित्रा को मुख्य और कच्छपी एवं घोषका को उनका अंगभूत माना है।<sup>५८</sup> चित्रवीणा सात तंत्रियों वाली होती थी और वे तंत्रियां अंगुलियों से बजाई जाती थीं। विपञ्ची में नौ तंत्रियां होती थीं, जिसका वादन 'कोण' अर्थात् वीणावादन के दण्ड के द्वारा किया जाता था।<sup>५९</sup> यद्यपि भरत ने कच्छपी और घोषका के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है, किन्तु संगीतरत्नाकर ग्रन्थ के अनुसार घोषका एकतंत्री वाली वीणा थी<sup>६०</sup> और कच्छपी सम्भव है, सात तंत्रियों से कम वाली वीणा हो।

'संगीतदामोदर' में तत के २९ प्रकार बताये हैं—अलावणी, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपञ्ची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, घोषवली, जपा, हस्तिका, कुनजिका, कूर्मी, सारंगी, पट्टिवादिनी, त्रिशवी, शतचन्द्री, नकुलौष्ठी, ढंसवी, ऊदंबरी, पिनाकी, निःशंक, शुष्कल, गदावारणहस्त, रुद्र, स्वरमणमल, कपिलास, मधुस्यंदी और घोषा।<sup>६१</sup> आयारचूला<sup>६२</sup> और निशीथ<sup>६३</sup> में तत के अन्तर्गत वीणा, विपञ्ची, वद्धिसग, तुणय, पवण, तुम्बविणिया, ढंकुण और जोडय ये आठ वाद्य लिये हैं।

वितत—चर्म से आबद्ध वाद्य वितत है। गीत और वाद्य के साथ ताल एवं लय के प्रदर्शन करने हेतु इन वाद्यों का प्रयोग होता था। इनमें मृदंग, पणव (तन्त्रीयुक्त अवनद्य वाद्य), दुर्दर (कलश के आकार वाला चर्म से मढ़ा हुआ वाद्य), भेरी, डिंडिम, मृदंग आदि हैं। ये वाद्य मानव की कोमल भावनाओं को उद्दीपित करते हैं और वीरोचित उत्साह बढ़ाते हैं। इसलिए धार्मिक उत्सव और युद्ध के प्रसंगों पर इनका उपयोग होता था।

विज्ञों का यह भी मानना है कि मुरज, पटह, ढक्का, विश्वक, दर्पवाद्य, घण, पणव, सरुहा, लाव, जाहव, त्रिवली, करट, कमठ, भेरी, कुडुक्का, हुडुक्का, इनसमुरली, झल्ली, दुक्कली, दौंडी, शान, डमरू, ढमुकी, मड्डू, कुंडली, स्तुंग, दुंदुभी, अंग, मछल, अणीकस्थ आदि वाद्य भी वितत के अन्तर्गत आते हैं।<sup>६४</sup>

घन—कांस्य आदि धातुओं से बने हुए वाद्य 'घन' कहलाते हैं। करताल, कांस्यवन, नयभटा, शुक्तिका, कण्ठिका, पटवाद्य, पट्टाघोष, घर्घर, झंझताल, मंजिर, कर्तरी, उष्णकूक आदि घन के अनेक प्रकार हैं। निशीथ

५५. बृहत्कल्पभाष्यपीठिका—२४ वृत्ति

५६. रामायण—५.१०.३८ आदि

५७. महाभारत—७.८२.४

५८. विपञ्ची चैव चित्रा च दारवीष्वांगसंज्ञिते ।

कच्छपीघोषकादीनि प्रत्यंगानि तथैव च ॥

—भरतनाट्य—३३/१५

५९. सप्ततन्त्री भवेत् चित्रा विबंपञ्ची नवतन्त्रिका ।

विपञ्ची कोणवाद्या स्याच्चित्रा चांगुलिवादाना ॥

—भरतनाट्य—२९ / ११४

६०. घोषकश्चैकतन्त्रिका ।

—संगीतरत्नाकर, वाद्याध्याय, पृष्ठ २४८

६१. प्राचीन भारत के वाद्ययन्त्र—कल्याण (हिन्दूसंस्कृति अङ्क) पृष्ठ ७२१-७२२ से उद्धृत

६२. आयारचूला—११ / २

६३. निशीहञ्जयणं—१७ / १३८

६४. प्राचीन भारत के वाद्ययन्त्र—कल्याण (हिन्दूसंस्कृति अंक), पृष्ठ ७२१-७२२

में<sup>६५</sup> घन शब्द के अन्तर्गत ताल, कंसताल, लत्तिय, गोहिय, मक्करीय, कच्छभी, महती, सणालिया और वालिया आदि वाद्य घन में सम्मिलित किए गए हैं।

शुषिर—फूंक से बजाये जाने वाले वाद्य शुषिर हैं। भरतमुनि ने शुषिर के अन्तर्गत वंश को अंगभूत तथा शंख, डिकिकणी आदि वाद्यों को प्रत्यंग माना है।

इस प्रकार प्राचीन साहित्य में वाद्यों के सम्बन्ध में विविध रूप से चर्चायें हैं। हमने संक्षेप में ही यहां कुछ उल्लेख किया है।

## नाटक : एक चिन्तन

सूर्याभ देव ने देव कुमारों और देव कुमारियों को आदेश दिया कि वे नाट्यविधि का प्रदर्शन करें। वे सभी एक साथ नीचे झुके और एक साथ मस्तक ऊपर उठाकर उन्होंने अपना नृत्य और गीत प्रारम्भ किया। उसके पश्चात् बत्तीस प्रकार की नाट्यविधियां प्रदर्शित कीं—

१. स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण के दिव्य अभिनय—आचार्य मलयगिरि<sup>६६</sup> के अनुसार इन नाट्यविधियों का उल्लेख चतुर्दश पूर्वों के अन्तर्गत नाट्यविधि नामक प्राभृत में था, पर वह प्राभृत वर्तमान में विच्छिन्न हो गया है। महाभारत में<sup>६७</sup> स्वस्तिक, वर्धमान और नन्द्यावर्त का उल्लेख है। अंगुत्तरनिकाय में नन्द्यावर्त का अर्थ मछली किया है।<sup>६८</sup> भरत के नाट्यशास्त्र में स्वस्तिक को चतुर्थ और वर्धमानक को तेरहवां नाट्य बताया है। प्रस्तुत अभिनय में भरत के नाट्यशास्त्र में उल्लिखित आंगिक अभिनय के द्वारा नाटक करने वाले, स्वस्तिक आदि आठ मंगलों का आकार बनाकर खड़े हो जाते और फिर हाथ आदि के द्वारा उस आकार का प्रदर्शन करते तथा वाचिक अभिनय के द्वारा मंगल शब्द का उच्चारण करते। जिससे दर्शकों के अन्तर्हृदय में उस मंगल के प्रति रतिभाव समुत्पन्न होता।<sup>६९</sup>

२. आवर्त,<sup>७०</sup> प्रत्यावर्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्यमानव, वर्धमानक, (कंधे पर बैठे हुए पुरुष का अभिनय), मत्स्याण्डक, मकराण्डक,<sup>७१</sup> जार, मार<sup>७२</sup>, पुष्पावली, पद्मपत्र, सागरतरंग, बसन्तलता, पद्मलता<sup>७३</sup> के चित्रों का अभिनय।

३: ईहामृग, वृषभ, घोड़ा, नर, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु, शरभ, चमर, कुंजर,<sup>७४</sup> वनलता, पद्मलता के चित्रों का अभिनय।

६५. निसीहज्जयणं—१७ / १३९

६६. राजप्रश्नीय टीका, पृष्ठ १३६

६७. महाभारत—७, ८२, २०

६८. डिक्शनरी ऑफ पालि प्रॉपर नेम्स, भाग-२, पृष्ठ-२९

६९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका ५, पृष्ठ ४१४

७०. भ्रमद्भ्रमरिकादानैर्नर्तनम् आवर्तः, तद्विपरीतः प्रत्यावर्तः।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका ५, पृष्ठ ४१४

७१. भरत के नाट्यशास्त्र में मकर का वर्णन है।

७२. सम्यग्मणिलक्षणवेदिनौ लोकाद्वेदितव्यौ !

—जीवाजीवाभिगम टीका, पृष्ठ १८९

७३. भारत के नाट्यशास्त्र में पद्म।

७४. भारत के नाट्यशास्त्र में गजदंत।

४. एकतोवक्र<sup>५५</sup>, द्विधावक्र, एकतश्चक्रवाल, द्विधाचक्रवाल, चक्रार्ध, चक्रवाल का अभिनय।
५. चन्द्रावलिका-प्रविभक्ति<sup>५६</sup>, सूर्यावलिका-प्रविभक्ति, वलयावलिका-प्रविभक्ति, हंसावलिका-प्रविभक्ति<sup>५७</sup>, एकावलिका-प्रविभक्ति, तारावलिका-प्रविभक्ति, मुक्तावलिका-प्रविभक्ति, कनकावलिका-प्रविभक्ति और रत्नावलिका-प्रविभक्ति का अभिनय।
६. चन्द्रोद्गमनदर्शन और सूर्योद्गमनदर्शन का अभिनय।
७. चन्द्रागमदर्शन, सूर्यागमदर्शन का अभिनय।
८. चन्द्रावरणदर्शन, सूर्यावरणदर्शन का अभिनय।
९. चन्द्रास्तदर्शन, सूर्यास्तदर्शन का अभिनय।
१०. चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, नागमण्डल, यक्षमण्डल, भूतमण्डल, राक्षसमण्डल, गन्धर्वमण्डल<sup>५८</sup> के भावों का अभिनय।
११. द्रुतविलम्बित अभिनय—इसमें वृषभ और सिंह तथा घोड़े और हाथी की ललित गतियों का अभिनय।
१२. सागर और नगर के आकारों का अभिनय।
१३. नन्दा और चम्पा का अभिनय।
१४. मत्स्यांड, मकरांड, जार और मार की आकृतियों का अभिनय।
१५. क, ख, ग, घ, ङ की आकृतियों का अभिनय।
१६. च-वर्ग की आकृतियों का अभिनय।
१७. ट-वर्ग की आकृतियों का अभिनय।
१८. त-वर्ग की आकृतियों का अभिनय।
१९. प-वर्ग की आकृतियों का अभिनय।
२०. अशोक, आम्र, जंबू, कोशम्ब के पल्लवों का अभिनय।
२१. पद्म, नाग, अशोक, चम्पक, आम्र, वन, वासन्ती, कुन्द, अतिमुक्तक और श्याम लता का अभिनय।
२२. द्रुतनाट्य १<sup>५९</sup>
२३. विलंबित नाट्य।
२४. द्रुतविलंबित नाट्य।
२५. अंचित १<sup>६०</sup>

७५. एकतो वक्रं—नटानां एकस्यां दिशि धनुराकारश्रेण्या नर्तनं । द्विधातो वक्रं—द्वयोः परस्पराभिमुखदिशोः धनुराकारश्रेण्या नर्तनं । एकतश्चक्रवाल एकस्यां दिशि नटानां मण्डलाकारेण नर्तनं । —जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका ५, पृष्ठ ४१४

७६. चन्द्राणां आवलि श्रेणिः तस्याः प्रविभक्तिः—विच्छित्तिरचनाविशेषस्तदभिनयात्मकं ।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका ५, पृष्ठ ४१४

७७. भरत के नाट्यशास्त्र में हंसवक्र और हंसपक्ष।

७८. नाट्यशास्त्र में २० प्रकार के मण्डल बताये गये हैं। यहां गन्धर्वनाट्य का उल्लेख है।

७९. नाट्यशास्त्र में द्रुत नामक लय का वर्णन है।

८०. नाट्यशास्त्र में उल्लेख है।

२६. रिभित।

२७. अंचितरिभित।

२८. आरभट।<sup>१९</sup>

२९. भसोल (अथवा भसल)।<sup>२०</sup>

३०. आरभटभसोल।

३१. उत्पात, निपात, संकुचित, प्रसारित, रयारइय,<sup>२१</sup> भ्रांत और संभ्रांत क्रियाओं से सम्बन्धित अभिनय।

३२. महावीर के च्यवन, गर्भसंहरण, जन्म, अभिषेक, बालक्रीडा, यौवनदशा, कामभोगलीला,<sup>२२</sup> निष्क्रमण, तपश्चरण, ज्ञानप्राप्ति, तीर्थप्रवर्तन और परिनिर्वाण सम्बन्धी घटनाओं का अभिनय [६६-८४]।

अन्य आगमों में अनेक स्थलों पर नाट्यविधियों का उल्लेख हुआ है। उत्तराध्ययन की वृत्ति के अनुसार जब ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती पद पर आसीन हुआ तो उसके सामने एक नट 'मधुकरीगीत' नामक नाट्यविधि प्रदर्शित करता है।<sup>२३</sup> सौधर्म इन्द्र के सामने सुधर्म सभा में 'सौदामिनी' नाटक करने का भी उल्लेख है।<sup>२४</sup>

स्थानांगसूत्र में चार प्रकार के नाट्यों का वर्णन है—अंचित, रिभित, आरभट, भसोल।<sup>२५</sup> भरतनाट्यशास्त्र में एक सौ आठ कर्ण माने जाते हैं। कर्ण का अर्थ है—अंग और प्रत्यंग की क्रियाओं को एक साथ करना। अंचित को तेईसवां कर्ण माना है। प्रस्तुत अभिनय में पैरों को स्वस्तिक के आकार में रखा जाता है। दाहिने हाथ को कटिहस्त (नृत हस्त की एक मुद्रा) और बायें हाथ को व्यावृत तथा परिवृत कर नाक के पास अंचित करने से यह मुद्रा बनती है।<sup>२६</sup> चिन्तातुर व्यक्ति हाथ पर ठोड़ी टिका कर सिर को नीचा रखता है, वह मुद्रा 'अंचित' है। राजप्रश्नीय में यह पच्चीसवां नाट्यभेद माना गया है। 'रिभित' के सम्बन्ध में विशेष जानकारी ग्रन्थों में नहीं है। 'आरभट'—माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रांत प्रभृति चेष्टाओं से युक्त तथा वध, बन्धन आदि से उद्धत नाटक 'आरभटी' है।<sup>२७</sup> 'साहित्यदर्पण'<sup>२८</sup> में इसके चार प्रकार बताये गये हैं। आरभट को राजप्रश्नीय में नाट्यभेद का अठारहवां प्रकार माना है। 'भसोल'—स्थानांग वृत्ति में इस सम्बन्ध में कोई विशेष विवरण नहीं दिया है।<sup>२९</sup> राजप्रश्नीय में इसे उनतीसवां

८१. नाट्यशास्त्र में 'आरभटी' एक वृत्ति का नाम बताया गया है।

८२. नाट्यशास्त्र में भ्रमर।

८३. नाट्यशास्त्र में रेचित। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में रेचकरेचित पाठ है। आरभटी शैली से नाचने वाले नट मंडलाकार रूप में रेचक अर्थात् कमर, ग्रीवा को मटकाते हुए रास नृत्य करते थे। —वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्षचरित, पृष्ठ ३३

८४. इससे महावीर की गृहस्थावस्था का सूचन होता है।

८५. उत्तराध्ययन टीका-१३, पृष्ठ १९६

८६. उत्तराध्ययन टीका-१८, पृष्ठ २४० अ

८७. चउव्विहे णट्टे पण्णत्ते, तं जहा—अंचिए, रिभिए, आरभडे, भसोले

—स्थानाङ्ग ४/६३३

८८. भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ ४२५

८९. आटे डिक्शनरी में आरभट शब्द के अन्तर्गत उद्धृत—

मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ।

संयुक्ता वधबन्धाद्यैरुद्धृतारभटी मता ॥

९०. साहित्यदर्पण-४२०

९१. नाट्ययोग्याभिनयसूत्राणि सम्प्रदायाभावान्न विवृतानि ।

—स्थानांगवृत्ति, पत्र-२७२

प्रकार माना है।

सूर्याभदेव विविध प्रकार के गीत और नाट्य प्रदर्शित करने के पश्चात् भगवान् महावीर को नमस्कार कर स्वस्थान को प्रस्थित हो गया। गणधर गौतम ने सूर्याभदेव के विमान के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रस्तुत की। भगवान् ने विस्तार से विमान का वर्णन सुनाया। साथ ही गौतम ने पुनः यह जिज्ञासा प्रस्तुत की कि यह दिव्य देवऋद्धि सूर्याभदेव को किन शुभ कर्मों के कारण प्राप्त हुई है ? प्रभु महावीर ने समाधान करते हुए उसका पूर्वभव सुनाया, जो प्रस्तुत आगम का द्वितीय विभाग है।

### केकयार्थ : जनपद

‘केकय अर्ध’ जनपद था। जैन साहित्य में साढ़े पच्चीस आर्य क्षेत्रों की परिगणना की गई है। उन देशों और राजधानियों का उल्लेख बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति<sup>१२</sup> प्रज्ञापना<sup>१३</sup> और प्रवचनसारोद्धार<sup>१४</sup> में हुआ है। इन देशों में तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव पैदा हुए। इसलिए इन्हें आर्य जनपद कहा है।<sup>१५</sup> जिन देशों में तीर्थकर, प्रभृति महापुरुष पैदा होते हैं, वह आर्य हैं।<sup>१६</sup> आर्य और अनार्य जनपदों की व्यवस्था के सम्बन्ध में आवश्यकचूर्णि,<sup>१७</sup> तत्त्वार्थभाष्य,<sup>१८</sup> तत्त्वार्थराजवार्तिक<sup>१९</sup> आदि में चर्चाएं हैं। हम यहां विस्तार से चर्चा में न जाकर यह बताना चाहेंगे कि ‘केकयार्थ’ की परिगणना अर्धजनपद में की गई थी। यों केकय नाम के दो प्रदेश थे। एक की अवस्थिति खिंवाड़ा—नमक की पहाड़ी अथवा शाहपुर झेलम-गुजरात में थी। दूसरे की अवस्थिति श्रावस्ती के उत्तरपूर्व में नेपाल की तराई में थी। सम्भवतः यही केकय साढ़े पच्चीस देशों में अभिहित है। उसकी राजधानी श्वेताम्बिका थी। यह श्रावस्ती और कपिलवस्तु के मध्य में नेपालगंज के पास में होनी चाहिए। इस देश के आधे भाग को आर्य देश स्वीकार किया है और आधे भाग को अनार्य देश। आधे भाग में आदिमवासी जाति निवास करती होगी। बौद्ध साहित्य में सेयविया (श्वेताम्बिका) को ‘सेतव्या’ लिखा है। भगवान् महावीर का भी वहां पर विचरण हुआ था। यह स्थान श्रावस्ती (सहेट-महेट) से १७ मील और बलरामपुर से ६ मील की दूरी पर अवस्थित था। इसके उत्तरपूर्व में ‘मृगवन्त’ नामक उद्यान था। इस नगरी का अधिपति राजा प्रदेशी था। दीघनिकाय में राजा का नाम ‘पायासि’ दिया गया है। वह राजा अत्यन्त अधार्मिक, प्रचण्ड क्रोधी और महान् तार्किक था। गुरुजनों का सन्मान करना उसने सीखा ही नहीं था और न वह श्रमणों और ब्राह्मणों पर निष्ठा ही रखता था। उसकी पत्नी का नाम ‘सूर्यकान्ता’ था और पुत्र का नाम ‘सूर्यकान्त’ था, जो राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, कोष्ठागार और अन्तःपुर की पूर्ण निगरानी रखता था।

राजा प्रदेशी के चित्त नामक एक सारथी था। दीघनिकाय में चित्त के स्थान पर ‘खत्ते’ शब्द का प्रयोग हुआ है। ‘खत्ते’ का पर्यायवाची संस्कृत में क्षत-क्षता है, जिसका अर्थ सारथी है। वह सारथी साम, दाम, दण्ड, भेद, प्रभृति

१२. बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति—१. ३२६३

१३. प्रज्ञापनासूत्र—१.६६ पृष्ठ १७३

१४. प्रवचनसारोद्धार, पृष्ठ ४४६

१५. ‘इत्थुप्पत्ति जिणाणं, चक्कीणं रामकण्हाणं ।’

—प्रज्ञापना-१

१६. ‘यत्र तीर्थकरादीनामुत्पत्तिस्तदार्यं, शेषमनार्यम् !’

—प्रवचनसारोद्धार, पृष्ठ-४४६

१७. आवश्यकचूर्णि

१८. तत्त्वार्थभाष्य—३/१५

१९. तत्त्वार्थराजवार्तिक—३/३६, पृष्ठ २००

नीतियों में बहुत ही कुशल था। प्रबल प्रतिभा का धनी होने के कारण समय-समय पर राजा प्रदेशी उससे परामर्श किया करता था।

कुणाला जनपद में श्रावस्ती नगरी का अधिपति 'जितशत्रु' था। जितशत्रु के सम्बन्ध में हम पूर्व में लिख चुके हैं—वह राजा प्रदेशी का आज्ञाकारी सामन्त था। राजा प्रदेशी के आदेश को स्वीकार कर चित्त सारथी उपहार लेकर श्रावस्ती पहुंचता है और वहां रहकर शासन की देखभाल भी करता है।

### केशी श्रमण : एक चर्चा

उस समय चतुर्दशपूर्वधारी पार्श्वपत्य केशी कुमारश्रमण वहां पधारते हैं। ऐतिहासिक विज्ञों का अभिमत है कि सम्राट् प्रदेशीप्रतिबोधक केशी कुमारश्रमण भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के चतुर्थ पट्टधर थे। प्रथम पट्टधर आचार्य शुभदत्त थे, जो प्रथम गणधर थे। उनकी जन्मस्थली 'क्षेमपुरी' थी। उन्होंने 'सम्भूत' मुनि के पास श्रावकधर्म ग्रहण किया था। माता-पिता के परलोकवासी होने पर उन्हें संसार से विरक्ति हुई। भगवान् पार्श्वनाथ के प्रथम उपदेश को सुनकर दीक्षा ली और पहले गणधर बने। उनके उत्तराधिकारी आचार्य हरिदत्तसूरि हुए, जिन्होंने वेदान्त दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य 'लोहिय' को शास्त्रार्थ में पराजित कर प्रतिबोध दिया और लोहिय को ५०० शिष्यों के साथ दीक्षित किया। उन नवदीक्षित श्रमणों ने सौराष्ट्र, तैलंग, प्रभृति प्रान्तों में विचरण कर जैन शासन की प्रबल प्रभावना की। तृतीय पट्टधर आचार्य 'समुद्रसूरि' थे। उन्हीं के समय 'विदेशी' नामक महान् प्रभावशाली आचार्य ने उज्जयिनी नगरी के अधिपति महाराज 'जयसेन', महारानी 'अनंगसुन्दरी' और राजकुमार 'केशी' को दीक्षित किया।<sup>१००</sup>

आगमसाहित्य में केशीश्रमण का राजप्रश्नीय और उत्तराध्ययन, इन दो आगमों में उल्लेख हुआ। राजप्रश्नीय और उत्तराध्ययन में उल्लिखित केशी एक ही व्यक्ति रहे हैं या पृथक्-पृथक् ? प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलालजी संघवी,<sup>१०१</sup> डा. जगदीशचन्द्र जैन,<sup>१०२</sup> डा. मोहनलाल मेहता,<sup>१०३</sup> पं. मुनि नथमलजी,<sup>१०४</sup> (युवाचार्य महाप्रज्ञ) आदि अनेक विज्ञों ने राजा प्रदेशी के प्रतिबोधक केशी कुमारश्रमण को और गणधर गौतम के साथ संवाद करने वाले केशी कुमारश्रमण को एक माना है, पर हमारी दृष्टि से दोनों पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं। क्योंकि सम्राट् प्रदेशी को प्रतिबोध देने वाले चतुर्दशपूर्वी और चार ज्ञान के धारक थे।<sup>१०५</sup> गणधर गौतम के साथ चर्चा करने वाले केशीकुमार तीन ज्ञान के धारक थे।<sup>१०६</sup> यदि हम यह मान लें कि जिस समय केशीकुमार ने गणधर गौतम के साथ चर्चा की थी, उस समय वे तीन

१००. केशिनामा तद्विनेयः यः प्रदेशीनरेश्वरम् ।

प्रबोध्य नास्तिकाद् धर्माद् जैनधर्मेऽध्यरोपयत् ॥

—नाभिनन्दोद्धार प्रबन्ध-१३६

१०१. 'दर्शन और चिन्तन'—भगवान् पार्श्वनाथ का विरासत लेख, पृष्ठ ५

१०२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास—भाग-२, पृष्ठ-५४-५५

१०३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास—भाग-२, पृष्ठ-५४-५५

—डा. मोहनलाल मेहता

१०४. उत्तराध्ययणाणि—भाग-१, पृष्ठ-२०१

१०५. 'पासावच्चिज्जे केसीणामं कुमारसमणे जाइसंपण्णे.....चउइसपुव्वी चउणाणोवगए पंचहि अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे ।'

—रायपसेणइय, पृष्ठ-२८३. पं. बेचरदासजी संपादित

१०६. तस्स लोगपईवस्स आसि सीसे महायसे ।

केशी कुमारसमणे विज्जाचरणपारगे ॥

ओहिनाणसुए बुद्धे, सीससंघसमाउले ।

गामाणुगामं रीयन्ते, सावत्थिं नगरिमागए ॥

—उत्तराध्ययन-२३/२-३

ज्ञान के धारक थे और बाद में चार ज्ञान के धारक हो गये होंगे। पर यह तर्क भी उचित नहीं है, क्योंकि यदि वे चार ज्ञान के धारक बाद में बने तो श्रावस्ती में चित्त सारथी को चातुर्याम का उपदेश किस प्रकार देते ? उनके नाम के साथ 'पार्श्वपत्नीय' विशेषण किस प्रकार लगता ? इसलिए स्पष्ट है कि दोनों पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं। किन्तु नामसाम्य होने से अनेक मनीषियों को भ्रम हो गया है और उन्होंने दोनों को एक माना है।

### विविध, उत्सव

केशीकुमार के आगमन के समाचारों ने जन-जन के अन्तर्मानस में एक अपूर्व उल्लास का संचार किया। वे नदी के प्रवाह की तरह धर्मदेशना श्रवण करने के लिए प्रस्थित हुए। उनके तीव्र कोलाहल को सुनकर चित्त सारथी सोचने लगा—क्या आज इस नगर में कोई इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, मुकुन्द, शिव, वैश्रमण, नाग, यक्ष, भूत, स्तूप, चैत्य, वृक्ष, गिरि, गुफा, कूप, नदी, सागर और सरोवर का उत्सव मनाया जा रहा है ? जिससे सभी लोग उत्साह के साथ जा रहे हैं। यहां पर जिन इन्द्र, स्कन्द आदि के उत्सवों का वर्णन है, उसका उल्लेख ज्ञाताधर्मकथा,<sup>१०७</sup> व्याख्याप्रज्ञप्ति,<sup>१०८</sup> भगवती,<sup>१०९</sup> निशीथ<sup>११०</sup> आदि अन्य आगमों में भी आया है। इन्द्र वैदिक साहित्य का बहुत ही लब्धप्रतिष्ठ देव रहा है। वह समस्त देवों में अग्रणी था। प्राचीन युग में 'इन्द्रमह' उत्सव सभी उत्सवों में श्रेष्ठ उत्सव माना जाता था और सभी लोग बड़े उत्साह से इसे मनाते थे।<sup>१११</sup> निशीथसूत्र में इन्द्र, स्कन्द, यक्ष और भूत नामक महामहों का वर्णन है। जो क्रमशः आषाढ़, आसौज, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमाओं को मनाया जाता था। इन्द्रमह आदि उत्सवों में लोग मनपसन्द खाते-पीते, नाचते, गाते हुए आमोद-प्रमोद में तल्लीन रहते थे।<sup>११२</sup> इन उत्सवों में अत्यधिक शोरगुल होता था, जिससे श्रमणों को स्वाध्याय की मनाई की गई थी। जो खाद्य पदार्थ उत्सव के दिन तैयार किया जाता था, यदि वह अवशेष रह जाता तो प्रतिपदा के दिन उसका उपयोग करते। अपने सम्बन्धियों को भी उस अवसर पर बुलाते।<sup>११३</sup> 'इन्द्रमह' के दिन धोबी से धुले हुए स्वच्छ वस्त्र लोग पहनते थे।<sup>११४</sup>

दूसरा उत्सव 'स्कन्दमह' का था। ब्राह्मण पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार स्कन्द अथवा कार्तिकेय महादेव.

१०७. ज्ञाताधर्मकथा ८, पृष्ठ १००

१०८. व्याख्याप्रज्ञप्ति-३.१

१०९. भगवती-३.१

११०. निशीथसूत्र-८.१४

१११. (क) आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ-२१३

(ख) इपिक माइथोलॉजी, स्ट्रासबर्ग १९१५

—डा. हॉपकिन्स ई., पृष्ठ १२५

(ग) भास—ए स्टडी, लाहौर-१९४०—पुलासकर ए.डी., पृ. ४४०

(घ) कथासरित्सागर, जिल्द-८, पृष्ठ-१४४-१५३

(ङ) महाभारत-१.६४.३३

(च) रंगस्वामी ऐयंगर कमैमोरेशन वॉल्युम, पृष्ठ ४८०

११२. (क) निशीथ-१९/६०३५

(ख) रामायण-४/१६/३६

(ग) डा. हॉपकिन्स ई. डब्ल्यू., पृष्ठ १२५

११३. निशीथचूर्णि-१९. ६०६८

११४. आवश्यकचूर्णि-२, पृष्ठ-१८१

के पुत्र और युद्ध के देवता माने गये हैं। तारक, राक्षस और देवताओं के युद्ध में 'स्कन्द' देवताओं के सेनापति के रूप में नियुक्त हुए थे। उनका वाहन 'मयूर' था। 'स्कन्दमह' उत्सव आसौज की पूर्णिमा को मनाया जाता था।<sup>११५</sup>

'रुद्रमह' तृतीय उत्सव था। वैदिक दृष्टि से रुद्र ग्यारह थे। वे इन्द्र के साथी शिव और उसके पुत्रों के अनुचर तथा यम के रक्षक थे। व्यवहारभाष्य के अनुसार रुद्र-आयतनों के नीचे ताजी हड्डियां गाड़ी जाती थीं।<sup>११६</sup>

'मुकुन्दमह' चतुर्थ उत्सव था। महाभारत में मुकुन्द यानि बलदेव को लांगुली-हलधर कहा है।<sup>११७</sup> हल उसका अस्त्र है। भगवान् महावीर छद्मस्थ अवस्था में गोशालक के साथ 'आवत्त' ग्राम में पधारे थे। वहां पर वे बलदेवगृह में विराजे<sup>११८</sup> जहां पर बलदेव को अर्चना होती थी।

'शिवमह' पांचवां उत्सव था। हिन्दू साहित्य के अनुसार शिव भूतों के अधिपति, कामदेव के दहनकर्ता और स्कन्द के पिता थे। उन्होंने विष का पान किया तथा आकाश से गिरती हुई गंगा को धारण किया। उनके सम्मान में वैशाख मास में उत्सव मनाया जाता है। भगवान् महावीर के समय शिव की अर्चा प्रचलित थी। ढोंढसिवा अचित-शिव माना जाता था, उसकी भी उपासना शिव के रूप में ही होती थी।<sup>११९</sup>

'वैश्रमणमह' छठा उत्सव था। वैश्रमण उत्तर दिशा का लोकपाल और समस्त निधियों का अधिपति था। जीवाजीवाभिगम में वैश्रमण को यक्षों का अधिपति और उत्तर दिशा का लोकपाल कहा है।<sup>१२०</sup> हॉपकिन्स ने वैश्रमण को राक्षस और गुह्यकों का अधिपति कहा है।<sup>१२१</sup>

'नागमह' सातवां उत्सव था। वैदिक पुराणों के अनुसार सर्पदेवता सामान्य रूप से पृथिवी के अधःस्थल में निवास करते हैं, जहां पर शेषनाग अपने सहस्र फन से पृथ्वी के अपार भार को सम्हाले हुए हैं।<sup>१२२</sup> जैन दृष्टि से सगर चक्रवर्ती के जण्डुकुमार आदि साठ हजार पुत्र थे। उन्होंने दण्डरत्न से अष्टापद पर्वत के चारों ओर एक खाई खोदी और गंगा के नीर से उस खाई को भरने लगे। पर खाई का पानी नागभवनों में जाने से नागराज क्रुद्ध हुआ। उसने नयन-विष महासर्प प्रेषित किये, जिन्हें देखते ही सगरपुत्र भस्म हो गये। महाभारत में नाग तक्षक का उल्लेख है, जिसने अपने भयंकर विष से वटवृक्ष को और राजा परीक्षित के भव्य भवन को जलाकर नष्ट कर दिया था। कालियानाग ने यमुना नदी के नीर को विषयुक्त कर दिया था।<sup>१२३</sup> साकेत में एक महान् नागगृह था।<sup>१२४</sup> ज्ञाताधर्मकथा

११५. आवश्यकचूर्ण पृष्ठ-३१५

११६. व्यवहारभाष्य-७/३१३, पृष्ठ-५५. अ.

११७. महाभारत—देखिए, वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम, पृष्ठ-१०२. आदि

११८. (क) आवश्यकनिर्युक्ति-४८१

(ख) आवश्यकचूर्ण, पृष्ठ २९४

११९. (क) बृहत्कल्पभाष्य-५. ५९२८

(ख) आवश्यक चूर्ण, पृष्ठ-३१२

१२०. जीवाजीवाभिगम, ३ पृष्ठ २८१

१२१. डॉ हॉपकिन्स ई. डब्ल्यू.—इपिक माइथॉलोजी, स्ट्रासबर्ग १९१५

१२२. इपिक माइथॉलोजी, स्ट्रासबर्ग १९१५—डा. हॉपकिन्स ई. डब्ल्यू.

१२३. इण्डियन सर्पेण्ट लोर, लंदन-१९२६, फोगल जे.

१२४. (क) अर्थशास्त्र-५.२.९०.४९. पृष्ठ-१७६

(ख) इण्डियन सर्पेण्ट लोर, लंदन-१९२६, फोगल जे.

के अनुसार रानी पद्मावती ने नागदेव की अर्चा की थी।<sup>१२५</sup> नागकुमार धरणेन्द्र ने भगवान् पार्श्व की जल से छत्र बना कर रक्षा की थी।<sup>१२६</sup> 'मुचिलिंद' नाम के सर्पराज ने तथागत बुद्ध की हवा और पानी से रक्षा की थी।<sup>१२७</sup> इस तरह नाग की चर्चा अनेक स्थलों पर है और उसके भय से लोग उसकी उपासना करते थे। आज भी भारत में लोग 'नागपंचमी' का पर्व मनाते हैं, जो एक प्रकार से नागमह का ही रूप है।

'यक्षमह' आठवां उत्सव है। नगरों और गांवों के बाहर यक्षायतन होते थे। लोगों की यह धारणा थी कि यक्ष की पूजा करने से कोई भी संक्रामक रोग हमारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेगा। यक्ष इन रोगों से हमारी रक्षा करेगा।<sup>१२८</sup> अभिधान-राजेन्द्रकोष में पूर्णभद्र, मणिभद्र आदि तेरह यक्षों का उल्लेख हुआ है।<sup>१२९</sup> जो ब्रह्मचारी हैं, उनको यक्ष, देव, दानव और गन्धर्व नमन करते हैं।<sup>१३०</sup>

महाभारत<sup>१३१</sup> में और संयुक्तनिकाय<sup>१३२</sup> में मणिभद्र यक्ष का उल्लेख है। मत्स्यपुराण में पूर्णभद्र के पुत्र का नाम हरिकेश यक्ष बताया है।<sup>१३३</sup> औपपातिक में चम्पानगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य का उल्लेख है।<sup>१३४</sup> आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार भगवान् महावीर जब छद्मस्थ अवस्था में ध्यानमुद्रा में खड़े थे तब 'बिभेलक' यक्ष ने उपद्रव से उनकी रक्षा की थी।<sup>१३५</sup> ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार शैलक यक्ष चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन लोगों की सहायता के लिए तत्पर रहता था। उसने चम्पानगरी के जिनपाल और जिनरक्षित की रत्नादेवी से रक्षा की थी।<sup>१३६</sup> सन्तानोत्पत्ति के लिए हरिणैगमैषी देव की उपासना की जाती थी।<sup>१३७</sup> वैदिक ग्रन्थों में 'हरिणैगमैषी' हरिण के सिर वाला और इन्द्र का सेनापति था। महाभारत में उसको अजामुख बताया है।<sup>१३८</sup> जैन साहित्य की दृष्टि से 'हरिणैगमैषी' सौधर्म देवलोक का देव था, न कि यक्ष। आगम के व्याख्यासाहित्य में अनेक स्थलों पर यक्ष के उपद्रवों का उल्लेख है। यक्षों से अपने

- 
१२५. ज्ञाताधर्मकथा-८, पृष्ठ ९५  
 १२६. आचारांगनिर्युक्ति-३३५ टीका, पृष्ठ ३८५  
 १२७. इण्डियन सर्पेण्ट लोर, लंदन, पृष्ठ-४१—फोगल जे.  
 १२८. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आव मुंगेर, पृष्ठ-५५  
 १२९. अभिधानराजेन्द्र कोष—'जक्ख शब्द'  
 १३०. देव-दाणव-गंधवा, तक्ख-रक्खस-किन्नरा ।  
 बंभयारि नमंसंति, दुक्करं जे करेंति तं ॥

—उत्तराध्ययन-अध्ययन-१६, गाथा १६

१३१. (क) द ज्योग्राफिकल कन्टैक्ट्स ऑव महाभारत, लेखक—डा. सिल्वन लेवी  
 (ख) महाभारत—२/१०/१०  
 १३२. संयुक्तनिकाय—१.१०, पृष्ठ-२०९  
 १३३. मत्स्यपुराण, अध्याय-१८०  
 १३४. औपपातिक, चम्पावर्णन, पूर्णभद्र चैत्य—पृष्ठ ४, युवाचार्य मधुकर मुनि  
 १३५. आवश्यकनिर्युक्ति-४८७  
 १३६. (क) ज्ञाताधर्मकथा ९, पृष्ठ १२७  
 (ख) तुलना कीजिए—बलाहस्स जातक (१९६), २, पृष्ठ २९२  
 १३७. अन्तगडदशा-२, पृष्ठ १५  
 १३८. द. यक्षाज, वाशिंगटन, १९२८, १९३९. ले. कुमारस्वामी ए. के.

आपको सुरक्षित रखने के लिए यह उत्सव होता था।<sup>१३९</sup>

‘भूतमह’ नवम उत्सव था। हिन्दू पुराणों में भूतों को भयंकर प्रकृति के धनी और मांसभक्षी कहा है। भूतों को बलि देकर प्रसन्न किया जाता था। भूतमह चैत्री पूर्णिमा को मनाया जाता था। महाभारत में तीन प्रकार के भूतों का उल्लेख है—उदासी, प्रतिकूल और दयालु।<sup>१४०</sup> रात्रि में परिभ्रमण करने वाले भूत ‘प्रतिकूल’ माने गये हैं।<sup>१४१</sup> भूतगृह से पीड़ित मानवों की चिकित्सा भूतविद्या के द्वारा की जाती थी। कहा जाता है—‘कृत्तियावण’ में सभी वस्तुएं मिलती थीं। वहां पर भूत भी मिलते थे। राजा प्रद्योत के समय उज्जयिनी में इस प्रकार की दुकानें थीं, जहां पर मनोवाञ्छित वस्तुएं मिलती थीं। भृगुकच्छ का एक व्यापारी उज्जयिनी में भूत को खरीदने के लिए आया था। दुकानदार ने उसे बताया—आपको भूत तो मिल जायेगा पर आपने यदि उस भूत को कोई काम न बताया तो वह आपको समाप्त कर देगा। व्यापारी भूत को लेकर वहां से प्रस्थित हुआ। वह उसे जो भी कार्य बताता चुटकियों में सम्पन्न कर देता था। अन्त में भूत से तंग आकर उस व्यापारी ने एक खम्भा गाड़ दिया और भूत से कहा—मैं जब तक तुम्हें नया काम नहीं बताऊं तब तक तुम इस खम्भे पर चढ़ते-उतरते रहो।<sup>१४२</sup>

सारांश यह है कि इन उत्सवों की बहुत अधिक धूमधाम होती थी, जिससे कोई भी धूमधाम को देख कर प्रायः यही समझा जाता था कि आज कोई इसी तरह का उत्सव होगा। चित्त सारथी के अन्तर्मानस में भी यही जिज्ञासा हुई थी—जनमेदिनी को जाते हुए देखकर। वस्तुतः ये उत्सव किसी धर्म और सम्प्रदायविशेष से सम्बन्धित न होकर लोकजीवन से सम्बन्धित थे। इन उत्सवों के पीछे लौकिक कामनायें थीं। जनमानस में समाया भय भी इन उत्सवों को मनाने के लिए बाध्य करता था।

### श्वेताम्बिका में केशी श्रमण

चित्त सारथी को जब यह परिज्ञात हुआ कि केशी कुमारश्रमण पधारे हैं तो वह दर्शन और प्रवचन-श्रवण करने के लिए पहुंचा। प्रवचन को श्रवण कर वह इतना भावविभोर हो गया कि उसने श्रमणोपासक के द्वादश व्रत ग्रहण कर अपनी अनन्त श्रद्धा उनके चरणों में समर्पित की। जब चित्त सारथी श्वेताम्बिका लौटने लगा तो उसने केशी कुमारश्रमण से अभ्यर्थना की—आप श्वेताम्बिका अवश्य पधारें। पुनः-पुनः निवेदन करने पर केशीश्रमण ने कहा कि वहां का राजा प्रदेशी अधार्मिक है, इसलिए मैं वहां कैसे आ सकता हूं ?

चित्त ने निवेदन किया भगवन्! प्रदेशी के अतिरिक्त वहां पर अनेक भावुक आत्माएं रहती हैं, जो अपने बीच आपको पाकर धन्यता अनुभव करेंगी। सम्भव है, आपके पावन प्रवचनों से प्रदेशी के जीवन का भी काया-कल्प हो जाये। केशी कुमारश्रमण को लगा कि चित्त सारथी के तर्क में वजन है। वहां जाने से धर्म की प्रभावना हो सकती है। चित्त सारथी ने केशीकुमार की मुद्रा से समझ लिया कि मेरी प्रार्थना अवश्य ही मूर्त रूप लेगी। उसने श्वेताम्बिका पहुंच कर सर्वप्रथम उद्यानपाल को सूचित किया कि केशीश्रमण अपने ५०० शिष्यों के साथ यहां पर पधारेंगे, अतः

१३९. (क) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति २४, पृष्ठ-१२०

(ख) बृहत्कल्पसूत्र-६.१२ तथा भाष्य

१४०. (क) देखिए—इपिक माइथॉलोजी, स्ट्रासबर्ग १९१५—डा. हॉपकिन्स ई. डब्ल्यू.

(ख) कथासरित्सागर, सोमदेव, सम्पादक—पेंजर, भाग-१, परि. १. १४२४-२८ प्रका. लन्दन

१४१. इपिक माइथॉलोजी, स्ट्रासबर्ग १९१५, पृष्ठ-३६ —डा. हॉपकिन्स ई. डब्ल्यू.

१४२. बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति—३. ४२१४-२२

उनके ठहरने के लिए योग्य व्यवस्था का ध्यान रखना।

कुछ दिनों के पश्चात् केशीश्रमण श्वेताम्बिका नगरी में पधारे। उद्यनपालक ने उनके ठहरने की समुचित व्यवस्था की और चित्त सारथी को उनके आगमन की सूचना दी। चित्त सारथी समाचार पाकर प्रसन्नता से झूम उठा। वह दर्शन के लिए पहुंचा। उसने निवेदन किया—मैं किसी बहाने से राजा प्रदेशी को यहां लाऊंगा। आप डटकर उसका पथ-प्रदर्शन करना।

दूसरे दिन चित्त सारथी अभिनव शिक्षित घोड़ों की परीक्षा के बहाने राजा प्रदेशी को उद्यान में ले गया, जहां केशी कुमारश्रमण विराज रहे थे। चित्त सारथी ने राजा को बताया—ये चार ज्ञान के धारक कुमारश्रमण केशी हैं। हम यह पूर्व में ही बता चुके हैं कि राजा प्रदेशी अक्रियावादी था। उसे आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व पर विश्वास नहीं था। वह आत्मा और शरीर को एक ही मानता था।

### आत्मा : एक अनुचिन्तन

भारतीय दर्शन का विकास और विस्तार आत्मतत्त्व को केन्द्र मानकर ही हुआ है। आत्मवादी दर्शन हों या अनात्मवादी, सभी में आत्मा के विषय में चिन्तन किया है। किन्तु उस चिन्तन में एकरूपता नहीं है। आत्मा विश्व के समस्त पदार्थों से विलक्षण है। प्रत्येक व्यक्ति आत्मा का अनुभव तो करता है, किन्तु उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाता। यही कारण है कि किसी ने आत्मा को शरीर माना, किसी ने बुद्धि कहा, किसी ने इन्द्रिय और मन को ही आत्मा समझा तो कितनों ने इन सबसे पृथक् आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार किया। आत्मा के अस्तित्व की संसिद्धि स्वसंवेदन से होती है। इस संसार में जितने भी प्राणी हैं, वे अपने आपको सुखी-दुःखी, धनवान्-निर्धन अनुभव करते हैं। यह अनुभूति चेतन आत्मा को ही होती है, जड़ को नहीं। आत्मा अमूर्त है। किन्तु अनात्मवादियों की धारणा है कि घट-पट आदि पदार्थ जैसे प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, उसी तरह आत्मा प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता और जो प्रत्यक्ष से सिद्ध नहीं है, उसकी सिद्धि अनुमान प्रमाण से भी नहीं हो सकती, क्योंकि अनुमान का हेतु प्रत्यक्षगम्य होना चाहिए, जैसे अग्नि का अविनाभावी हेतु धूम प्रत्यक्षगम्य है। हम भोजनशाला में उसे प्रत्यक्ष देखते हैं, इसलिए दूसरे स्थान पर भी धुएं को देखकर स्मरण के बल पर परोक्ष अग्नि को अनुमान से जान लेते हैं। किन्तु आत्मा का इस प्रकार का कोई अविनाभावी पदार्थ पहले नहीं देखा। इसीलिए आत्मा का अस्तित्व प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध नहीं है। प्रत्यक्ष से सिद्ध न होने के कारण चार्वाक दर्शन ने आत्मा को स्वतंत्र द्रव्य नहीं माना। भूतसमुदाय से विज्ञानघन उत्पन्न होता है और भूतों के नष्ट होने पर वह भी नष्ट हो जाता है। परलोक या पुनर्जन्म नहीं है।

किसी-किसी का यह मन्तव्य था कि शरीर ही आत्मा है। शरीर से भिन्न कोई आत्मा नामक तत्त्व नहीं है। यदि शरीर से भिन्न आत्मा हो तो मृत्यु के पश्चात् स्वजन और परिजनों के स्नेह से पुनः लौटकर क्यों नहीं आता ? इसलिए इन्द्रियातीत कोई आत्मा नहीं है, शरीर ही आत्मा है।

इसके उत्तर में आत्मवादियों का कथन है कि आत्मा है या नहीं, यह संशय जड़ को नहीं होता। यह चेतन तत्त्व को ही हो सकता है। यह मेरा शरीर है, इसमें जो 'मेरा' शब्द है वह सिद्ध करता है कि 'मैं' शरीर से पृथक् है। जो शरीर से पृथक् है, वह आत्मा है।

जड़ पदार्थ में किसी का विधान या निषेध करने का सामर्थ्य नहीं होता। यदि जड़ शरीर से भिन्न चैतन्यमय आत्मा का अस्तित्व न हो तो आत्मा का निषेध कौन करता है ? स्पष्ट है कि आत्मा का निषेध करने वाला स्वयं आत्मा

ही है।

आचार्य देवसेन ने आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्व, अमूर्तत्व ये यह गुण बताये हैं।<sup>१४३</sup> आचार्य नेमिचन्द्र ने जीव को उपयोगमय, अमूर्तिक, कर्ता स्वदेहपरिमाण, भोक्ता, ऊर्ध्वगमनशील कहा है।<sup>१४४</sup> जहां पर उपयोग है, वहां पर जीवत्व है। उपयोग के अभाव में जीवत्व रह नहीं सकता। उपयोग या ज्ञान जीव का ऐसा लक्षण है जो सांसारिक और मुक्त सभी में पाया जाता है।

छान्दोग्योपनिषद् में एक सुन्दर प्रसंग है<sup>१४५</sup>—असुरों में से 'विरोचन' और देवों में से 'इन्द्र' ये दोनों आत्मा-स्वरूप को जानने के लिए प्रजापति के पास पहुंचे। प्रजापति ने एक शान्त सरोवर में उन्हें देखने को कहा और पूछा—क्या देख रहे हो ? विरोचन और इन्द्र ने कहा—हम अपना प्रतिबिम्ब देख रहे हैं। प्रजापति ने बताया—बस वही आत्मा है। विरोचन को समाधान हो गया और वह चल दिया। पर इन्द्र चिन्तन के महासागर में गहराई से डुबकी लगाने लगे। इन्द्रिय और शरीर का संचालक मन है, अतः उन्होंने पहले मन को आत्मा माना, उसके बाद सोचा—मन भी जब तक प्राण है तभी तक रहता है। प्राण पखेरू उड़ने पर मन का चिन्तन बन्द हो जाता है, अतः मन नहीं, प्राण आत्मा है। चिन्तन आगे बढ़ा और उन्हें यह भी मालूम हुआ कि प्राण नाशवान् है, परन्तु आत्मा तो शाश्वत है। शरीर, इन्द्रिय, मन और प्राण ये भौतिक हैं, किन्तु आत्मा अभौतिक है।

चार्वाकदर्शन को छोड़कर भारत के सभी दर्शन आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। न्याय और वैशेषिक दर्शन का मन्तव्य है—आत्मा अविनश्य और नित्य है। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान उसके विशेष गुण हैं। आत्मा ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है। ज्ञान, अनुभूति और संकल्प आत्मा के धर्म हैं। चैतन्य आत्मा का स्वरूप है। मीमांसा दर्शन का भी यही अभिमत है। वह आत्मा को नित्य और विभु मानता है। चैतन्य को आत्मा का निजगुण नहीं किन्तु आगन्तुक गुण मानता है। स्वप्नरहित गाढ निद्रा में तथा मोक्ष की अवस्था में आत्मा चैतन्य गुणों से रहित होता है। सांख्य दर्शन ने पुरुष को नित्य, विभु तथा चैतन्य स्वरूप माना है। सांख्य दृष्टि से चैतन्य आत्मा का आगन्तुक गुण नहीं है, वह निजगुण है। पुरुष अकर्ता है। वह स्वयं सुख-दुःख की अनुभूतियों से रहित है। बुद्धि कर्ता है और वही सुख-दुःख का अनुभव करती है। बुद्धि का उपादान कारण प्रकृति है। प्रकृति प्रतिपल-प्रतिक्षण क्रियाशील है। इसके विपरीत पुरुष विशुद्ध चैतन्य स्वरूप है। अद्वैत वेदान्त आत्मा को विशुद्ध सत्, चित् और आनन्द स्वरूप मानता है। सांख्य दर्शन ने अनेक पुरुषों (आत्माओं) को माना है, पर ईश्वर को नहीं माना। जबकि वेदान्त दर्शन केवल एक ही आत्मा को सत्य मानता है। बौद्ध दर्शन की दृष्टि से आत्मा ज्ञान, अनुभूति और संकल्पों की प्रतिक्षण परिवर्तन होने वाली सन्तति है। इसके विपरीत जैन दर्शन का वज्र आघोष है—आत्मा नित्य, अजर और अमर है। ज्ञान आत्मा का मुख्य गुण है। आत्मा स्वभाव से अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति से सम्पन्न है।

राजा प्रदेशी जीव और शरीर को एक मानता था। उसकी मान्यता के पीछे अपना अनुभव था। उसने अनेकों बार परीक्षण कर देखा—तस्करों और अपराधियों को सन्दूक में बन्द कर या उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर जीव को देखने का प्रयत्न किया कि कहीं आत्मा का दर्शन हो, पर आत्मा अरूपी होने के कारण उसे दिखाई कैसे दे सकता

१४३. आलापपद्धति, प्रथम गुच्छक, पृष्ठ-१६५-६६

१४४. द्रव्यसंग्रह-१/२

१४५. छान्दोग्योपनिषद्-८-८

था ? जब आत्मा दिखाई नहीं दिया तो उसे अपना मत सही ज्ञात हुआ कि जीव और शरीर अभिन्न हैं। किन्तु उसके सभी तर्कों का केशी कुमारश्रमण ने इस प्रकार रूपकों के माध्यम से निरसन किया कि राजा प्रदेशी को आत्मा और शरीर पृथक्-पृथक् स्वीकार करने पड़े।

स्वर्ग और नरक से जीव क्यों नहीं आकर कहते हैं कि हमने प्रबल पुण्य की आराधना की जिसके फल-स्वरूप मैं देव बना हूँ, मैंने पापकृत्य किया जिसके कारण मैं नरक में दारुण वेदनाओं को भोग रहा हूँ, इसलिए मैं तुम्हें कहता हूँ कि तुम पाप से बचो और पुण्य उपार्जन की ओर लगे। यदि स्वर्ग और नरक होता तो मेरे पिता, प्रपितामह वहाँ गये होंगे, वे अवश्य ही आकर मुझे चेतावनी देते। प्रत्युत्तर में केशी श्रमण ने कहा—एक कामुक है, जिसने तुम्हारी पत्नी के साथ दुराचार किया हो, और तुमने उसे प्राणदण्ड की सजा दी हो, वह अपने पारिवारिक जनों को सूचना देने के लिए जाना चाहे तो क्या तुम उसे मुक्त करोगे ? नहीं, वैसे ही नरक से जीव मुक्त नहीं हो पाते, जो आकर तुम्हें सूचना दें और स्वर्ग के जीव इसलिए नहीं आते कि यहाँ पर गन्दगी है। कल्पना करो अपने शरीर को स्वच्छ बनाकर और सुगन्धित द्रव्यों को लेकर तुम देवालय की ओर जा रहे हो, उस समय शौचालय में बैठा हुआ कोई व्यक्ति तुम्हें वहाँ बुलाए तो क्या तुम उस गन्दे स्थान में जाना पसन्द करोगे ? नहीं। वैसे ही देव भी यहाँ आना पसन्द नहीं करते हैं।

राजा प्रदेशी और केशी का यह संवाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। केशी श्रमण की युक्तियाँ इतनी गजब की हैं कि आज भी पाठकों के लिए प्रेरणादायी ही नहीं अपितु आत्म-स्वरूप को समझने के लिए सर्चलाइट की तरह उपयोगी है। वास्तविक रूप से देखा जाय तो यही संवाद राजप्रश्नीय की आत्मा है। जिस तरह से राजप्रश्नीय में प्रश्नोत्तर हैं, उसी तरह दीघ-निकाय के 'पायासिसुत्त' में राजा 'पायासि' के प्रश्नोत्तर हैं। जो इन प्रश्नों से मिलते-जुलते हैं। यह भी सम्भव है कि जनमानस में आत्मा और शरीर की अभिन्नता को लेकर जो चिन्तन चल रहा था, उसका प्रतिनिधित्व राजा प्रदेशी ने किया हो और जैन दृष्टि से उसका समाधान केशी श्रमण ने किया हो।

राजा प्रदेशी का जीवन अत्यन्त उग्र रहा है। उसके हाथ रक्त से सने हुए रहते थे पर केशी श्रमण के सान्निध्य ने उसके जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। महारानी के द्वारा जहर देने पर भी उसके मन में किञ्चित् मात्र भी रोष पैदा नहीं हुआ। जिस जीवन में पहले क्रोध की ज्वाला धधक रही थी, वही जीवन क्षमासागर के रूप में परिवर्तित हो गया। इसलिए सत्संग की महिमा और गरिमा का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है।

### व्याख्या-साहित्य

राजप्रश्नीय कथाप्रधान आगम होने से इस पर न निर्युक्ति लिखी गई, न भाष्य की रचना हुई और न चूर्ण का निर्माण ही हुआ। इस पर सर्वप्रथम आचार्य मलयगिरि ने संस्कृत भाषा में टीकानिर्माण किया। संस्कृत टीकाकारों में आचार्य मलयगिरि का स्थान विशिष्ट है। जिस प्रकार वैदिक परम्परा में वाचस्पति मिश्र ने षट्दर्शनों पर महत्त्वपूर्ण टीकाएं लिखकर एक भव्य आदर्श उपस्थित किया है, वैसे ही जैन साहित्य पर आचार्य मलयगिरि ने प्रांजल भाषा और प्रवाहपूर्ण शैली में भावपूर्ण टीकाएं लिखकर एक आदर्श उपस्थित किया। वे दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनमें आगमों के गम्भीर रहस्यों को तर्कपूर्ण शैली से व्यक्त करने की अद्भुत कला और क्षमता थी। आगमप्रभावक मुनि पुण्यविजयजी महाराज के शब्दों में कहा जाय तो 'व्याख्याकारों में उनका स्थान सर्वोत्कृष्ट है।'

मलयगिरि अपनी वृत्तियों में सर्वप्रथम मूलसूत्र, गाथा या श्लोक के शब्दार्थ की व्याख्या कर उसके अर्थ का

स्पष्ट निर्देश करते हैं और उसकी विस्तृत विवेचना करते हैं, जिससे उसका अभीष्टार्थ पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है। विषय से सम्बन्धित अन्य प्रासंगिक विषयों पर विचार करना तथा प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण प्रस्तुत करना आचार्यश्री की अपनी विशेषता है।

टीकाकार ने सर्वप्रथम श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार किया है। उसके पश्चात् राजप्रश्नीय पर विवरण लिखने की प्रतिज्ञा की।<sup>१४६</sup> साथ ही इस बात पर प्रकाश डाला है कि प्रस्तुत आगम का नाम राजप्रश्नीय क्यों रखा गया है। इस सम्बन्ध में लिखा है—यह आगम राजा के प्रश्नों से सम्बन्धित है, इसीलिए इसका नाम 'राजप्रश्नीय' है। टीकाकार ने यह भी बताया है कि यह आगम सूत्रकृतांग का उपांग है। टीका में, आगम में आये हुए विशिष्ट शब्दों की मीमांसा भी की है। मीमांसा में टीकाकार का गम्भीर पाण्डित्य उजागर हुआ है। टीका का ग्रन्थ-प्रमाण तीन हजार सात सौ श्लोक प्रमाण है। टीका में अनेक स्थलों पर जीवाजीवाभिगम के उद्धरण दिये हैं। कहीं-कहीं पर पाठभेद का भी निर्देश किया है। देशीनाममाला के उद्धरण भी दिये गये हैं।<sup>१४७</sup>

प्रस्तुत आगम और उसकी टीका में जड़वाद और आत्मवाद का सुन्दर विश्लेषण हुआ है। स्थापत्य, संगीत और नाट्यकला के अनेक तथ्यों का इसमें समावेश है। लेखन सम्बन्धी सामग्री का भी इसमें निर्देश है। साम, दाम, दण्ड, नीति के अनेक सिद्धान्त इसमें समाविष्ट हैं। बहत्तर कलायें, चार परिषद्, कलाचार्य, शिल्पाचार्य का भी इसमें निरूपण हुआ है। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा से सम्बन्धित अनेक तथ्य इसमें आये हैं। राजा प्रदेशी और केशी श्रमण का जो संवाद है, साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह संवाद कथा के विकास के लिए एक आदर्श लिए हुए हैं। इस संवाद में जो रूपक दिये गये हैं, वे आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए परम उपयोगी हैं। इनका उपयोग बाद में अन्य साहित्यकारों ने भी किया है। जैसे—आचार्य हरिभद्र ने समराइच्चकहा में 'पिंगल' और 'विजयसिंह' के संवाद में बन्द कमरे में से भी स्वरलहरियां बाहर आती हैं, इस रूपक को प्रस्तुत किया है।

राजप्रश्नीय का सर्वप्रथम सन् १८८० में बाबू धनपतसिंहजी ने मलयगिरि वृत्ति के साथ प्रकाशन किया। उसके बाद सन् १९२५ में आगमोदय समिति बम्बई और वि.सं. १९९४ में गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय—अहमदाबाद से सटीक प्रकाशित हुआ। वि.सं. २४४५ में पूज्य अमोलकऋषिजी म. के द्वारा हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण निकला। सन् १९६५ में पूज्य श्री घासीलालजी म. ने स्वनिर्मित संस्कृत व्याख्या व हिन्दी-गुजराती अनुवाद के साथ जैन शास्त्रोद्धार समिति—राजकोट से प्रकाशित किया। सन् १९३५ में पं. बेचरदास जीवराज दोशी ने इसका गुजराती अनुवाद लाधाजी स्वामी पुस्तकालय—लीमडी से और वि. सं. १९९४ में गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय—अहमदाबाद से प्रकाशित करवाया। इस प्रकार आज दिन तक राजप्रश्नीय के विविध संस्करण अनेक स्थलों से प्रकाशित हुए हैं।

### प्रस्तुत-सम्पादन

राजप्रश्नीय का यह अभिनव संस्करण आगम प्रकाशन समिति ब्यावर (राज.) द्वारा प्रकाशित हो रहा है। इस

१४६. प्रणमत वीरजिनेश्वरचरणयुगं परमपाटलच्छायाम् ।

अधरीकृतनतवासवमुकुटस्थितरत्नरुचिचक्रम् ॥ १ ॥

राजप्रश्नीयमहं विवृणोमि यथाऽऽगमं गुरुनियोगात् ।

तत्र च शक्तिमशक्तिं गुरवो जानन्ति का चिन्ता ॥ २ ॥

१४७. पहकराः संघाताः—पहकर-ओरोह-संघाया इति देशीनाममालावचनात् ।

—राजप्रश्नीयवृत्ति, पृष्ठ ३

के संयोजक और प्रधान सम्पादन हैं—युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.। वे श्रमणसंघ के भावी आचार्य हैं। आगमों को अधुनातन भाषा में प्रकाशित करने का उनका दृढ़ संकल्प प्रशंसनीय है। उन्होंने आगमों का कार्य हाथ में लिया पर इतने स्वल्प समय में प्रश्नव्याकरण को छोड़कर शेष दस अंग प्रायः प्रकाशित हो गये हैं। भगवती का भी प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। अन्य भाग भी प्रकाशन के पथ पर द्रुत गति से कदम बढ़ा रहे हैं। औपपातिक और नन्दीसूत्र के बाद राजप्रश्नीय का प्रकाशन हो रहा है। अन्य आगम भी प्रेस के चक्के पर चढ़ चुके हैं। आगम प्रकाशन का यह कार्य राकेट की गति से हो रहा है। यदि यही गति रही तो एक-डेढ़ वर्ष में बत्तीस आगमों का प्रकाशन समिति के द्वारा पूर्ण रूप से सम्पन्न हो जायेगा। वस्तुतः यह भगीरथ कार्य युवाचार्य श्री की कीर्ति को अमर बनाने वाला है।

राजप्रश्नीय के इस संस्करण की अपनी मौलिक विशेषता है—शुद्ध मूलपाठ, भावार्थ और संक्षिप्त विवेचन। विषय गम्भीर होने पर भी प्रस्तुतीकरण सरल है। पूर्व के अन्य संस्करणों की अपेक्षा यह संस्करण अधिक आकर्षक है। इसके सम्पादक हैं—वाणीभूषण पं. श्री रतनमुनिजी म., जिन्होंने निष्ठा के साथ इसका सम्पादन किया है। साथ ही पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल का अथक श्रम भी इसमें जुड़ा हुआ है। वृद्धावस्था होने पर भी वे जो श्रम कर रहे हैं, वह श्रम नींव की ईंट के रूप में आगममाला के साथ जुड़ा हुआ है। यदि वे तन, मन के साथ श्रुतसेवा के इस महायज्ञ में जुड़े नहीं होते तो यह कार्य इस रूप में सम्पन्न शायद ही हो पाता।

राजप्रश्नीय पर मैं बहुत विस्तार के साथ प्रस्तावना लिखना चाहता था। आत्मवाद के गम्भीर विषय को विभिन्न दर्शनों के आलोक में प्रस्तुत करना चाहता था पर मेरा स्वास्थ्य लम्बे समय से अस्वस्थ-सा रहा, जिसके कारण चाहते हुए भी लिख नहीं पाया। तथापि संक्षेप में मैंने आगमगत विषयों पर चिन्तन किया है। तुलनात्मक और समन्वयात्मक चिन्तन करने की दृष्टि मुझे अपने श्रद्धेय सद्गुरुवर्य, राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी, उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी म. से प्राप्त हुई, जो युवाचार्य श्री के स्नेही साथी हैं। उनकी अपार कृपा से ही मैं प्रस्तावना लिखने में सक्षम हो सका हूँ।

वर्तमान युग में मानव भौतिकता की ओर अपने कदम बढ़ा रहा है, जिससे उसे शान्ति के स्थान पर अशान्ति प्राप्त हो रही है। ऐसी विषम स्थिति में यह आगम अध्यात्मवाद की पवित्र प्रेरणा देगा, उसे शान्ति की सच्ची राह बतायेगा। उसकी तनावपूर्ण स्थिति को समाप्त कर जीवन में धर्म की सुरीली स्वर-लहरियां झकृत करेगा, इसी आशा के साथ विरामामि।

धन तेरस

दि. १३ नवम्बर, '८२

जैन स्थानक

सिंहपोल, जोधपुर (राज.)

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री



## विषयानुक्रमणिका

शीर्षक	पृष्ठङ्क
आरम्भ	३
चैत्य-वर्णन	६
राजा सेय	८
रानी धारिणी	९
भगवान् का पदार्पण और राजा का दर्शनार्थ गमन	१०
सूर्याभदेव द्वारा जम्बूद्वीपदर्शन	११
सूर्याभदेव द्वारा भगवान् की स्तुति	१२
सूर्याभदेव की आभियोगिक देवों को आज्ञा	१४
आभियोगिक देवों द्वारा आज्ञापालन	१६
संवर्तक वायु की विकुर्वणा	१८
अभ्र-बादलों की विकुर्वणा	१९
पुष्प-मेघों की रचना	२०
आभियोगिक देवों का प्रत्यावर्तन	२१
सूर्याभदेव की उद्घोषणा एवं आदेश	२१
सूर्याभदेव की उद्घोषणा की प्रतिक्रिया	२३
सूर्याभदेव द्वारा विमाननिर्माण का आदेश	२४
आभियोगिक देवों द्वारा विमान-रचना	२५
मणियों का वर्ण	२८
मणियों का गंध-वर्णन	३०
मणियों का स्पर्श	३१
प्रेक्षागृह-निर्माण	३१
रंगमंच आदि की रचना	३३
सिंहासन की रचना	३३
सिंहासन की चतुर्दिग्वर्ती भद्रासन-रचना	३५
समग्र यान-विमान का सौन्दर्य-वर्णन	३५
आभियोगिक देव द्वारा आज्ञा-पूर्ति की सूचना	३६
सूर्याभदेव का आमलकम्पा नगरी की ओर प्रस्थान	३८
सूर्याभदेव का समवसरण में आगमन	४०
सूर्याभदेव की जिज्ञासा का समाधान	४३

सूर्याभदेव द्वारा मनोभावना का निवेदन	४५
वाद्यों और वाद्यवादकों की रचना	४८
सूर्याभदेव द्वारा नृत्य-गान-वादन का आदेश	४९
नृत्य-गान आदि का रूपक	५०
नाट्याभिनयों का प्रदर्शन	५२
भगवान् महावीर के जीवन-प्रसंगों का अभिनय	५७
नाट्याभिनय का उपसंहार	५७
गौतमस्वामी की जिज्ञासा : भगवान् का समाधान	५९
सूर्याभदेव के विमान का अवस्थान और वर्णन	६१
सूर्याभविमान के द्वारों का वर्णन	६३
द्वारस्थित पुतलियाँ	६६
द्वारों के उभय पार्श्ववर्ती तोरण	६९
द्वारस्थ ध्वजाओं का वर्णन	७३
द्वारवर्ती भौमों (विशिष्ट स्थानों) का वर्णन	७३
विमान के वनखण्डों का वर्णन	७४
मणियों और तृणों की ध्वनियाँ	७५
वनखण्डवर्ती वापिकाओं आदि का वर्णन	७७
उत्पात पर्वतों आदि की शोभा	७९
वनखण्डवर्ती गृहों का वर्णन	८०
वनखण्डवर्ती मण्डपों का वर्णन	८०
वनखण्डवर्ती प्रासादावतंसक	८१
उपकारिकालयन का वर्णन	८४
पद्मवरवेदिका का वर्णन	८४
मुख्य प्रासादावतंसक का वर्णन	८९
सुधर्मा सभा का वर्णन	९०
स्तूप-वर्णन	९२
चैत्यवृक्ष	९३
माहेन्द्र-ध्वज	९४
सुधर्मासभावर्ती मनोगुलिकायें, गोमानसिकायें	९५
माणवक चैत्य स्तम्भ	९५
देवशय्या	९६
आयुधगृह-शस्त्रागार	९७
सिद्धायतन	९८

उपपात आदि सभाएँ	१००
पुस्तकरत्न एवं नन्दापुष्करिणी	१०२
उपपातानन्तर सूर्याभदेव का चिन्तन	१०२
सामानिक देवों द्वारा कृत्य-संकेत	१०४
सूर्याभदेव का अभिषेक-महोत्सव	१०५
अभिषेककालीन देवोल्लास	१०९
अभिषेकानंतर सूर्याभदेव का अलंकरण	११३
सूर्याभदेव द्वारा कार्यनिश्चय	११४
सिद्धायतन का प्रमार्जन	११५
अरिहंत-सिद्ध भगवन्तों की स्तुति	११७
सूर्याभदेव द्वारा सिद्धायतन के देवच्छन्दक आदि की प्रमार्जना	११७
आभियोगिक देवों द्वारा आज्ञापालन	१२३
सूर्याभदेव का सभा-वैभव	१२४
सूर्याभदेव विषयक गौतम की जिज्ञासा	१२६
केकय अर्ध जनपद और प्रदेशी राजा	१२७
रानी सूर्यकान्ता और युवराज सूर्यकान्त	१२९
चित्त सारथी	१३०
कुणाला जनपद, श्रावस्ती नगरी, जितशत्रु राजा	१३१
चित्तसारथी का श्रावस्ती की ओर प्रयाण	१३१
श्रावस्ती नगरी में केशी कुमारश्रमण का पदार्पण	१३४
दर्शनार्थ परिषदा का गमन और चित्त की जिज्ञासा	१३६
चित्त सारथी का दर्शनार्थ गमन	१३९
केशी श्रमण की देशना	१४०
चित्त की केशी कुमारश्रमण से सेयविया पधारने की प्रार्थना	१४४
केशी कुमारश्रमण का उत्तर	१४५
चित्त की उद्यानपालकों को आज्ञा	१४७
केशी कुमारश्रमण का सेयविया में पदार्पण	१४९
चित्त का प्रदेशी राजा को प्रतिबोध देने का निवेदन	१५१
केशी कुमारश्रमण का उत्तर	१५२
प्रदेशी राजा को लाने हेतु चित्त की युक्ति	१५४
केशी कुमारश्रमण को देखकर प्रदेशी का चिन्तन	१५६
तज्जीव-तच्छरीरवाद मंडन-खंडन	१६४
प्रदेशी की परम्परागत मान्यता का निराकरण	१९०

प्रदेशी की प्रतिक्रिया एवं श्रावकधर्म-ग्रहण	१९३
प्रदेशी द्वारा कृत राज्यव्यवस्था	१९८
सूर्यकान्ता रानी का षड्यन्त्र	१९८
प्रदेशी का संलेखना-मरण	२००
सूर्याभदेव का भावी जन्म	२०१
माता-पिता द्वारा कृत जन्मादि संस्कार	२०२
दृढप्रतिज्ञ का लालन-पालन	२०३
दृढप्रतिज्ञ का कलाशिक्षण	२०४
कलाचार्य का सम्मान	२०५
दृढप्रतिज्ञ की भोगसमर्थता	२०६
दृढप्रतिज्ञ की अनासक्ति	२०८
उपसंहार	२०९

**परिशिष्ट :**

१. नृत्य-संगीत-नाट्य-वाद्य से सम्बन्धित शब्दसूची	२११
२. विशिष्ट शब्दों की अनुक्रमणिका	२१६



# राजप्रश्नीयसूत्रम्



# राजप्रश्नीयसूत्रम्

## आरम्भ

१— तेषां कालेणं तेषां समएणं आमलकप्या नामं नयरी होत्था-रिद्ध-त्थिमिय-समिद्धा जाव [ पमुइयजण-जाणवया आइण्णजणमणूसा हलसयसहस्ससंकिट्टुविगिट्टुलट्टुपण्णत्तसेउसीमा कुक्कुडसंडेयगामपउरा उच्छु-जव-सालिकलिआ गो-महिस-गवेलगप्पभूया आयारवंत-चेइय-जुवइविसिट्टुसन्निविट्टुबहुला उक्कोडिय-गाय-गंठिभेद-तक्कर-खंडरक्खरहिया खेमा निरुवहवा सुभिकखा वीसत्थसुहावासा अणेगकोडिकोडुंबियाइण्णणिव्वुत्तसुहा नड-नट्ट-जल्ल-मल्ल-मुट्टिय-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख तूणइल्ल-तुंबवीणिय-अणेगतालाचराणुचरिया आराम-उज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय-वाप्पिणगुणोववेया उव्विद्धविउलगंभीरखात-फलहा चक्क-गय-भुसुंढि-ओरोह-सयग्घि-जमलकवाडघणदुप्पवेसा धणुकुडिलवंक-पागारपरिक्खत्ता कविसीसय-वट्टइय-संठियविरायमाणा अट्टालय-चरिय-दार-गोपुरतोरण-उन्नय-सुविभत्तरायमग्गा छेयायरियरइयदढ-फलहइंदकीला विवणि-वणिंच्छित्त-सिप्पि-आइण्णणिव्वुयसुहा सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-पणियापणविविहवसुपरिमंडिया सुरम्मा नरवइ-पविइण्णमहिइपहा अणेग-वरतुरग-मत्तकुंजर-रहपह-कर-सीय-संदमाणीआइण्णजाणजोग्गा विमउलनवनलिणसोभियजला पंडुरवर-भवणपंतिमहिया उत्ताणयनयणपिच्छणिज्जा ] पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

उस काल और उस समय में अर्थात् वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के उत्तरवर्ती समय में आमलकप्या [ आमलकल्पा ] नाम की नगरी थी ।

वह आमलकप्या नगरी भवनादि वैभव-विलास से सम्पन्न थी, स्वचक्र और परचक्र के भय से मुक्त-रहित थी । धन-धान्य आदि की समृद्धि से परिपूर्ण थी यावत् ( इसके मूल निवासी और जनपद-दूसरे देशवासी जन-यहां आनन्द से रहते थे । जन-समूहों से सदा आकीर्ण-भरी रहती थी ।

सैकड़ों-हजारों अथवा लाखों हलों से बार-बार जुतने, अच्छी तरह से जुतने के कारण वहां के खेतों की मिट्टी भुरभुरी-नरम और मनोज्ञ दिखती थी । उनमें प्राज्ञ-कृषि-विद्या में निपुण व्यक्तियों द्वारा जलसिंचन के लिए नालियां एवं क्यारियां और सीमाबन्दी के लिए मेड़ें बनी हुई थीं ।

नगरी के चारों ओर गांव इतने पास-पास बसे हुए थे कि एक गांव के मुर्गों और सांडों की आवाज दूसरे गांव में सुनाई देती थी । वहां के खलिहानों में गन्ने, जौ और धान के ढेर लगे रहते थे, अथवा खेतों में गन्ने, जौ और धान की फसलें सदा लहलहाती रहती थीं । गायों, भैंसों और भेड़ों के टोले के टोले वहां पलते थे ।)

आकर्षक आकार-प्रकार वाले कलात्मक चैत्यों और पण्यतरुणियों ( गणिकाओं ) के बहुत से सुन्दर सन्निवेशों से नगरी शोभायमान थी ।

लांच-रिश्वत लेने वालों-घूसखोरों, घातकों, गुंडों, गांठ काटने वालों-जेबकतरों, डाकुओं, चोरों और

जबरन जकात (राजकर, चुंगी, टैक्स) वसूल करने वालों के न होने से नगरी क्षेम रूप थी, अनिष्ट-उपद्रवों से रहित थी, सुभिक्ष होने से भिक्षुओं को सरलता से भिक्षा मिल जाती थी। लोग यहां विश्वासपूर्वक सरलता से रहते थे और दूसरे-दूसरे अनेक सैकड़ों प्रकार के कुटुम्ब परिवारों के भी बसने से नगरी साताकारी समझी जाती थी।

नट—नाटक करने वालों, नर्तक—नृत्य-नाच करने वालों, जल्ल—रस्सी पर चढ़कर कलाबाजियां दिखाने वालों, मल्ल—पहलवानों, मौष्टिक—पंजा लड़ाने वालों, विदूषकों, बहुरूपियों, कथक—कथा कहानी कहने वालों, प्लवक—पानी में तैरने वालों, उछल-कूद करने वालों, लासक—रास रचने वालों, स्वांग धरने वालों, आख्यायिक—शुभ-अशुभ शकुन बताने वालों, लंख—ऊंचे खांस पर चढ़कर कलाबाजी, खेल करने वालों, मंख—चित्र दिखाकर भीख मांगने वालों, शहनाई बजाने वालों, तम्बूरा बजाने वालों और खड़ताल बजाने वालों से नगरी अनुचरित—व्याप्त थी।

आरामों—लताकुंजों, उद्यानों—बाग बगीचों, कूपों, जलाशयों, दीर्घिकाओं—लम्बे आकार की बावड़ियों और सामान्य बावड़ियों से युक्त होने के कारण वह नगरी रमणीय थी।

सुरक्षा के लिए नगरी को चारों ओर से घेरती हुई गोलाकार खात (खाई) थी, जो विस्तृत, तल न दिखे ऐसी गहरी और ऊपर चौड़ी एवं नीचे संकड़ी थी और खात के बाहर ऊपर नीचे समान रूप से खुदी हुई परिखा थी।

खाई के बाद नगरी को चारों ओर से घेरता हुआ धनुष जैसा वक्राकार परकोटा था। जो चक्र, गदा, भुसुंडि (शस्त्र विशेष) अवरोध, शतघ्नी और मजबूत, सम-युगल किवाड़ों सहित था। जिससे नगरी में शत्रुओं का प्रवेश करना कठिन था। इस परकोटे का ऊपरी भाग गोल-गोल कंगूरों से शोभायमान था और वहां पहरेदारों के लिए ऊंची-ऊंची अटारियां-मीनारें बनी हुई थीं। किले और नगरी के बीच आने-जाने का रास्ता आठ-हाथ चौड़ा था। प्रवेश-द्वार पर तोरण बंधे हुए थे।

नगरी के राजमार्ग सम, सुन्दर और आकर्षक थे और द्वारों में निपुण शिल्पियों द्वारा बनायी गई अर्गलाओं एवं इन्द्रकीलियों वाले किवाड़ लगे हुए थे।

नगरी के बाजार भांति-भांति की क्रय-विक्रय करने योग्य वस्तुओं और व्यापारियों से व्याप्त रहते थे और व्यापार के केन्द्र—मंडी थे। जिससे अलग-अलग कामों के जानकार शिल्पियों, कारीगरों, मजदूरों का वहां सुख-पूर्वक निर्वाह होता था।

नगरी में कितने ही मार्ग सिंघाड़े जैसे त्रिकोण और कितने ही त्रिकों (तिराहों), चतुष्कों (चौराहों) और चत्वरों (चार से भी अधिक मार्ग) आदि वाले थे और दुकानें बिक्री करने योग्य अनेक प्रकार की रमणीय वस्तुओं से भरी रहती थी।

नगरी के राजमार्ग देश-देश के राजाओं-महाराजाओं आदि के आवागमन से और साधारण मार्ग अनेक सुन्दर अश्वों, मदोन्मत्त हाथियों, रथों, पालखियों और म्यानों के आने-जाने से व्याप्त रहते थे।

वहां के जलाशय, तालाब आदि विकसित कमल-कमलिनियों से सुशोभित थे और मकान, भवन आदि सफेद

१. मूल में इसके लिए 'अणेगकोडि' शब्द है। आचार्य मलयगिरि सूरि ने इसका अर्थ अनेककोटिभिः अनेक कोटिसंख्याकैः अर्थात् अनेक कोटि यानि अनेक करोड़ संख्या किया है। परन्तु इस अर्थ की बजाय अनेक कोटि—अनेक प्रकार ऐसा अर्थ करना यहां विशेष उचित लगता है। क्योंकि कोटि शब्द का प्रकार अर्थ जैन आगमों में सुप्रतीत है।

मिट्टी-चूने आदि से पुते होने से बड़े सुन्दर दिखते थे। जिससे नगरी की शोभा अनिमेष दृष्टि से देखने लायक थी। वह मन को प्रसन्न करने वाली थी, बार-बार देखने योग्य थी, मनोहर रूप वाली थी और असाधारण सौन्दर्य वाली थी।

**विवेचन**— यहां औपपातिक सूत्र का आधार लेकर आमलकप्पा नगरी की समृद्धि का वर्णन किया है।

**आमलकप्पा**— भगवान् महावीर ने जिन नगरों में चातुर्मास किये हैं, उनमें तथा सूत्रों में बताई गई आर्य देश की राजधानियों में इसका उल्लेख नहीं है। इस प्रकार भगवान् के विहार स्थानों में भी आमलकप्पा के नाम का संकेत नहीं है। किन्तु इस राजप्रश्नीय सूत्र के उल्लेख से इतना कहा जा सकता है कि केवलज्ञानी होने के अनन्तर भगवान् ने जिन स्थानों पर विहार किया, सम्भवतः उनमें इसका नाम हो। किन्तु वर्तमान में वह नगरी कहाँ है और उसका क्या नाम है ? यह अभी भी अज्ञात है।

**हलसय-सहस्स-संकिट्ट**— विशेषण से यह स्पष्ट किया है कि हमारा देश कृषिप्रधान है और कृषि अहिंसक संस्कृति का आधार है। प्राचीन समय में अन्यान्य विषयों की तरह कृषि-विद्या से सम्बन्धित प्रभूत साहित्य था। जिसमें कृषि से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले—भूमिपरीक्षा, भूमिसुधारविधि, बीजरक्षणविधि, वृक्षों के रोग और उनके निरोध के लिए औषधोपचार आदि अनेक विषयों की विस्तृत चर्चा रहती थी।

आज के कृषक को चाहे कोई मूढ-अज्ञ कह दे, परन्तु उस समय का कृषक मूढ नहीं किन्तु प्राज्ञ माना जाता था। जो 'पण्णत्तसेउसीमा' पद के उल्लेख से स्पष्ट है।

**कुक्कुडसंडेयगामपउरा**— व्याकरण महाभाष्य में ग्रामों की समीपता सूचित करने के लिए ग्रामों के विशेषण के रूप में 'कुक्कुटसंपात्याः ग्रामाः' उदाहरण रखा है। उपर्युक्त वर्णन से यह निश्चित ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल के ग्राम अवश्य ही कुक्कुटसंपात्य ही थे अर्थात् एक ग्राम का मुर्गा दूसरे ग्राम में पहुंच सके ऐसा निकटवर्ती गांव। आज भी सुदूर क्षेत्र में कृषिप्रधान गांव इसी प्रकार के कुक्कुट-संपात्य हैं।

**जुवइ**— अर्थात् पण्य तरुणी। यद्यपि आज इस शब्द का प्रयोग वेश्या के लिए रूढ हो गया है और उसे समाज बहिष्कृत मानकर तिरस्कार, घृणा और हेयदृष्टि से देखता है। लेकिन यह शब्द तत्कालीन समाज की एक संस्था-विशेष का बोध कराता है, जो अपने कला, गुण और रूपसौन्दर्य के कारण राजा द्वारा सम्मानित की जाती थी। गुणी-जन प्रशंसा करते थे। कला के अर्थी कला सीखने के लिए उससे प्रार्थना करते और उसका आदर करते थे। सम्भवतः इसी कारण उसका यहां उल्लेख किया हो।

नगरी में रिश्वतखोर आदि कोई नहीं था इत्यादि कथन में उसके उज्ज्वल पक्ष का ही उल्लेख किया गया है। यह साहित्यकारों की प्रणाली प्राचीनकाल से चली आ रही है। परन्तु मानवस्वभाव को देखते यह पूर्णतः सम्भव जैसा प्रतीत नहीं होता है। तथापि नगरी के इस वर्णन से यह विदित होता है कि इसमें रहने वाले अपेक्षाकृत सभ्य, शिष्ट, सुसंस्कृत एवं प्रामाणिक थे।

**खायफलिहा**— खात और परिखा। वैसे तो ये दोनों शब्द प्रायः समानार्थक माने जाते हैं। लेकिन आचार्य मलयगिरि ने इनका अन्तर स्पष्ट किया है कि खात तो ऊपर चौड़ी और नीचे-नीचे संकड़ी होती जाती है। जबकि परिखा (खाई) ऊपर से लेकर नीचे तक एक जैसी सम-सीधी खुदी हुई होती है। प्राचीनकाल में नगर की रक्षा के लिए परकोटे से पहले खाई होती थी, जिसमें पानी भरा रहता था और खाई से पहले खात। खात में अंगारे अथवा अलसी आदि चिकना धानविशेष भर देते थे कि जिस पर पैर रखते ही मनुष्य तल में चला जाता है। इस प्रकार खात

भी नगररक्षा का एक साधन था।

### चैत्य-वर्णन

२— तीसे णं आमलकप्पाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अंबसालवणे नामं चेइए होत्था—[ चिरातीते पुव्वपुरिसपण्णत्ते पोरणे सहिए कित्तिए नाए सच्छत्ते सज्जाए सघंटे सपडागे पडागाइपडागमंडिए सलोमहत्थे कयवेयड्डिए लाइय-उल्लोइयमाहिए गोसीसरसरत्त-चंदणदहर-दिण्णपंचंगुलितले उवचियचंदणकलसे चंदणघडसुकय-तोरणपडिदुवारदेसभाए आसित्तो-सित्तविउलवट्ट-वग्घारियमल्लदामकलावे पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क तुरुक्क-धुवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामे सुगंधवरगंधिए गंधवट्टिभूए णड-पट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्टिय-वेलंबग-पवग-कहग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंबवीणिय-भुयग-मागहपरिगए बहुजण-जाणवयस्स विस्सुयकित्तिए बहुजणस्स आहुस्स आहुणिज्जे पाहुणिज्जे अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए जागसहस्सभागपडिच्छए, बहुजणो अच्चेइ आगम्म अंबसालवणचेइयं अंबसालवणचेइयं । ]

२— उस आमलकप्पा नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिक्कोण अर्थात् ईशान दिशा में आम्रशालवन नामक चैत्य था। वह चैत्य बहुत प्राचीन था। पूर्व पुरुष—पूर्वज, बड़े-बूढ़े भी उसको इसी प्रकार का कहते आ रहे थे। पुराना था। प्रसिद्ध था। अथवा अनेक परिवारों की आजीविका का साधक था। विख्यात था। दूर-दूर तक उसकी कीर्ति फैली हुई थी, उसके नाम से सभी परिचित थे। छत्र, ध्वजा, घंटा, पताकाओं से मंडित था। उसके शिखर पर अनेक छोटी-बड़ी पताकायें लहराती रहती थीं। मोर पंखों की पीछियों से युक्त था। उसके बीच वेदिका बनी हुई थी। आंगन गोबर से लिपा रहता था और दीवालें सफेद मिट्टी से पुती हुई थी। दीवालें पर गोरोचन और सरस रक्त चंदन के थापे—हाथे लगे हुए थे। जगह-जगह चंदन चर्चित कलश रखे थे। द्वार-द्वार पर चंदन के बने घट रखे थे और अच्छी तरह से बनाये हुए तोरणों के द्वारा दरवाजों के ऊपरी भाग सुशोभित थे। ऊपर से लेकर नीचे तक लटकती हुई गोलाकार में गुंथी हुई मालाओं से दीवालें मंडित थी। स्थान-स्थान पर रंगबिरंगे सरस, सुगंधित पुष्प-पुज्जों से अनेक प्रकार के मांडने मड़े हुए थे। धूपदानों में कृष्णागुरु—सुगंधित काष्ठ-विशेष, श्रेष्ठ कुंदरू, तुरुष्क—लोबान और धूप आदि के जलने से महकता रहता था और उस महक के उड़ने से बड़ा सुहावना लगता था। श्रेष्ठ सुगंध से सुवासित होने के कारण गंधवर्तिका जैसा मालूम होता था। नट, नृत्यकार, रस्सी पर खेल दिखाने वालों, मल्ल, पंजा लड़ाने वालों, बहुरूपियों, तैरने वालों, कथा कहानी कहने वालों, रास रचने वालों, शुभ-अशुभ शकुन बताने वालों, ऊंचे बांस पर खेल दिखाने वालों, चित्र दिखाकर भीख मांगने वालों, शहनाई बजाने वालों, तंबूरा बजाने वालों, भोजक—गाने वालों, मागध—चारण, भाट आदि से वह चैत्य सदा व्याप्त—घिरा रहता था। नगरवासियों और दूर-देशवासियों में इसकी प्रसिद्धि—कीर्ति फैली हुई थी जिससे बहुत से लोग वहां आहुति—जात देने आते रहते थे। वे उसे दक्षिणा-पात्र—दान देने योग्य स्थान, अर्चनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय मानते थे तथा कल्याणरूप मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप मानकर विनयपूर्वक उपासना—सेवा करने योग्य मानते थे। दिव्य,

सत्य और कामना सफल करने वाला समझते थे। यज्ञ में इसके नाम पर हजारों लोग दान देते थे और बहुत से लोग आकर इस आम्रशालवन चैत्य की जयजयकार करते हुए अर्चना भक्ति करते थे।

**विवेचन**— आम्रशालवन चैत्य के उपर्युक्त वर्णन से हमें तत्कालीन लोक-संस्कृति एवं जन मानस का ठीक-ठीक परिचय मिलता है कि चैत्य जन सामान्य के लिए मनोरंजन, क्रीड़ा आदि के स्थान होने के साथ-साथ अपनी कामनाओं की पूर्ति हेतु आहुति—जात देने आदि के भी केन्द्र थे।

३— असोगवर पायवे, पुढवी शिलापट्टए, वत्तव्वया उववाइयगमेणं षोया ।

३— उस चैत्यवर्ती श्रेष्ठ अशोकवृक्ष और पृथ्वीशिलापट्टक का वर्णन उववाईसूत्र के अनुसार जानना चाहिए।

**विवेचन**— अशोक वृक्ष के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्षपूजा की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। इसके पीछे वृक्षों की उपयोगिता, अथवा किसी पुण्य पुरुष का स्मरण अथवा वहम कारण है, यह विचारणीय और शोध का विषय है।

उववाईसूत्र में अशोक वृक्ष, पृथ्वीशिलापट्टक का विस्तार से वर्णन किया है। वही सब वर्णन यहां समझ लेने की सूत्र में सूचना की है। उसका सारांश इस प्रकार है—

चैत्य को चारों ओर से घेरे हुए वनखण्ड के बीचोंबीच एक विशाल, ऊंचा दर्शनीय और असाधारण रूपसौन्दर्य-सम्पन्न अशोक वृक्ष था।

वह अशोकवृक्ष भी और दूसरे लकुच, शिरीष, धव, चन्दन, अर्जुन, कदम्ब, अनार, शाल आदि वृक्षों से घिरा हुआ था। ये सभी वृक्ष मूल; कंद, स्कन्ध, छाल, शाखा, प्रवाल-पत्र, पुष्प, फल और बीज से युक्त थे। इनकी शाखा-प्रशाखायें चारों ओर फैली हुई थीं और पत्र, पल्लव, फल-फूलों आदि से सुशोभित थीं। इन वृक्षों पर मोर, मैना, कोयल, कलहंस, सारस आदि पक्षी इधर-उधर उड़ते और मधुर कलरव करते रहते थे। भ्रमर-समूह के गुंजारव से व्याप्त थे।

इस वृक्षघटा की शोभा में विशेष वृद्धि करने के लिए कहीं जाली झरोखों वाली चौकोर बावड़ियां, कहीं गोल बावड़ियां, कहीं पुष्करणियां आदि बनी हुई थीं।

पद्मवेल, नागरवेल, अशोकवेल, चंपावेल, माधवीवेल आदि वेलें इस वृक्षराजि से लिपटी हुई थीं और ये सभी वेलें फूलों के भार से नमी रहती थीं।

उक्त वनराजि से विराजित उस उत्तम अशोकवृक्ष पर रत्नों से बने हुए, देदीप्यमान, दर्शनीय, स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य-युगल और दर्पण—ये आठ मंगल एवं वज्र रत्न की डांडी वाले, कमल जैसे सुगंधित, काले, नीले, लाल, पीले और सफेद चामर लटकते हुए थे।

इस अशोक, वृक्ष के नीचे एक चौकोर शिलापट्ट था, जो जामुन, नेत्रगोलक, अंजन वृक्ष, सघन मेघमाला, भ्रमरसमूह, काजल, नील गुटिका, भैंसे के सींग आदि से भी अधिक कृष्ण वर्ण का था। दर्पण की तरह इसमें देखने वालों के प्रतिबिम्ब पड़ते थे। पाट की मोटाई में चारों ओर हीरा, पन्ना, मणि, माणक, मोती आदि से चित्र बने हुए थे और उसका स्पर्श रुई, मक्खन, आक की रुई आदि से भी अधिक सुकोमल था।

इस प्रकार का रत्नमय रम्य शिलापाट उस अशोकवृक्ष के नीचे रखा था।

## राजा सेय

४— [ तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए । ] सेओ राया [ होत्था, महया-हिमवंत-महंतमलय-मंदरमहिंदसारे अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूए निरंतरं रायलक्खणविराइयंगमंगे बहुजण-बहुमाणपूइए सव्वगुणासमिद्धे खत्तिए मुद्धाभिसित्ते माउपिउसुजाए दयपत्ते सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे मणुस्सिंदे जणवयपिया जणवयपाले जणवय-पुरोहिए सेउकरे केउकरे नरपवरे पुरिसवरे पुरिससीहे पुरिसवग्घे पुरिसआसीविसे पुरिसवरपोंडरीए पुरिसवरगंधहत्थी अट्ठे दित्ते वित्ते वित्थिन्नविपुलभवण-सयण-आसण-जाण-वाहणाइण्णे बहुधणबहुजायरूव-रजए आओग-पओगसंपउत्ते विच्छड्डिय-पउरभत्तपाणे बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूए पडिपुन्नजंत-कोस-कोट्टागार-आउहधरे बलवं दुब्बलपच्चामित्ते, ओहयकंटयं मलियकंटयं उद्धियकंटयं अप्पडिकंटयं ओहयसत्तुं मलियसत्तुं उद्धियसत्तुं निज्जयसत्तुं पराइयसत्तुं ववगयदुब्धिक्खदोसमारि-भयविप्पमुक्कं खेमं सिवं सुभिव्खं पसंतडिंबडमरं रज्जं पसासेमाणे विहरइ । ]

४— उस आमलकप्पा नगरी में सेय नामक राजा राज्य करता था। वह मनुष्यों में महा हिमवंत पर्वत, महामलय पर्वत, मंदर (मेरु) पर्वत और महेन्द्र नामक पर्वत आदि के समान श्रेष्ठ—प्रधान था। अत्यन्त विशुद्ध राजकुल एवं वंश में उत्पन्न हुआ था। उसके समस्त अंगोपांग राजचिह्नों और लक्षणों से सुशोभित थे। अनेक लोगों द्वारा वह बहुमान-सन्मान और सत्कार प्राप्त करता था अथवा अनेक लोगों द्वारा सम्मानपूर्वक पूजा जाता था। शौर्य आदि सर्वगुणों से समृद्ध था। क्षत्रिय था। मूर्धाभिषिक्त राजा था। माता-पिता के सुसंस्कारों से सम्पन्न था। स्वभाव से दयालु था। कुलमर्यादा का करने वाला और पालक था। क्षेम-कुशल का कर्ता और रक्षक होने से मनुष्यों में इन्द्र के समान, जनपद का पिता, जनपद-देश का पालक, जनपद का पुरोहित—मार्गदर्शक, अद्भुत कार्यों को करने वाला और मनुष्यों में श्रेष्ठ था। पुरुषार्थों का साधक होने से पुरुषों में प्रधान, निर्भय एवं बलिष्ठ होने से पुरुषों में सिंह, शूरवीर होने से पुरुषों में व्याघ्र, सफल कोप वाला होने से पुरुषों में आशीविष सर्प, दयालु, कोमल हृदय होने से पुरुषों में कमल, शत्रुओं का नाश करने से पुरुषों में उत्तम गंधहस्ती के समान था। समृद्ध, प्रभावशाली अथवा अभिमानियों का मानमर्दक, विख्यात-प्रख्यात था। विस्तीर्ण और विपुल भवन, शैया, आसन, यान, वाहन का स्वामी था। उसके कोष और कोठार सदा धन, स्वर्ण, चांदी, धान्य से भरे रहते थे। अर्थोपार्जन के उपायों का जानकार था। उसके यहां भोजन करने के बाद शेष रहा भोजन भिखारियों, याचकों में बांट दिया जाता था। सेवा के लिए बहुत से दास-दासी उसके पास रहते थे। उसकी गोशाला में गायों, भैंसों एवं बकरियों की प्रचुरता थी। उसके यंत्रागार, कोष, कोठार और शस्त्रागार पूरी तरह से भरे रहते थे। वह शारीरिक और मानसिक बल से बलवान् था अथवा उसकी सेना बल-विक्रमशाली थी। दुर्बलों का मित्रहितैषी था।

प्रजा को पीड़ित करने वाले कांटे रूप चोर और डाकू आदि न होने से उसका राज्य प्रजाकंटकों से रहित था। देश में उपद्रव, दंगा-फसाद करने वालों को दंड देकर शांत कर दिये जाने से मर्दितकंटक था। गुंडों बदमाशों को देश-निकाला दे देने से उद्धृतकंटक था। विरोधियों का विनाश कर देने से अपहतकंटक था। इसी प्रकार उसका राज्य अपहतशत्रु था, निहतशत्रु था, मथितशत्रु था, उद्धृतशत्रु था, निर्जितशत्रु था, पराजितशत्रु था एवं दुर्भिक्ष दुर्गुण दुर्व्यसन, महामारी से रहित था। शत्रुभय से मुक्त था। जिससे वह क्षेम-कुशम, सुभिक्ष युक्त तथा विघ्नों एवं राजकुमार आदि

राजपुरुषों द्वारा कृत विडम्बनाओं—राज्यविरुद्ध कार्यों से रहित था। ऐसे राज्य का प्रशासन करते हुए राजा अपना समय बिताता था।

**विवेचन**— राजा सेय का विशेष वृत्तान्त अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है। स्थानांगसूत्र के आठवें ठाणा में श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षित आठ राजाओं में एक नाम 'सेय' भी है किन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि यह 'सेय' राजप्रश्नीयसूत्र गत राजा है अथवा अन्य कोई। टीकाकार अभयदेवसूरि ने इसी सेय को आठ दीक्षित राजाओं में माना है।

सेय के संस्कृत रूपान्तर श्वेत और श्रेय दोनों होते हैं। आचार्य मलयगिरिसूरि ने अपनी टीका में 'श्वेत' का प्रयोग किया है।

### रानी धारिणी

५— [ तस्स णं सेयरणो ] धारिणी [ नामं ] देवी [ होत्था सुकुमालपाणिपादा अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा लक्खण-वंजण-गुणोववेया माण-उम्माण-पमाणपडिपुण्णसुजाय-सव्वंग-सुंदरंगी ससिसोमागार-कंतपियदंसणा, सुरूवा, करयलपरिमियपसत्थतिलियमञ्जा, कुंडलुल्लिहियगंडलेहा कोमुडुरयणियर-विमलपडिपुण्णसोमवयणा सिंगारागारचारुवेसा संगयगय-हसिय-भणिय-चिट्ठिय-विलास-ललिय-संलावनिउणजुत्तोवयारकुसला सुंदर-थण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-विलासकलिया सेएण रण्णा सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरइ ] ।

५— (उस सेय राजा की) धारिणी (नाम की) देवी—पटरानी (थी)। (वह सुकुमाल—अतिकोमल हाथ पैर वाली थी। शरीर और पांचों इन्द्रियों अहीन शुभ लक्षणों से संपन्न एवं प्रमाणयुक्त थीं। वह शंख, चक्र आदि शुभ लक्षणों तथा तिल, मसा आदि व्यंजनों और सौभाग्य आदि स्त्रियोचित गुणों से युक्त थी, मान-माप उन्मान-तोल और प्रमाण-नाप से परिपूर्ण—बराबर थी, सभी अंग परिपूर्ण और सुगठित होने से सर्वांग सुन्दरी थी, चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाली, कमनीय, प्रियदर्शना और सुरूपवती थी। उसका मध्य भाग—कटि भाग मुट्टी में आ जाये, इतना पतला और प्रशस्त था, त्रिवली से युक्त था और उसमें बल पड़े हुए थे। उसकी गंडलेखा—कपोलों पर बनाई हुई पत्रलेखा कुंडलों से घर्षित होती रहती थी। उसका मुखमंडल चंद्रिका के समान निर्मल और सौम्य था, अथवा कार्तिकी पूर्णिमा के चन्द्र के समान विमल परिपूर्ण और सौम्य था। उसका सुन्दर वेष मानो शृंगार रस का स्थान था। उसकी चाल, हासपरिहास, संलाप-बोलचाल, भाषण, शारीरिक और नेत्रों की चेष्टायें आदि सभी संगत थीं। वह पारस्परिक वार्तालाप करने में निपुण थी, कुशल थी, उचित आदर, सेवा-शुश्रूषा आदि करने में कुशल थी। उसके सुन्दर जघन—कमर से नीचे का भाग, स्तन, मुख, हाथ, पैर, लावण्य-विलास से युक्त थे और दर्शकों के चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली, दर्शनीय रूपवती और अतीव रूपवती थी और वह सेय राजा में अनुरक्ता, अविरक्ता होकर पांचों इन्द्रियों के इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, वर्ण एवं गंध रूप मनुष्योचित काम-भोगों का अनुभव करती हुई समय व्यतीत करती थी।

**विवेचन**— पानी से लबालब भरे हुए कुंड में पुरुष या स्त्री के बिठाने पर एक द्रोण (प्राचीन नाप) प्रमाण

पानी छलककर बाहर निकले तो वह बैठने वाली स्त्री अथवा पुरुष मान-संगत कहलाता है। तराजू पर तोलने पर यदि अर्धभार प्रमाण तुले तो वह उन्मान-संगत और अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल की ऊंचाई हो तो वह प्रमाण-संगत कहलाता है।

जैन परिभाषा के अनुसार शब्द और रूप ये दो काम में और गंध, रस एवं स्पर्श भोग में ग्रहण किये जाते हैं। दोनों का समावेश करने के लिए 'कामभोग' शब्द का उपयोग किया जाता है।

### भगवान् का पदार्पण और राजा का दर्शनार्थ गमन

६— सामी समोसढे । परिसा निग्गया । राया जाव [ नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे हिययमाला-सहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे-अभिणंदिज्जमाणे, मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे, कंति-दिव्य-सोहग्गुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे, बहूणं नरनारीसहस्साणं दाहिणहत्थेण अंजलिमालासहस्साइं-पडिच्छमाणे-पडिच्छमाणे, मंजुमंजुणा घोसेणं पडिबुज्जमाणे-पडिबुज्जमाणे, भवणपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे समइच्छमाणे आमलकप्पाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव अंबसालवणचेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामंते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासइ, पासित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ, ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता अवहट्टु पंच रायकउहाइं तंजहा—खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणं; जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा—

- ( १ ) सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए,
- ( २ ) अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए,
- ( ३ ) एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं,
- ( ४ ) चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं,
- ( ५ ) मणसो एगत्तभावकरणेणं ।

समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणयाए ] पज्जुवासइ ।

६— आमलकप्पा के बाहर स्थित आम्रशालवन चैत्य में स्वामी-श्रमण भगवान् महावीर पधारे। वंदना करने परिषद् निकली। राजा भी यावत् (हजारों दर्शकों की सहस्रों नेत्रमालाओं द्वारा बार-बार निरीक्षित होता हुआ, हजारों मनुष्यों के हृदयसहस्रों द्वारा पुनः पुनः अभिनंदित होता हुआ, हजारों जनों की मनोरथों रूपी मालासहस्रों द्वारा स्पर्शित-स्पृष्ट होता हुआ, सुन्दर और उदार वचनावली-सहस्रों द्वारा बारंबार स्तुत—स्तुतिगान किया जाता हुआ, शारीरिक ओज—सौन्दर्य, लावण्य-दिव्य सौभाग्य और गुणों के कारण जनपद के द्वारा प्रार्थित होता हुआ, हजारों नर-नारियों की अंजलि रूप मालासहस्रों को दाहिने हाथ से स्वीकार करता हुआ, मंजुल मधुर स्वरों द्वारा किये गये जय-जय घोषों से प्रतिबोधित-संबोधित होता हुआ एवं हजारों भवन-पंक्तियों को पार करता हुआ आमलकप्पा नगरी

के बीचोंबीच से होकर निकला, निकल कर आम्रशालवन चैत्य की ओर चला और श्रमण भगवान् महावीर से न अतिदूर और न अति समीप किन्तु यथायोग्य स्थान से तीर्थकरों के अतिशय रूप छत्र-पर-छत्र और पताकाओं-पर-पताका आदि को देखा, देखकर आभिषेक्य हस्तिरत्न को रुकवाया। रोक कर आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरा। उतर कर (१) खड्ग-तलवार, (२) छत्र, (३) मुकुट, (४) उपानह—जूता और (५) चामर इन पांच राजचिह्नों का परित्याग किया, परित्याग करके जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया। आकर पांच अभिगम करके श्रमण भगवान् महावीर के सन्मुख पहुंचा। वे पांच अभिगम इस प्रकार हैं—

- (१) पुष्प माला आदि सचित्त द्रव्यों का त्याग,
- (२) वस्त्र आदि अचित्त द्रव्यों का अत्याग—त्याग नहीं करना,
- (३) एक शाटिका (अखंड वस्त्र—दुपट्टा) का उत्तरासंग,
- (४) भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही अंजलि करना—दोनों हाथ जोड़ना,
- (५) मन को एकाग्र करना।

इन पांचों अभिगमपूर्वक सम्मुख आकर श्रमण भगवान् महावीर की आदक्षिण—दक्षिण दिशा से आरंभ करके तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया। वन्दन, नमस्कार करके त्रिविध—तीन प्रकार की पर्युपासना से प्रभु की उपासना करने लगा।

**विवेचन—** 'तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासइ' तीन प्रकार की पर्युपासना से उपासना करने लगा। सेवा, भक्ति करने को पर्युपासना कहते हैं। सेवाभक्ति श्रद्धा प्रधान है और श्रद्धा की अभिव्यक्ति के तीन साधन हैं— मन, वचन और काय। अतएव श्रद्धा की परम स्थिति को प्राप्त करने के लिए इन तीनों में तादात्म्य—एकरूपता होना आवश्यक है। इसी दृष्टि से सूत्र में 'तिविहाए' तीनों प्रकार से उपासना करने का उल्लेख किया है। कायिक अंग प्रत्यंगों की सम्मान प्रकट करने वाली चेष्टा कायिक उपासना, वक्ता के कथन का समर्थन करना वाचिक उपासना तथा मन को केन्द्रित करके कथन को सुनना और अनुमोदन करते हुए स्वीकार करना मानसिक उपासना कह है।

### सूर्याभदेव द्वारा जम्बूद्वीपदर्शन

७— तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरियाभे देवे सोहम्मे कप्पे सूरियाभे विमाणे सभाए सुहम्माए सूरियाभंसि सिंहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अन्नेहिं बहूहिं सूरियाभविमाणवासीहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महयाहय नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुङ्गपडुप्पवादियरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरति ।

इमं च णं केवलकप्पं जम्बुद्वीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे-आभोएमाणे पासति।

७— उस काल में अर्थात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के विहरण काल में और उस समय में अर्थात् भगवान् के आमलकप्पा नगरी के आम्रशालवन चैत्य में विराजने के समय में सूर्याभ नामक देव सौधर्म स्वर्ग में सूर्याभ नामक विमान की सुधर्मा सभा में सूर्याभ सिंहासन पर बैठकर चार हजार सामानिक देवों, सपरिवार चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकों-सेनाओं, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा

दूसरे बहुत से सूर्याभ विमानवासी वैमानिक देव-देवियों सहित अव्याहत निरन्तर नाट्य एवं निपुण पुरुषों द्वारा वादित—बताये जा रहे तंत्री—वीणा हस्तताल, कांस्यताल और अन्यान्य वादित्रों—वाद्यों तथा घनमृदंग—मेघ के समान ध्वनि करने वाले मृदंगों की ध्वनि (आवाज) के साथ दिव्य भोगने योग्य भोगों को भोगता हुआ विचर रहा था। उस समय उसने अपने विपुल अवधिज्ञानोपयोग द्वारा निरखते हुए इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीपनामक द्वीप को देखा।

**विवेचन**— सूत्र में सूर्याभदेव के सभावैभव का वर्णन है। सभा में उपस्थित देव-देवियों का निर्देश इन शब्दों में किया है—

**सामानिक देव**— आज्ञा और ऐश्वर्य के अतिरिक्त ये सभी देव विमानाधिपति देव के समान द्युति, वैभव आदि से संपन्न होते हैं और इनको भाई आदि के तुल्य आदर-सम्मान योग्य माना जाता है।

**अग्रमहिषी**— कृताभिषेका राजा की पत्नी महिषी और शेष अकृताभिषेका अन्य स्त्रियां भेगिनी कहलाती हैं (या कृताभिषेका नृपस्त्री सा महिषी, अन्या अकृताभिषेका नृपस्त्रियो भोगिन्य इत्युच्यन्ते—अमरकोश द्वितीय कांड, मनुष्यवर्ग, श्लोक-५)। अपनी परिवारभूता अन्य सभी पत्नियों में उसकी अग्रता—प्रधानता, मुख्यता—बताने के लिए महिषी के साथ अग्र विशेषण का प्रयोग किया जाता है।

**तीन परिषदा**— सभी विमानाधिपति देवों की—१. अभ्यन्तर, २. मध्यम और ३. बाह्य ये तीन परिषदायें होती हैं। जिनसे अपने अंतरंग, गुप्त गूढ़ रहस्यों के लिए विचार किया जाता है, ऐसे परमविश्वसनीय समवयस्क मित्र समुदाय को अभ्यन्तरपरिषद, अभ्यन्तर परिषद में चर्चित एवं निर्णीत विचारों के लिए जिससे सम्मति, राय ली जाती है, उसे मध्यमपरिषद और अभ्यन्तर तथा मध्यम परिषद द्वारा विचारित, निर्णीत एवं सम्मत कार्य को क्रियान्वित करने का दायित्व जिसे दिया जाता है, उसे बाह्यपरिषद कहते हैं।

**सात सेनायें**— अश्व, गज, रथ, पदाति, वृषभ (बैल), गंधर्व और नाट्य ये सेनाओं के सात प्रकार हैं। इनमें से आदि की पांच का युद्धार्थ और अंतिम दो का आमोद-प्रमोद के लिए उपयोग किया जाता है और ये अपने अपने अधिपति के नेतृत्व में कार्य संपादित करने में सक्षम होने से इनके सात सेनापति होते हैं।

**आत्मरक्षक देव**— शिरस्त्राण जैसे प्राणरक्षक होता है, उसी प्रकार ये देव भी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर अपने अधिपतिदेव की रक्षा करने में तत्पर रहने से आत्मरक्षक कहलाते हैं। यद्यपि इन्द्र आदि देवों को किसी का भय नहीं होता कि आत्मरक्षकों की आवश्यकता हो, मगर यह भी इन्द्र का एक वैभव है।

## सूर्याभदेव द्वारा भगवान् की स्तुति

८— तत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्वीवे भारहे वासे आमलकप्पाए नगरीए बहिया अंबसालवणे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उगिगिहत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासति, पासित्ता हट्टुत्तु चित्तमार्णंदिए पीडमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए विकसियवर-कमलणयणे पयलियवरकडग-तुडिय-केऊर-मउड-कुंडलहारविरायंतरइयवच्छे, पालंबपलंबमाण-घोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं सुरवरे सीहासणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहति, पच्चोरुहत्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुयइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेति, करित्ता तित्थयराभिमुहे सत्तट्टपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, दाहिणं जाणुं धरणि-

तलंसि निहट्टु तिव्वुत्तो मुद्धाणं धरणिगतलंसि निमेइ, निमित्ता ईसिं पच्चुन्नमइ पच्चुन्नमित्ता कडय-  
तुडियथंभिभुयाओ साहरइ साहरित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु  
एवं वयासी—

८— उस समय अर्थात् विपुल अवधि ज्ञानोपयोग द्वारा जम्बूद्वीप के दर्शन में प्रवर्तमान होने के समय उसने जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आमलकप्पा नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य में यथा प्रतिरूप अवग्रह ग्रहण कर— साधु के लिए उचित स्थान की याचना करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को देखा। देखकर वह हर्षित और अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, उसका चित्त आनंदित हो उठा। मन में प्रीति उत्पन्न हुई, अतीव सौमनस्य को प्राप्त हुआ, हर्षातिरेक से उसका हृदय—वक्षस्थल फूल गया, नेत्र और मुख विकसित श्रेष्ठ कमल जैसे हो गये। अपार हर्ष के कारण पहने हुए श्रेष्ठ कटक, त्रुटित, केयूर, मुकुट और कुण्डल चंचल हो उठे, वक्षस्थल हार से चमचमाने लगा, पैरों तक लटकते प्रालंब—आभूषण विशेष—झूमके विशेष चंचल हो उठे और उत्सुकता, तीव्र अभिलाषा से प्रेरित हो वह देवश्रेष्ठ सूर्याभ देव शीघ्र ही सिंहासन से उठा। उठकर पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरा। नीचे उतर कर पादुकायें उतारी। पादुकायें उतार कर एकशाटिक उत्तरासंग किया। उत्तरासंग करके तीर्थकर के अभिमुख सात-आठ डग चला, अभिमुख चलकर बांया घुटना ऊंचा रखा और दाहिने घुटने को नीचे भूमि पर टेक कर तीन बार मस्तक को पृथ्वी पर नमाया-झुकाया, फिर मस्तक कुछ ऊंचा उठाया। तत्पश्चात् कटक त्रुटित—बाजूबंद से स्तंभित दोनों भुजाओं को मिलाया। मिला कर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके उसने इस प्रकार कहा—

विवेचन— आन्तरिक हर्ष का उद्रेक होने पर शरीर पर उसका जो असर-प्रभाव दिखता है, उसका इस सूत्र में सुन्दर वर्णन किया है।

९— नमोऽथु णं अरिहंताणं भगवंताणं आदिगराणं तित्थगराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहिआणं लोग-  
पईवाणं लोगपज्जोयगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं जीवदयाणं सरणदयाणं दीवो  
ताणं ( सरणं गई पइट्ठा ) बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवर-  
चाउरंतचक्कवट्ठीणं अप्पडिहयवरणाण-दंसणधराणं वियट्ठुउमाणं जिणाणं जावयाणं तिण्णाणं  
तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवं अयलं अरुयं अणंतं  
अक्खयं अच्चाबाहं अपुणारावत्तियं सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं ।

नमोऽथु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स तित्थयरस्स जाव<sup>१</sup> संपाविउकामस्स,  
वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगते, पासइ मे भगवं तत्थगते इहगतं ति कट्टु वंदति णमंसति,  
वंदित्ता णमंसित्ता सीहासणवरगए पुच्चाभिमुहं सण्णिसण्णे ।

९— अरिहंत भगवन्तों को नमस्कार हो, श्रुत-चारित्र्य धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, अन्य के उपदेश के बिना स्वयं ही बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, कर्म-शत्रुओं का विनाश करने में पराक्रमी होने के

१. देखें सूत्र संख्या ९ (सयं संबुद्धाणं.....ठाणं पद तक)

कारण पुरुषों में सिंह के समान, सौम्य होने से पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषों में उत्तम गंधहस्ती के समान (जैसे गंधहस्ती की गंध से अन्य हाथी भाग जाते हैं उसी प्रकार जिनके पुण्य प्रभाव से ही ईति भीति का विनाश हो जाता है, ऐसे) लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोक में विशेष उद्योत करने वाले अथवा लोक के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले—बताने वाले, अभय देने वाले, श्रद्धा-ज्ञान-रूप नेत्र के दाता, धर्म (चारित्र्य) मार्ग के दाता, जीवों पर दया रखने का उपदेश देने वाले, शरणदाता, बोधिदाता देशविरति, सर्वविरति रूप धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी, चतुर्गति रूप संसार का अंत करने वाले धर्म के चक्रवर्ती, अव्याघात (प्रतिहत न होने वाले) केवल-ज्ञान-दर्शन के धारक, घाति कर्म रूपी छद्म के नाशक, रागादि आत्मशत्रुओं को जीतने वाले, कर्मशत्रुओं को जीतने के लिए अन्य जीवों को प्रेरित करने वाले, संसार-सागर से स्वयं तिरने हुए और दूसरों को तिरने का उपदेश देने वाले, बोध (केवल-ज्ञान) को प्राप्त करने वाले और उपदेश द्वारा दूसरों को बोध प्राप्त कराने वाले, स्वयं कर्म-बंधन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरों को मुक्त कराने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी शिव—उपद्रव रहित, कल्याण रूप, अचल—अचल स्थान (सिद्धिस्थान) को प्राप्त हुए, अरुज—शारीरिक व्याधि वेदना से रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावृत्ति—जिसको प्राप्त कर लेने पर पुनः संसार में जन्म नहीं होता, ऐसे पुनरागमन से रहित—सिद्धि गति नामक स्थान में स्थित सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो।

धर्म की आदि करने वाले, तीर्थकर—(साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप) चतुर्विध संघ-तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत् सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त करने की ओर अग्रसर श्रमण भगवान् महावीर को मेरा नमस्कार हो।

तत्रस्थ अर्थात् जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में स्थित आमलकप्पा नगरी के आम्रशालवन चैत्य में विराजमान भगवान् को अत्रस्थ—यहां रहा हुआ मैं वंदना करता हूं। वहां पर रहे हुए वे भगवान् यहां रहे हुए मुझे देखते हैं। इस प्रकार स्तुति करके वन्दन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके फिर पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

### सूर्याभदेव की आभियोगिक देवों को आज्ञा

१०— तए णं तस्स सूरियाभस्स इमे एतारूवे अज्झत्थिते चित्तिते पत्थिते मणोगते संकप्पे समुपज्जित्था ।

१०— तत्पश्चात् उस सूर्याभ देव के मन में इस प्रकार का यह आध्यात्मिक अर्थात् आन्तरिक, चिन्तित, प्रार्थित—प्राप्त करने योग्य, इष्ट और मनोगत—मन में रहा हुआ (मानसिक) संकल्प उत्पन्न हुआ।

११— सेयं खलु मे समणे भगवं महावीरे जम्बुद्वीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पाए णयरीए बहिया अम्बसालवणे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति, तं महाफलं खलु तहारूवाणं भगवन्ताणं णाम-गोयस्स वि सवणयाए किमङ्ग पुण अभिगमण-वन्दण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्सवि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमङ्ग पुण विउलस्स अट्टस्स गहणयाए ? तं गच्छामि णं समणं भगवं

महावीरं वन्दामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मङ्गलं देवयं चेतियं पञ्जुवासामि, एयं मे पेच्चा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, एवं संपेहिता आभिओगे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

११— जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में स्थित आमलकप्पा नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य में यथाप्रतिरूप— साधु के योग्य—अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर विराजमान हैं। मेरे लिए श्रेय रूप हैं। जब तथारूप भगवन्तों के मात्र नाम और गोत्र के श्रवण करने का ही महाफल होता है तो फिर उनके समक्ष जाने का, उनको वंदन करने का, नमस्कार करने का, उनसे प्रश्न पूछने का और उनकी उपासना करने का प्रसंग मिले तो उसके विषय में कहना ही क्या है ?

आर्य पुरुष के एक भी धार्मिक सुवचन सुनने का ही जब महाफल प्राप्त होता है तब उनके पास से विपुल अर्थ-उपदेश ग्रहण करने के महान् फल की तो बात ही क्या है !

इसलिए मैं जाऊँ और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन करूँ, नमस्कार करूँ, उनका सत्कार-सम्मान करूँ और कल्याणकारी होने से कल्याण रूप, सब अनिष्टों का उपशमन करने वाले होने से मंगलरूप, त्रैलोक्याधिपति होने से देवरूप और सुप्रशस्त ज्ञान—केवलज्ञान वाले होने से चैत्य स्वरूप उन भगवान् की पर्युपासना करूँ।

ये (श्रमण भगवान् महावीर की पर्युपासना) मेरे लिए अनुगामी रूप से परलोक में हितकर, सुखकर, क्षेमकर—शांतिकर, निश्रेयस्कर—कल्याणकर—मोक्ष प्राप्त कराने वाली होगी, ऐसा उसने (सूर्याभदेव ने) विचार किया। विचार करके अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा।

**विवेचन**— टीकाकार खम-क्षम का अर्थ संगति बताते हैं—क्षमाय संगतत्वाय (रायपसेणइय पृ. १०२ आगमोदय समिति)। क्रोध की उपशांति को क्षमा कहते हैं और क्रोध की उपशांति सुख-शांति—कल्याण करने वाली होने से यहां खमाए का क्षेमकर, शान्तिकर यह अर्थ लिया है।

**आभियोगिक देव**— जैसे हमारे यहां घरेलू काम करने के लिए वेतनभोगी भृत्य—नौकर होते हैं, उसी प्रकार की स्थिति देवलोक में आभियोगिक देवों की है। वे अपने स्वामी देव की आज्ञा का पालन करने के लिए नियुक्त रहते हैं। अर्थात् अपने स्वामी देव की आज्ञा का पालन करने वाले भृत्य—सेवक स्थानीय देवों को आभियोगिक देव कहा जाता है।

१२— एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे आमल-कप्पाए नगरीए बहिया अंबसालवणे चेइए अहापडिरूवं उगहं उगिगिहत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तं गच्छह णं तुम्हे देवाणुप्पिया ! जंबुद्वीवं दीवं भारहं वासं आमलकप्पं णयरि अंबसाल-वणं चेइयं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेह, करेत्ता वंदह णमंसह, वंदित्ता णमंसित्ता साइं साइं नामगोयाइं साहेह, साहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स सव्वओ समंता जोयणपरिमंडलं जं किंचि तणं वा पत्तं वा कट्टुं वा सक्करं वा असुइं वा अचोक्खं वा पूइअं दुब्भिगन्धं तं सव्वं आहुणिय आहुणिय एगंते एडेह, एडेत्ता—णच्चोदगं णाइमट्टियं

पविरलपप्फुसियं रयरेणुविणासणं दिव्वं सुरभिगंधोदयवासं वासह, वासिता णिहयरयं णट्टरयं भट्टरयं उवसंतरयं पसंतरयं करेह, करित्ता कुसुमस्स जाणुस्सेहपमाणमित्तं ओहिं वासं वासह, वासित्ता जलयथलयभासुरप्पभूयस्स बिंट्टाइस्स दसद्धवण्णस्स कालागुरु-पवरकुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघंत-गंधुद्धयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूतं दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्गं करेह, कारवेह, करित्ता य कारवेत्ता य खिप्पामेव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

१२— हे देवानुप्रियो! बात यह है कि यथाप्रतिरूप अवग्रह को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरतक्षेत्रवर्ती आमलकप्पा नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य में विराजमान हैं ।

अतएव हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरतक्षेत्र में स्थित आमलकप्पा नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य में विराजमान श्रमण भगवान् महावीर की दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा करो । प्रदक्षिणा करके वन्दन, नमस्कार करो । वन्दन, नमस्कार करके तुम अपने-अपने नाम और गोत्र उन्हें कह सुनाओ । तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर के विराजने के आसपास चारों ओर एक योजन प्रमाण गोलाकार भूमि में घास, पत्ते, काष्ठ, कंकड़-पत्थर, अपवित्र, मलिन, सड़ी-गली दुर्गन्धित वस्तुओं को अच्छी तरह से साफ कर दूर एकान्त स्थान में ले जाकर फैंक दो । इसके अनन्तर उस भूमि को पूरी तरह से साफ स्वच्छ करके इस प्रकार से दिव्य सुरभि-सुगन्धित गंधोदक की वर्षा करो कि जिसमें जल अधिक न बरसे, कीचड़ न हो । रिमझिम-रिमझिम विरल रूप में नन्हीं-नन्हीं बूंदें बरसें और धूल मिट्टी नष्ट हो जाये । इस प्रकार की वर्षा करके उस स्थान को निहितरज, नष्टरज, भ्रष्टरज, उपशांतरज, प्रशांतरज वाला बना दो ।

जलवर्षा करने के अनन्तर उस स्थान पर सर्वत्र एक हाथ उत्सेध—ऊंचाई प्रमाण भास्वर चमकीले जलज और स्थलज पंचरंगे—रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पों की प्रचुर परिमाण में इस प्रकार से बरसा करो कि उनके वृन्त (डंडियां) नीचे की ओर और पंखुड़ियां चित्त—ऊपर की ओर रहें ।

पुष्पवर्षा करने के बाद उस स्थान पर अपनी सुगंध से मन को आकृष्ट करने वाले काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क तुरुक्क (लोभान) और धूप को जलाओ कि जिसकी सुगंध से सारा वातावरण मघमघा जाये—महक जाये, श्रेष्ठ सुगंध-समूह के कारण वह स्थान गंधवट्टिका—गंध की गोली के समान बन जाये, दिव्य सुरवरों—उत्तम देवों के अभिगमन योग्य हो जाये, ऐसा तुम स्वयं करो और दूसरों से करवाओ । यह करके और करवा कर शीघ्र मेरी आज्ञा वापस मुझे लौटाओ अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो ।

**विवेचन**— प्राचीन काल में भृत्यवर्ग का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था, यह बात जैन शास्त्रों के वर्णन से स्पष्ट है । उन्हें कौटुम्बिक पुरुष—परिवार का सदस्य समझा जाता था और सम्राट् से लेकर सामान्य जन तक उन्हें 'देवानुप्रिय' जैसे शिष्टजनोचित शब्दों से संबोधित करते थे । ऐसे शब्दप्रयोगों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय अपने स्तर से भी कम स्तर वाले व्यक्तियों के प्रति शिष्ट सभ्य, सुसंस्कृतजनोचित वचन व्यवहार की परंपरा थी ।

**आभियोगिक देवों द्वारा आज्ञापालन**

१३— तए णं ते आभियोगिका देवा सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्टुट्टु जाव

(चित्तमाणंदिया, पीडमणा, परमसोमणस्सिया, हरिसवसविसप्पमाण) हियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अञ्जलिं कट्टु 'एवं देवो ! तहत्ति' आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, 'एवं देवो तहत्ति' आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमंति, उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दण्डं निस्सरंति, तं जहा—रयणाणं वयराणं वेरुलियाणं लोहियक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलगाणं सोगंधियाणं जोईरसाणं अंजणाणं अंजणपुलगाणं रययाणं जायरूवाणं अङ्काणं फलिहाणं रिद्धाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडंति, परिसाडित्ता अहासुहमे पुग्गले परियायंति, परियाइत्ता दोच्चं पि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जवणाए सिग्घाए उदधूयाए दिव्वाए देवगईए तिरियं असंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्जेणं वीईवयमाणे जेणेव जंबुद्दीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे, जेणेव आमलकप्पा णयरी, जेणेव अंबसालवणे चेतिए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करंति, वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासि—'अम्हे णं भंते ! सूरियाभस्स देवस्स आभियोगा देवा देवाणुप्पियाणं वंदामो णमंसामो सक्कारेमो सम्माणेओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो ।'

१३— तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुन कर हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए, यावत् (आनंदित चित्त वाले हुए, उनके मन में प्रीति उत्पन्न हुई, परम प्रसन्न हुए और हर्षातिरेक से उनका) हृदय विकसित हो गया। उन्होंने दोनों हाथों को जोड़ कर मुकलित दस नखों के द्वारा किये गये सिरसावर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'हे देव-स्वामिन्! आपकी आज्ञा प्रमाण' कहकर विनयपूर्वक आज्ञा स्वीकार की है। 'हे देव! ऐसा ही करेंगे' इस प्रकार से सविनय आज्ञा स्वीकार करके उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में गये। ईशान कोण में जाकर वैक्रिय समुद्घात किया। वैक्रिय समुद्घात करके संख्यात योजन का रत्नमय दंड बनाया। रत्नों के नाम इस प्रकार हैं— (१) कर्केतन रत्न, (२) वज्र-रत्न, (३) वैडूर्यरत्न, (४) लोहिताक्ष रत्न, (५) मसारगल्ल रत्न, (६) हंसगर्भ रत्न, (७) पुलक रत्न, (८) सौगन्धिक रत्न, (९) ज्योति रत्न, (१०) अंजनरत्न, (११) अंजनपुलक रत्न, (१२) रजत रत्न, (१३) जातरूप रत्न, (१४) अंक रत्न, (१५) स्फटिक रत्न, (१६) रिष्ट रत्न। इन रत्नों के यथा बादर (असार-अयोग्य) पुद्गलों को अलग किया और फिर यथासूक्ष्म (सारभूत) पुद्गलों को ग्रहण किया, ग्रहण करके पुनः दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात करके उत्तर वैक्रिय रूपों की विकुर्वणा की।

उत्तर वैक्रिय रूपों की विकुर्वणा करके अर्थात् अपना-अपना वैक्रियलब्धिजन्य उत्तर वैक्रिय शरीर बनाकर वे उत्कृष्ट त्वरा वाली, चपल, अत्यन्त तीव्र होने के कारण चंड, जवन-वेगशील, आंधी जैसी तेज दिव्य गति से तिरछे-तिरछे स्थित असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करते हुए जहां जम्बूद्वीपवर्ती भारतवर्ष की आमलकप्पा नगरी थी, आम्रशालवन चैत्य था और उसमें भी जहां श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहां आये।

वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण—दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा की, उनको वंदन-नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

हे भदन्त ! हम सूर्याभदेव के आभियोगिक देव आप देवानुप्रिय को वंदन करते हैं, नमस्कार करते हैं, आप का सत्कार-सम्मान करते हैं एवं कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप आप देवानुप्रिय की पर्युपासना करते हैं।

**विवेचन**— मूल शरीर को न छोड़कर अर्थात् मूल शरीर में रहते हुए जीवप्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं। वेदना आदि सात कारणों से जीव-प्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने के कारण समुद्घात के सात भेद हैं। उनमें से यहां वैक्रिय समुद्घात का उल्लेख है। यह वैक्रियशरीरनामकर्म के आश्रित है। वैक्रियलब्धि वाला जीव विक्रिया करते समय अपने आत्मप्रदेशों को त्रिष्कंभ और मोटाई में शरीर परिमाण और ऊंचाई में संख्यात योजन प्रमाण दंडाकार रूप में शरीर से बाहर निकलता है।

वैक्रियलब्धि से पृथक् विक्रिया भी होती है और अपृथक् भी। आभियोगिक देवों ने पहले पृथक् विक्रिया द्वारा दंड और उसके पश्चात् दूसरी बार अपने-अपने उत्तर रूप की विकुर्वणा की। इसलिए यहां दो बार वैक्रिय समुद्घात करने का उल्लेख किया है।

गति की तीव्रता बताने के लिए यहां उक्किट्टाए आदि समान भाव वाले अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार की वाक्यपद्धति प्राचीन वैदिक व बौद्ध ग्रन्थों में भी देखने को मिलती है। समानार्थक विभिन्न शब्दों का प्रयोग विवक्षित भाव पर विशेष भार डालने के लिए किया जाता है। आज भी इस पद्धति के प्रयोग देखने में आते हैं।

१४— 'देवा' इ समणे भगवं महावीरे ते देवे एवं वदासी—पोराणमेयं देवा ! जीयमेयं देवा ! किच्चमेयं देवा ! करणिज्जमेयं देवा ! आचिन्नमेयं देवा ! अब्भणुण्णायमेयं देवा ! जं णं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा अरहंते भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता तओ साइं साइं णाम-गोयाइं साहिति, तं पोराणमेयं देवा ! जाव अब्भणुण्णायमेयं देवा !

१४— 'हे देवो !' इस प्रकार से सूर्याभदेव के आभियोगिक देवों को सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने उन देवों से कहा—हे देवो ! यह पुरातन है अर्थात् प्राचीनकाल से देवों में परम्परा से चला आ रहा है। हे देवो ! यह देवों का जीतकल्प है अर्थात् देवों की आचारपरम्परा है। हे देवो ! यह देवों के लिए कृत्य—करने योग्य कार्य है। हे देवो ! यह करणीय है अर्थात् देवों को करना ही चाहिए। हे देवो ! यह आचीर्ण है अर्थात् देवों द्वारा पहले भी इसी प्रकार से आचरण किया जाता रहा है। हे देवो ! यह अनुज्ञात है अर्थात् पूर्व के सब देवेन्द्रों ने संगत माना है कि भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अरिहंत भगवन्तों को वन्दन-नमस्कार करते हैं। और वन्दन-नमस्कार करके अपने-अपने नाम-गोत्र कहते हैं, यह पुरातन है यावत् हे देवो ! यह अभ्यनुज्ञात है।

### संवर्तक वायु की विकुर्वणा

१५— तए णं ते आभिओगिया देवा समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा हइ जाव<sup>१</sup> हियया समणं भगवं महावीरं वंदंति णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निस्सरंति । तं जहा—रययाणं जाव<sup>२</sup> रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडंति, अहाबायरे

पोग्गले परिसाडित्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णंति, समोहणित्ता संवट्टयवाए विउव्वंति । से जहा नामए भइयदारए सिया तरुणे बलवं जुगवं जुवाणे अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपायपिटुंतरोरुपरिणए, घणनिचियवट्टवलियखंधे, चम्मेट्टुगदुघणमुट्टिसमाहयगत्ते, उरस्स बलसमन्नागए, तलजमलजुयलबाहू लङ्घण-पवण-जवण-पमहणसमत्थे छेए दक्खे पट्टे कुसले मेधावी णिउणसिप्पोवगए एगं महं सलागाहत्थगं वा दंडसंपुच्छणिं वा वेणुसलागिगं वा गहाय रायङ्गणं वा रायंतेपुरं वा देवकुलं वा सभं वा पवं वा आरामं वा उज्जाणं वा अतुरियं अचवलं असंभंतं निरंतरं सुनिउणं सव्वतो समंता संपमज्जेज्जा, एवामेव तेऽवि सूरियाभस्स देवस्स आभि-ओगिया देवा संवट्टयवाए विउव्वंति, विउव्वित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स सव्वतो समंता जोयणपरिमंडलं जं किंचि तणं वा पत्तं वा तहेव सव्वं आहुणिय आहुणिय एगंते एडेंति, एडित्ता खिप्पामेव उवसमंति ।

१५— तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर उन आभियोगिक देवों ने हर्षित् यावत् विकसितहृदय होकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वे उत्तर-पूर्व दिग्भाग में गये। वहां जाकर उन्होंने वैक्रिय समुद्घात किया और वैक्रिय समुद्घात करके संख्यात योजन का दंड बनाया जो कर्केतन यावत् रिष्टरत्नमय था और और उन रत्नों के यथाबादर (असारभूत) पुद्गलों को अलग किया। यथाबादर पुद्गलों को हटाकर दुबारा वैक्रिय समुद्घात करके, जैसे—

कोई तरुण, बलवान्, युगवान्-कालकृत उपद्रवों से रहित, युवा-युवावस्था वाला, जवान, रोग रहित—नीरोग, स्थिर पंजे वाला—जिसके हाथ का अग्रभाग कांपता न हो, पूर्णरूप से दृढ पुष्ट हाथ पैर पृष्ठान्तर—पीठ एवं पसलियों और जंघाओं वाला, अतिशय निश्चित परिपुष्ट मांसल गोल कंधोंवाला, चर्मेष्टक (चमड़े से वेष्टित पत्थर से बना अस्त्र विशेष), मुद्गर और मुक्कों की मार से सघन, पुष्ट सुगठित शरीर वाला, आत्मशक्ति सम्पन्न, युगपत् उत्पन्न तालवृक्षयुगल के समान सीधी लम्बी और पुष्ट भुजाओं वाला, लांघने-कूदने-वेगपूर्वक गमन एवं मर्दन करने में समर्थ, कलाविज्ञ, दक्ष, पटु, कुशल, मेधावी एवं कार्यनिपुण भृत्यदारक सीकों से बनी अथवा मूठ वाली अथवा बांस की सीकों से बनी बुहारी को लेकर राजप्रांगण, अन्तःपुर, देवकुल, सभा, प्याऊ, आराम अथवा उद्यान को बिना किसी घबराहट चपलता सम्भ्रम और आकुलता के निपुणतापूर्वक चारों तरफ से प्रमार्जित करता है—बुहारता है, वैसे ही सूर्याभदेव के उन आभियोगिक देवों ने भी संवर्तक वायु की विकुर्वणा की। विकुर्वणा करके श्रमण भगवान् महावीर के आस-पास चारों ओर एक योजन—चार कोस के इर्दगिर्द भूभाग में जो कुछ भी घास पत्ते आदि थे उन सभी को चुन-चुनकर एकान्त स्थान में ले जाकर फैंक दिया और शीघ्र ही अपने कार्य से निवृत्त हुए।

### अभ्र-बादलों की विकुर्वणा

१६— दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णंति, समोहणित्ता अब्भवह्लए विउव्वंति । से जहाणामए भइगदारगे सिया तरुणे जाव<sup>१</sup> सिप्पोवगए एगं महं दगवारगं वा, दगकुम्भगं वा, दगथालगं वा, दगकलसगं वा, गहाय आरामं वा जाव<sup>२</sup> पवं वा अतुरियं जाव सव्वतो

समंता आवरिसेज्जा, एवामेव तेऽवि सूरियाभस्स देवस्स आभियोगिया देवा अब्भवह्लए विउव्वंति, विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणायंति, पतणतणाइत्ता खिप्पामेव विज्जुयायंति, विज्जुयाइत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स सव्वओ समंता जोयणपरिमंडलं णच्चोदगं णात्तिमट्टियं तं पविरलपप्फुसियं रयरेणुविणासणं दिव्वं सुरभिगंधोदगं वासं वासंति, वासेत्ता णिहयरयं, णट्टुरयं, भट्टुरयं, उवसंतरयं, पसंतरयं, करेत्ति, करित्ता खिप्पामेव उवसामंति ।

१६— इसके पश्चात् उन आभियोगिक देवों ने दुबारा वैक्रिय समुद्घात किया। वैक्रिय समुद्घात करके जैसे कोई तरुण यावत् कार्यकुशल भृत्यदारक—सींचने वाला नौकर जल से भरे एक बड़े घड़े, वारक ( मिट्टी से बने पात्र विशेष—चाड़े) अथवा जलकुंभ ( मिट्टी के घड़े) अथवा जल-स्थालक (कांसे के घड़े) अथवा जल-कलश को लेकर आराम-फुलवारी यावत् परव (प्याऊ) को बिना किसी उतावली के यावत् सब तरफ से सींचता है, इसी प्रकार से सूर्याभदेव के उन आभियोगिक देवों ने आकाश में घुमड़-घुमड़कर गरजने वाले और बिजलियों की चमचमाहट से युक्त मेघों की विक्रिया की और विक्रिया करके श्रमण भगवान् महावीर के विराजने के स्थान के आस-पास चारों ओर एक योजन प्रमाण गोलाकार भूमि में इस प्रकार से सुगन्धित गंधोदक बरसाया कि जिससे न भूमि जलबहुल हुई न कीचड़ हुआ किन्तु रिमझिम-रिमझिम विरल रूप से बूदाबांदी होने से उड़ते हुए रजकण दब गए। इस प्रकार की मेघ वर्षा करके उस स्थान को निहितरज, नष्टरज, भ्रष्टरज, उपशांतरज, प्रशांतरज वाला बना दिया। ऐसा करके वे अपने कार्य से विरत हुए।

विवेचन— देवों द्वारा की गई उक्त मेघबादलों की विकुर्वणा से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में जल वर्षा के लिए कृत्रिम मेघों की रचना होती होगी। आज के वैज्ञानिकों द्वारा भी इस प्रकार के प्रयोग किये जा रहे हैं और उनमें कुछ सफलता भी मिली है।

### पुष्प-मेघों की रचना

१७— तच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णांति पुप्फवह्लए विउव्वंति, से जहाणामए मालागारदारए सिया तरुणे जाव<sup>१</sup> सिप्पोवगए एगं महं पुप्फछज्जियं वा पुप्फपडलगं वा पुप्फ-चंगेरियं वा गहाय रायङ्गणं वा जाव<sup>२</sup> सव्वतो समंता कयग्गहगहियकरयलपब्भट्टुविप्पमुक्केणं दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलितं करेज्जा, एवामेव ते सूरियाभस्स देवस्स आभिओगिया देवा पुप्फवह्लए विउव्वंति खिप्पामेव जाव<sup>३</sup> जोयणपरिमंडलं जलयथलयभासुरप्प-भूयस्स बिंटट्टाइस्स दसद्धवन्नकुसुमस्स जाणुस्सेहपमाणमेत्तिं ओहिं वासंति वासित्ता कालागुरुपवर-कुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूतं दिव्वं सुरवराभिगमण-जोगं करेत्ति य कारवेत्ति य, करेत्ता य कारवेत्ता य खिप्पामेव उवसामंति ।

१७— तदनन्तर उन आभियोगिक देवों ने तीसरी बार वैक्रिय समुद्घात करके जैसे कोई तरुण यावत् कार्यकुशल मालाकारपुत्र एक बड़ी पुष्पछादिका (फूलों से भरी टोकरी) पुष्पपटलक (फूलों की पोटली) अथवा

१-२. देखें सूत्र संख्या १५

देखें सूत्र संख्या १६

पुष्पचंगेरिका (फूलों से भरी डलिया) से कचग्रहवत् (कामुकता से हाथों में ली गई कामिनी की केश-राशि के तुल्य) फूलों को हाथ में लेकर छोड़े गए पंचरंगे पुष्पपुंजों को बिखेर कर राज-प्रांगण यावत् परव (प्याऊ) को सब तरफ से समलंकृत कर देता है, उसी प्रकार से पुष्पवर्षक बादलों की विकुर्वणा की। वे अभ्र-बादलों की तरह गरजने लगे, यावत् योजन प्रमाण गोलाकार भूभाग में दीप्तिमान जलज और स्थलज पंचरंगे पुष्पों को प्रभूत मात्रा में इस तरह बरसाया कि सर्वत्र उनकी ऊंचाई एक हाथ प्रमाण हो गई एवं डंडियां नीचे और पंखुडियां ऊपर रहीं।

पुष्पवर्षा करने के पश्चात् मनमोहक सुगन्ध वाले काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क, तुरुष्क-लोभान और धूप को जलाया। उनकी मनमोहक सुगन्ध से सारा प्रदेश महकने लगा, श्रेष्ठ सुगन्ध के कारण सुगन्ध की गुटिका जैसा बन गया। दिव्य एवं श्रेष्ठ देवों के अभिगमन योग्य हो गया। इस प्रकार से स्वयं करके और दूसरों से करवा करके उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण किया।

### आभियोगिक देवों का प्रत्यावर्तन

१८— जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव<sup>३</sup> वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियातो अंबसालवणातो चेइयातो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव<sup>३</sup> वीइवयमाणा वीइवयमाणा जेणेव सोहम्मे कप्पे जेणेव सूरियाभे विमाणे जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थाए अञ्जलिं कट्ठु जएणं विजएणं वद्धावेत्ति वद्धावेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

१८— इसके पश्चात् वे आभियोगिक देव श्रमण भगवान् महावीर के पास आये। वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार यावत् वंदन नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर के पास से, आम्रशालवन चैत्य से निकले, निकलकर उत्कृष्ट गति से यावत् चलते-चलते जहां सौधर्म स्वर्ग था, जहां सूर्याभ विमान था, जहां सुधर्मा सभा थी और उसमें भी जहां सूर्याभदेव था वहां आये और दोनों हाथ जोड़ आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय विजय घोष से सूर्याभदेव का अभिनन्दन करके आज्ञा को वापस लौटाया अर्थात् आज्ञानुसार कार्य पूरा करने की सूचना दी।

### सूर्याभदेव की उद्घोषणा एवं आदेश

१९— तए णं सुरियाभे देवे तेसिं आभियोगियाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोचा निसम्म हट्टुट्ठु जाव<sup>३</sup> हियए पायत्ताणियाहिवइं देवं सद्दावेत्ति, सद्दावेता एवं वदासी—

खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! सूरियाभे विमाणे सभाए सुहम्माए मेघोघरसियगंभीर-महुरसइं जोयणपरिमंडलं सूसरं घटं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयाहि—आणवेत्ति णं भो ! सूरियाभे देवे, गच्छति णं भो ! सूरियाभे देवे जंबु-द्वीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पाए णयरीए अंबसालवणे चेतिते समणं भगवं महावीरं अभिवंदए, तुब्भेऽवि णं भो ! देवाणुप्पिया ! सव्विड्डीए जाव [ सव्वञ्जुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वा-

दरेणं सव्वविभूर्इए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्व-पुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सव्व-तुडिय-सह सण्णिणाएणं महया इड्डीए, महया जुईय, महया बलेणं महया समुदएणं महया वर-तुडिय-जमग-समग-प्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुअंग-दुंदुहि-णिग्घोस ] नाइतरवेण णियगपरिवालसद्धिं संपरिवुडा सातिं सातिं जाणविमाणाइं दुरूढा समाणा अकाल-परिहीणं चेव सूरियाभस्स देवस्स अंतिए पाउब्भवह ।

१९— आभियोगिक देवों से इस अर्थ को सुनने के पश्चात् सूर्याभदेव ने हर्षित, सन्तुष्ट यावत् हर्षातिरेक से प्रफुल्ल-हृदय हो पदाति-अनीकाधिपति (स्थलसेनापति) को बुलाया और बुलाकर उससे कहा—

हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही सूर्याभ विमान की सुधर्मा सभा में स्थित मेघसमूह जैसी गम्भीर मधुर शब्द करने वाली एक योजन प्रमाण गोलाकार सुस्वर घंटा को तीन बार बजा-बजाकर उच्चातिउच्च स्वर में घोषणा-उद्घोषणा करते हुए यह कहो कि—

हे सूर्याभ विमान में रहने वाले देवो और देवियो! सूर्याभविमानाधिपति के हितकर और सुखप्रद वचनों को सुनो—सूर्याभदेव आज्ञा देता है कि देवो! जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में स्थित आमलकप्पा नगरी के आम्रशालवन चैत्य में विराजमान श्रमण भगवान् महावीर की वंदना करने के लिए सूर्याभदेव जा रहा है। अतएव हे देवानुप्रियो! आप लोग समस्त ऋद्धि यावत् (आभूषण) आदि की कांति, बल (सेना) समुदय-अभ्युदय दिखावे अथवा अपने-अपने आभियोगिक देवों के समुदाय, आदर-सम्मान, विभूति, विभूषा एवं भक्तिजन्य उत्सुकतापूर्वक सर्व प्रकार के पुष्पों, वेश-भूषाओं सुगन्धित पदार्थों, एक साथ बजाये जा रहे समस्त दिव्य वाद्यों—शंख प्रणव (ढोलक), पटह (नगाड़ा), भेरी, झालर, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज (तबला), मृदंग एवं दुन्दुभि आदि निर्घोष के साथ अपने-अपने परिवार सहित अपने-अपने यान-विमानों में बैठकर बिना विलंब के—अविलंब, तत्काल सूर्याभ देव के समक्ष उपस्थित हो जाओ।

२०— तए णं से पायत्ताणियाहिवती देवे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे हडुतुट्ट जाव<sup>१</sup> हियए एवं देवो ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेति, पडिसुणित्ता जेणेव सूरियाभे विमाणे जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव मेघोघरसियगम्भीरमहुरसद्दा जोयणपरिमंडला सुस्सरा घंटा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता तं मेघोघरसितगंभीरमहुरसद्दं जोयणपरिमंडलं सुस्सरं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेति ।

तए णं तीसे मेघोघरसितगंभीरमहुरसद्दाए जोयणपरिमंडलाए सुस्सराए घंटाए तिक्खुत्तो उल्लालियाए समाणीए से सूरियाभे विमाणे पासायविमाणणिक्खुडावडियसहघंटापडिसुया-सयसहस्ससंकुले जाए याऽवि होत्था ।

२०— तदनन्तर सूर्याभदेव द्वारा इस प्रकार से आज्ञापित हुआ वह पदात्यनीकाधिपति देव सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुनकर हृष्ट-पुष्ट यावत् प्रफुल्ल-हृदय हुआ और 'हे देव ! ऐसा ही होगा' कहकर विनयपूर्वक आज्ञा-वचनों को स्वीकार करके सूर्याभ विमान में जहां सुधर्मा सभा थी और उसमें भी जहां मेघमालावत् गम्भीर मधुर ध्वनि करने वाली योजन प्रमाण गोल सुस्वर घंटा थी, वहां आकर मेघमाला जैसी गम्भीर और मधुरध्वनि करने वाली उस

एक योजन प्रमाण गोल सुस्वर घंटा को तीन बार बजाया।

तब उस मेघमालासदृश गम्भीर और मधुर ध्वनि करने वाली योजन प्रमाण गोल सुस्वर घंटा के तीन बार बजाये जाने पर उसकी ध्वनि से सूर्याभ विमान के प्रासादविमान आदि से लेकर कोने-कोने तक के एकान्तशांत स्थान लाखों प्रतिध्वनियों से गूँज उठे।

**विवेचन**— अधिक से अधिक बारह योजन की दूरी से आया हुआ शब्द ही श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। मगर सूर्याभ विमान तो एक लाख योजन विस्तार वाला है। ऐसी स्थिति में घण्टा का शब्द सर्वत्र कैसे सुनाई दिया ? इस प्रश्न का समाधान मूलपाठ के अनुसार ही यह है कि घंटा के ताड़न करने पर उत्पन्न हुए शब्द-पुद्गलों के इधर-उधर टकराने से तथा दैवी प्रभाव से, लाखों प्रतिध्वनियां उत्पन्न हो गईं। उनसे समग्र सूर्याभ विमान व्याप्त हो गया और विमानवासी सब देवों-देवियों ने शब्द श्रवण कर लिया।

२१— तए णं तेसिं सूरियाभविमाणवासिणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य दवीण य एगंतरइपसत्तनिच्चप्पमत्तविसयसुहमुच्छियाणं सूसरघंठारवविलबोलतुरियचवलपडिबोहणे कए समाणे घोसणकोउहल-दिन्नकन्नएगग्गचित्त-उवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणीयाहिवई देवे तंसि घंठारवंसि णिसंतपसंतंसि महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वदासी—

हंद ! सुणांतु भवंतो सूरियाभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य सूरियाभविमाणवइणो वयणं हियसुहत्थं—

आणवेइ णं भो ! सूरियाभे देवे, गच्छइ णं भो ! सूरियाभे देवे जंबुद्वीवं दीवं भारहं वासं आमलकप्पं नगरिं अंबसालवणं चेइयं समणं भगवं महावीरं अभिवंदए; तं तुब्भेऽवि णं देवाणुप्पिया ! सव्विड्डीए अकालपरिहीणा चेव सूरियाभस्स देवस्स अंतियं पाउब्भवह ।

२१— तब उस सुस्वर घंटा की गम्भीर प्रतिध्वनि से एकान्त रूप से अर्थात् सदा सर्वदा रति-क्रिया (काम-भोगों) में आसक्त, नित्य प्रमत्त एवं विषयसुख में मूर्च्छित सूर्याभविमानवासी देवों और देवियों ने घंटानाद से शीघ्रातिशीघ्र प्रतिबोधित-सावधान-जाग्रत होकर घोषणा के विषय में उत्पन्न कौतूहल की शांति के लिए कान और मन को केन्द्रित किया तथा घंटाव के शांत-प्रशांत (बिल्कुल शांत) हो जाने पर उस पदात्यानीकाधिपति देव ने जोर-जोर से उच्च शब्दों में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा—

आप सभी सूर्याभविमानवासी वैमानिक देव और देवियां सूर्याभ विमानाधिपति की इस हितकारी सुखप्रद घोषणा को हर्षपूर्वक सुनिये—

हे देवानुप्रियो ! सूर्याभदेव ने आप सबको आज्ञा दी है कि सूर्याभदेव जम्बूद्वीप नामक द्वीप में वर्तमान भरतक्षेत्र में स्थित आमलकप्पा नगरी के आम्रशालवन चैत्य में विराजमान श्रमण भगवान् महावीर की वन्दना करने के लिए जा रहे हैं। अतएव हे देवानुप्रियो ! आप सभी समस्त ऋद्धि से युक्त होकर अविलम्ब—तत्काल सूर्याभदेव के समक्ष उपस्थित हो जायें।

**सूर्याभदेव की घोषणा की प्रतिक्रिया**

२२— तए णं ते सूरियाभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा देवीओ य पायत्ताणिया-

हिवइस्स देवस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्टुट्ठु जाव<sup>१</sup> हियया अप्पेगइया वंदणवत्तियाए, अप्पेगइया पूयणवत्तियाए, अप्पेगइया सक्कारवत्तियाए अप्पेगइया संमाणवत्तियाए अप्पेगइया कोऊहलजिणभत्तिरागेणं, अप्पेगइया सूरियाभस्स देवस्स वयणमणुयत्तेमाणा, अप्पेगइया अस्सुयाइं सुणेस्सामो, अप्पेगइया सुयाइं निस्संक्रियाइं करिस्सामो, अप्पेगइया अन्नमन्नमणुयत्तमाणा, अप्पेगइया जिणभत्तिरागेणं, अप्पेगइया 'धम्मो' त्ति, अप्पेगइया 'जीयमेयं' ति कट्ठु सव्विड्डीए जाव<sup>२</sup> अकालपरिहीणा चैव सूरियाभस्स देवस्स अंतियं पाउब्भवन्ति ।

२२— तदनन्तर पदात्यनीकाधिपति देव से इस बात (सूर्याभदेव की आज्ञा) को सुनकर सूर्याभविमानवासी सभी वैमानिक देव और देवियां हर्षित, सन्तुष्ट यावत् विकसितहृदय हो, कितने ही वन्दना करने के विचार से, कितने ही पर्युपासना करने की आकांक्षा से, कितने ही सत्कार करने की भावना से, कितने ही सम्मान करने की इच्छा से, कितने ही जिनेन्द्र भगवान् के प्रति कुतूहलजनित भक्ति-अनुराग से, कितने ही सूर्याभदेव की आज्ञा पालन करने के लिए, कितने ही अश्रुतपूर्व (जिसको पहले नहीं सुना) को सुनने की उत्सुकता से, कितने ही सुने हुए अर्थविषयक शंकाओं का समाधान करके निःशंक होने के अभिप्राय से, कितने ही एक दूसरे का अनुसरण करते हुए, कितने ही जिनभक्ति के अनुराग से, कितने ही अपना धर्म (कर्त्तव्य) मानकर और कितने ही अपना परम्परागत व्यवहार समझकर सर्व ऋद्धि के साथ यावत् बिना किसी विलम्ब के तत्काल सूर्याभदेव के समक्ष उपस्थित हो गये।

**विवेचन**— यहाँ मानवीय रुचि की विविधरूपता का चित्रण किया गया है कि कार्य के एक समान होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसमें प्रवृत्त होता है। इसीलिए लोक को विभिन्न रुचि वाला बताया गया है। जैनसिद्धान्त के अनुसार इस प्रकृति—स्वभावजन्य विविधता का कारण कर्म है—'कर्मजं लोकवैचित्र्यं तत्स्वभावानुकारणम् ।'

### सूर्याभदेव द्वारा विमाननिर्माण का आदेश

२३— तए णं सूरियाभे देवे ते सूरियाभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य अकालपरिहीणा चैव अन्तियं पाउब्भवमाणे पासति, पासित्ता हट्टुट्ठु जाव<sup>३</sup> हियए आभि-ओगियं देवं सद्दावेति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! अणेगखम्भसयसंनिविट्ठं लीलट्टियसालभंजियागं, ईहामिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किंनर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं खंभुगयवइवेइयापरिगयाभिरामं विज्जाहरजमलयुलजंतजुत्तंपिव अच्चीसहस्समालणीयं रूवगसहस्स-कलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं घण्टावलिचलिय-महुरमणहरसरं सुहं कन्तं दरिसणिज्जं णिउणउच्चियभिसिभिसिंतमणिरयणघण्टियाजालपरिक्खित्तं जोयणसयसहस्सवित्थिणं दिव्वं गमणसज्जं सिग्घगमणं णाम जाणविमाणं विउव्वाहि, विउव्वित्ता खिप्पामेव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि ।

१-२. देखें सूत्र संख्या १९

३. देखें सूत्र संख्या ८

२३— इसके पश्चात् विलम्ब किये बिना उन सभी सूर्याभविमानवासी देवों और देवियों को अपने सामने उपस्थित देखकर हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदय हो सूर्याभदेव ने अपने आभियोगिक देव को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर संनिविष्ट—बने हुए एक यान-विमान की विकुर्वणा—रचना करो। जिसमें स्थान-स्थान पर हाव-भाव-विलास लीलायुक्त अनेक पुतलियां स्थापित हों। ईहामृग, वृषभ, तुग, नर (मनुष्य), मगर, विहग (पक्षी), सर्प, किन्नर, रुरु (मृगों की एक जाति विशेष—बारहसिंगा अथवा कस्तूरीमृग), सरभ (अष्टापद), चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम चित्रित हों। जो स्तम्भों पर बनी वज्र रत्नों की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखलाई दे। समश्रेणी में स्थित विद्याधरों के युगल यंत्रचालित जैसे दिखलाई दें। हजारों किरणों से व्याप्त एवं हजारों रूपकों—चित्रों से युक्त होने से जो देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान जैसा प्रतीत हो। देखते ही दर्शकों के नयन जिसमें चिपक जायें। जिसका स्पर्श सुखप्रद और रूप शोभासम्पन्न हो। हिलने-डुलने पर जिसमें लगी हुई घंटावलि से मधुर और मनोहर शब्द-ध्वनि हो रही हो। जो वास्तुकला से युक्त होने के कारण शुभ कान्त—कमनीय और दर्शनीय हो। निपुण शिल्पियों द्वारा निर्मित, देदीप्यमान मणियों और रत्नों के घुंघरुओं से व्याप्त हो, एक लाख योजन विस्तार वाला हो। दिव्य तीव्रगति से चलने की शक्ति-सामर्थ्य सम्पन्न एवं शीघ्रगामी हो।

इस प्रकार के यान-विमान की विकुर्वणा-रचना करके हमें शीघ्र ही इसकी सूचना दो।

२४— तए णं से आभियोगिए देवे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे हट्टु जाव<sup>१</sup> हियए करयलपरिगगहियं जाव<sup>२</sup> पडिसुणेइ जाव<sup>३</sup> पडिसुणेत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं जाव<sup>४</sup> अहाबायरे पोग्गले परिसाडति परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परियाएइ परियाइत्ता दोच्चं पि वेउव्विय समुग्घाएणं समोहणित्ता अणेगखम्भसयसन्निविट्टं जाव<sup>५</sup> दिव्वं जाणविमाणं विउव्विउं पवत्ते यावि होत्था ।

२४— तदनन्तर वह आभियोगिक देव सूर्याभदेव द्वारा इस प्रकार आदेश दिए जाने पर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ यावत् प्रफुल्ल हृदय हो दोनों हाथ जोड़ यावत् आज्ञा को सुना यावत् उसे स्वीकार करके वह उत्तर-पूर्व दिशा—ईशानकोण में आया। वहां आकर वैक्रिय समुद्घात किया और समुद्घात करके संख्यात योजन ऊपर-नीचे लंबा दण्ड बनाया यावत् यथाबादर (स्थूल-असार) पुद्गलों को अलग हटाकर सारभूत सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया, ग्रहण करके दूसरी बार पुनः वैक्रिय समुद्घात करके अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर सन्निविष्ट यावत् दिव्ययान-विमान की विकुर्वणा (रचना) करने में प्रवृत्त हो गया।

आभियोगिक देवों द्वारा विमान रचना

२५— तए णं से आभियोगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स त्तिदिसिं तिसोवाण-

१. देखें सूत्र संख्या १३

२. देखें सूत्र संख्या १३

३. देखें सूत्र संख्या १३

४. देखें सूत्र संख्या १३

५. देखें सूत्र संख्या १३

पडिरुवए विउव्वति, तं जहा—पुरत्थिमेणं, दाहिणेणं, उत्तरेणं, तेसिं तिसोवाणपडिरुवगाणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—

वइरामया णिम्मा, रिट्टामया पतिट्टाणा, वेरुलियामया खंभा, सुवण्ण-रुप्पमया फलगा लोहितक्खमइयाओ सूईओ, वयरामया संधी, णाणामणिमया अवलंबणा, अवलंबणबाहाओ य, पासादीया जाव<sup>१</sup> पडिरूवा ।

२५— इसके अनन्तर (विमान रचना के लिए प्रवृत्त होने के अनन्तर) सर्वप्रथम आभियोगिक देवों ने उस दिव्ययान-विमान की तीन दिशाओं—पूर्व, दक्षिण और उत्तर में विशिष्ट रूप-शोभासम्पन्न तीन सोपानों (सीढ़ियों) वाली तीन सोपान पंक्तियों की रचना की। वे रूपशोभा सम्पन्न सोपान पंक्तियां इस प्रकार की थीं—

इनकी नेम (भूमि से ऊपर निकला प्रदेश, वेदिका) वज्ररत्नों से बनी हुई थी। रिष्ट रत्नमय इनके प्रतिष्ठान (पैर रखने को स्थान) और वैडूर्य रत्नमय स्तम्भ थे। स्वर्ण-रजत मय फलक (पाटिये) थे। लोहिताक्ष रत्नमयी इनमें सूचियां—कीलें लगी थीं। वज्ररत्नों से इनकी संधियां (सांधें) भरी हुई थीं, चढ़ने-उतरने में अवलंबन के लिए अनेक प्रकार के मणिरत्नों से बनी इनकी अवलंबनवाहा थीं तथा ये त्रिसोपान पंक्तियां मन को प्रसन्न करने वाली यावत् असाधारण सुन्दर थी।

२६— तेसिं णं तिसोवाणपडिरुवगाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तोरणं पण्णत्तं, तेसिं णं तोरणाणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—तोरणा णाणामणिमया णाणामणिमएसु थम्भेसु उवनिविट्ठसंनिविट्ठा विविहमुत्तन्तरारूवोवचिया विविहतारारूवोवचिया जाव पासाइया दरिसणिज्जा, अभिरूवा पडिरूवा ।

२६— इन दर्शनीय मनमोहक प्रत्येक त्रिसोपान-पंक्तियों के आगे तोरण बंधे हुए थे। उन तोरणों का वर्णन इस प्रकार का है—

वे तोरण मणियों से बने हुए थे। गिर न सकें, इस विचार से विविध प्रकार के मणिमय स्तंभों के ऊपर भली-भांति निश्चल रूप से बांधे गये थे। बीच के अन्तराल विविध प्रकार के मोतियों से निर्मित रूपकों से उपशोभित थे और सलमा सितारों आदि से बने हुए तारा-रूपकों—बेल कूटों से व्याप्त यावत् (मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप-मनाकर्षक और) अतीव मनोहर थे।

२७— तेसिं णं तोरणाणं उप्पिं अट्ठु मङ्गलगा पण्णत्ता, तं जहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ-णन्दियावत्त-वद्धमाणग-भद्रासन-कलस-मच्छ-दप्पणा जाव (सव्वरयणमया अच्छा, सण्हा, लण्हा, घट्टा, मट्टा, णीरया निम्मला, निप्पंका, निक्कं कडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा ) पडिरूवा ।

२७— उन तोरणों के ऊपरी भाग में स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दिकावर्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्ययुगल और दर्पण, इन आठ-आठ मांगलिकों की रचना की। जो (सर्वात्मना रत्नों से निर्मित अतीव स्वच्छ, चिकने, घर्षित, मृष्ट, नीरज, निर्मल, निष्कलंक, दीप्त प्रकाशमान चमकीले शीतल प्रभायुक्त मनाह्लादक, दर्शनीय, अभिरूप और

प्रतिरूप थे।

२८— तेसिं च णं तोरणाणं उप्पिं बहवे किण्हचामरज्झया जाव ( नीलचामरज्झया, लोहियचामरज्झया, हालिहचामरज्झया ) सुक्किल्लचामरज्झया अच्चा सण्हा रूपपट्टा वडरदण्डा जलयामलगन्धिया सुरम्मा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा विउव्वति ।

२८— उन तोरणों के ऊपर स्वच्छ, निर्मल, सलौनी, रजतमय पट्ट से शोभित वज्रनिर्मित डंडियों वाली, कमलों जैसी सुरभि गंध से सुगंधित, रमणीय, आह्लादकारी, दर्शनीय मनोहर शतीव मनोहर बहुत सी कृष्ण चामर ध्वजाओं यावत् ( नील चामर ध्वजाओं, लाल चामर ध्वजाओं, पीली चामर ध्वजाओं और ) श्वेत चामर ध्वजाओं की रचना की।

२९— तेसिं णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्तातिच्छत्ते, पडागाइपडागे, घंटाजुगले, उप्पलहत्थए, कुमुद-णलिण-सुभग-सोगंधिय-पोंडरीय-महापोंडरीय-सतपत्त-सहस्सपत्तहत्थए, सव्वरयणामए अच्चे जाव पडिरूवे विउव्वति ।

२९— उन तोरणों के शिरोभाग में निर्मल यावत् अत्यन्त शोभनीय रत्नों से बने हुए अनेक छत्रातिछत्रों ( एक छत्र के ऊपर दूसरा छत्र ) पताकातिपताकाओं घंटायुगल, उत्पल ( श्वेतकमल ) कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुंडरीक, महापुंडरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र कमलों के झुमकों को लटकाया।

३०— तए णं से आभिओगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउव्वति । से जहाणामए आलिंगपुक्खरे ति वा, मुइंगपुक्खरे इ वा, परिपुण्णे सरतले इ वा, करतले इ वा, चंदमंडले इ वा, सूरमण्डले इ वा, आयंसमंडले इ वा, उरब्भचम्मे इ वा, वसहचम्मे इ वा, बराहचम्मे इ वा, वग्घचम्मे इ वा, छगलचम्मे इ वा, दीवियचम्मे इ वा, अणेगसंकुकीलगसहस्सवितते, णाणाविहपंचवत्तेहिं मणीहिं उवसोभिते आवड-पच्चावड-सेट्ठि-पसेट्ठि-सोत्थिय-सोवत्थिय-पूसमाणव-वद्धमाणग-मच्छंडग-मगरंडग-जार-मार-फुल्लावलि-पउमपत्त-सागर-तरंग-वसंतलय-पउमलय-भत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीइएहिं सउज्जोएहिं णाणाविह-पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए तं जहा—किण्हेहिं णीलेहिं लोहिएहिं हालिहेहिं सुक्किल्लेहिं ।

३०— सोपानों आदि की रचना करने के अनन्तर उस आभियोगिक देव ने उस दिव्ययानविमान के अन्दर एकदम समतल भूमिभाग—स्थान की विक्रिया की। वह भूभाग आलिंगपुष्कर ( मुरज का ऊपरी भाग ) मृदंग पुष्कर, पूर्ण रूप से भरे हुए सरोवर के ऊपरी भाग, करतल ( हथेली ), चन्द्रमंडल, सूर्यमंडल, दर्पण मंडल अथवा शंकु जैसे बड़े-बड़े खिलों को ठोक और खींचकर चारों ओर से सम किये गये भेड़, बैल, सुअर, सिंह, व्याघ्र, बकरी और भेड़िये के चमड़े के समान अत्यन्त रमणीय एवं सम था।

वह सम भूमिभाग अनेक प्रकार के आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, पुष्यमाणव, शराबसंपुट, मत्स्यांड, मकराण्ड जार, मार आदि शुभलक्षणों और कृष्ण, नील, लाल, पीले और श्वेत इन पांच वर्णों की मणियों से उपशोभित था और उनमें कितनी ही मणियों में पुष्पलताओं, कमलपत्रों, समुद्रतरंगों, वसंतलताओं, पद्मलताओं आदि के चित्राम बने हुए थे तथा वे सभी मणियां निर्मल, चमकदार किरणों वाली उद्योत-शीतल प्रकाश वाली थीं।

## मणियों का वर्ण

३१— तत्थ णं जे ते किण्हा मणी तेसिं णं मणीणं इमे एतारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए जीमूतए इ वा, खंजणे इ वा, अंजणे इ वा, कज्जले इ वा, मसी इ वा, मसीगुलिया इ वा, गवले इ वा, गवलगुलिया इ वा, भमरे इ वा, भमरावलिया इ वा, भमरपतंग-सारे ति वा, जंबूफले ति वा, अहारिट्ठे इ वा, परपुट्टे इ वा, गए इ वा, गयकलभे इ वा, किण्हसप्पे इ वा, किण्हकेसरे इ वा, आगासथिग्गले इ वा, किण्हासोए इ वा, किण्हकणवीरे इ वा, किण्हबंधुजीवे इ वा, एयारूवे सिया ?

३१— उन मणियों में की कृष्ण वर्ण वाली मणियां क्या सचमुच में सघन मेघ घटाओं, अंजन-सुरमा, खंजन (गाड़ी के पहिये की कीच) काजल, काली स्याही, काली स्याही की गोली, भैसे के सींग की गोली, भ्रमर, भ्रमर पंक्ति, भ्रमर पंख, जामुन, कच्चे अरीठे के बीज अथवा कौए के बच्चे, कोयल, हाथी, हाथी के बच्चे, कृष्ण सर्प, कृष्ण बकुल शरद ऋतु के मेघरहित आकाश, कृष्ण अशोक वृक्ष, कृष्ण कनेर, कृष्ण बंधुजीवक (दोपहर में फूलने वाला वृक्ष-विशेष) जैसी काली थीं ?

३२— णो इणट्ठे समट्ठे, ओवम्मं समणाउसो ! ते ण किण्हा मणी इत्तो इट्ठतराए चेव कंततराए चेव, मणुण्णतराए चेव, मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ता ।

३२— हे आयुष्मन् श्रमणो ! यह अर्थ समर्थ नहीं है—ऐसा नहीं है। ये सभी तो उपमायें हैं। वे काली मणियां तो इन सभी उपमाओं से भी अधिक इष्टतर कांततर (कांति-प्रभाववाली) मनोज्ञतर और अतीव मनोहर कृष्ण वर्ण वाली थीं।

३३— तत्थ णं जे ते नीला मणी तेसिं णं मणीणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए भिंगे इ वा, भिंगपत्ते इ वा, सुए इ वा, सुयपिच्छे इ वा, चासे इ वा, चासपिच्छे इ वा, णीली इ वा, णीलीभेदे इ वा, णीलीगुलिया इ वा, सामाए इ वा, उच्चन्तगे इ वा, वणराती इ वा, हलधरवसणे इ वा, मोरग्गीवा इ वा, पारेवयग्गीवा इ वा, अयसिकुसुमे इ वा, बाणकुसुमे इ वा, अंजणकेसियाकुसुमे इ वा, नीलुप्पले इ वा, नीलासोगे इ वा, णीलकणवीरे इ वा, णीलबंधुजीवे इ वा, भवे एयारूवे सिया ?

३३— उनमें की नील वर्ण की मणियां क्या भृंगकीट, भृंग के पंख, शुक (तोता), शुकपंख, चाष पक्षी (चातक), चाष पंख, नील, नील के अंदर का भाग, नील गुटिका, सांवा (धान्य), उच्चन्तक (दांतों को नीला रंगने का चूर्ण), वनराजि, बलदेव के पहनने के वस्त्र, मोर की गर्दन, कबूतर की गर्दन, अलसी के फूल, बाणपुष्प, अंजनकेशी के फूल, नीलकमल, नीले अशोक, नीले कनेर और नीले बंधुजीवक जैसी नीली थीं ?

३४— णो इणट्ठे समट्ठे, ते णं णीला मणी एत्तो इट्ठतराए चेव जाव<sup>१</sup> वण्णेणं पण्णत्ता ।

३४— यह अर्थ समर्थ नहीं है—यह ऐसा नहीं है। वे नीली मणियां तो इन उपमेय पदार्थों से भी अधिक

इष्टतर यावत् अतीव मनोहर नील वर्ण वाली थीं।

३५— तत्थ णं जे ते लोहियगा मणी तेसिं णं मणीणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए ससरुहिरे इ वा, उरब्भरुहिरे इ वा, वराहरुहिरे इ वा, मणुस्सरुहिरे इ वा, महिसरुहिरे इ वा, बालिंदगोवे इ वा, बालदिवाकरे इ वा, संझब्भरागे इ वा, गुंजब्भरागे इ वा, जासुअणकुसुमे इ वा, किंसुयकुसुमे इ वा, पालियायकुसुमे इ वा, जाइहिं गुलए ति वा, सिलप्प-वाले ति वा, पवालअंकुरे इ वा, लोहियक्खमणी इ वा, लक्खारसगे ति वा, किमिरागकंबले ति वा, चीणपिटुरासी ति वा, रत्तुप्पले इ वा, रत्तासोगे ति वा, रत्तकणवीरे ति वा, रत्तबंधु-जीवे ति वा, भवे एयारूवे सिया ?

३५— उन मणियों में की लोहित (लाल) रंग की मणियों का रंग सचमुच में क्या शशक (खरगोश) के खून, भेड़ के रक्त, सुअर के रक्त, मनुष्य के रक्त, भैंस के रक्त, बाल इन्द्रगोप, प्रातःकालीन सूर्य, संध्या राग (संध्या के समय होने वाली लालिमा), गुंजाफल (घुंघची) के आधे भाग, जपापुष्प, किंशुक पुष्प (केसूडा के फूल), परिजातकुसुम, शुद्ध हिंगलुक (खनिजपदार्थ-विशेष), प्रबाल (मूंगा), प्रबाल के अंकुर, लोहिताक्ष मणि, लाख के रंग, कृमिराग (अत्यन्त गहरे लाल रंग) से रंगे कंबल, चीणा (धान्य-विशेष) के आटे, लाल कमल, लाल अशोक, लाल कनेर अथवा रक्त बंधुजीवक जैसा लाल था ?

३६— णो इणट्ठे समट्ठे, ते णं लोहिया मणी इत्तो इट्ठतराए चेव जाव<sup>१</sup> वण्णेणं पण्णत्ता।

३६— ये पदार्थ उनकी लालिमा का बोध कराने में समर्थ नहीं हैं। वे मणियां तो इनसे भी अधिक इष्ट यावत् अत्यन्त मनोहर रक्त (लाल) वर्ण की थीं।

३७— तत्थ णं जे ते हालिद्दा मणी तेसिं णं मणीणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते— से जहाणामए चंपए ति वा, चंपछल्ली ति वा, चंपगभेए इ वा, हलिद्दा इ वा, हलिद्दाभेदे ति वा, हलिद्दागुलिया ति वा, हरियालिया वा हरियालभेदे ति वा, हरियालगुलिया ति वा, चिउरे इ वा, चिउरंगराते ति वा, वरकणगनिघसे इ वा, वरपुरिसवसणे ति वा, अल्लकीकुसुमे ति वा, चंपाकुसुमे इ वा, कुहंडियाकुसुमे इ वा, कोरंटकमल्लदामे ति वा, तडवडाकुसुमे इ वा, घोसेडिया-कुसुमे इ वा, सुवण्णजूहियाकुसुमे इ वा, सुहिरण्णकुसुमे ति वा, बीययकुसुमे इ वा, पीयासोगे ति वा, पीयकणवीरे ति वा, पीयबंधुजीवे ति वा, भवे एयारूवे सिया ?

३७— उन मणियों में पीले रंग की मणियों का पीतरंग क्या सचमुच में स्वर्ण चंपा, स्वर्ण चंपा की छाल, स्वर्ण चंपा के अंदर का भाग, हल्दी—हल्दी के अंदर का भाग, हल्दी की गोली, हरताल (खनिज-विशेष), हरताल के अंदर का भाग, हरताल की गोली, चिकुर (गंधद्रव्य-विशेष), चिकुर के रंग से रंगे वस्त्र, शुद्ध स्वर्ण की कसौटी पर खींची गई रेखा, वासुदेव के वस्त्रों, अल्लकी (वृक्ष-विशेष) के फूल, चंपाकुसुम, कूष्मांड (कददू—कोला) के फूल, कोरंटक पुष्प की माला, तडवडा (आंवला) के फूल, घोषातिकी पुष्प, सुवर्णयूथिका—जूही के फूल, सुहिरण्य

के फूल, बीजक के फूल, पीले अशोक, पीली कनेर अथवा पीले बंधुजीवक जैसा पीला था ?

३८— णो इणट्टे समट्ठे, ते णं हालिहा मणी एत्तो इट्ठतराए चेव जाव<sup>१</sup> वण्णेणं पण्णत्ता।

३८— आयुष्मन् श्रमणो! ये पदार्थ उनकी उपमा के लिए समर्थ नहीं हैं। वे पीली मणियां तो इन से भी इष्टतर यावत् पीले वर्ण वाली थीं।

३९— तत्थं णं जे ते सुक्किल्ला मणी तेसिं णं मणीणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते— से जहानामए अंकेति वा, संखे ति वा, चंदेति वा, कुमुद-उदक-दयरय-दहि-घणक्खीर-क्खीर-पूरे ति वा, कोंचावली ति वा, हारावली ति वा, हंसावली इ वा, बलागावली ति वा, सारतिय-बलाहए ति वा, धंतधोयरुप्पट्टे इ वा, सालीपिट्टरासी ति वा, कुंदपुप्फरासी ति वा, कुमुदरासी ति वा, सुक्कच्छिवाडी ति वा, पिहुणमिंजिया ति वा, भिसे ति वा, मुणालिया ति वा, गयदंते ति वा, लवङ्गदलए ति वा, पोंडरियदलए ति वा, सेयासोगे ति वा सेयकणवीरे ति वा, सेय-बंधुजीवे ति वा, भवे एयारूवे सिया ?

३९— हे भगवन्! उन मणियों में जो श्वेत वर्ण की मणियां थीं क्या वे अंक रत्न, शंख, चन्द्रमा, कुमुद, शुद्ध जल, ओस बिन्दु, दही, दूध, दूध के फेन, क्रौंच पक्षी की पंक्ति, मोतियों के हार, हंस पंक्ति, बलाका पंक्ति, चन्द्रमा की पंक्ति (जल के मध्य में प्रतिबिम्बित चन्द्रपंक्ति), शरद ऋतु के मेघ, अग्नि में तपाकर धोये गये चांदी के पतरे, चावल के आटे, कुन्दपुष्प-समूह, कुमुद पुष्प के समूह, सूखी सिम्बा फली (सेम की फली), मयूरपिच्छ का सफेद मध्य भाग, विस-मृणाल, मृणालिका, हाथी के दांत, लोंग के फूल, पुंडरीककमल (श्वेत कमल), श्वेत अशोक, श्वेत कनेर अथवा श्वेत बंधुजीवक जैसी श्वेत वर्ण की थीं ?

४०— णो इणट्टे समट्ठे, ते णं सुक्किला मणी एत्तो इट्ठतराए चेव जाव<sup>१</sup> वन्नेणं पण्णत्ता।

४०— आयुष्मन् श्रमणो! ऐसा नहीं है। वे श्वेत मणियां तो इनसे भी अधिक इष्टतर, यावत् सरस, मनोहर आदि मनोज्ञ श्वेत वर्ण वाली थीं।

### मणियों का गन्ध-वर्णान

४१— तेसिं णं मणीणं इमेयारूवे गंधे पण्णत्ते, से जहानामए कोट्टुपुडाण वा, तगरपुडाण वा, एलापुडाण वा, चोयपुडाण वा, चंपापुडाण वा, दमणापुडाण वा, कुंकुमपुडाण वा, चंदण-पुडाण वा, उसीरपुडाण वा, मरुआपुडाण वा, जातिपुडाण वा, जूहियापुडाण वा, मल्लिया-पुडाण वा, ण्हाणमल्लियापुडाण वा, केतगिपुडाण वा, पाडलिपुडाण वा, णोमालियापुडाण वा, अगुरुपुडाण वा, लवंगपुडाण वा, वासपुडाण वा, कप्पूरपुडाण वा, अणुवायंसि वा, ओभिज्ज-माणण वा, कुट्टिज्जमाणण वा, भंजिज्जमाणण वा, उक्किरिज्जमाणण वा, विक्किरिज्ज-माणण वा, परिभुज्जमाणण वा, परिभाइज्जमाणण वा, भण्डाओ वा भंडं साहरिज्जमाणण

१. देखें सूत्र संख्या ३२

२. देखें सूत्र संख्या ३२

वा, ओराला मणुण्णा मणहरा घाणमणनिव्वुतिकरा सव्वतो समंता गंधा अभिनिस्सरंति, भवे एयारूवे सिया ?

४१— उस दिव्य यान विमान के अन्तर्वर्ती सम भूभाग में खचित मणियां क्या वैसी ही सुरभिगंध वाली थीं जैसी कोष्ठ (गन्धद्रव्य-विशेष) तगर, इलायची, चोया, चंपा, दमनक, कुंकुम, चंदन, उशीर (खश), मरुआ (सुगंधित पौधा विशेष) जाई पुष्प, जुही, मल्लिका, स्नान-मल्लिका, केतकी, पाटल, नवमल्लिका, अगर, लवंग, वास, कपूर और कपूर के पुड़ों को अनुकूल वायु में खोलने पर, कूटने पर, तोड़ने पर, उत्कीर्ण करने पर, बिखेरने पर, उपभोग करने पर, दूसरों को देने पर, एक पात्र से दूसरे पात्र में रखने पर, (उडेलने पर) उदार, आकर्षक, मनोज्ञ, मनहर घ्राण और मन को शांतिदायक गंध सभी दिशाओं में मघमघाती हुई फैलती है, महकती है ?

विवेचन— हीरा, पन्ना, माणिक आदि मणिरत्नों में प्रकाश, चमचमाहट और अमुक प्रकार का रंग आदि तो दिखता है परन्तु इनके पार्थिव होने और पृथ्वी के गंधवती होने पर भी मणियों में अमुक प्रकार की उत्कट गंध नहीं होती है। किन्तु देव-विक्रियाजन्य होने की विशेषता बतलाने के लिए मणियों की गंध का वर्णन किया गया है।

४२— णो इणट्टे समट्टे, तेणं मणी एत्तो इट्टतराए चेव, [कंततराए चेव, मणुण्णतराए चेव, मणामतराए चेव] गंधेणं पन्नत्ता ।

४२— हे आयुष्मन् श्रमणो! यह अर्थ समर्थ नहीं हैं। ये तो मात्र उपमायें हैं। वे मणियां तो इनसे भी अधिक इष्टतर यावत् मनमोहक, मनहर, मनोज्ञ-सुरभि गंध वाली थी।

मणियों का स्पर्श

४३— तेसि णं मणीणं इमेयारूवे फासे पण्णत्ते, से जहानामए आइणे ति वा, रूए ति वा बूरे इ वा णवणीए इ वा हंसगब्भतूलिया इ वा सिरीसकुसुमनिचये इ वा बालकुमुदपत्तरासी ति वा भवे एयारूवे सिया ?

४३— उन मणियों का स्पर्श क्या अजिनक (चर्म का वस्त्र अथवा मृगछाला), रुई, बूर (वनस्पति विशेष), मक्खन, हंसगर्भ नामक रुई विशेष, शिरीष पुष्पों के समूह अथवा नवजात कमलपत्रों की राशि जैसा कोमल था ?

४४— णो इणट्टे समट्टे, तेणं मणी एत्तो इट्टतराए चेव जाव<sup>१</sup> फासेणं पन्नत्ता ।

४४— आयुष्मन् श्रमणो! यह अर्थ समर्थ नहीं है। वे मणियां तो इनसे भी अधिक इष्टतर यावत् (सरस, मनोहर और मनोज्ञ कोमल) स्पर्शवाली थीं।

प्रेक्षागृह-निर्माण

४५— तए णं से आभियोगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं महं पिच्छाघरमंडवं विउव्वइ, अणेगखंभसय-संनिविट्ठं अब्भुग्गयसुकयवरवेइयातोरणवररइय-सालभंजियागं सुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठियपसत्थवेरुलियविमलखम्भं णाणामणिखचिय-उज्जलबहुसम-

सुविभक्तभूमिभागं, ईहामिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं, खंभुगयवइरवेइयापरिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्तं पिव अच्चीसहस्समालणीयं, रूवगसहस्सकलियं, भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं कंचणमणिरयणथूभियागं णाणाविहपंचवण्णघंटापडागपरिमंडियग्गसिहरं चवलं मरीइकवयं विणिम्मयुतं लाइय-उल्लोइयमहियं, गोसीस-सरसरत्तचंदण-दहरदिन्नपंचंगुलितलं, उवचिय-चंदणकलसं, चंदणघड-सुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं, आसत्तोसत्तविउलवट्टवघारियमल्लदाम-कलावं, पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं, कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवमघ-मघंतगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूतं अच्छरगणसंघसंविक्किण्णं दिव्वतुडियसहसंपणाइयं अच्छं जाव (सण्हं अभिरूवं) पडिरूवं ।

तस्स णं पिच्छाघरमण्डवस्स अंतो बहुसमरमणिज्जभूमिभागं विउव्वति जाव<sup>१</sup> मणीणं फासो ।

तस्स णं पेच्छाघरमण्डवस्स उल्लोयं विउव्वति पउमलयभत्ति-चित्तं जाव (अच्छं सण्हं लण्हं घट्टं णीरयं निम्मलं निष्पकं निक्कंकडच्छायं सप्पभं समरीयं सउज्जोयं पासादीयं दरिस-णिज्जं, अभिरूवं) पडिरूवं ।

४५— तदनन्तर आभियोगिक देवों ने उस दिव्य यान विमान के अंदर बीचों-बीच एक विशाल प्रेक्षागृह मंडप की रचना की ।

वह प्रेक्षागृह मंडप अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर संनिविष्ट (स्थित) था । अभ्युन्नत—ऊंची एवं सुरचित वेदिकाओं, तोरणों तथा सुन्दर पुतलियों से सजाया गया था । सुन्दर विशिष्ट रमणीय संस्थान—आकार-वाली प्रशस्त और विमेल वैदूर्य मणियों से निर्मित स्तम्भों से उपशोभित था । उसका भूमिभाग विविध प्रकार की उज्ज्वल मणियों से खचित, सुविभक्त एवं अत्यन्त सम था । उसमें ईहामृग (भेड़िया), वृषभ, तुरंग—घोड़ा, नर, मगर, विहग—पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु (कस्तूरी मृग), सरभ (अष्टापद), चमरी गाय, कुंजर (हाथी), वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम चित्रित थे । स्तम्भों के शिरोभाग में वज्र रत्नों से बनी हुई वेदिकाओं से मनोहर दिखता था । यंत्रचालित—जैसे विद्याधर युगलों से शोभित था । सूर्य के सदृश हजारों किरणों से सुशोभित एवं हजारों सुन्दर घंटाओं से युक्त था । देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान होने से दर्शकों के नेत्रों को आकृष्ट करने वाला, सुखप्रद स्पर्श और रूप-शोभा से सम्पन्न था । उस पर स्वर्ण, मणि एवं रत्नमय स्तूप बने हुए थे । उसके शिखर का अग्र भाग नाना प्रकार की घंटियों और पंचरंगी पताकाओं से परिमंडित—सुशोभित था और अपनी चमचमाहट एवं सभी ओर फैल रही किरणों के कारण चंचल-सा दिखता था । उसका प्रांगण गोबर से लिपा था और दीवारें सफेद मिट्टी से पुती थीं । स्थान-स्थान पर सरस गोशीर्ष रक्तचंदन के हाथे लगे हुए थे और चंदनचर्चित कलश रखे थे । प्रत्येक द्वार तोरणों और चन्दन-कलशों से शोभित थे । दीवालियों पर ऊपर से लेकर नीचे तक सुगंधित गोल मालायें लटक रही थीं । सरस सुगन्धित पंचरंगे पुष्पों के मांडने बने हुए थे । उत्तम कृष्ण अगर, कुन्दरुष्क, तुरुष्क और धूप की मोहक सुगंध से महक रहा था और उस उत्तम सुरभि गंध से गंध की वर्तिका (अगरबत्ती धूपबत्ती) प्रतीत होता था । अप्सराओं के समुदायों के गमनागमन से व्याप्त था ।

१. देखें सूत्र संख्या ३१, ३३, ३५, ३७, ३९, ४१, ४३

दिव्य वाद्यों के निनाद से गूँज रहा था। वह स्वच्छ यावत् (सलौना, अभिरूप) था।

उस प्रेक्षागृह मंडप के अंदर अतीव सम रमणीय भू-भाग की रचना की। उस भूमि-भाग में खचित मणियों के रूप-रंग, गंध आदि की समस्त वक्तव्यता पूर्ववत् समझना चाहिए।

उस सम और रमणीय प्रेक्षागृह मंडप की छत में पद्मलता आदि के चित्रामों से युक्त यावत् (स्वच्छ, सलौना, चिकना, घृष्ट, नीरज, निर्मल, निष्पंक, अप्रतिहतदीप्ति, प्रभा, किरणों वाला, उद्योत वाला, मन को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय अभिरूप) अतीव मनोहर चंदेवा बांधा।

### रंगमंच आदि की रचना

४६— तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगं महं वइरा-  
मयं अक्खाडगं विउव्वति ।

४६— उस सम रमणीय भूमिभाग के भी मध्यभाग में वज्ररत्नों से निर्मित एक विशाल अक्षपाट (अखाड़े—  
क्रीडामंच) की रचना की।

४७— तस्स णं अक्खाडयस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं महेगं मणिपेढियं विउव्वति—  
अट्ट जोयणाइं आयाम-विक्खम्भेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमयं अच्छं सण्हं जावं  
पडिरूवं ।

४७— उस क्रीडामंच के ठीक बीचोंबीच आठ योजन लंबी-चौड़ी और चार योजन मोटी पूर्णतया वज्ररत्नों से  
बनी हुई निर्मल, चिकनी यावत् प्रतिरूपा एक विशाल मणिपीठिका की विकुर्वणा की।

### सिंहासन की रचना

४८— तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं महेगं सीहासणं विउव्वइ, तस्स णं सीहासणस्स  
इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—

तवणिज्जमया चक्कला, रययामया सीहा, सोवण्णिया पाया, णाणामणिमयाइं पायसीस-  
गाइं, जंबूणयमयाइं गत्ताइं, वइरामया संधी, णाणामणिमये वेच्चे, से णं सीहासणे ईहामिय-  
उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्तं,  
ससारसारोवचियमणिरयणपायपीढे, अत्थरगमिउमसूरगणवतयकुसंतलिंबकेसर-पच्चत्थुयाभिरामे,  
आईणग-रुय-बूर-तूलफासमउए सुविरइय-रयत्ताणे, उवचियखोमदुगुल्लपट्टपडिच्छायणे रत्तंसुअ-  
संवुडे सुरम्मे पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

४८— उस मणिपीठिका के ऊपर एक महान् सिंहासन बनाया। उस सिंहासन के चक्कला (पायों के नीचे के  
गोल भाग) सोने के, सिंहाकृति वाले हत्थे रत्नों के, पाये सोने के, पादशीर्षक अनेक प्रकार की मणियों के और बीच  
के गाते जाम्बूनद (विशिष्ट स्वर्ण) के थे। उसकी संधियां (सांधें) वज्ररत्नों से भरी हुई थी और मध्य भाग की बुनाई  
का वेंत बाण (निवार) मणिमय था।

उस सिंहासन पर ईहामृग, वृषभ, तुरग—अश्व, नर, मगर, विहग—पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ (अष्टापद), चमर अथवा चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र बने हुए थे। सिंहासन के सामने स्थापित पाद-पीठ सर्वश्रेष्ठ मूल्यवान् मणियों और रत्नों का बना हुआ था। उस पादपीठ पर पैर रखने के लिए बिछा हुआ मसूरक (गोल आसन) नवतृण कुशाग्र और केसर तंतुओं जैसे अत्यन्त सुकोमल सुन्दर आस्तारक से ढका हुआ था। उसका स्पर्श आजिनक (चर्म का वस्त्र) (मृग छाला) रुई, बूर, मक्खन और आक की रुई जैसा मृदु-कोमल था। वह सुन्दर सुरचित रजस्त्राण से आच्छादित था। उस पर कसीदा काढ़े क्षौम दुकूल (रुई से बने वस्त्र) का चद्दर बिछा हुआ था और अत्यन्त रमणीय लाल वस्त्र से आच्छादित था। जिससे वह सिंहासन अत्यन्त रमणीय, मन को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप—अतीव मनोहर दिखता था।

४९— तस्स णं सीहासणस्स उवरि एत्थ णं महेगं विजयदूसं विउव्वति, संख-कुंद-दगरय-अमय-महियफेणपुंज-संनिगासं सव्वरयणामयं अच्छं सण्हं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं ।

४९— उस सिंहासन के ऊपरी भाग में शंख, कुंदपुष्प, जलकण, मथे हुए क्षीरोदधि के फेनपुंज के सदृश प्रभावाले रत्नों से बने हुए, स्वच्छ, निर्मल, स्निग्ध प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप एक विजयदूष्य (वस्त्र विशेष, छत्राकार जैसे चंदेवे) को बांधा।

५०— तस्स णं सीहासणस्स उवरिं विजयदूसस्स य बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं महं एगं वयरामयं अंकुसं विउव्वति ।

५०— उस सिंहासन के ऊपरी भाग में बंधे हुए विजयदूष्य के बीचों-बीच वज्ररत्नमय एक अंकुश (अंकुडिया) लगाया।

५१— तस्सिं च णं वयरामयंसि अंकुसंमि कुंभिकं मुत्तादामं विउव्वति ।

से णं कुंभिके मुत्तादामे अत्तेहिं चउहिं अब्धकुंभिकेहिं मुत्तादामेहिं तदद्धुच्चपमाणेहिं सव्वओ संमता संपरिक्खत्ते ।

ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा णाणामणिरयणविविह-हारद्धहारउवसोभियसमुदाया ईंसिं अण्णमण्णमसंपत्ता वाएहिं पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं मंदायं मंदायं एज्जमाणाणि एज्जमाणाणि पलंबमाणाणि पलंबमाणाणि वदमाणाणि वदमाणाणि उरालेणं मणुत्तेणं मणहरेणं कण्ण-मण-णिव्वुत्ति-करेणं सद्देणं ते पएसे सव्वओ संमता आपूरेमाणा आपूरेमाणा सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।

५१— उस वज्र रत्नमयी अंकुश में (मगध देश में प्रसिद्ध) कुंभ परिमाण जैसे एक बड़े मुक्तादाम (मोतियों के झूमर—फानूस) को लटकाया और वह कुंभपरिमाण वाला मुक्तादाम भी चारों दिशाओं में उसके परिमाण से आधे अर्थात् अर्धकुंभ परिमाण वाले और दूसरे चार मुक्तादामों से परिवेष्टित था।

वे सभी दाम (झूमर) सोने के लंबूसकों (गेंद जैसे आकार वाले आभूषणों), विविध प्रकार की मणियों, रत्नों अथवा विविध प्रकार के मणिरत्नों से बने हुए हारों, अर्ध हारों के समुदायों से शोभित हो रहे थे और पास-पास टंगे

होने से लटकने से जब पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की मन्द-मन्द हवा के झोकों से हिलते-डुलते तो एक दूसरे से टकराने पर विशिष्ट, मनोज्ञ, मनहर, कर्ण एवं मन को शांति प्रदान करने वाली रुनझुन रुनझुन शब्द-ध्वनि से समीपवर्ती समस्त प्रदेश को व्याप्त करते हुए अपनी श्री-शोभा से अतीव-अतीव शोभित होते थे।

### सिंहासन की चतुर्दिग्वर्ती भद्रासन-रचना

५२— तए णं से आभिओगिए देवे तस्स सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेण उत्तरपुरत्थि-  
मेणं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ  
विउव्वइ ।

तस्स णं सीहासणस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिस्सीणं  
सपरिवाराणं चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वइ ।

तस्स णं सीहासणस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स अब्भितरपरिसाए  
अट्टण्हं देवसाहस्सीणं अट्ट भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वइ, एवं दाहिणेणं मञ्जिमपरिसाए दसण्हं  
देवसाहस्सीणं दस भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वति, दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरपरिसाए बारसण्हं  
देवसाहस्सीणं वारस भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वति ।

पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवतीणं सत्त भद्दासणे विउव्वति ।

तस्स णं सीहासणस्स चउदिसिं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स सोलसण्हं आयरक्खदेव-  
साहस्सीणं सोलस भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वति, तं जहा—पुरत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ,  
दाहिणेणं चत्तारि साहस्सीओ, पच्चत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ, उत्तरेणं चत्तारि साहस्सीओ ।

५२— तदनन्तर (प्रेक्षागृह मंडप आदि की रचना करने के अनन्तर) आभियोगिक देव ने उस सिंहासन के  
पश्चिमोत्तर (वायव्य कोण), उत्तर और उत्तर पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देवों  
के बैठने के लिए चार हजार भद्रासनों की रचना की।

पूर्व दिशा में सूर्याभ देव की परिवार सहित चार अग्र महिषियों के लिए चार हजार भद्रासनों की रचना की।

दक्षिणपूर्व दिशा में सूर्याभदेव की आभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देवों के लिए आठ हजार भद्रासनों की  
रचना की। दक्षिण दिशा में मध्यम परिषद् के देवों के लिए दस हजार भद्रासनों की, दक्षिण-पश्चिम दिग्भाग में बाह्य  
परिषदा के बारह हजार देवों के लिए बारह हजार भद्रासनों की और पश्चिम दिशा में सप्त अनीकाधिपतियों के सात  
भद्रासनों की रचना की।

तत्पश्चात् सूर्याभदेव के सोलह हजार आत्तरक्षक देवों के लिए क्रमशः पूर्व दिशा में चार हजार, दक्षिण दिशा  
में चार हजार, पश्चिम दिशा में चार हजार और उत्तर दिशा में चार हजार, इस प्रकार कुल मिलाकर सोलह हजार  
भद्रासनों को स्थापित किया।

### समग्र यान-विमान का सौन्दर्य-वर्णन

५३— तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए  
अइरुग्गयस्स वा, हेमंतिय-बालियसूरियस्स वा, खयरिगालाण वा, रत्ति पज्जलियाण वा,

जवाकुसुमवणस्स वा, किंसुयवणस्स वा, पारियायवणस्स वा, सव्वतो समंता संकुसुमियस्स भवे एयारूवे सिया ?

५३— उस दिव्य यान-विमान का रूप-सौन्दर्य क्या तत्काल उदित हेमन्त ऋतु के बाल सूर्य अथवा रात्रि में प्रज्वलित खदिर (खैर की लकड़ी) के अंगारों अथवा पूरी तरह से कुसुमित—फूले हुए जपापुष्पवन अथवा पलाशवन अथवा पारिजातवन जैसा लाल था ?

५४— णो इणट्ठे समट्ठे, तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स एत्तो इट्ठतराए चेव जाव<sup>१</sup> वण्णेणं पण्णत्ते । गंधो य फासो य जहा मणीणं<sup>२</sup> ।

५४— यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमणो! वह यान-विमान तो इन सभी उपमाओं से भी अधिक इष्टतर यावत् रक्तवर्ण वाला था। उसी प्रकार उसका गंध और स्पर्श भी पूर्व में किए गए मणियों के वर्णन से भी अधिक इष्टतर यावत् रमणीय था।

**आभियोगिक देव द्वारा आज्ञा-पूर्ति की सूचना**

५५— तए णं से आभिओगिए देवे दिव्वं जाणविमाणं विउव्वइ विउव्वित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं जाव<sup>३</sup> पच्चप्पिणति ।

५५— दिव्य यान-विमान की रचना करने के अनन्तर आभियोगिक देव सूर्याभदेव के पास आया। आकर सूर्याभदेव को दोनों हाथ जोड़ कर यावत् आज्ञा वापस लौटाई अर्थात् यान-विमान बन जाने की सूचना दी।

५६— तए णं से सूरियाभे देवे आभिओगस्स देवस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव हियए दिव्वं जिणिंदाभिगमणजोगं उत्तरवेउव्वियरूवं विउव्वति, विउव्वित्ता चउहिं अग्ग-महिसीहिं सपरिवाराहिं, दोहिं अणीएहिं, तं जहा—गंधव्वाणीएण य णट्ठाणीएण य सद्धिं संपरिवुडे, तं दिव्वं जाणविमाणं अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं तिसोपाणपडिरूवएणं दुरूहति दुरूहित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।

५६— आभियोगिक देव से दिव्य यान विमान के निर्माण होने के समाचार सुनने के पश्चात् इस सूर्याभदेव ने हर्षित, संतुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदय हो, जिनेन्द्र भगवान् के सम्मुख गमन करने योग्य दिव्य उत्तरवैक्रिय रूप की विकुर्वणा की। विकुर्वणा करके उनके अपने परिवार सहित चार अग्रमहिषियों एवं गंधर्व तथा नाट्य इन दो अनीकों को साथ लेकर उस दिव्य यान-विमान की अनुप्रदक्षिणा करके पूर्व दिशावर्ती अतीव मनोहर त्रिसोपानों से दिव्य यान-विमान पर आरूढ हुआ और सिंहासन के समीप आकर पूर्व की ओर मुख करके उस पर बैठ गया।

५७— तए णं तस्स सूरिआभस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ तं दिव्वं जाण-विमाणं अणुपयाहिणीकरेमाणा उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं दुरूहंति दुरूहित्ता पत्तेयं पत्तेयं

१. देखें सूत्र संख्या ३१, ३३, ३५, ३७, ३९
२. देखें सूत्र संख्या ४१, ३३
३. देखें सूत्र संख्या १८

पुव्वण्णत्थेहिं भद्दासणेहिं णिसीयंति । अवसेसा देवा य देवीओ य तं दिव्वं जाणविमाणं जाव (अणुपयाहिणी करेमाणा) दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं दुरूहंति, दुरूहिता पत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेहिं भद्दासणेहिं निसीयंति ।

५७— तत्पश्चात् सूर्याभ देव के चार हजार सामानिक देव उस यान विमान की प्रदक्षिणा करते हुए उत्तर दिग्वर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा उस पर चढ़े और अपने लिए पहले से ही स्थापित भद्रासनों पर बैठे तथा इनसे शेष रहे और दूसरे देव एवं देवियां भी प्रदक्षिणापूर्वक दक्षिण दिशा के सोपानों द्वारा उस दिव्य-यान विमान पर चढ़कर प्रत्येक अपने-अपने लिए पहले से ही निश्चित भद्रासनों पर बैठे ।

५८— तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स तं दिव्वं जाणविमाणं दुरूढस्स समाणस्स अट्टु-मङ्गलगा पुरतो अहाणुपुव्वीए संपत्थिता, तं जहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ-जाव (नन्दियावत्त-वद्ध-माणग-भद्दासन-कलस-मच्छ) दप्पणा ।

५८— उस दिव्य यान विमान पर सूर्याभदेव आदि देव-देवियों के आरूढ हो जाने के पश्चात् अनुक्रम से आठ मंगल-द्रव्य उसके सामने चले । वे आठ मंगल-द्रव्य इस प्रकार हैं—१. स्वस्तिक, २. श्रीवत्स यावत् (३. नन्दावर्त, ४. वर्धमानक—शरावसम्पुट—सिकोरे का संपुट, ५. भद्रासन, ६. कलश, ७. मत्स्ययुगल और) ८. दर्पण ।

५९— तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिंंगार दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा दंसणरतिया-आलोयदरिसणिज्जा वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागा ऊसिया गगण-तलमणुलिहंती पुरतो अहाणु-पुव्वीए संपत्थिया ।

५९— आठ मंगल द्रव्यों के अनन्तर पूर्ण कलश, भृंगार—झारी, चामर सहित दिव्य छत्र, पताका तथा इनके साथ गगन तल का स्पर्श करती हुई अतिशय सुन्दर, आलोकदर्शनीय (प्रस्थान करते समय मांगलिक होने के कारण दर्शनीय) और वायु से फरफराती हुए एक बहुत ऊंची विजय वैजयंती पताका अनुक्रम से उसके आगे चली ।

६०— तयणंतरं च णं वेरुलियभिसंतविमलदण्डं पलम्बकोरंटमल्लदामोवसोभितं चंद-मंडलनिभं समुस्सियं विमलमायवत्तं पवरसीहासणं च मणिरयणभत्तिचित्तं सपायपीढं सपाउयाजोय-समाउत्तं बहुकिंकरामरपरिग्गहियं पुरतो अहाणुपुव्वीए संपत्थियं ।

६०— विजय वैजयंती पताका के अनन्तर वैदूर्यरत्नों से निर्मित दीप्यमान, निर्मल दंडवाले लटकती हुई कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, चंद्रमंडल के समान निर्मल, श्वेत-धवल ऊंचा आतपत्र-छत्र और अनेक किंकर देवों द्वारा वहन किया जा रहा, मणिरत्नों से बने हुए वेलवूटों से उपशोभित, पादुकाद्वय युक्त पादपीठ सहित प्रवर— उत्तम सिंहासन अनुक्रम से उसके आगे चला ।

६१— तयणंतरं च णं वड्डरामयबट्टलट्टुसंठियसुसिलिट्टुपरिघट्टुमट्टुसुपतिट्टुए विसिट्टुए अणेगवर-पंचवण्ण-कुडभीसहस्सुस्सिए परिमंडियाभिरामे वाउद्धुयविजय-वेजयंती पडागच्छत्तात्तिच्छत्तकलिते तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जोअणसहस्समूसिए महतिमहालए महिद-ज्झए अहाणुपुव्वीए संपत्थिए ।

६१— तत्पश्चात् वज्ररत्नों से निर्मित गोलाकार कमनीय-मनोज्ञ, (गोल) दांडे वाला, शेष ध्वजाओं में विशिष्ट

एवं और दूसरी बहुत सी मनोरम छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की रंगबिरंगी पचरंगी ध्वजाओं से परिमंडित, वायु वेग से फहराती हुई विजयवैजयंती पताका, छत्रातिछत्र से युक्त, आकाशमंडल को स्पर्श करने वाला हजार योजन ऊंचा एक बहुत बड़ा इन्द्रध्वज नामक ध्वज अनुक्रम से उसके आगे चला।

६२— तयणंतरं च णं सुरूवणेवत्थपरिकच्छिया सुसज्जा सव्वालंकारभूसिया महया भडचडगरपहकारेणं पंच अणीयाहिवईओ पुरतो अहाणुपुव्वीए संपत्थिया ।

६२— इन्द्रध्वज के अनन्तर सुन्दर वेषभूषा से सुसज्जित, समस्त आभूषण-अलंकारों से विभूषित और अत्यन्त प्रभावशाली सुभटों के समुदायों को साथ लेकर पांच सेनापति<sup>१</sup> अनुक्रम से आगे चले।

६३— तयणंतरं च णं बहवे आभिओगिया देवा देवीओ य सएहिं सएहिं रूवेहिं, सएहिं सएहिं विसेसेहिं सएहिं सएहिं विंदेहिं, सएहिं सएहिं णेज्जाएहिं, सएहिं सएहिं णेवत्थेहिं पुरतो अहाणुपुव्वीए संपत्थिया ।

६३— तदनन्तर बहुत से आभियोगिक देव और देवियां अपनी-अपनी योग्य-विशिष्ट वेशभूषाओं और विशेषतादर्शक अपने-अपने प्रतीक चिह्नों से सजधजकर अपने-अपने परिकर, अपने-अपने नेजा और अपने-अपने कार्यों के लिए कार्योंपयोगी उपकरणों-साधनों को साथ लेकर अनुक्रम से आगे चले।

६४— तयणंतरं च णं सूरियाभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य सव्वड्डीए जाव (सव्वजुईए, सव्वबलेणं, सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूर्डुईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सव्व-तुडिय-सद्-सण्णिणाएणं महया इड्डीए, महया जुईए, महया बलेणं, महया समुदएणं महया वर-तुडिय-जमगसमग-प्पवाइएणं संख-पणव-पटह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुडंग-दुन्दुभिनिगघोसनाइय) रवेणं सूरियाभं देवं पुरतो पासतो य मग्गतो य समणुगच्छंति ।

६४— तत्पश्चात् सबसे अंत में उस सूर्याभ विमान में रहने वाले बहुत से वैमानिक देव और देवियां अपनी अपनी समस्त ऋद्धि से, यावत् (सर्व द्युति, बल-सेना, परिवार रूप समुदाय, आदर-सन्मान, श्रृंगार-विभूषा, विभूति-ऐश्वर्य, संभ्रम (भक्तिजन्य उत्सुकता) सर्वप्रकार के पुष्पों, गंध, माला, अलंकारों, सर्व प्रकार के वाद्यों की मधुर ध्वनि तथा अपनी विशिष्ट ऋद्धि, महान् द्युति, महान् सेना, महान् समुदाय तथा एक साथ बजते हुए अनेक वाद्यों की मधुर ध्वनि एवं शंख, पणव, पटह-ढोल, भेरी, झल्लरी, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज-मृदंग और दुन्दुभिनिनाद की) प्रतिध्वनि से शोभित होते हुए उस सूर्याभदेव के आगे-पीछे, आजू-बाजू में साथ-साथ चले।

**सूर्याभदेव का आमलकप्पा नगरी की ओर प्रस्थान**

६५— तए णं से सूरियाभे देवे तेणं पंचाणीयपरिक्खित्तेणं वइरामयवट्टलट्टसंठिएण जाव<sup>२</sup> जोयणसहस्समूसिएणं महत्तिमहालतेणं महिंदज्जएणं पुरतो कड्ढिज्जमाणेणं चउहिं सामाणियसहस्सेहिं

१. अश्व, गज, रथ, पदाति और वृषभ सेनाओं के अधिपति ।

२. देखें सूत्र संख्या ६१

जाव<sup>१</sup> सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अत्रेहिं य बहूहि सूरियाभविमाणवासिहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्डीए जाव<sup>२</sup> रवेणं सोधम्मस्स कप्पस्स मज्झंमज्जेणं तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं उवलालेमाणे उवलालेमाणे उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे पडिजागरेमाणे पडिजागरेमाणे जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले णिज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छति, जोयणसयसाहस्सितेहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे वीईवयमाणे ताए उक्किट्ठाए जाव<sup>३</sup> तिरियं असंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्जेणं वीइवयमाणे वीइवयमाणे जेणेव नंदीसरवरे दीवे, जेणेव दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरपव्वते, तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता तं दिव्वं देविड्ढिं जाव दिव्वं देवाणुभावं पडिसाहरेमाणे पडिसाहरेमाणे पडिसंखेवेमाणे पडिसंखेवेमाणे जेणेव जंबुद्वीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव आमलकप्पा नयरी जेणेव अंबसालवणे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता समणं भगवं महावीरं तेणं दिव्वेणं जाणविमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता समणस्स भगवतो महावीरस्स उत्तरपुरित्थिमे दिसिभागे तं दिव्वं जाणविमाणं ईसि चउरंगुलमसंपत्तं धरणितलंसि ठवेइ, ठवित्ता चउहिं अग्ग-महिसीहिं सपरिवाराहिं, दोहिं अणीयाहिं, तं जहा—गंधव्वाणिणं य णट्टाणिणं य-सद्धिं संपरिवुडे ताओ दिव्वाओ, जाणविमाणाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवणं पच्चोरुहति ।

ताए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ ताओ दिव्वाओ जाण-विमाणाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवणं पच्चोरुहंति अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवणं पच्चोरुहंति ।

६५— तत्पश्चात् पांच अनीकाधिपतियों द्वारा परिरक्षित वज्ररत्नमयी गोल मनोज्ञ संस्थान—आकारवाले यावत् एक हजार योजन लम्बे अत्यन्त ऊंचे महेन्द्रध्वज को आगे करके वह सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों एवं सूर्याभविमानवासी और दूसरे वैमानिक देव-देवियों के साथ समस्त ऋद्धि यावत् वाद्यनिनादों सहित दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव-प्रभाव का अनुभव, प्रदर्शन और अवलोकन करते हुए सौधर्मकल्प के मध्य भाग में से निकलकर सौधर्मकल्प के उत्तरदिग्वर्ती निर्याण मार्ग—निकलने के मार्ग के पास आया और एक लाख योजन प्रमाण वेग वाली यावत् उत्कृष्ट दिव्य देवगति से नीचे उतर कर गमन करते हुए तिरछे, असंख्यातद्वीप समुद्रों के बीचोंबीच से होता हुआ नन्दीश्वरद्वीप और उसकी दक्षिणपूर्ण दिशा (आग्नेय कोण) में स्थिर रतिकर पर्वत पर आया। वहां आकर उस दिव्य देव ऋद्धि यावत् दिव्य देवानुभाव को धीरे-धीरे संकुचित और संक्षिप्त करके जहां जम्बूद्वीप नामक द्वीप और उसका भरत क्षेत्र था एवं उस भरतक्षेत्र में भी जहां आमलकप्पा नगरी तथा आम्रशालवन चैत्य था और उस चैत्य में भी जहां श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहां आया, वहां आकर उस दिव्य-यान—विमान के साथ श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके श्रमण भगवान् महावीर की अपेक्षा उत्तरपूर्व—दिग्भाग-ईशानकोण—में ले जाकर भूमि से चार अंगुल ऊपर अधर रखकर उस दिव्य-यान को खड़ा किया।

१. देखें सूत्र संख्या ७

२. देखें सूत्र संख्या ६४

३. देखें सूत्र संख्या १३

उस दिव्य यानविमान को खड़ा करके वह सपरिवार चारों अग्रमहिषियों, गंधर्व और नाट्य इन दोनों अनीकों—सेनाओं को साथ लेकर पूर्व दिशावर्ती त्रिसोपान-प्रतिरूपक द्वारा उस दिव्ययान विमान से नीचे उतरा।

तत्पश्चात् सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देव उत्तरदिग्वर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा उस दिव्य-यान—विमान से नीचे उतरे तथा इनके अतिरिक्त शेष दूसरे देव और देवियां दक्षिण दिशा के त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा उस दिव्य-यान—विमान से उतरे।

### सूर्याभदेव का समवसरण में आगमन

६६— तए णं से सूरियाभे देवे चउहिं अग्गमहिसीहिं जाव<sup>१</sup> सोलसहिं आयरक्खदेव-साहस्सीहिं अण्णेहि य बहूहिं सूरियाभविमाणवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्डीए जाव<sup>२</sup> णादितरवेणं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेति, करित्ता वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

‘अहं णं भंते ! सूरियाभे देवे देवाणुप्पियाणं वंदामि नमंसांमि जाव ( सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं ) पज्जुवासामि ।’

६६— तदनन्तर वह सूर्याभदेव सपरिवार चार अग्रमहिषियों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्यान्य बहुत से सूर्याभविमानवासी देव-देवियों के साथ समस्त ऋद्धि-वैभव यावत् वाद्य निनादों सहित चलता हुआ श्रमण भगवान् महावीर के समीप आया। आकर श्रमण भगवान् की दाहिनी ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके—सविनय नम्र होकर बोला—

‘हे भदन्त ! मैं सूर्याभदेव आप देवानुप्रिय को वन्दन करता हूँ, नमन करता हूँ यावत् आपका ( सत्कार-सन्मान करता हूँ और कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप एवं चैत्यरूप आपकी ) पर्युपासना करता हूँ।’

६७— ‘सूरियाभा’ इ समणे भगवं महावीरे सूरियाभं देवं एवं वयासी—

पोराणमेयं सूरियाभा ! जीयमेयं सूरियाभा ! किच्चमेयं सूरियाभा ! करणिज्जमेयं सूरियाभा ! आइण्णमेयं सूरियाभा ! अब्भणुण्णायमेयं सूरियाभा ! जं णं भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा अरहंते भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता तओ पच्छा साइं साइं नाम-गोत्ताइं साहित्ति, तं पोराणमेयं सूरियाभा ! जाव<sup>३</sup> अब्भणुण्णायमेयं सूरियाभा !

६७— ‘हे सूर्याभ !’ इस प्रकार से सूर्याभदेव को संबोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने उस सूर्याभदेव से इस प्रकार कहा—‘हे सूर्याभ ! यह पुरातन है। हे सूर्याभ ! यह जीत-परम्परागत व्यवहार है। हे सूर्याभ ! यह कृत्य है। हे सूर्याभ ! यह करणीय है। हे सूर्याभ ! यह पूर्व परम्परा से आचरित है। हे सूर्याभ ! यह अभ्यनुज्ञात-सम्मत है कि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अरिहंत भगवन्तों को वन्दन करते हैं, नमन करते हैं और वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् वे अपने-अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करते हैं। अतएव हे सूर्याभ ! तुम्हारी यह सारी

१. देखें सूत्र संख्या ७

२. देखें सूत्र संख्या १९

३. देखें सूत्र संख्या १४

प्रवृत्ति पुरातन है यावत् हे सूर्याभ! संमत है।'

६८— तए णं से सूरियाभे देवे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ट जाव तुट्टचित्तमाणांदिए पीडमणे परमसोमणस्सिए हरिस-वस-विसप्पमाणहियए समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासण्णे नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासति ।

६८— तब वह सूर्याभ देव श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर अतीव हर्षित हुआ यावत् (संतुष्ट हुआ, मन में अति आनंदित हुआ, मन में प्रीति हुई, अत्यन्त अनुरागपूर्ण मनवाला हुआ, हर्षातिरेक से विकसित हृदयवाला हुआ) और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके न तो उनसे अधिक निकट और न अधिक दूर किन्तु यथोचित स्थान पर स्थित होकर शुश्रूषा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, अभिमुख विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर अंजलि करके पर्युपासना करने लगा।

६९— तए णं समणे भगवं महावीरे सूरियाभस्स देवस्स तीसे य महतिमहालिताए परिसाए जाव (इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइपरिसाए देवपरिसाए अणेगसयाए अणेगसयवंदाए अणेगसय-वंदपरिवाराए) धम्मं परिकहेइ । परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूता तामेव दिसिं पडिगया ।

६९— तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव को, और उस उपस्थित विशाल परिषद् को यावत् (ऋषियों की सभा को, मुनियों की सभा को, यतियों की सभा को, देवों की सभा को, अनेक सौ संख्यावाली अनेक शत (सैकड़ों के) समूह वाली अनेकशतसमूह युक्त परिवार वाली सभा को) धर्मदेशना सुनाई। देशना सुनकर परिषद् जिस दिशा से आई थी वापस उसी ओर लौट गई।

**विवेचन—** 'महतिमहालिताए' यह परिषद् का विशेषण है जिसका अर्थ यह है कि भगवान् की देशना सुनने के लिए सूर्याभदेव, सेयराजा, धारिणी आदि रानियों के सिवाय ऋषिपरिषदा, मुनिपरिषदा, यतिपरिषदा, देवपरिषदा के साथ हजारों नर नारी, उनके समूह और उन समूहों में भी बहुत से अपने-अपने सभी पारिवारिक जनों सहित उपस्थित थे।

भगवान् के समवसरण में उपस्थित विशाल परिषदा और धर्मदेशना आदि का औपपातिक सूत्र में विस्तार से वर्णन किया गया है। संक्षेप में जिसका सारांश इस प्रकार है—

अप्रतिबद्ध बलशाली, अतिशय बलवान, प्रशस्त, अपरिमित बल, वीर्य, तेज, माहात्म्य एवं कांतियुक्त श्रमण भगवान् महावीर ने शरदकालीन नूतन मेघ की गर्जना जैसी गंभीर, क्रोंच पक्षी के निर्घोष तथा दुन्दुभिनाद के समान मधुर, वक्षस्थल में विस्तृत होती हुई, कंठ में अवस्थित होती हुई तथा मूर्धा में व्याप्त होती हुई, सुव्यक्त—स्पष्ट, वर्ण-पद की विकलता—हकलाहट आदि से रहित, सर्वअक्षर, सन्निपात—समस्त वर्णों के सुव्यवस्थित संयोग से युक्त, पूर्ण तथा माधुर्य गुणयुक्त स्वर से समन्वित, श्रोताओं की अपनी-अपनी भाषा में परिणत होने के स्वभाव वाली वाणी द्वारा राजा, रानी तथा सैकड़ों हजारों ऋषियों, मुनियों, यतिओं देवों आदि श्रोताओं के समूह वाली उस महती परिषदा को एक योजन तक पहुंचने वाले स्वर से अर्धमागधी भाषा में धर्मदेशना दी।

भगवान् द्वारा उद्गीर्ण वह अर्धमागधी भाषा उन सभी आर्य-अनार्य श्रोताओं की भाषाओं में परिणत हो गई।

भगवान् द्वारा दी गई धर्मदेशना इस प्रकार है—

‘लोक’ का अस्तित्व है अलोक का अस्तित्व है। इसी प्रकार जीव, अजीव, बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, वेदना, निर्जरा, अहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नरक, नारक, तिर्यचयोनि, तिर्यचयोनिज जीव, माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्धि, सिद्ध, परिनिर्वाण-कर्मजनित आवरण से रहित जीवों का अस्तित्व है।

प्राणातिपात—हिंसा, मृषावाद—असत्य, अदत्तादान—चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, कलह, अभ्याख्यान पैशून्य परपरिवाद—निन्दा, रति, अरति, मायामृषा, मिथ्यादर्शनशल्य आदि वैभाविक भावों का अस्तित्व है।

प्राणातिपातविरमण—हिंसाविरति, मृषावादविरमण, अदत्तादानविरमण, मैथुनविरमण, परिग्रहविरमण, मिथ्यादर्शनशल्यविरमण आदि आत्मा की विशुद्धि करने वाले भावों का अस्तित्व है।

सभी अस्तिभाव स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा अस्तिरूप हैं और सभी नास्तिभाव परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा नास्तिरूप है।

सुआचरित—शुद्धभावों से आचरण किए गए दान शील आदि कर्म-कार्य उत्तम फल देने वाले हैं और दुराचरित—पापकारी कार्य दुःखकारी फल देने वाले हैं। श्रेष्ठ उत्तम कार्यों से जीव पुण्य का और पाप कार्यों से पाप का उपार्जन करता है। संसारी जीव जन्म-मरण करते रहते हैं। शुभ और अशुभ कर्म-कार्य फल युक्त हैं—निष्फल नहीं हैं।

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन—वीतराग भगवन्तों द्वारा उपदिष्ट धर्म, सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, सर्वात्मना शुद्ध, परिपूर्ण है, प्रमाण से अबाधित है, माया, मिथ्यात्व आदि शल्यों का निवारक है। सिद्धिमार्ग—सिद्धावस्था प्राप्त करने का उपाय है, मुक्तिमार्ग—कर्मरहित अवस्था प्राप्त करने का कारण है, निर्वाणमार्ग—सकल संताप रहित आत्मदशा प्राप्त करने का हेतु है, निर्याणमार्ग—पुनः जन्म-मरण रूप संसार से पार होने का मार्ग है, अवितथ—यथार्थ, अविसन्धि—विच्छेद-रहित—समस्त दुःखों को सर्वथा क्षय करनेवाला है। इसमें स्थित जीव सिद्धि प्राप्त करते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण दशा को प्राप्त करते हैं और समस्त सांसारिक दुःखों का अन्त करते हैं।

एकांर्चा—जिनके एक ही मनुष्यभव धारण करना शेष रह गया है, ऐसे एक भवावतारी पूर्वकर्मों के शेष रहने से किन्हीं महद्भिक देवलोकों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं और वहां महान् ऋद्धिसम्पन्न दीर्घ आयु स्थिति वाले होते हैं। उनके वक्षःस्थल हार-मालाओं से सुशोभित होते हैं, और अपनी दिव्य प्रभा से सभी दिशाओं को प्रभासित करते हैं। वे कल्पोपपन्न या कल्पातीत देवों में उत्पन्न होते हैं। वे वर्तमान में भी उत्तम गति, स्थिति को प्राप्त करते हैं और भविष्य में कल्याणप्रद स्थान को प्राप्त करने वाले और असाधारण रूप से सम्पन्न होते हैं।

जीव महारम्भ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय जीवों का वध और मांसाहार इन चार कारणों से नरकयोग्य कर्मों का उपार्जन करता है और नारक रूप में उत्पन्न होता है।

इन चार कारणों से जीव तिर्यचगति को प्राप्त करता है और तिर्यचयोनि में उत्पन्न होता है—१. मायाचार, २. असत्यभाषण, ३. उत्कंचनता—खुशामद या धूर्तता, ४. वंचनता—धोखा देना, ठगना।

इन कारणों से जीव मनुष्ययोनि में उत्पन्न होते हैं—१. प्रकृतिभद्रता, २. प्रकृतिविनीतता, ३. सानुक्रोशता—दयावृत्ति, ४. अमत्सरता—ईर्ष्या का अभाव।

इन कारणों से जीव देवों में उत्पन्न होते हैं—१. सरागसंयम, २. संयमासंयम, ३. अकामनिर्जरा, ४. बाल-तप—अज्ञान अवस्था में तप करना।

धर्म दो प्रकार का है—१. अगारधर्म, २. अनगारधर्म। अनगार धर्म का पालन वह जीव करता है जो सर्व प्रकार से मुंडित होकर गृहस्थ अवस्था—घर का त्याग कर श्रमण-प्रव्रज्या को अंगीकार कर अनगार बनता है। सर्वप्राणा-तिपातविरमण, मृषावादविरमण, अदत्तादानविरमण, मैथुनविरमण, परिग्रहविरमण और रात्रिभोजनविरमण व्रत को स्वीकार करता है। इस धर्म के पालन करने में जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी (साधु, साध्वी) प्रयत्नशील हो अथवा पालन करता हो वह आज्ञा का आराधक होता है।

अगारधर्म बारह प्रकार का बताया है—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत। पांच अणुव्रत इस प्रकार हैं—स्थूल प्राणातिपातविरमण, स्थूल मृषावादविरमण, स्थूल अदत्तादानविरमण, स्वदारसंतोष, इच्छा-परिग्रह की मर्यादा बांधना।

तीन गुणव्रत इस प्रकार हैं—अनर्थदंडविरमण, दिग्ब्रत, उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत।

चार शिक्षाव्रत इस प्रकार हैं—सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास, अतिथि-संविभागव्रत और जीवनान्त के समय जो धारण किया जाता है एवं मरण निकट हो तब कषाय और काया को कृश करके प्रीतिपूर्वक जिसकी आराधना की जाती है ऐसा संलेखनाव्रत। यह बारह प्रकार का अगारसामायिक धर्म है।

इस धर्म की शिक्षा में उपस्थित श्रावक या श्राविका आज्ञा के आराधक होते हैं।

भगवान् की इस देशना को सुनकर उस महती सभा में उपस्थित मनुष्यों में से अनेकों ने श्रमण दीक्षा ली, अनेकों ने पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहीधर्म अंगीकार किया।

शेष परिषदा ने अपने प्रमोदभाव को प्रकट करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और फिर कहा—हे भदन्त! आप द्वारा सुआख्यात, सुप्रज्ञप्त, सुभाषित, सुविनीत, सुभावित निर्ग्रन्थप्रवचन अनुत्तर है। धर्म की व्याख्या करते हुए आपने उपशम—क्रोधादि की शांति का उपदेश दिया है, उपशम के उपदेश के प्रसंग में आपने विवेक का व्याख्यान किया है, विवेक की व्याख्या करते हुए आपने प्राणातिपात आदि से विरत होने का निरूपण किया है, विरमण का उपदेश देने के प्रसंग में आपने पापकर्म नहीं करने का विवेचन किया है। आपसे भिन्न दूसरा कोई श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार का उपदेश नहीं कर सकता है, तो फिर इससे श्रेष्ठ धर्म के उपदेश की बात कहाँ ?

इस प्रकार से कह कर वह परिषदा जिस दिशा से आई थी, वापस उसी ओर लौट गई।

## सूर्याभदेव की जिज्ञासा का समाधान

७०— तए णं से सूरियाभे देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टतुट्ट जाव हयहियाए उट्टाए उट्टेति उट्टित्ता समणं भगवंतं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

‘अहं णं भंते ! सूरियाभे देवे कि भवसिद्धिते, अभवसिद्धिते ? सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी ? परित्तसंसारिते, अणंतसंसारिते ? सुलभबोहिए, दुल्लभबोहिए ? आराहए, विराहए ? चरिमे, अचरिमे ?’

७०— तदनन्तर वह सूर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर प्रभु से धर्मश्रवण कर और हृदय में अवधारित कर हर्षित एवं संतुष्ट यावत् आह्लादितहृदय हुआ। अपने आसन से खड़े होकर उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार प्रश्न किया—

‘भगवन्! मैं सूर्याभदेव क्या भवसिद्धिक—भव्य हूं अथवा अभवसिद्धिक—अभव्य हूं? सम्यग्दृष्टि हूं या मिथ्यादृष्टि हूं? परित्त संसारी—परमित काल तक संसार में भ्रमण करने वाला हूं अथवा अनन्त संसारी—अनन्त काल तक संसार में भ्रमण करने वाला हूं? सुलभबोधि—सरलता से सम्यग्ज्ञानदर्शन की प्राप्ति करने वाला हूं अथवा दुर्लभबोधि हूं? आराधक—बोधि की आराधना करने वाला हूं अथवा विराधक हूं? चरम शरीरी हूं अथवा अचरम शरीरी हूं?’

**विवेचन—** प्रस्तुत सूत्र में संसारी जीवों की चरम लक्ष्य प्राप्त करने की भावना का दिग्दर्शन कराया है। यद्यपि संसारी जीव अनादि काल से इस जन्म-मरण रूप संसार में परिभ्रमण करते आ रहे हैं, परन्तु चाहते यही हैं कि उस आत्मरमणता स्थिति को प्राप्त कर लूं कि जिसके पश्चात् न पुनर्जन्म है और न पुनःमरण है तथा न बार-बार के जन्म-मरण के कारण सांसारिक आधि-व्याधियाँ हैं। यह आकांक्षा तभी सफल हो पाती है जब उस जीव में मुक्त होने की योग्यता पाई जाती है। ऐसी योग्यता उसी में पाई जाती है जो भव्य हो अर्थात् अभी न सही किन्तु कालान्तर में कभी-न-कभी जिसे मुक्ति अवश्य प्राप्त होगी। इसीलिए सूर्याभदेव ने सर्वप्रथम भगवान् के समक्ष यही जिज्ञासा व्यक्त की कि—हे भगवन्! मैं मुक्ति प्राप्त करने की योग्यता वाला—भव्य हूं अथवा नहीं हूं?

योग्यता होने पर मुक्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब सम्यक् श्रद्धा, विश्वास, प्रतीति, दृष्टि हो। सम्यक् श्रद्धा के न होने पर जीव चाहे भव्य (मुक्ति योग्य) हो किन्तु वह प्राप्त नहीं की जा सकती। इस तथ्य को समझने के लिए सूर्याभदेव ने दूसरा प्रश्न पूछा—मैं सम्यग्दृष्टि हूं अथवा नहीं हूं?

सम्यग्दृष्टि हो जाने पर भी यह निश्चित नहीं है कि सभी जीव शीघ्र मुक्ति प्राप्त करें। ऐसे जीव भी अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करने वाले हो सकते हैं और यह भी सम्भव है कि सीमित समय में मुक्ति प्राप्त कर लें। इसी बात को जानने के लिए पूछा—भगवन्! मैं परिमितकाल तक संसारभ्रमण करने वाला हूं अथवा अनन्त काल तक मुझे संसार में भ्रमण करना पड़ेगा?

संसारभ्रमण का परिमित काल होने पर भी जीव तभी मुक्त हो सकता है जब तदनुकूल और तदनुरूप सम्यग्ज्ञान-दर्शन और चारित्र का सुयोग-संयोग मिले। इसीलिए सूर्याभदेव ने भगवान् से यह जानना चाहा कि मैं सम्यग्ज्ञानदर्शन-चारित्र की साधना करने में तत्पर हो सकूंगा? उनकी साधना करने का अवसर सुलभता से प्राप्त होगा अथवा नहीं?

सुलभबोधि होने पर भी सभी जीव सम्यग्ज्ञान आदि की यथाविधि आराधना करने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। लोकैषणाओं, परीषह, उपसर्गों आदि के कारण आराधना से विचलित होकर लक्ष्य के निकट पहुंचने पर भी संसार में भटक जाते हैं। इसी स्थिति को समझने के लिए सूर्याभदेव ने भगवान् से पूछा—मैं आराधक ही रहूंगा अथवा भटक जाऊंगा? और सबसे अन्त में अपनी समस्त जिज्ञासाओं का निष्कर्ष जानने के लिए उत्सुकता से पूछा कि भव्य सुलभबोधि, आराधक आदि होने पर भी मुझे क्या मुक्ति प्राप्ति की काल-लब्धि प्राप्त हो चुकी है? संसार में रहने का मेरा इसके बाद का भव अन्तिम है अथवा और दूसरे भी भवान्तर शेष हैं?

उक्त समग्र कथन का सारांश यह है कि योग्यता, निमित्त और उन निमित्तों का सदुपयोग करने के लिए तदनुकूल प्रवृत्ति करने पर ही जीव मुक्ति प्राप्त करता है। अतएव सर्वदा पुरुषार्थ के प्रति समर्पित होकर जीव को प्रयत्नशील रहना चाहिए।

७१— 'सूरियाभा' इ समणं भगवं महावीरे सूरियाभं देवं एवं वदासी—सूरियाभा ! तुमं णं भवसिद्धिं नो अभवसिद्धिते जाव<sup>१</sup> चरिमे णो अचरिमे ।

७१— 'सूर्याभ!' इस प्रकार से सूर्याभदेव को सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव को उत्तर दिया—

हे सूर्याभ! तुम भवसिद्धिक-भव्य हो, अभवसिद्धिक-अभव्य नहीं हो, यावत् चरम शरीरी हो अर्थात् इस भव के पश्चात् का तुम्हारा मनुष्यभव अन्तिम होगा, अचरम शरीरी नहीं हो अर्थात् हे सूर्याभ! तुम भव्य हो, सम्यग्दृष्टि हो, परमित संसार वाले हो, तुम्हें बोधि की प्राप्ति सुलभ है, तुम आराधक हो और चरम शरीरी हो।

सूर्याभदेव द्वारा मनोभावना का निवेदन

७२— तए णं से सूरियाभे देवे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्टुट्टु चित्तमाणंदिए परमसोमणस्सिए समणं भगवंतं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी—

तुब्भे णं भंते ! सव्वं जाणह, सव्वं पासह, सव्वं कालं जाणह सव्वं कालं पासह, सव्वे भावे जाणह सव्वे भावे पासह ।

जाणंति णं देवाणुप्पिया ! मम पुव्विं वा पच्छा वा मम एयारूवं दिव्वं देविट्ठिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं लब्धं पत्तं अभिसमण्णागयं ति । तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं भत्ति-पुव्वगं गोयमाइयाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविट्ठिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसतिबद्धं नट्टविहं उवदंसित्तए ।

७२— तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर उस सूर्याभदेव ने हर्षित सन्तुष्ट चित्त से आनन्दित और परम प्रसन्न होते हुए श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—

हे भदन्त! आप सब जानते हैं और सब देखते हैं, सर्वत्र दिशा-विदिशा, लोक-अलोक में विद्यमान समस्त पदार्थों को जानते हैं और देखते हैं। सर्व काल—अतीत-अनागत-वर्तमान काल को आप जानते और देखते हैं; सर्व भावों को आप जानते और देखते हैं।

अतएव हे देवानुप्रिय! पहले अथवा पश्चात् लब्ध, प्राप्त एवं अधिगत इस प्रकार की मेरी दिव्य देवत्र्यङ्घ्रि, दिव्य देवद्युति तथा दिव्य देवप्रभाव को भी जानते और देखते हैं। इसलिए आप देवानुप्रिय की भक्तिवश होकर मैं चाहता हूँ कि गौतम आदि निर्ग्रन्थों के समक्ष इस दिव्य देवत्र्यङ्घ्रि, दिव्य देवद्युति—कांति, दिव्य देवानुभाव—प्रभाव तथा बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि—नाट्यकला को प्रदर्शित करूँ।

७३— तए णं समणे भगवं महावीरे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे सूरियाभस्स देवस्स एयमट्ठं णो आढाति, णो पारियाणति, तुसिणीए संचिट्ठति ।

७३— तब सूर्याभदेव के इस प्रकार निवेदन करने पर श्रमण भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव के इस कथन का आदर नहीं किया, उसकी अनुमोदना नहीं की, किन्तु वे मौन रहे।

**विवेचन—** आत्मविज्ञानी भगवान् की स्थितप्रज्ञ दशा को देखते हुए यह स्वाभाविक है कि वे सूर्याभदेव के निवेदन को आदर न दें, उदासीन-मौन रहें, परन्तु सूर्याभदेव की मनोभूमिका को देखते हुए वह उनके सामने नाटक दिखाने के सिवाय और कर भी क्या सकता था ? भक्तों की दो कोटियां हैं—पहली मन, वचन, काय से अपने भजनीय का अनुसरण करने वालों अथवा अनुसरण करने के लिए प्रयत्नशील रहने वालों की। ये बाह्य प्रदर्शनों के बजाय भजनीय के शुद्ध अनुसरण को ही भक्ति समझते हैं। दूसरी कोटि है प्रशंसकों की, जो भजनीय का अनुसरण करने योग्य पुरुषार्थशाली नहीं होने से उनके प्रशंसक होकर सन्तोष मानते हैं। ऐसे प्रशंसक बाह्य-प्रदर्शन के सिवाय आंतरिक भक्ति तक पहुंच नहीं सकते हैं। ये प्रशंसक बाह्य-प्रदर्शन के प्रति भजनीय की उदासीनता को समझते हुए भी अपनी प्रसन्नता के लिए बाह्य-प्रदर्शन के अतिरिक्त और कुछ कर सकें, वैसे नहीं होते हैं। यही औपचारिक भक्ति के आविर्भाव होने का कारण प्रतीत होता है जो सूर्याभदेव के निवेदन से स्पष्ट है। इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भगवान् के मौन रहने में 'यद् यदाचरति शिष्टः तत् तदेवेतरो जनः' इस उक्ति का तत्त्व भी गर्भित है। टीकाकार ने सूर्याभदेव की इस नाटकविधि को स्वाध्याय आदि कर्तव्य का विघातक बताया है—'गौतमादीनां च नाट्यविधेः स्वाध्यायादिविघातकारित्वात् ।'

७४— तए णं से सूरियाभे देवे समणं भगवन्तं महावीरं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी— तुब्भे णं भंते ! सव्वं जाणह जाव उवदंसित्तए त्ति कट्टु समणं भगवन्तं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दण्डं निस्सरति, अहाबायरे० अहासुहुमे०<sup>१</sup> । दोच्चं पि विउव्वियसमुग्घाएणं जाव बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउव्वति । से जहानामए आलिंगपुक्खरे इ वा जाव मणीणं फासो ।<sup>२</sup>

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे पिच्छाघरमण्डवं विउव्वति अणेग-खंभसयसंनिविट्ठं वण्णओ-अन्तो बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं उल्लोयं अक्खाडगं च मणिपेढियं च विउव्वति । तीसे णं मणिपेढियाए उवरि सीहासणं सपरिवारं जाव दामा चिट्ठन्ति ।<sup>३</sup>

७४— तत्पश्चात् सूर्याभदेव ने दूसरी और तीसरी बार भी पुनः इसी प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर से निवेदन किया—

हे भगवन्! आप सब जानते हैं आदि, यावत् नाट्यविधि प्रदर्शित करना चाहता हूं। इस प्रकार कहकर उसने दाहिनी ओर से प्रारम्भ कर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार

१. देखें सूत्र संख्या १३

२. देखें सूत्र संख्या ३०-४४

३. देखें सूत्र संख्या ४५-५१

किया और वन्दन-नमस्कार करके उत्तर पूर्व दिशा में गया। वहां जाकर वैक्रियसमुद्घात करके संख्यात योजन लम्बा दण्ड निकाला। यथाबादर (असार) पुद्गलों को दूर करके यथासूक्ष्म (सारभूत) पुद्गलों का संचय किया। इसके बाद पुनः दुबारा वैक्रिय समुद्घात करके यावत् बहुसमरमणीय भूमिभाग की रचना की। जो पूर्ववर्णित आलिंग पुष्कर आदि के समान सर्वप्रकार से समतल यावत् रूप रस गंध और स्पर्श वाले मणियों से सुशोभित था।

उस अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग के मध्यातिमध्य भाग में एक प्रेक्षागृहमंडप—नाटकशाला की रचना की। वह अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर संनिविष्ट था इत्यादि वर्णन पूर्व के समान यहां कर लेना चाहिए।

उस प्रेक्षागृहमंडप के अन्दर अतीव समतल, रमणीय भूमिभाग, चन्देवा, रंगमंच और मणिपीठिका की विकुर्वणा की और उस मणिपीठिका के ऊपर फिर उसने पादपीठ, छत्र आदि से युक्त सिंहासन की रचना यावत् उसका ऊपरी भाग मुक्तादामों से शोभित हो रहा था।

७५— तए णं से सूरियाभे देवे समणस्स भगवतो महावीरस्स आलोए पणामं करेति, करित्ता 'अणुजाणउ मे भगवं, ति कट्टु सीहासणवरगए तित्थयराभिमुहे संणिसणणे ।'

तए णं से सूरियाभे देवे तप्पढमयाए नानामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउणओवियधिसि-  
मिसिंतविरइयमहाभरणकडग-तुडियवरभूसणुज्जलं पीवरं पलम्बं दाहिणं भुयं पसारेति । तओ णं सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं सरिसलावणण-रूवजोव्वणगुणोववेयाणं एगाभरण-वसण-  
गहिअणिज्जोआणं दुहतो संवेल्लियग्गणियत्थाणं उप्पीलियचित्तपट्टपरियरसफेणकावत्तरइयसंगय-  
पलंबवत्थंत-चित्तचिल्ललगनियंसणाणं एगावलिकण्ठरइयसोभंतवच्छपरिहत्थभूसणाणं अट्टुसयं  
णट्टसज्जाणं देवकुमाराणं णिग्गच्छति ।

७५— तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव ने श्रमण भगवान् महावीर की ओर देखकर प्रणाम किया और प्रणाम करके 'हे भगवन्! मुझे आज्ञा दीजिये' कहकर तीर्थंकर की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन—पर सुखपूर्वक बैठ गया।

इसके पश्चात् नाट्यविधि प्रारम्भ करने के लिए सबसे पहले उस सूर्याभदेव ने निपुण शिल्पियों द्वारा बनाये गये अनेक प्रकार की विमल मणियों, स्वर्ण और रत्नों से निर्मित भाग्यशालियों के योग्य, देदीप्यमान, कटक त्रुटित आदि श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषित उज्ज्वल पुष्ट दीर्घ दाहिनी भुजा को फैलाया—लम्बा किया।

उस दाहिनी भुजा से एक सौ आठ देवकुमार निकले। वे समान शरीर-आकार, समान रंग-रूप, समान वय, समान लावण्य, युवोचित गुणों वाले, एक जैसे आभूषणों, वस्त्रों और नाट्योपकरणों से सुसज्जित, कन्धों के दोनों ओर लटकते पल्लवों वाले उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टे) धारण किए हुए, शरीर पर रंग-बिरंगे कंचुक वस्त्रों को पहने हुए, हवा का झोंका लगने पर विनिर्गत फेन जैसी प्रतीत होने वाली झालर युक्त चित्र-विचित्र देदीप्यमान, लटकते अधोवस्त्रों (चोगा) को धारण किए हुए, एकावली आदि आभूषणों से शोभायमान कण्ठ एवं वक्षस्थल वाले और नृत्य करने के लिए तत्पर थे।

७६— तयणंतरं च ण नानामणि जाव<sup>१</sup> पीवरं पलंबं वामं भुयं पसारेति, तओ णं सरिस-  
याणं, सरित्तयाणं, सरिव्वयाणं, सरिसलावणण-रूवजोव्वणगुणोववेयाणं, एगाभरण-वसणगहि-

अणिज्जोआणं दुहतो संवेल्लियग्गणियत्थाणं आविद्धतिलयामेलाणं पिणद्धगेवेज्जकंचुईणं नानामणि-  
रयणभूसण विराइयंगमंगाणं चंदाणणाणं चंदद्धसमनिलाडाणं चंदाहियसोमदंसणाणं उक्का इव  
उज्जोवेमाणीणं सिंगारागारचारुवेसाणं संगयगय-हसिय-भणिय-चिट्ठिय विलास-ललिय-संलाव-  
निउणजुत्तोवयारकुसलाणं, सुंदर-थण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लायण्णविलासकलियाणं  
गहियाउज्जाणं अट्टसयं नट्टसज्जाणं देवकुमारियाणं णिग्गच्छइ ।

७६— तदनन्तर सूर्याभदेव ने अनेक प्रकार की मणियों आदि से निर्मित आभूषणों से विभूषित यावत् पीवर-  
पुष्ट एवं लम्बी बांयों भुजा को फैलाया। उस भुजा से समान शरीराकृति, समान रंग, समान वय, समान लावण्य-रूप-  
यौवन गुणोंवाली, एक जैसे आभूषणों, दोनों ओर लटकते पल्ले वाले उत्तरीय वस्त्रों और नाट्योपकरणों से सुसज्जित,  
ललाट पर तिलक, मस्तक पर आमेल (फूलों से बने मुकुट जैसे शिरोभूषण) गले में ग्रैवेयक और कंचुकी धारण  
किए हुए अनेक प्रकार के मणि-रत्नों के आभूषणों से विराजित अंग-प्रत्यंगों-वाली चन्द्रमुखी, चन्द्रार्ध समान ललाट  
वाली चन्द्रमा से भी अधिक सौम्य दिखाई देने वाली, उल्का के समान चमकती, शृंगार गृह के तुल्य चारु-सुन्दर वेष  
से शोभित, हंसने-बोलने, आदि में पटु, नृत्य करने के लिए तत्पर एक सौ आठ देवकुमारियां निकलीं।

### वाद्यों और वाद्यवादकों की रचना

७७— तए णं से सूरियाभे देवे अट्टसयं संखाणं विउव्वति, अट्टसयं संखवायाणं विउव्वइ  
अ०<sup>१</sup> सिंगाणं वि०<sup>२</sup> अ० सिंगवायाणं वि०, अ० संखियाणं वि०, अ० संखियावायाणं वि०, अ०  
खरमुहीणं वि०, अ० खरमुहिवायाणं वि०, अ० पेयाणं वि०, अ० पेयावायाणं वि०, अ०  
पीरिपीरियाणं वि० अ० पीरिपीरियावायाणं विउव्वति, एवमाइयाइं एगूणपण्णं आउज्ज-  
विहाणाइं विउव्वइ ।

७७— तत्पश्चात् अर्थात् एक सौ आठ देवकुमारों और देवकुमारियों की विकुर्वणा करने के पश्चात् उस  
सूर्याभदेव ने एक सौ आठ शंखों की और एक सौ आठ शंखवादकों की विकुर्वणा की। इसी प्रकार से एक सौ आठ-  
एक सौ आठ शृंगों-रणसिंगों और उनके वादकों-बजाने वालों की, शंखिकाओं (छोटे शंखों) और उनके वादकों की,  
खरमुखियों और उनके वादकों की, पेयों और उनके वादकों की, पिरिपिरिकाओं और उनके वादकों की विकुर्वणा  
की। इस तरह कुल मिलाकर उनपचास प्रकार के वाद्यों और उनके बजाने वालों की विकुर्वणा की।

**विवेचन**— प्रस्तुत सूत्र में पिरिपिरिका पर्यन्त वाद्यों के नामों का उल्लेख है। शेष के नाम यथास्थान आगे के  
सूत्र में आये हैं वे इस प्रकार हैं—

१. शंख, २. शृंग (रणसिंगा), ३. शंखिका (छोटे शंख), ४. खरमुखी, ५. पेया, ६. पिरिपिरिका, ७. पणव—  
ढोल, ८. पटह—नगाड़ा, ९. भंभा, १०. होरम्भ, ११. भेरी, १२. झालर, १३. दुन्दुभि, १४. मुरज, १५. मृदंग, १६.  
नन्दीमृदंग, १७. आलिंग, १८. कुस्तुंबा, १९. गोमुखी, २०. मादला, २१. वीणा, २२. विपंची, २३. वल्लकी, २४.  
षट्भ्रामरी वीणा, २५. भ्रामरी वीणा, २६. बध्वीसा, २७. परिवादिनी वीणा, २८. सुघोषाघंटा, २९. नन्दीघोष घंटा, ३०.

१. अ० पद से 'अट्टसयं' शब्द का संकेत किया है।

२. वि० पद 'विउव्वति' शब्द का बोधक है।

सौतार की वीणा, ३१. काछवी वीणा, ३२. चित्र वीणा, ३३. आमोट, ३४. झंझा, ३५. नकुल, ३६. तूण, ३७. तुंबवीणा—तम्बूरा, ३८. मुकुन्द—मुरज सरीखा एक वाद्य-विशेष, ३९. हुडुक्क, ४०. विचिक्की, ४१. करटी, ४२. डिंडिम, ४३. किणिक, ४४. कडंब, ४५. दर्दर, ४६. दर्दरिका, ४७. कलशिका, ४८. मडक्क, ४९. तल, ५०. ताल, ५१. कांस्य ताल, ५२. रिंगरिसिका, ५३. लत्तिका, ५४. मकरिका, ५५. शिशुमारिका, ५६. वाली, ५७. वेणु, ५८. परिली, ५९. बद्धक।

यद्यपि मूल सूत्रपाठ के वाद्यों की संख्या उनपचास बताई है, परन्तु गणना करने पर उनकी संख्या उनसठ होती है। टीकाकार ने इसका समाधान इस प्रकार किया है—मूलभेदापेक्षया आतोद्यभेदा एकोनपञ्चाशत्, शेषास्तु एतेषु एव अन्तर्भवन्ति यथा वंशातोद्यविधाने वाली-वेणु-परिली-बद्धगा-इति—अर्थात् वाद्यों के मूल भेद तो उनपचास ही हैं। शेष उनके अवान्तरभेद हैं, जैसे कि वंशवाद्यों में वाली, वेणु, परिली, बद्धग आदि का अन्तर्भाव हो जाता है।

ऊपर दिये गये वाद्य नामों में से कुछ एक के नाम स्पष्ट ज्ञात नहीं होते हैं कि वर्तमान में उनकी क्या संज्ञा है ? टीकाकार आचार्य ने भी लोकगम्य कहकर इनकी व्याख्या नहीं की है—‘अव्याख्यातास्तु भेदा लोकतः प्रत्येतव्याः ।’

### सूर्याभदेव द्वारा नृत्य-गान-वादन का आदेश

७८— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य सद्दावेति ।

तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य सूरियाभेणं देवेणं सद्दाविया समाणा हट्टु जाव (तट्टु चित्तमाणांदिया) जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं जाव (सिरसावत्तं मत्थए अञ्जलिं कट्टु जएणं विजएणं बद्धावेति) वद्धावित्ता एवं वयासी—‘संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जं अम्हेहि कायव्वं ।’

७८— तत्पश्चात् सूर्याभदेव ने उन देवकुमारों तथा देवकुमारियों को बुलाया।

सूर्याभदेव द्वारा बुलाये जाने पर वे देवकुमार और देवकुमारियां हर्षित होकर यावत् (संतुष्ट और चित्त में आनंदित होकर) सूर्याभदेव के पास आए और दोनों हाथ जोड़कर यावत् (आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाया और) अभिनन्दन कर सूर्याभदेव से विनयपूर्वक बोले—हे देवानुप्रिय ! हमें जो करना है, उसकी आज्ञा दीजिये।

७९— तए णं से सूरियाभे देवे ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य एवं वयासी—

गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदह नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता गोयमाइयाणं समणाण निग्गंथाणं तं दिव्वं देविट्ठं दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं, दिव्वं बत्तीसइबद्धं णट्टुविहिं उवदंसेह, उवदंसित्ता खिप्पामेव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

७९— तब सूर्याभदेव ने उन देवकुमारों और देवकुमारियों से कहा—

हे देवानुप्रियो ! तुम सभी श्रमण भगवान् महावीर के पास जाओ और दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके तीन बार

श्रमण भगवान् महावीर की प्रदक्षिणा करो। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार करो। वन्दन-नमस्कार करके गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों के समक्ष दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव वाली बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि करके दिखलाओ। दिखलाकर शीघ्र ही मेरी इस आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ।

८०— तए णं ते बहवे देवकुमारा देवकुमारीओ य सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ट जाव करयल जाव पडिसुणंति, पडिसुणित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवंतं महावीरं जाव नमंसित्ता जेणेव गोयमादिया समणा निग्गंथा तेणेव उवागच्छंति ।

८०— तदनन्तर वे सभी देवकुमार और देवकुमारियां सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित हुए यावत् दोनों हाथ जोड़कर यावत् आज्ञा को स्वीकार किया। स्वीकार करके श्रमण भगवान् के पास आये। आकर श्रमण भगवान् महावीर को यावत् नमस्कार करके जहां गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ विराजमान थे, वहां आये।

८१— तए णं ते बहवे देवकुमारा देवकुमारीओ य समामेव समोसरणं करेति, करित्तां समामेव अवणमंति अवणमित्ता समामेव उन्नमंति, एवं सहितामेव ओणमंति एवं सहितामेव उन्नमंति सहियामेव उण्णमित्ता संगयामेव ओणमंति संगयामेव उन्नमंति उन्नमत्ता थिमियामेव ओणमंति थिमियामेव उन्नमंति, समामेव पसरंति पसरित्ता, समामेव आउज्जविहाणाइं गेण्हंति समामेव पवाएसु पगाइंसु पणच्चिसु ।

८१— इसके बाद वे सभी देवकुमार और देवकुमारियां पंक्तिबद्ध होकर एक साथ मिले। मिलकर सब एक साथ नीचे नमे और एक साथ ही अपना मस्तक ऊपर कर सीधे खड़े हुए। इसी क्रम से पुनः सभी एक साथ मिलकर नीचे नमे और फिर मस्तक ऊंचा कर सीधे खड़े हुए। इसी प्रकार सीधे खड़े होकर नीचे नमे और फिर सीधे खड़े हुए। खड़े होकर धीमे से कुछ नमे और फिर सीधे खड़े हुए। खड़े होकर एक साथ अलग-अलग फैल गये और फिर यथायोग्य नृत्य-गान आदि के उपकरणों-वाद्यों को लेकर एक साथ ही बजाने लगे, एक साथ ही गाने लगे और एक साथ नृत्य करने लगे।

विवेचन— मूल पाठ में 'समामेव, सहितामेव तथा संगयामेव' ये तीन शब्द प्रयुक्त किए गए हैं। इनका संस्कृतरूप 'समकमेव, सहितमेव और संगतमेव' होता है। सामान्यतया तीनों शब्द समानार्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु इनके अर्थ में भिन्नता है। टीकाकार ने किसी नाट्यकुशल उपाध्याय से इनका अर्थभेद समझ लेने की सूचना की है।

### नृत्य गान आदि का रूपक

८२— किं ते ? उरेणं मंदं सिरेण तारं कंठेण वितारं तिविहं तिसमयरेयगरइयं गुंजाऽवंक-कुहरोवगूढं रत्तं तिठाणकरणसुद्धं सकुहरगुंजंतवंस-तंती-तल-ताल-लय-गहसुसंपउत्तं महुरं समं सललियं मणोहरं मिउरिभियपयसंचारं सुरइ सुणइ वरचारुरूवं दिव्वं णट्टसज्जं गेयं पगीया वि

१. "समामेव पंतिओ बंधंति बंधित्ता समामेव पंतिओ नमंसति नमंसित्ता" यह पाठ किन्हीं-किन्हीं प्रतियों में विशेष मिलता है कि एक साथ पंक्ति बनाई, पंक्तिबद्ध होकर एक साथ नमस्कार किया और नमस्कार करके....।

होत्था ।

८२— उनका संगीत इस प्रकार का था कि उर—हृदयस्थल से उद्गत होने पर आदि में मन्द मन्द—धीमा, मूर्छा में आने पर तार—उच्च स्वर वाला और कंठ स्थान में विशेष तार स्वर (उच्चतर ध्वनि) वाला था। इस तरह त्रिस्थान-समुद्गत वह संगीत त्रिसमय रेचक से रचित होने पर त्रिविध रूप था। संगीत की मधुर प्रतिध्वनि-गुंजारव से समस्त प्रेक्षागृह मण्डप गूँजने लगता था। गेय राग-रागनी के अनुरूप था। त्रिस्थान त्रिकरण से शुद्ध था, अर्थात् उर, शिर एवं कण्ठ में स्वर संचार रूप क्रिया से शुद्ध था। गूँजती हुई बांसुरी और वीणा के स्वरों से एक रूप मिला हुआ था। एक-दूसरे की बजती हथेली के स्वर का अनुसरण करता था। मुरज और कंशिका आदि वाद्यों की झंकारों तथा नर्तकों के पादक्षेप—ठुमक से बराबर मेल खाता था। वीणा के लय के अनुरूप था। वीणा आदि वाद्य धुनों का अनुकरण करने वाला था। कोयल की कुहू-कुहू जैसा मधुर तथा सर्व प्रकार से सम, सललित मनोहर, मृदु, रिभित, पदसंचार युक्त, श्रोताओं को रतिकर, सुखान्त ऐसा उन नर्तकों का नृत्यसज्ज विशिष्ट प्रकार का उत्तमोत्तम संगीत था।

८३— किं ते ? उद्घुमंताणं संखाणं सिंगाणं संखियाणं खरमुहीणं पेयाणं पिरिपिरियाणं, आहम्मंताणं पणवाणं पडहाणं, अप्फालिज्जमाणाणं भंभाणं होरंभाणं, तालिज्जताणं भेरीणं झल्लरीणं दुंदुहीणं, आलवंताणं मुरयाणं मुड्ढगाणं नंदीमुड्ढगाणं, उत्तालिज्जंताणं आलिंगाणं कुतुंबाणं गोमुहीणं महलाणं, मुच्छिज्जंताणं वीणाणं विपंचीणं वल्लकीणं कुट्टिज्जंताणं महंतीणं कच्छभीणं चित्तवीणाणं, सारिज्जंताणं बद्धीसाणं सुघोसाणं नंदिघोसाणं, फुट्टिज्जंतीणं भामरीणं छभामरीणं परिवायणीणं, छिप्पंतीणं तूणाणं तुंबवीणाणं, आमोडिज्जंताणं आमोताणं झंझाणं नउलाणं, अच्छिज्जंतीणं मुगुंदाणं हुडुक्कीणं विचिक्कीणं, वाड्ढज्जंताणं करडाणं डिंडिमाणं किणियाणं कडम्बाणं, ताडिज्जंताणं दहरिगाणं दहरगाणं कुतुंबाणं कलसियाणं मडुयाणं, आताडिज्जंताणं तलाणं तालाणं कंसतालाणं, घट्टिज्जंताणं रिगिरिसियाणं लत्तियाणं मगरियाणं सुंसमारियाणं, फूमिज्जंताणं वंसाणं वेलूणं वालीणं परिल्लीणं बद्धगाणं ।

८३— मधुर संगीत-गान के साथ-साथ नृत्य करने वाले देवकुमार और कुमारिकाओं में से शंख, श्रृंग, शंखिका, खरमुखी, पेया, पिरिपिरिका के वादक उन्हें उद्भमानित करते—फूंकते, पणव और पटह पर आघात करते, भंभा और होरंभ पर टंकार मारते, भेरी झल्लरी और दुन्दुभि को ताड़ित करते, मुरज, मृदंग और नन्दीमृदंग का आलाप लेते, आलिं ग कुस्तुम्ब, गोमुखी और मादल पर उत्ताडन करते, वीणा और विपंची और वल्लकी को मूर्च्छित करते, महती वीणा (सौ तार की वीणा), कच्छपीवीणा और चित्रवीणा को कूटते, बद्धीस, सुघोषा, नन्दीघोष का सारण करते, भ्रामरी-षड् भ्रामरी और परिवादनी वीणा का स्फोटन करते, तूण, तुम्बवीणा का स्पर्श करते, आमोट झांझ कुम्भ और नकुल को आमोटते-परस्पर टकराते-खनखनाते, मृदंग-हुडुक्क-विचिक्की को धीमे से छूते, करड डिंडिम किणित और कडम्ब को बजाते, दर्दरक, दर्दरिका, कुस्तुंबुरु, कलशिका मड्ड को जोर-जोर से ताड़ित करते, तल, ताल, कांस्यताल को धीरे से ताड़ित करते, रिगिरिसका लत्तिका, मकरिका और शिशुमारिका का घट्टन करते तथा वंशी, वेणु वाली परिल्ली तथा बद्धकों को फूंकते थे। इस प्रकार वे सभी अपने-अपने वाद्यों को बजा रहे थे।

८४— तए णं से दिव्वे गीए, दिव्वे वाइए, दिव्वे नट्टे एवं अब्भुए सिंगारे उराले मणुन्ने

मणहरे गीते मणहरे नट्टे मणहरे वातिए उप्पिंजलभूते कहकहभूते दिव्वे देवरमणे पवत्ते या वि होत्था ।

८४— इस प्रकार का वह वाद्य सहचरित दिव्य संगीत दिव्य वादन और दिव्य नृत्य आश्चर्यकारी होने से अद्भुत, श्रृंगाररसोपेत होने से श्रृंगाररूप, परिपूर्ण गुण-युक्त होने से उदार, दर्शकों के मनोनुकूल होने से मनोज्ञ था कि जिससे वह मनमोहक गीत, मनोहर नृत्य और मनोहर वाद्यवादन सभी के चित्त का आक्षेपक (ईर्ष्या-स्पर्धा जनक) था। दर्शकों के कहकहों—वाह-वाह के कोलाहल से नाट्यशाला को गुंजा रहा था। इस प्रकार से वे देवकुमार और कुमारिकायें दिव्य देवक्रीड़ा में प्रवृत्त हो रहे थे।

### नाट्याभिनयों का प्रदर्शन

८५— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स सोत्थिय-सिरिवच्छ-नंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ दप्पणमंगल्लभत्तिचित्तं णामं दिव्वं नट्टविधिं उवदंसेति ।

८५— तत्पश्चात् उस दिव्य नृत्य क्रीड़ा में प्रवृत्त उन देवकुमारों और कुमारिकाओं ने श्रमण भगवान् महावीर एवं गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों के समक्ष १. स्वस्तिक, २. श्रीवत्स, ३. नन्दावर्त, ४. वर्धमानक, ५. भद्रासन, ६. कलश, ७. मत्स्य और ८. दर्पण, इन आठ मंगल द्रव्यों का आकार रूप दिव्य नाट्य-अभिनय करके दिखलाया।

८६— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समयेव समोसरणं करेति करित्ता तं चेव भाणियव्वं जाव दिव्वे देवरमणे पवत्ते या वि होत्था ।

८६— तत्पश्चात् अर्थात् मंगलद्रव्याकार नाट्य-अभिनय सम्पन्न करने के पश्चात् दूसरी नाट्यविधि दिखाने के लिए वे देवकुमार और देवकुमारियां एकत्रित हुईं और एकत्रित होने से लेकर दिव्य देवरमण में प्रवृत्त होने पर्यन्त की पूर्वोक्त समस्त वक्तव्यता का यहां वर्णन करना चाहिए।

विवेचन— 'तं चेव भाणियव्वं' पद से यहां पूर्व में किये गये वर्णन की पुनरावृत्ति करने का संकेत किया है। उस वर्णन का सारांश इस प्रकार है—

सूर्याभदेव द्वारा आज्ञापित वे देवकुमार और देवकुमारियां श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों के समक्ष आये, उनके सामने एक साथ नीचे नमो फिर मस्तक ऊंचा कर सीधे खड़े हुए। इसी प्रकार सामूहिक रूप में नमन आदि किया। तत्पश्चात् अपने-अपने नृत्य गान के उपकरण और वाद्यों को लेकर वे सभी गाने, नाचने एवं नाट्य-अभिनय करने में प्रवृत्त हो गये।

८७— तए णं बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स आवड-पच्चावड-सेढिपसेढि-सोत्थिय-पूसमाणग-वद्धमाणग-मच्छण्डमगरंड-जार-मार-फुल्लावलि-पउमपत्त-सागर-तरंग-वसंतलता-पउमलयभत्तिचित्तं णाम दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेति ।

८७— तदनन्तर उन देवकुमारों और देवकुमारियों ने श्रमण भगवान् महावीर एवं गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों के सामने आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्य, माणवक, वर्धमानक, मत्स्याण्ड, मकराण्डक,

जार, मार, पुष्पावलि, पद्मपत्र, सागरतरंग, वासन्तीलता और पद्मलता के आकार की रचनारूप दिव्य नाट्यविधि का अभिनय करके बतलाया।

८८— एवं च एक्किकक्याए णट्टविहीए समोसरणादिया एसा वत्तव्वया जाव दिव्वे देव-रमणे पवत्ते या वि होत्था ।

८८— इसी प्रकार से प्रत्येक नाट्यविधि को दिखलाने के पश्चात् दूसरी प्रारम्भ करने के अन्तराल में उन देवकुमारों और देवकुमारियों के एक साथ मिलने से लेकर दिव्य देवक्रीड़ा में प्रवृत्त होने तक की समस्त वक्तव्यता [कथन] पूर्ववत् सर्वत्र कह लेना चाहिए।

८९— तए णं ते बहवे देवकुमारा देवकुमारियाओ य समणस्स भगवतो महावीरस्स ईहामिअ-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्ति-चित्तं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ।

८९— तदनन्तर उन सभी देवकुमारों और देवकुमारियों ने श्रमण भगवान् के समक्ष ईहामृग, वृषभ, तुरग-अश्व, नर-मानव, मगर, विहग-पक्षी, व्याल-सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ, चमर, कुंजर, वनलता और पद्मलता की आकृति-रचना-रूप दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया।

९०— एगतो वंके एगओ चक्कवालं दुहओ चक्कवालं चक्कद्धचक्कवालं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ।

९०— इसके बाद उन देवकुमारों और देवकुमारियों ने एकतोवक्र (जिस नाटक में एक ही दिशा में धनुषाकार श्रेणि बनाई जाती है), एकतश्चक्रवाल (एक ही दिशा में चक्राकार श्रेणि बने), द्विधातश्चक्रवाल (परस्पर सम्मुख दो दिशाओं में चक्र बने) ऐसी चक्रार्ध-चक्रवाल नामक दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया।

९१— चंदावलिपविभत्तिं च सुरावलिपविभत्तिं च वलयावलिपविभत्तिं च हंसावलिप०<sup>२</sup> च एगावलिप० च तारावलिप० मुत्तावलिप० च कणगावलिप० च रयणावलिप० च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ।

९१— इसी प्रकार अनुक्रम से उन्होंने चन्द्रावलि, सूर्यावलि, वलयावलि, हंसावलि, एकावलि, तारावलि, मुक्तावलि, कनकावलि और रत्नावलि की प्रकृष्ट-विशिष्ट रचनाओं से युक्त दिव्य नाट्यविधि का अभिनय प्रदर्शित किया।

९२— चंदुग्गमणप० च सुरुग्गमणप० च उग्गमणुग्गमणप० च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ।

१. किसी किसी प्रति में निम्नलिखित पाठ है—

एगतो वक्के दुहओ वंके एगतो खहं दुहओ खहं एगओ चक्कवालं दुहओ चक्कवालं चक्कद्धचक्कवालं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति । अर्थात् तत्पश्चात् एकतोवक्र, द्विधातोवक्र, एक ओर गगनमंडलाकृति, दोनों ओर गगनमंडलाकृति, एकतश्चक्रवाल द्विधातश्चक्रवाल ऐसी चक्रार्ध और चक्रवाल नामक दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया।

२. 'प०' अक्षर सर्वत्र 'पविभत्ति' शब्द का सूचक है ।

९२— तत्पश्चात् उन देवकुमारों और देवकुमारियों ने उक्त क्रम से चन्द्रोद्गमप्रविभक्ति, सूर्योद्गमप्रविभक्ति युक्त अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य के उदय होने की रचना वाले उद्गमनोद्गमन नामक दिव्य नाट्यविधि को दिखाया।

९३— चंदागमणप० च सूर्यागमणप० च आगमणागमणप० च णामं<sup>१</sup> उवदंसेति ।

९३— इसके अनन्तर उन्होंने चन्द्रागमन, सूर्यागमन की रचना वाली चन्द्र सूर्य आगमन नामक दिव्य नाट्यविधि का अभिनय किया।

९४— चंदावरणप० सूर्यावरणप० च आवरणावरणप० णामं उवदंसेति ।

९४— तत्पश्चात् चन्द्रावरण सूर्यावरण अर्थात् चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण होने पर जगत् और गगन मण्डल में होने वाले वातावरण की दर्शक आवरणावरण नामक दिव्य नाट्यविधि को प्रदर्शित किया।

९५— चंदत्थमणप० च सूरत्थमणप० अत्थमणऽत्थमणप० णामं उवदंसेति ।

९५— इसके बाद चन्द्र के अस्त होने, सूर्य के अस्त होने की रचना से युक्त अर्थात् चन्द्र और सूर्य के अस्त होने के समय के दृश्य से युक्त अस्तमयनप्रविभक्ति नामक नाट्यविधि का अभिनय किया।

९६— चंदमंडलप० च सूरमंडलप० च नागमंडलप० च जक्खमंडलप० च भूतमंडलप० च रक्खस-महोरग-गन्धव्वमंडलप० च मंडलमंडलप० नामं उवदंसेति ।

९६— तदनन्तर चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, नागमण्डल, यक्षमंडल, भूतमण्डल, राक्षसमण्डल, महोरगमण्डल और गन्धर्वमण्डल की रचना से युक्त अर्थात् इन सबके मण्डलों के भावों का दर्शक मण्डलप्रविभक्ति नामक नाट्य अभिनय प्रदर्शित किया।

९७— उसभमंडलप० च सीहमंडलप० च हयविलंबियं गयवि०<sup>३</sup> हयविलसियं गयविल-सियं मत्तहयविलसियं मत्तगजविलसियं मत्तहयविलंबियं मत्तगयविलंबियं द्रुतविलंबियं णामं णट्ट-विहं उवदंसेति ।

९७— तत्पश्चात् वृषभमण्डल, सिंहमण्डल की ललित गति, अश्व गति और गज की विलम्बित गति, अश्व और हस्ती की विलसित गति, मत्त अश्व और मत्त गज की विलसित गति, मत्त अश्व की विलम्बित गति, मत्त हस्ती की विलम्बित गति की दर्शक रचना से युक्त द्रुतविलम्बित प्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्यविधि का प्रदर्शन किया।

१. 'णाम' शब्द से सर्वत्र 'णामं दिव्यं णट्टविहं' यह पद ग्रहण करना चाहिए।

२. किसी-किसी प्रति में निम्न प्रकार का पाठ है—

उसभललियविककंतं सीहललियविककंतं हयविलंबियं गयवि० हयविलसियं गयविलसियं मत्तहयविलसियं मत्तगजविलसियं मत्तहयवि, मत्तगयवि, द्रुयविलम्बियं णामं णट्टविहं उवदंसेति ।

इसके बाद वृषभ-बैल की ठुमकती हुई ललित गति, सिंह की ठुमकती हुई ललित गति, अश्व की विलंबित गति, गज की विलंबित गति, मत्त अश्व की विलसित गति, मत्त गज की विलसित गति, मत्त अश्व की विलंबित गति, मत्त गज की विलंबित गति की दर्शक रचनावाली द्रुतविलंबित नामक नाट्यविधि को दिखाया।

३. 'वि०' पद से 'विलंबित' पद ग्रहण करना चाहिए।

९८— सागरप्रविभक्तिं च नागरप० च सागर-नागर प० च णामं उवदंसेति ।

९८— इसके बाद सागर प्रविभक्ति, नागर-प्रविभक्ति अर्थात् समुद्र और नागर सम्बन्धी रचना से युक्त सागर-नागर-प्रविभक्ति नामक अपूर्व नाट्यविधि का अभिनय दिखाया।

९९— णंदाप० च चंपाप० नन्दा-चंपाप० च णामं उवदंसेति ।

९९— तत्पश्चात् नन्दाप्रविभक्ति—नन्दा पुष्करिणी की सुरचना से युक्त, चम्पा प्रविभक्ति—चम्पक वृक्ष की रचना से युक्त नन्दा-चम्पाप्रविभक्ति नामक दिव्यनाट्य का अभिनय दिखाया।

१००— मच्छंडाप० च मयरंडाप० च जारप० च मारप० च मच्छंडा-मयरंडा-जारा-माराप० च णामं उवदंसेति ।

१००— तत्पश्चात् मत्स्याण्डक, मकराण्डक, जार, मार की आकृतियों की सुरचना से युक्त मत्स्याण्ड-मकराण्ड-जार-मार प्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्यविधि दिखलाई।

१०१— 'क' त्ति ककारप० च, 'ख' त्ति खकारप० च, 'ग' त्ति गकारप० च, 'घ' त्ति घकारप० च, 'ङ' त्ति ङकारप० च, ककार-खकार-गकार-घकार-ङकारप० च णामं उवदंसेति, एवं चकारवगो पि टकारवगो वि तकारवगो वि पकारवगो वि ।

१०१— तदनन्तर उन देवकुमारों और देवकुमारियों ने क्रमशः 'क' अक्षर की आकृति-रचना करके ककार-प्रविभक्ति, 'ख' की आकार-रचना करके खकारप्रविभक्ति, 'ग' की आकृति-रचना द्वारा गकारप्रविभक्ति, 'घ' अक्षर के आकार की रचना द्वारा घप्रविभक्ति और 'ङ' के आकार की रचना द्वारा ङकारप्रविभक्ति, इस प्रकार ककार-खकार-गकार-घकार-ङकारप्रविभक्ति नाम की दिव्य नाट्यविधियों का प्रदर्शन किया।

इसी तरह से चकार-छकार-जकार-झकार-ञकार की रचना करके चकारवर्गप्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्य-विधि का अभिनय किया।

चकार वर्ग के पश्चात् क्रमशः ट-ठ-ड-ढ-ण के आकार की सुरचना द्वारा टकारवर्गप्रविभक्ति नामक नाट्यविधि का प्रदर्शन किया।

टकारवर्ग के अनन्तर क्रम प्राप्त तकार-थकार-दकार-धकार-नकार की रचना करके तकारवर्गप्रविभक्ति नामक नाट्यविधि को दिखलाया।

तकारवर्ग के नाट्याभिनय के अनन्तर प, फ, ब, भ, म के आकार की रचना करके पकारवर्गप्रविभक्ति नाम की दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया।

**विवेचन**— यहां लिपि सम्बन्धी अभिनयों के उल्लेख में ककार से पकार पर्यन्त पांच वर्गों के पच्चीस अक्षरों के अभिनयों का ही संकेत किया है, उसमें स्वरों तथा य, र, ल, व, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ अक्षरों के अभिनयों का उल्लेख नहीं है। इसका कोई ऐतिहासिक कारण है या अन्य, यह विचारणीय है। अथवा सम्भव है कि देवों की लिपि में ककार से लेकर पकार तक के अक्षर होते हों जिससे उन्हीं का अभिनय प्रदर्शित किया है।

इन लिपि सम्बन्धी अभिनयों में 'क' वगैरह की जो मूल आकृतियां ब्राह्मी लिपि में बताई हैं, आकृतियों के सदृश अभिनय यहां समझना चाहिए। जैसे कि ब्राह्मी लिपि में क की + ऐसी आकृति है, अतएव इस आकृति के

अनुरूप स्थिर होकर अभिनय करके बताना 'क' की आकृति का अभिनय कहलायेगा। इसी प्रकार लिपि सम्बन्धी शेष दूसरे सभी अभिनयों के लिए भी समझ लेना चाहिए।

१०२— असोयपल्लवप० च, अंबपल्लवप० च, जंबूपल्लवप० च, कोसंबपल्लवप० च, पल्लवप०<sup>१</sup> च णामं उवदंसेति ।

१०२— तत्पश्चात् अशोकपल्लव (अशोकवृक्ष का पत्ता), आम्रपल्लव, जम्बू (जामुन) पल्लव, कोशाग्र-पल्लव की आकृति-जैसी रचना से युक्त पल्लवप्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्यविधि प्रदर्शित की।

१०३— पउमलयाप० जाव (नागलयाप० असोगलयाप० चंपगलयाप० चूयलयाप० वणलयाप० वासंतियलयाप० अइमुत्तयलयाप० कुंदलयाप०) सामलयाप० च लयाप०<sup>२</sup> च णामं उवदंसेति ।

१०३— तदनन्तर पद्मलता यावत् नागलता, अशोकलता, चंपकलता, आम्रलता, वनलता, वासंतिलता, अतिमुक्तकलता और श्यामलता की सुरचना वाला लताप्रविभक्ति नामक नाट्याभिनय प्रदर्शित किया।

१०४— दुयणामं उवदंसेति । विलंबियं णामं उव० । दुयविलंबियं णामं उव० । अंचियं, रिभियं, अंचियरिभियं, आरभडं, भसोलं, आरभडभसोलं, उप्पयनिवयपवत्तं, संकुचियं पसारियं रयारइयं भंतं संभंतं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेति ।

१०४— इसके पश्चात् अनुक्रम से द्रुत, विलंबित, द्रुतविलंबित, अंचित, रिभित, अंचितरिभित, आरभट, भसोल और आरभटभसोल नामक नाट्यविधियों का अभिनय प्रदर्शित किया।

तदनन्तर उत्पात—(ऊपर नीचे उछलने कूदने) निपात, संकुचित-प्रसारित, भय और हर्षवश शरीर के अंगोपांगों को सिकोड़ना और फैलाना, रयारइय (?) भ्रान्त और संभ्रान्त सम्बन्धी क्रियाओं विषयक दिव्य नाट्य-अभिनयों को दिखाया।

**विवेचन**— पूर्वोक्त नाट्यविधियों का स्वरूप-प्रतिपादन नाट्यविधिप्राभृत में किया गया है। परन्तु पूर्वोक्त के विच्छिन्न होने से इन विधियों का पूर्ण रूप से जैसा का तैसा वर्णन करना सम्भव नहीं है। वर्तमान में भरत का नाट्यशास्त्र उपलब्ध है। जिसमें नाट्य, संगीत आदि से सम्बन्धित विषयों की जानकारी दी गई है। यहां देवों ने जिन नाट्यों का प्रदर्शन किया है, उनमें से कुछ एक के नाम तो इस नाट्यशास्त्र में भी आये हैं, यथा—संकुचित, प्रसारित, द्रुत, विलंबित, अंचित इत्यादि।

सूत्र ९२ से १०४ पर्यन्त संगीत और वाद्यों के वर्णन के साथ नाट्यविधियों के अभिनयों का वर्णन किया गया है। अनेक अभिनय तो ऐसे हैं जिनके भाव समझ में आ सकते हैं। इनमें से कतिपय पशुपक्षियों, वनस्पतियों, जगत् के अन्य पदार्थों, प्राकृतिक प्रसंगों और उत्पातों एवं लिपि-आकारों से सम्बन्धित हैं।

१०५— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समामेव समोसरणं करंति जाव

१. 'पल्लव पल्लव प.' इति पाठान्तरम् ।

२. 'लया लया प.' इति पाठान्तरम् ।

दिव्ये देवरमणे पवत्ते यावि होत्था ।

१०५— तदनन्तर अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार की नाट्यविधियों का प्रदर्शन करने के अनन्तर वे देवकुमार और देवकुमारियां एक स्थान पर एकत्रित हुए यावत् दिव्य देवरमत में प्रवृत्त हो गये।

भगवान् महावीर के जीवन-प्रसंगों का अभिनय

१०६— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स पुव्वभवचरियणिबद्धं च, चवणचरियणिबद्धं च, संहरणचरियनिबद्धं च, जम्मणचरियनिबद्धं च, अभिसेअचरियनिबद्धं च, बालभावचरियनिबद्धं च, जोव्वण-चरियनिबद्धं च, कामभोगचरिय-निबद्धं च, निक्खमण-चरियनिबद्धं च, तवचरणचरियनिबद्धं च, गाणुप्पायचरियनिबद्धं च तित्थपवत्तणचरिय-परिनिव्वाणचरियनिबद्धं च, चरिमचरियनिबद्धं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ।

१०६— तत्पश्चात् उन सब देवकुमारों एवं देवकुमारियों ने श्रमण भगवान् महावीर के पूर्व भवों सम्बन्धी चरित्र से निबद्ध एवं वर्तमान जीवन सम्बन्धी, च्यवनचरित्रनिबद्ध, गर्भसंहरणचरित्रनिबद्ध, जन्मचरित्रनिबद्ध, जन्माभिषेक, बालक्रीडानिबद्ध, यौवनचरित्रनिबद्ध (गृहस्थावस्था से सम्बन्धित) अभिनिष्क्रमण-चरित्रनिबद्ध (दीक्षामहोत्सव से सम्बन्धित), तपश्चरण-चरित्रनिबद्ध (साधनाकालीन दृश्य) ज्ञानोत्पादचरित्र-निबद्ध (कैवल्य प्राप्त होने की परिस्थिति का चित्रण), तीर्थ-प्रवर्तनचरित्र से सम्बन्धित, परिनिर्वाण चरित्रनिबद्ध (मोक्ष प्राप्त होने के समय का दृश्य) तथा चरमचरित्रनिबद्ध (निर्वाण प्राप्त हो जाने के पश्चात् देवों आदि द्वारा किये जाने वाले महोत्सव से सम्बन्धित) नामक अंतिम दिव्य नाट्य-अभिनय का प्रदर्शन किया।

विवेचन— देवों द्वारा श्रमण भगवान् महावीर एवं गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों के समक्ष प्रदर्शित बत्तीस प्रकार के नाट्य-अभिनयों में से अंतिम (बत्तीसवां अभिनय) श्रमण भगवान् महावीर की जीवन-घटनाओं के मुख्य-मुख्य प्रसंगों से सम्बन्धित है। यह सब देखकर तत्कालीन अभिनयकला की परम प्रकर्षता का दृश्य उपस्थित हो जाता है और उस-उस अभिनय की उपयोगिता भी परिज्ञात हो जाती है।

नाट्याभिनय का उपसंहार

१०७— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य चउव्विहं वाइत्तं वाएत्ति तं जहा— ततं-विततं-घणं-झुसिरं ।

१०७— तत्पश्चात् (दिव्य नाट्यविधियों को प्रदर्शित करने के पश्चात्) उन सभी देवकुमारों और देवकुमारियों ने ढोल-नगाड़े आदि तत, वीणा आदि वितत, झांझ आदि घन और शंख, बांसुरी आदि शुषिर इन चतुर्विध वादित्रों— बाजों को बजाया।

१०८— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य चउव्विहं गेयं गायंति तं जहा— उक्खित्तं-पायंतं-मंदायं-रोइयावसाणं च ।

१०८— वादित्रों को बजाने के अनन्तर उन सब देवकुमारों और देवकुमारियों ने उत्क्षिप्त, पादान्त (पादवृद्ध),

मंदक और रोचितावसान रूप चार प्रकार का संगीत (गाना) गाया।

१०९— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य चउव्विहं णडुविहिं उवदंसंति, तं जहा—अंचियं-रिभियं-आरभडं-भसोलं च ।

१०९— तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारों और देवकुमारियों ने अंचित, रिभित, आरभट एवं भसोल इन चार प्रकार की नृत्यविधियों को दिखाया।

११०— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ च चउव्विहं अभिणयं अभिणएंति, तं जहा—दिट्ठितियं पाडितियं ( पाडियंतियं )—सामान्नाविणिवाइयं—अंतो-मज्झावसाणियं च ।

११०— तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारों और देवकुमारियों ने चार प्रकार के अभिनय प्रदर्शित किये, यथा—दार्ष्टान्तिक, प्रात्यंतिक, सामान्यतोविनिपातनिक और अन्तर्मध्यावसानिक ( लोकमध्यावसानिक )।

**विवेचन—** सूत्र संख्या १०७-११० पर्यन्त नाटकों का प्रदर्शन करने के पश्चात् उपसंहार रूप चार प्रकार के वाद्यों को बजाने, संगीतों को गाने एवं नृत्यों और अभिनयों को करने का उल्लेख किया है।

वाद्यादि अभिनय पर्यन्त चार-चार प्रकारों को बतलाने का कारण यह है कि ये उन-उनके मूल हैं। अर्थात् वाद्यों, राग-रागनियों आदि के अलग-अलग नाम होने पर भी वे सभी मुख्य-गौण भाव से इन चार प्रकारों के ही विविध रूप हैं।

प्रस्तुत में तत आदि शब्दों के वाद्यों के उत्कृष्ट आदि शब्दों से संगीत के और अंचित आदि शब्दों से नृत्य के चार-चार भेद और उनके सामान्य अर्थ तो समझ लिये जा सकते हैं तथा इसी प्रकार अभिनय के जो चार प्रकार बतलाये हैं उनमें से दृष्टान्तिक अभिनय—किसी प्रकार के दृष्टान्त का अभिनय। प्रत्यन्त का अर्थ म्लेच्छदेश है ('प्रत्यन्तो म्लेच्छमण्डलः'—अभिधान चिन्तामणि कोश ४, श्लोक १८)। भोट (भूटान) आदि देशों की म्लेच्छ देशों में गणना है। इन देशों के निवासियों और उनके आचरण अथवा किसी प्रसंग आदि का अभिनय प्रात्यंतिक अभिनय है। सामान्य प्रकार के अभिनय को सामान्यतोपनिपातनिक और लोक के मध्य या अन्त सम्बन्धी अभिनय को अन्तर्मध्यावसानिक अभिनय कहते हैं। यह अभिनय के प्रकारसूचक शब्दों का शब्दार्थमात्र है। परन्तु उन सभी के विशेष अर्थ को समझने के लिए संगीत तथा अभिनय विशारदों एवं नाट्यशास्त्र से जानकारी प्राप्त करना चाहिए।

१११— तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य गोयमादियाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविट्ठं दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसइबद्धं नाडयं उवदंसित्ता समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करंति, करित्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेति वद्धावित्ता एवं आणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

१११— तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारों और देवकुमारियों ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को दिव्य देववृद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव प्रदर्शक बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधियों को दिखाकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् जहां अपना अधिपति सूर्याभदेव था वहां आये। वहां आकर दोनों हाथ जोड़कर सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके सूर्याभदेव

को 'जय विजय हो' शब्दोच्चारणों से बधाया और बधाकर आज्ञा वापस सौंपी, अर्थात् निवेदन किया कि आपकी आज्ञा के अनुसार हम श्रमण भगवान् महावीर आदि के पास जाकर बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि दिखा आये हैं।

११२— तए णं से सूरियाभे देवे तं दिव्वं देविद्धिं, दिव्वं देवजुइं, दिव्वं देवाणुभावं पडिसाहरइ, पडिसाहरेत्ता खणेणं जाते एगे एगभूए ।

तए णं से सूरियाभे देवे समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता नियगपरिवालसद्धिं संपरिवुडे तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरूहति दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

११२— तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव ने अपनी सब दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव-प्रभाव को समेट लिया—अपने शरीर में प्रविष्ट कर लिया और शरीर में प्रविष्ट करके क्षणभर में अनेक होने से पूर्व जैसा अकेला था वैसा ही एकाकी बन गया।

इसके बाद सूर्याभ देव ने श्रमण भगवान् महावीर को दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके अपने पूर्वोक्त परिवार सहित जिस यान-विमान से आया था उसी दिव्य-यान-विमान पर आरूढ़ हुआ। आरूढ़ होकर जिस दिशा से—जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया।

### गौतमस्वामी की जिज्ञासा : भगवान् का समाधान

११३— 'भंते' त्ति भयवं गोयमे समणं भगवंतं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी<sup>१</sup>— सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स एसा दिव्वा देविद्धी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभावे

१. कहीं कहीं यह पाठान्तर देखने में आता है—

‘तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जिट्ठे अन्तेवासी इंदभूई नामं अणगारे गोयमसगोत्ते सत्तुस्सेहे समचउरंसंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे कणगपुलगनिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे उराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूडसरीरे संखित्तविपुलतेयलेस्से चउदसपुव्वी चउनाणोवगए सव्वक्खर-सन्निवाई समणस्स भगवतो महावीरस्स अदूरसामंतं उड्डंजाणु अहोसिरे ज्ञाणकोट्टोवगए संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं से भगवं गोयमे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहल्ले संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोउहल्ले समुप्पणसड्ढे समुप्पणसंसए समुप्पणकोउहल्ले उट्टाए उट्टेइ उट्टाए उट्टित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेत्ति, तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेत्ता वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—’

‘उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी—शिष्य गौतम गोत्रीय, सात हाथ ऊंचे, समचौरस संस्थान एवं वज्रऋषभनाराच संहनन वाले, कसौटी पर खींची गई स्वर्ण रेखा तथा कमल की केशर के समान गौरवर्ण वाले, उग्रतपस्वी, कर्मवन को दग्ध करने के लिए अग्निवत् जाज्वल्यमान तप वाले, तप्त तपस्वी—आत्मा को तपानेवाले, महातपस्वी—दीर्घतप करनेवाले, उदार-प्रधान, घोर—कषायादि के उन्मूलन में कठोर, घोरगुण—दूसरों के द्वारा दुरनुचर मूलोत्तर गुणों से सम्पन्न घोरतपस्वी—बड़ी-बड़ी तपस्यायें करने वाले, घोर ब्रह्मचर्यवासी—अन्यों के लिए

**कहिं गते ? कहिं अणुप्पविट्ठे ?**

११३— तदनन्तर—सूर्याभदेव के वापस जाने के अनन्तर—‘हे भदन्त’ इस प्रकार से संबोधित कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके विनयपूर्वक इस प्रकार पूछा—

प्रश्न—हे भगवन्! सूर्याभदेव की वह सब पूर्वोक्त दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव-प्रभाव कहां चला गया ? कहां प्रविष्ट हो गया—समा गया ?

**११४— गोयमा ! सरीरं गते सरीरं अणुप्पविट्ठे ।**

११४— उत्तर— हे गौतम! सूर्याभदेव द्वारा रचित वह सब दिव्य देव ऋद्धि आदि उसके शरीर में चली गई, शरीर में प्रविष्ट हो गई—समा गई, अन्तर्लीन हो गई।

**११५— से केणट्टेणं भंते ! एवं वुच्चइ सरीरं गते, सरीरं अणुप्पविट्ठे ?**

११५— प्रश्न— हे भदन्त! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि शरीर में चली गई, शरीर में अनुप्रविष्ट—अन्तर्लीन हो गई ?

११६— गोयमा ! से जहानामए कूडागारसाला सिया-दुहतो लित्ता गुत्ता गुत्तदुवारा णिवाया णिवायगंभीरा, तीसे णं कूडागारसालाए अदूरसामंते एत्थ णं महेगे जणसमूहे चिट्ठति, तए णं से जणसमूहे एगं महं अब्बहल्लगं वा वासबहल्लगं वा महावायं वा एज्जमाणं वा पासति, पासित्ता तं कूडागारसालं अंतो अणुप्पविसित्ता णं चिट्ठइ, से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं वुच्चति—‘सरीरं अणुप्पविट्ठे’ ।

११६— हे गौतम! जैसे कोई एक भीतर-बाहर गोबर आदि से लिपी-पुती, बाह्य प्राकार—परकोटे—से घिरी हुई, मजबूत किवाड़ों से युक्त गुप्त द्वार वाली निर्वात—वायु का प्रवेश भी जिसमें दुष्कर है, ऐसी गहरी, विशाल कूटाकार—पर्वत के शिखर के आकार वाली—शाला हो। उस कूटाकार शाला के निकट एक विशाल जनसमूह बैठा हो। उस समय वह जनसमूह आकाश में एक बहुत बड़े मेघपटल को अथवा जलवृष्टि करने योग्य बादल को अथवा

कठिन ब्रह्मचर्य में लीन, शारीरिक संस्कारों और ममत्व का त्याग करने वाले, विपुल तेजोलेश्या को संक्षिप्त करके शरीर में समाहित करने वाले, चौदह पूर्वों के ज्ञाता, मति आदि मनपर्याय पर्यन्त चार ज्ञानों से समन्वित, सर्व अक्षरों और उनके संयोगजन्य रूपों को जानने वाले गौतम नामक अनगार श्रमण भगवान् महावीर से न अतिदूर और न अति समीप अर्थात् उचित स्थान में स्थित होकर ऊपर घुटने और नीचा मस्तक रखकर—मस्तक नमाकर ध्यान रूपी कोष्ठ में विराजमान होकर संयम तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

तत्पश्चात् भगवान् गौतम को तत्त्वविषयक श्रद्धा—जिज्ञासा हुई, संशय हुआ, कुतूहल हुआ, श्रद्धा उत्पन्न हुई, संशय उत्पन्न हुआ, कुतूहल उत्पन्न हुआ, विशेषरूप से श्रद्धा उत्पन्न हुई, विशेषरूप से संशय उत्पन्न हुआ, विशेष रूप से कुतूहल उत्पन्न हुआ, जब विशेष रूप से श्रद्धा उत्पन्न हुई, विशेष रूप से संशय उत्पन्न हुआ और विशेष रूप से कुतूहल उत्पन्न हुआ। तब अपने स्थान से उठ खड़े हुए और उठकर जहां श्रमण भगवान् महावीर विराज रहे थे, वहां आये, वहां आकर दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर श्रमण भगवान् महावीर की प्रदक्षिणा की। तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके वन्दन और नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—निवेदन किया—।’

प्रचण्ड आंधी को आता हुआ देखे तो जैसे वह उस कूटाकार शाला के अंदर प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हे गौतम! सूर्याभदेव की वह सब दिव्य देवऋद्धि आदि उसके शरीर में प्रविष्ट हो गई—अन्तर्लीन हो गई है, ऐसा मैंने कहा है।

### सूर्याभदेव के विमान का अवस्थान और वर्णन

११७— कहि णं भंते ! सूरियाभस्स देवस्स सूरियाभे नामं विमाणे पन्नत्ते ?

११७— हे भगवन्! उस सूर्याभदेव का सूर्याभ नामक विमान कहां पर कहा गया है ?

११८— गोयमा ! जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो उड्डं चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोअण-सयाइं एवं-सहस्साइं-सयसहस्साइं, बहुइंओ जोअणकोडीओ, जोअणसयकोडीओ, जोअणसहस्स-कोडीओ, बहुइंओ जोअणसयसहस्सकोडीओ बहुइंओ जोअण-कोडाकोडीओ उड्डं दूरं वीती-वइत्ता एत्थ णं सोहम्मे नामं कप्पे पन्नत्ते-पाईणपडीणायते उदीणदाहिण-वित्थिण्णे, अब्धचंदसंठाण-संठिते, अच्चिमालिभासरासिवण्णाभे, असंखेज्जाओ जोअणकोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोअणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं, एत्थ णं सोहम्माणं देवाणं बत्तीसं विमाणा-वासयसहस्साइं भवंति इति, मक्खायं । ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा जाव ( सण्हा लण्हा, घट्ठा मट्ठा, णीरया निम्मला, निप्यंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासादीया, दरिसणिज्जा अभिरूवा ) पडिरूवा । तेसिं णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभाए पंच वडिंसया पन्नत्ता, तं जहा—असोगवडिंसए सत्तवण्णवडिंसए चंपगवडिंसए चूतवडिंसए मज्झे सोधम्मवडिंसए । ते णं वडिंसगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

तस्स णं सोधम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमेणं तिरियं असंखेज्जाइं जोयणसय-सहस्साइं वीइवइत्ता एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स सूरियाभे विमाणे पण्णत्ते, अब्धतेरस जोयणसय-सहस्साइं आयामविक्खंभेणं<sup>१</sup>, अउणयालीसं च सयसहस्साइं बावन्नं च सहस्साइं अट्ठ य अडयाल जोयणसते<sup>२</sup> परिक्खेवेणं ।

११८— हे गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर (सुमेरु) पर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के रमणीय समतल भूभाग से ऊपर ऊर्ध्वदिशा में चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण नक्षत्र और तारामण्डल से आगे भी ऊंचाई में बहुत से सैकड़ों योजनों, हजारों योजनों, लाखों, करोड़ों योजनों और सैकड़ों करोड़, हजारों करोड़, लाखों करोड़ योजनों, करोड़ों करोड़ योजन को पार करने के बाद प्राप्त स्थान पर सौधर्मकल्प नाम का कल्प है—अर्थात् सौधर्म नामक स्वर्गलोक है।

यह सौधर्मकल्प पूर्व-पश्चिम लम्बा और उत्तर-दक्षिण विस्तृत—चौड़ा है, अर्धचन्द्र के समान उसका आकार

१. पाठान्तर—भूतवडिंसए, भूयगवडिंसते ।

२. पाठान्तर—अतो तेरसय सहस्साइं आयामविक्खंभेणं बायालीसं च सयसहस्साइं अट्ठ य अड० ।

३. अउणयालीसं च सयसहस्साइं अट्ठ य अडयालजोयणसते ।

है, सूर्य किरणों की तरह अपनी द्युति—कान्ति से सदैव चमचमाता रहता है। असंख्यात कोडाकोडि योजन प्रमाण उसकी लम्बाई-चौड़ाई तथा असंख्यात कोटाकोटि योजन प्रमाण उसकी परिधि है।

उस सौधर्मकल्प में सौधर्मकल्पवासी देवों के बत्तीस लाख विमान बताये हैं। वे सभी विमानावास सर्वात्मना रत्नों से बने हुए स्फटिक मणिवत् स्वच्छ यावत् (सलौने, अत्यन्त चिकने, घिसे हुए, मंजे हुए, नीरज, निर्मल, निष्कलंक, निरावरण, दीप्ति, कान्ति, तेज और उद्योत—प्रकाशयुक्त, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, मनोहर एवं) अतीव मनोहर हैं।

उन विमानों के मध्यातिमध्य भाग में—ठीक बीचोंबीच—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चार दिशाओं में अनुक्रम से अशोक-अवतंसक, सप्तपर्ण-अवतंसक, चंपक-अवतंसक, आम्र-अवतंसक तथा मध्य में सौधर्म-अवतंसक, ये पांच अवतंसक (मुख्य श्रेष्ठ भवन) हैं। ये पांचों अवतंसक भी रत्नों से निर्मित, निर्मल यावत् प्रतिरूप—अतीव मनोहर हैं।

उस सौधर्म-अवतंसक महाविमान की पूर्व दिशा में तिरछे असंख्यात लाख योजन प्रमाण आगे जाने पर आगत स्थान में सूर्याभदेव का सूर्याभ नामक विमान है। उसका आयाम-विष्कंभ (लम्बाई-चौड़ाई) साढ़े बारह लाख योजन और परिधि उनतालीस लाख बावन हजार आठ सौ अड़तालीस योजन है।

११९— से णं एगेणं पागारेणं सव्वओ समंता संपरिक्खत्ते । से णं पागारे तिण्णि जोयणसयाइं उड्डं उच्चत्तेणं, मूले एगं जोयणसयं विक्खंभेणं, मज्जे पत्रासं जोयणाइं विक्खंभेणं, उप्पिं पणवीसं जोयणाइं विक्खंभेणं । मूले वित्थिण्णे, मज्जे संखित्ते उप्पिं तणुए, गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे ।

११९— वह सूर्याभ विमान चारों दिशाओं में सभी ओर से एक प्राकार—परकोटे से घिरा हुआ है। यह प्राकार तीन सौ योजन ऊंचा है, मूल में इस प्राकार का विष्कंभ (चौड़ाई) एक सौ योजन, मध्य में पचास योजन और ऊपर पच्चीस योजन है। इस तरह यह प्राकार मूल में चौड़ा, मध्य में संकड़ा और सबसे ऊपर अल्प—पतला होने से गोपुच्छ के आकार जैसा है। यह प्राकार सर्वात्मना रत्नों से बना होने से रत्नमय है, स्फटिकमणि के समान निर्मल है यावत् प्रतिरूप-अतिशय मनोहर है।

१२०— से णं पागारे णाणाविहपंचवण्णेहिं कविसीसएहिं उपसोभिते, तं जहा—कण्हेहि य नीलेहि य लोहितेहिं हालिदेहिं सुविकल्लेहिं कविसीसएहिं । ते णं कविसीसगा एगं जोयणं आयामेणं, अद्धजोयणं विक्खंभेणं, देसूणं जोयणं उड्डं उच्चत्तेणं सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

१२०— वह प्राकार अनेक प्रकार के कृष्ण, नील, लोहित—लाल, हारिद्र—पीले और श्वेत इन पांच वर्णों वाले कपिशिर्षकों (कंगूरों) से शोभित है।

ये प्रत्येक कपिशिर्षक (कंगूर) एक-एक योजन लम्बे, आधे योजन चौड़े और कुछ कम एक योजन ऊंचे हैं तथा ये सब रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् बहुत रमणीय हैं।

## सूर्याभविमान के द्वारों का वर्णन

१२१— सूरियाभस्स णं विमाणस्स एगमेगाए बाहाए दारसहस्सं दारसहस्सं भवतीति मक्खायं ।

ते णं दारा पंच जोयणसयाइ उडुं उच्चत्तेणं अड्डाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं, सेया वरकणगथूभियागा ईहामिय-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्ति-चित्ता, खंभुगयवरवयरवेइयापरिगयाभिरामा, विज्जा-हरजमलजुयलजंतजुत्ता विव, अच्चीसहस्समालणीया रूवगसहस्सकलिया, भिसमाणा भिब्भिसमाणा, चक्खुल्लोयणलेसा, सुहफासा सस्सिरीय रूवा ।

वन्नो दाराणं तेसिं होइ—तं जहा—वइरामया णिम्मा, रिट्टमया पडट्ठाणा, वेरुलियमया खंभा, जायरूवोवचिय-पवरपंचवन्न-मणिरयण-कोट्टिमतला, हंसगभमया एलुया, गोमेज्जमया इंदकीला, लोहियक्खमतीतो चेडाओ, जोईरसमया उत्तरंगा, लोहियक्खमईओ सूईओ, वयरामया संधी, नाणामणिमया समुगया, वयरामया अगला-अगलपासाया, रययामयाओ आवत्तण-पेढियाओ । अंकुत्तरपासगा, निरंतरियघणकवाडा भित्तिसु चेव भित्तगुलिता छपन्न तिण्णि होंति गोमाणसिया तत्तिया णाणामणिरयणवालरूवगलीलट्टिसालभंजियागा, वयरामया कूडा, रययामया उस्सेहा, सव्वतवणिज्जमया उल्लोया, णाणामणिरयणजालपंजर-मणिवंसगलोहियक्खपडिवंसगरयय-भोमा, अंकामया पक्खा-पक्खबाहाओ, जोईरसामया वंसा-वंसकवेल्लुयाओ, रययामईओ पट्टियाओ, जायरूवमईओ ओहाडणीओ, वइरामईओ उवरिपुञ्छणीओ, सव्वसेयरययामये छायणे, अंकमयकणग-कडतवणिज्जथूभियागा, सेया संखतलविमलनिम्मलदधिघण-गोखीर-फेणरययणिगरप्पगासा तिलग-रयणद्धचंदचित्ता<sup>१</sup> नाणामणिदामालंकिया, अंतो बहिं च सण्हा तवणिज्जबालुया पत्थडा, सुहफासा, सस्सिरीयरूवा, पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

१२१— सूर्याभदेव के उस विमान की एक-एक बाजू में एक-एक हजार द्वार कहे गये हैं, अर्थात् उस विमान की पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन चारों दिशाओं में से प्रत्येक में एक-एक हजार द्वार हैं ।

ये प्रत्येक द्वार पांच-पांच सौ योजन ऊंचे हैं, अढ़ाई सौ योजन चौड़े हैं और इतना ही (अढ़ाई सौ योजन) इनका प्रवेशन—गमनागमन के लिए घुसने का स्थान—है। ये सभी द्वार श्वेत वर्ण के हैं। उत्तम स्वर्णमयी स्तूपिकाओं—शिखरों से सुशोभित हैं। उन पर ईहामृग, वृषभ, अश्व, नर, मकर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ-अष्टापद चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम चित्रित हैं।

स्तम्भों पर बनी हुई वज्र रत्नों की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पड़ते हैं। समश्रेणी में स्थित विद्याधरों के युगल यन्त्र द्वारा चलते हुए—से दीख पड़ते हैं। वे द्वार हजारों किरणों से व्याप्त और हजारों रूपकों—चित्रों से युक्त होने से दीप्यमान और अतीव देदीप्यमान हैं। देखते ही दर्शकों के नयन उनमें चिपक जाते हैं। उनका स्पर्श सुखप्रद है। रूप शोभासम्पन्न है।

उन द्वारों का वर्ण-स्वरूपवर्णन इस प्रकार है—

१. पाठान्तः—सङ्घतल-विमल निम्मल-दहिघण-गोखीरफेण-रययनियरप्पगासद्धचन्दचित्ताइं ।

उन द्वारों के नेम (भूभाग से ऊपर निकले प्रदेश) वज्ररत्नों से, प्रतिष्ठान (मूल पाये) रिष्ट रत्नों से, स्तम्भ वैदूर्य मणियों से तथा तलभाग स्वर्णजड़ित पंचरंगे मणि रत्नों से बने हुए हैं। इनकी देहलियां हंसगर्भ रत्नों की, इन्द्रकीलियां गोमेदरत्नों की, द्वारशाखायें लोहिताक्ष रत्नों की, उत्तरंग (ओतरंग—द्वार के ऊपर पाटने के लिए तिरछा रखा पाटिया) ज्योतिरस रत्नों के, दो पाटियों को जोड़ने के लिए ठोकी गई कीलियां लोहिताक्षरत्नों की हैं और उनकी सांधे वज्ररत्नों से भरी हुई हैं। समुद्रगक (कीलियों का ऊपरी हिस्सा—टोपी) विविध मणियों के हैं। अर्गलायें अर्गलापाशक (कुंदा) वज्ररत्नों के हैं। आवर्तन पीठिकायें (इन्द्रकीली का स्थान) चांदी की हैं। उत्तरपार्श्वक (वेनी) अंक रत्नों के हैं। इनमें लगे किवाड़ इतने सटे हुए सघन हैं कि बन्द करने पर थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं रहता है। प्रत्येक द्वार की दोनों बाजुओं की भीतों में एक सौ अड़सठ-एक सौ अड़सठ सब मिलाकर तीन सौ छप्पन भित्तिगुलिकायें (देखने के लिए गोल-गोल गुप्त झरोखे) हैं और उतनी ही गोमानसिकायें—बैठकें हैं—प्रत्येक द्वार पर अनेक प्रकार के मणि रत्नमयी व्यालरूपों—सर्पों—से क्रीड़ा करती पुतलियां बनी हुई हैं। अथवा सर्परूप धारिणी अनेक प्रकार के मणि-रत्नों से निर्मित क्रीड़ा करती हुई पुतलियां इन द्वारों पर बनी हुई हैं। इनके माड़ वज्ररत्नों के और माड़ के शिखर चांदी के हैं और द्वारों के ऊपरी भाग स्वर्ण के हैं। द्वारों के जालीदार झरोखे भांति-भांति के मणि-रत्नों से बने हुए हैं। मणियों के बांसों का छप्पर है और बांसों को बांधने की खपच्चियां लोहिताक्ष रत्नों की हैं। रजतमयी भूमि है अर्थात् छप्पर पर चांदी की परत बिछी हुई है। उनकी पाखें और पाखों की बाजुयें अंकरत्नों की हैं। छप्पर के नीचे सीधी और आड़ लगी हुई वल्लियां तथा कबेलू ज्योतिरस-रत्नमयी हैं। उनकी पाटियां चांदी की हैं। अवघाटनियां (कबेलुओं के ढक्कन) स्वर्ण की बनी हुई हैं। उपरि प्रोच्छनियां (टाटियां) वज्ररत्नों की हैं। टाटियों के ऊपर और कबेलुओं के नीचे के आच्छादन सर्वात्मना श्वेत-धवल और रजतमय हैं। उनके शिखर अंकरत्नों के हैं और उन पर तपनीय—स्वर्ण की स्तूपिकायें बनी हुई हैं। ये द्वार शंख के समान विमल, दही एवं दुग्धफेन और चांदी के ढेर जैसी श्वेत प्रभा वाले हैं। उन द्वारों के ऊपरी भाग में तिलकरत्नों से निर्मित अनेक प्रकार के अर्धचन्द्रों के चित्र बने हुए हैं। अनेक प्रकार की मणियों की मालाओं से अलंकृत हैं। वे द्वार अन्दर और बाहर अत्यन्त स्निग्ध और सुकोमल हैं। उनमें सोने के समान पीली बालुका बिछी हुई है। सुखद स्पर्श वाले, रूप-शोभासम्पन्न, मन को प्रसन्न करने वाले, देखने योग्य, मनोहर और अतीव रमणीय हैं।

१२२— तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ निसीहियाए सोलस सोलस चंदणकलस-परिवाडीओ पन्नत्ताओ, ते णं चंदणकलसा वरकमल-पड़्डाणा सुरभिवरवारिपडिपुण्णा, चंदण-कयचच्चागा, आविद्धे कंठे गुणा, पउमुप्पलपिहाणा सव्वरयणा मया, अच्छा जाव<sup>१</sup> पडिरूवगा महया-महया इंदकुंभसमाणा पन्नत्ता समणाउसो !

१२२— उन द्वारों की दोनों बाजुओं की दोनों निशीधिकाओं (बैठकों) में सोलह-सोलह चन्दनकलशों की पंक्तियां हैं, अर्थात् उन द्वारों की दायीं बायीं बाजू की एक-एक बैठक में पंक्तिबद्ध सोलह-सोलह चन्दनकलश स्थापित हैं।

ये चन्दनकलश श्रेष्ठ उत्तम कमलों पर प्रतिष्ठित—रखे हैं, उत्तम सुगन्धित जल से भरे हुए हैं, चन्दन के लेप से चर्चित-मंडित, विभूषित हैं, उनके कंठों में कलावा (रक्तवर्ण सूत) बंधा हुआ है और मुख पद्मोत्पल के ढक्कनों से

ढके हुए हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! ये सभी कलश सर्वात्मना रत्नमय हैं, निर्मल यावत् बृहत् इन्द्रकुंभ जैसे विशाल एवं अतिशय रमणीय हैं।

१२३— तेसि णं दाराण उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस-सोलस णागदन्तपरिवाडीओ पन्नत्ताओ ।

ते णं णागदंता मुत्ताजालंतरुसियहेमजाल-गवक्खजाल-खिंखिणीघंटाजाल-परिक्खत्ता अब्भुग्गया अभिणिसिद्धा तिरियं सुसंपरिग्गहिया अहेपन्नगद्धरूवा, पन्नगद्धसंठाणसंठिया, सव्ववयरामया अच्छा जाव<sup>१</sup> पडिरूवा महया महया गयदंतसमाणा पन्नत्ता समाणाउसो !

१२३— उन द्वारों की उभय पार्श्ववर्ती दोनों निशीधिकाओं में सोलह-सोलह नागदन्तों (खूटियों-नकूचों) की पंक्तियां कही हैं।

ये नागदन्त मोतियों और सोने की मालाओं में लटकती हुई गवाक्षाकार (गाय की आंख) जैसी आकृति वाले घुंघरुओं से युक्त, छोटी-छोटी घंटिकाओं से परिवेष्टित—व्याप्त, घिरे हुए हैं। इनका अग्रभाग ऊपर की ओर उठा और दीवाल से बाहर निकलता हुआ है एवं पिछला भाग अन्दर दीवाल में अच्छी तरह से घुसा हुआ है और आकार सर्प के अधोभाग जैसा है। अग्रभाग का संस्थान सर्पार्ध के समान है। वे वज्ररत्नों से बने हुए हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! बड़े-बड़े गजदन्तों जैसे ये नागदन्त अतीव स्वच्छ, निर्मल यावत् प्रतिरूप—अतिशय शोभाजनक हैं।

१२४— तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तबद्धा वग्घारितमल्लदामकलावा णील-लोहित-हालिद्द-सुक्किलसुत्तबद्धा वग्घारितमल्लदामकलावा । ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा, सुवन्न-पयरगमंडिया नाणाविहमणिरयणविविहहारउवसोभियसमुदया जाव (ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता, वाएहिं पुव्वावरदाहिणुत्तुरागएहिं मंदायं मंदायं एज्जमाणाणि एज्जमाणाणि पलंबमाणाणि पलंब-माणाणि वदमाणाणि वदमाणाणि उरालेणं मणुन्नणं मणहरेणं कण्ण-मणणिव्वुतिकरेणं सद्देणं ते पएसे सव्वओ समंता आपूरेमाणा आपूरेमाणा ) सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।

१२४— इन नागदन्तों पर काले सूत्र से गूंथी हुई तथा नीले, लाल, पीले और सफेद डोरे से गूंथी हुई लम्बी-लम्बी मालायें लटक रही हैं। वे मालायें सोने के झुमकों और सोने के पत्तों से परिमंडित तथा नाना प्रकार के मणि-रत्नों से रचित विविध प्रकार के शोभनीक हारों—अर्धहारों के अभ्युदय यावत् (पास-पास टंगे होने से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की हवा के मन्द-मन्द झोकों से हिलने-डुलने और एक-दूसरे से टकराने पर विशिष्ट, मनोज्ञ, मनहर, कर्ण और मन को शांति प्रदान करने वाली ध्वनि से समीपवर्ती समस्त प्रदेश को व्याप्त करते हुए) अपनी श्री-शोभा से अतीव-अतीव उपशोभित हैं।

१२५— तेसि णं णागदंताणां उवरि अन्नाओ सोलस-सोलस नागदंतपरिवाडीओ पन्नत्ता, ते णं णागदंता तं चेव जाव गयदंतसमाणा पन्नत्ता समाणाउसो ! तेसु णं णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पन्नत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामईओ धूवघडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं धूवघडीओ कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामाओ

सुगंधवरगंधियातो गंधवट्टिभूयाओ ओरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं घाणमणणिव्वुङ्करेणं गंधेणं ते पदेसे सव्वओ समंता आपूरेमाणा आपूरेमाणा जाव (सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा) चिडुंति ।

१२५— इन नागदन्तों के भी ऊपर अन्य-दूसरी सोलह-सोलह नागदन्तों की पंक्तियां कही हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! पूर्ववर्णित नागदन्तों की तरह ये नागदन्त भी यावत् विशाल गजदन्तों के समान हैं।

इन नागदन्तों पर बहुत से रजतमय शीकें (छींके) लटके हैं। इन प्रत्येक रजतमय शीकों में वैदूर्य-मणियों से बनी हुई धूप-घटिकायें रखी हैं।

ये धूपघटिकायें काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क, तुरुष्क (लोभान) और सुगन्धित धूप के जलने से उत्पन्न मधमघाती मनमोहक सुगन्ध के उड़ने एवं उत्तम सुरभि-गन्ध की अधिकता से गन्धवर्तिका के जैसी प्रतीत होती हैं तथा सर्वोत्तम, मनोज्ञ, मनोहर, नासिका और मन को तृप्तिप्रदायक गन्ध से उस प्रदेश को सब तरफ से अधिवासित करती हुई यावत् अपनी श्री से अतीव-अतीव शोभायमान हो रही हैं।

### द्वारस्थित पुतलियां

१२६— तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस सालभंजिया-परिवाडीओ पन्नत्ताओ, ताओ णं सालभंजियाओ लीलट्टियाओ, सुपइट्टियाओ, सुअलंकियाओ, णाणाविहरागवसणाओ, णाणामल्लपिणद्धाओ, मुट्टिगिज्झसुमज्जाओ, आमेलगजमलजुयल-वट्टिय-अब्भुन्नय पीणरइयसंठियपीवरपओहराओ, रत्तावंगाओ, असियकेसीओ, मिउविसयपसत्थ-लक्खण-संवेल्लियग्ग-सिरयाओ ईंसिं असोगवरपायवसमुट्टियाओ वामहत्थग्गहियग्गसालाओ ईंसिं अब्धच्छि-कडक्ख-चिट्टिएणं लूसमाणीओ विव चक्खुल्लोयणलेसेहि य अन्नमन्नं खिज्जमाणीओ विव पुढवि-परिणामाओ, सासयभावमुवगयाओ, चन्दाणणाओ, चन्दविलासिणीओ, चन्दद्धसमणिडालाओ, चंदा-हियसोमदंसणाओ, उक्का विव उज्जोवेमाणाओ, विज्जुघणमिरियसूरदिप्यंततेयअहिययरसन्निकासाओ सिंगारागारचारुवेसाओ पासाइयाओ जाव (दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ) चिडुंति ।

१२६— उन द्वारों की दोनों बाजुओं की निशीधिकाओं (बैठकों) में सोलह-सोलह पुतलियों की पंक्तियां हैं।

ये पुतलियां विविध प्रकार की लीलायें—(क्रीड़ायें) करती हुई, सुप्रतिष्ठित-मनोज्ञ रूप से स्थित सब प्रकार के आभूषणों—अलंकारों से शृंगारित, अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे परिधानों—वस्त्रों एवं मालाओं से शोभायमान, मुट्टी प्रमाण (मुट्टी में समा जाने योग्य) कृश—पतले मध्य भाग (कटि प्रदेश) वाली, शिर पर ऊंचा अंबाड़ा—जूड़ा बांधे हुए और समश्रेणि में स्थित हैं। वे सहवर्ती, अभ्युन्नत—ऊंचे, परिपुष्ट-मांसल, कठोर, भरावदार—पीवर—स्थूल गोलाकार पयोधरों—स्तनों वाली, लालिमा युक्त नयनान्तभाग वाली, सुकोमल, अतीव निर्मल, शोभनीक सघन घुंघराली काली-काली कजरारी केशराशि वाली, उत्तम अशोक वृक्ष का सहारा लेकर खड़ी हुई और बायें हाथ से अग्र शाखा को पकड़े हुए, अर्ध निमीलित नेत्रों की ईषत् वक्र कटाक्ष-रूप चेष्टाओं द्वारा देवों के मनों को हरण करती हुई—सी और एक दूसरे को देखकर परस्पर खेद-खिन्न होती हुई—सी, पार्थिवपरिणाम (मिट्टी से बनी) होने पर भी शाश्वत—नित्य विद्यमान, चन्द्रार्धतुल्य ललाट वाली, चन्द्र से भी अधिक सौम्य कांति वाली, उल्का—खिरते तारे के

प्रकाश पुंज की तरह उद्योत वाली—चमकीली विद्युत् (मेघ की बिजली) की चमक एवं सूर्य के देदीप्यमान तेज से भी अधिक प्रकाश-प्रभावाली, अपनी सुन्दर वेशभूषा से शृंगार रस के गृह-जैसी और मन को प्रसन्न करने वाली यावत् अतीव (दर्शनीय, मनोहर अतीव रमणीय) हैं।

१२७— तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस जालकडग-परिवाडीओ पन्नत्ता, ते णं जालकडगा सव्वरयणामया अच्छा जाव<sup>१</sup> पडिरूवा ।

१२७— इन द्वारों को दोनों बाजुओं की दोनों निषीधिकाओं में सोलह-सोलह जालकटक (जाली-झरोखों से बने प्रदेश) हैं, ये प्रदेश सर्वरत्नमय, निर्मल यावत् अत्यन्त रमणीय हैं।

१२८— तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ निसीहियाए सोलस सोलस घंटापरिवाडीओ पन्नत्ता, तासि णं घंटाणं इमेयारूवे वन्नावासे पन्नत्ते, तं जहा—

जंबूणयामईओ घंटाओ, वयरामयाओ लालाओ, णाणामणिमया घंटापासा, तवणिज्जा-मइयाओ संखलाओ, रययामयाओ रज्जूओ ।

ताओ णं घंटाओ ओहस्सराओ, मेहस्सराओ, हंसस्सराओ, कुंचस्सराओ, सीहस्सराओ, दुंदुहिस्सराओ, णंदिघोसाओ, मंजुस्सराओ, मंजुघोसाओ, सुस्सराओ, सुस्सराघोसाओ उरालेणं मणुत्तेणं मणहरेणं कन्नमणनिव्वुड्करेणं सहेणं ते पदेसे सव्वओ समंता आपूरेमाणाओ आपूरेमाणाओ जाव (सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा) चिट्ठंति ।

१२८— इन द्वारों की उभय पार्श्ववर्ती दोनों निषीधिकाओं में सोलह-सोलह घंटाओं की पंक्तियां कही गई हैं।

उन घंटाओं का वर्णन इस प्रकार है—वे प्रत्येक घंटे जाम्बूनद स्वर्ण से बने हुए हैं, उनके लोलक वज्ररत्नमय हैं, भीतर और बाहर दोनों बाजुओं में विविध प्रकार के मणि जड़े हैं, लटकाने के लिए बंधी हुई सांकलें सोने की और रस्सियां (डोरियां) चांदी की हैं।

मेघ की गड़गड़ाहट, हंसस्वर, क्रौंचस्वर, सिंहगर्जना, दुन्दुभिनाद, वाद्यसमूहनिनाद, नन्दिघोष, मंजुस्वर, मंजुघोष, सुस्वर, सुस्वरघोष जैसी ध्वनिवाले वे घंटे अपनी श्रेष्ठ—सुन्दर मनोज्ञ, मनोहर कर्ण और मन को प्रिय, सुखकारी झनकारों से उस प्रदेश को चारों ओर से व्याप्त करते हुए अतीव अतीव शोभायमान हो रहे हैं।

१२९— तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस वणमाला-परिवाडीओ पन्नत्ताओ, ताओ णं वणमालाओ णाणामणिमयदुमलयकिसलयपल्लवसमाउलाओ छप्पयपरिभुजमाणसोहंत सस्सिरीयाओ पासाईयाओ, दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ परिरूवाओ ।

१२९— उन द्वारों की दोनों बाजुओं की दोनों निषीधिकाओं में सोलह-सोलह वनमालाओं की परिपाटियां—पंक्तियां कही हैं।

ये वनमालायें अनेक प्रकार की मणियों से निर्मित द्रुमों—वृक्षों, पौधों, लताओं, किसलयों (नवीन कोपलों) और पल्लवों—पत्तों से व्याप्त हैं। मधुपान के लिए बारम्बार षटपदों—भ्रमरों के द्वारा स्पर्श किए जाने से सुशोभित ये

वनलतायें मन को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप हैं।

१३०— तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस-सोलस पगंठगा पन्नत्ता । ते णं पगंठगा अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं आयामविकखंभेणं, पणवीसं जोयणसयं बाहल्लेणं, सव्ववयरामया अच्छा जावं पडिरूवा ।

१३०— इन द्वारों की उभय पार्श्ववर्ती दोनों निषीधिकाओं में सोलह-सोलह प्रकंठक (वेदिका रूप पीठविशेष, चबूतरा) हैं।

ये प्रत्येक प्रकंठक अढ़ाई सौ योजन लम्बे, अढ़ाई सौ योजन चौड़े और सवा सौ योजन मोटे हैं तथा सर्वात्मना रत्नों से बने हुए निर्मल यावत् अतीव रमणीय हैं।

१३१— तेसि णं पगंठगाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा पन्नत्ता । ते णं पासाय-वडेंसगा अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं जोयणसयं विकखंभेणं, अब्भुगय-मूसिअपहसिया विव, विविहमणिरयणभत्तिचित्ता, वाउद्धुयविजय-वेजयंतपडागच्छत्ताइच्छत्तकलिया, तुंगा, गगणतलमणुलिहंतसिहरा, जालंतररयणपंजरुम्मिलिय व्व, मणिकणगथूभियागा, वियसियस-यवत्तपोंडरीयतिलगरयणद्धचंदचित्ता, पाणामणिदामालंकिया अंतो बहिं च सण्हा तवणिज्जवालुया-पत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासादीया दरिसणिज्जा जाव दामा ।

१३१— उन प्रकण्ठकों के ऊपर एक-एक प्रासादावतंसक (श्रेष्ठमहल-विशेष) है।

ये प्रासादावतंसक ऊंचाई में अढ़ाई सौ योजन ऊंचे और सवा सौ योजन चौड़े हैं, चारों दिशाओं में व्याप्त अपनी प्रभा से हंसते हुए से प्रतीत होते हैं। विविध प्रकार के मणि-रत्नों से इनमें चित्र-विचित्र रचनायें बनी हुई हैं। वायु से फहराती हुई, विजय को सूचित करने वाली वैजयन्तीपताकाओं एवं छत्रातिछत्रों (एक दूसरे के ऊपर रहे हुए छत्रों) से अलंकृत हैं, अत्यन्त ऊंचे होने से इनके शिखर मानो आकाशतल का उल्लंघन करते हैं। विशिष्ट शोभा के लिए जाली-झरोखों में रत्न जुड़े हुए हैं। वे रत्न ऐसे चमकते हैं मानों तत्काल पिटारों से निकाले हुए हों। मणियों और स्वर्ण से इनकी स्तूपिकायें निर्मित (शिखर) हैं तथा स्थान-स्थान पर विकसित शतपत्र एवं पुंडरीक कमलों के चित्र और तिलकरत्नों से रचित अर्धचन्द्र बने हुए हैं। वे नाना प्रकार की मणिमय मालाओं से अलंकृत हैं। भीतर और बाहर से चिकने—कमनीय हैं। प्रांगणों में स्वर्णमयी बालुका बिछी हुई है, इनका स्पर्श सुखप्रद है। रूप शोभासम्पन्न है। देखते ही चित्त में प्रसन्नता होती है, वे दर्शनीय हैं। यावत् मुक्तादामों आदि से सुशोभित हैं।

**विवेचन—**‘जाव दामा’ पद से यह सूचित किया है कि यानविमान के प्रसंग में जिस तरह उसकी अन्तर्भूमि, प्रेक्षागृह मंडप, रंगमंच, सिंहासन, विजय, दूष्य, वज्रांकुश एवं मुक्तादामों का वर्णन किया है, उसी प्रकार समस्त वर्णन यहां भी समझ लेना चाहिए।

संक्षेप में उक्त वर्णन का सारांश इस प्रकार है—

इन प्रासादावतंसकों का अन्तर्वर्ती भूभाग आलिंगपुष्कर, मृदंगपुष्कर, सूर्यमंडल, चन्द्रमंडल अथवा कीलों को ठोक और चारों ओर से खींचकर सम किये गये भेड़, बैल, सुअर, सिंह आदि के चमड़े के समान अतीव सम,

रमणीय है एवं अनेक प्रकार के शुभ लक्षणों तथा आकार प्रकार वाले काले, पीले, नीले आदि वर्णों की मणियों से उपशोभित है।

प्रत्येक प्रासादावतंसक के उस समभूमिभाग के बीचों-बीच वेदिकाओं, तोरणों, पुतलियों आदि से अलंकृत प्रेक्षागृहमंडप बने हुए हैं और उन मंडपों के भी मध्यभाग में स्थित मणिपीठिकाओं पर ईहामृग, वृषभ, अश्व, नर, मगर आदि-आदि के चित्रामों से युक्त स्वर्ण-मणि रत्नों से बने हुए सिंहासन रखे हैं।

सिंहासनों के ऊपरी भाग में शंख, कुंद-पुष्प, क्षीरोदधि के फेनपुंज आदि के सदृश श्वेतधवल विजयदूष्य बंधे हैं और उनके बीचों बीच वज्ररत्नों से बने हुए अंकुश लगे हैं।

उन अंकुशों में कुंभप्रमाण, अर्धकुंभ प्रमाण जैसे बड़े-बड़े मुक्तादाम (झूमर) लटक रहे हैं। ये सभी दाम सोने के लंबूसकों, मणि, रत्नमयी हारों—अर्धहारों से परिवेष्टित हैं तथा हवा के झोकों से परस्पर एक-दूसरे से टकराने पर कर्णप्रिय ध्वनि से समीपवर्ती प्रदेश को व्याप्त करते हुए असाधारण रूप से सुशोभित हो रहे हैं।

### द्वारों के उभय पार्श्ववर्ती तोरण

१३२— तेसि णं दाराणं उभओ पासे सोलस सोलस तोरणा पन्नत्ता, णाणामणिमया णाणामणिमएसु खंभेसु उवणिविट्ठसन्निविट्ठा जाव<sup>१</sup> पउम-हत्थगा ।

तेसि णं तोरणाणं पत्तेयं पुरओ दो दो सालभंजियाओ पन्नत्ताओ, जहा हेट्ठा तहेव<sup>२</sup> ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ नागदंता पन्नत्ता, जहा हेट्ठा जाव<sup>३</sup> दामा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो-दो हयसंघाडा, गयसंघाडा, नरसंघाडा, किन्नरसंघाडा, किंपुरिससंघाडा, महोरगसंघाडा, गंधव्वसंघाडा, उसभसंघाडा, सव्वरयणामया अच्छा जाव<sup>४</sup> पडिरूवा, एवं पंतीओ वीही मिहुणाइं ।

तेसि णं तोरणाणं दो-दो पउमलयाओ जाव<sup>५</sup> ( नागलयाओ, असोगलयाओ, चंपगलयाओ, चूयलयाओ, वणलयाओ, वासंतियलयाओ, अइमुत्तयलयाओ कुंदलयाओ ) सामलयाओ, णिच्चं कुसुमियाओ सव्वरयणामया अच्छा जाव<sup>६</sup> पडिरूवा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो-दो दिसा-सोवत्थिया पन्नत्ता, सव्वरयणामया अच्छा जाव<sup>६</sup> पडिरूवा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो-दो चंदणकलसा पन्नत्ता, ते णं चंदणकलसा वरकमल-पइट्ठाणा तहेव<sup>७</sup> ।

तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो-दो भिंगारा पन्नत्ता, ते णं भिंगारा वरकमलपइट्ठाणा जाव<sup>८</sup> महया मत्तगयमुहागितिसमाणा पन्नत्ता समाणाउसो !

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो-दो आयंसा पन्नत्ता, तेसि णं आयंसाणं इमेयारूवे वन्ना-

१-२. देखें सूत्र संख्या १२६

३. देखें सूत्र संख्या १२३

४. देखें सूत्र संख्या ११८

५-६. देखें सूत्र संख्या ११८

७-८. देखें सूत्र संख्या ११२

वासे पन्नत्ते, तं जहा— तवणिज्जमया पगंठगा, अंकमया मंडला, अणुघसितनिम्मलाए छायाए समणुबद्धा, चंदमंडलपडिणिकासा, महया-महया अद्धकायसमाणा पन्नत्ता समणाउसो !

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो-दो वडरनाभथाला पन्नत्ता, अच्छतिच्छडियसालितंदुल-णहसंदिट्ठपडिपुन्ना इव चिट्ठंति सव्वजंबूणयमया जाव<sup>१</sup> पडिरूवा महया-महया रहचक्कवालसमाणा पन्नत्ता समणाउसो !

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो-दो पाईओ, ताओ णं पाईओ सच्छोदगपरिहत्थाओ, णाणाविहस्स फलहरियगस्स बहुपडिपुन्नाओ विव चिट्ठंति, सव्वरयणामईओ अच्छा जाव<sup>२</sup> पडिरूवाओ महया-महया गोकलिंजरचक्कसमाणीओ पन्नत्ताओ समणाउसो !

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो-दो सुपइट्ठा पन्नत्ता णाणाविहभंडविरइया इव चिट्ठंति सव्वरयणा-मया अच्छा जाव<sup>३</sup> पडिरूवा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो-दो मणोगुलियाओ पन्नत्ताओ, तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवन्न-रुप्पमया फलगा पन्नत्ता, तेसु णं सुवन्नरुप्पमएसु फलगेसु बहवे वयरामया नागदंतया पन्नत्ता, तेसु णं वयरामएसु णागदंतएसु बहवे वयरामया सिक्कगा पन्नत्ता, तेसु णं वयरामएसु सिक्कगेसु किण्हसुत्तसिक्कगवच्छिया णीलसुत्तसिक्कगवच्छिया, लोहियसुत्तसिक्कगवच्छिया हालिइसुत्त-सिक्कगवच्छिया, सुक्किल्लसुत्तसिक्कगवच्छिया बहवे वायकरगा पन्नत्ता सव्ववेरुलियमया अच्छा जाव<sup>४</sup> पडिरूवा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चित्ता रयणकरंडगा पन्नत्ता, से जहाणामए रत्तो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चित्ते रयणकरंडए वेरुलियमणिफलहपडलपच्चोयडे साते पहाते ते पतेसे सव्वतो समंता ओभासति उज्जोवेति तवति पभासति, एवमेव ते वि चित्ता रयणकरंडगा साते पभाते ते पएसे सव्वओ समंता ओभासंति, उज्जोवेति, तवंति पभासंति ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयकंठा, गयकंठा, नरकंठा, किन्नरकंठा, किंपुरिसकंठा, महोरगकंठा, गंधव्वकंठा, उसभकंठा सव्वरयणामया अच्छा जाव<sup>५</sup> पडिरूवा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो-दो पुप्फचंगेरीओ, मल्लचंगेरीओ, चुन्नचंगेरीओ, गंधचंगेरीओ, वत्थचंगेरीओ, आभरणचंगेरीओ, सिद्धत्थचंगेरीओ लोमहत्थचंगेरीओ पन्नत्ताओ सव्वरयणामयाओ अच्छाओ जाव<sup>६</sup> पडिरूवाओ ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पुप्फपडलगाइं जाव लोमहत्थपडलगाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं जाव<sup>७</sup> पडिरूवाइं ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सीहासणा पण्णत्ता, तेसि णं सीहासणाणं वण्णओ जाव<sup>८</sup>

१-७. देखें सूत्र संख्या ११८

८. सिंहासन के वर्णन के लिए देखें सूत्र संख्या ४८, ४९, ५०, ५१

दामा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो रुपमया छत्ता पन्नत्ता, ते णं छत्ता वेरुलियविमल-दंडा, जंबूणयकन्निया, वइरसंधी, मुत्ताजालपरिगया, अट्टसहस्सवरकंचणसलागा, दहरमलयसुगंधि-सव्वोउयसुरभिसीयलच्छाया, मंगलभत्तिचित्ता, चंदागारोवमा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चामराओ पन्नत्ताओ, ताओ णं चामराओ चंदप्पभवेरुलिय-वयरनानामणिरयणखचियचित्तदण्डाओ<sup>१</sup> सुहुमरययदीहवालातो संखंककुंददगरयअमयमहिय-फेणपुंजसन्निगासातो, सव्वरयणामयाओ, अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो तेल्लसमुग्गा, पत्तसमुग्गा, चोयगसमुग्गा, तगरसमुग्गा, एलासमुग्गा, हरियालसमुग्गा, हिंगलुयसमुग्गा, मणोसिलासमुग्गा, अंजणसमुग्गा, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

१३२— उन द्वारों के दक्षिण और वाम—दोनों पार्श्वों में सोलह-सोलह तोरण हैं।

वे सभी तोरण नाना प्रकार के मणिरत्नों से बने हुए हैं तथा विविध प्रकार की मणियों से निर्मित स्तम्भों के ऊपर अच्छी तरह बन्धे हैं यावत् पद्म-कमलों के झुमकों-गुच्छों से उपशोभित हैं।

उन तोरणों में से प्रत्येक के आगे दो-दो पुतलियां स्थित हैं। पुतलियों का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

उन तोरणों के आगे दो-दो नागदन्त (खूंटें) हैं। मुक्तादाम पर्यन्त इनका वर्णन पूर्ववर्णित नागदन्तों के समान जानना चाहिए।

उन तोरणों के आगे दो-दो अश्व, गज, नर, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व और वृषभ संघाट (युगल) हैं। ये सभी रत्नमय, निर्मल यावत् असाधारण रूप-सौन्दर्य वाले हैं। इसी प्रकार से इनकी पंक्ति (श्रेणी) वीथि<sup>२</sup> और मिथुन (स्त्री-पुरुषयुगल) स्थित हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो पद्मलतायें यावत् (नागलतायें, अशोकलतायें, चम्पकलतायें, आम्रलतायें, वनलतायें, वासन्तीलतायें, अतिमुक्तकलतायें, कुंदलतायें) श्यामलतायें हैं। ये सभी लतायें पुष्पों से व्याप्त और रत्नमय, निर्मल यावत् असाधारण मनोहर हैं।

उन तोरणों के अग्र भाग में दो-दो दिशा-स्वस्तिक रखे हैं, जो सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् (मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप-मनोहर) प्रतिरूप-अतीव मनोहर हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो चन्दनकलश कहे हैं। ये चन्दनकलश श्रेष्ठ कमलों पर स्थापित हैं, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

उन तोरणों के आगे दो-दो भुंगार (झारी) हैं। ये भुंगार भी उत्तम कमलों पर रखे हुए हैं यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो! मत्त गजराज की मुखाकृति के समान विशाल आकार वाले हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो आदर्श-दर्पण रखे हैं। इन दर्पणों का वर्णन इस प्रकार है—

१. पाठान्तस्—णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लियाओ ।

२. एक दिशोन्मुख एवं परस्पर एक दूसरे के उन्मुख अवस्थान को क्रमशः पंक्ति और वीथि कहते हैं।

इनकी पादपीठ सोने की है, (चौखटे वैडूर्य मणि के और पिछले भाग वज्ररत्नों के बने हुए हैं) प्रतिबिम्ब मण्डल अंक रत्न के हैं और अनघिसे होने (घिसे नहीं जाने) पर भी ये दर्पण अपनी स्वाभाविक निर्मल प्रभा से युक्त हैं। ये आयुष्मन् श्रमणो! चन्द्रमण्डल सरीखे ये निर्मल दर्पण ऊंचाई में कायार्थ (आधे शरीर) जितने बड़े-बड़े हैं।

उन तोरणों के आगे वज्रमय नाभि वाले (वज्ररत्नों से निर्मित मध्य भाग वाले) दो-दो थाल रखे हैं। ये सभी थाल मूशल आदि से तीन बार छांटे गये, शोध गये, अतीव स्वच्छ निर्मल अखण्ड तंदुलों-चावलों से परिपूर्ण-भरे हुए से प्रतिभासित होते हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! ये थाल जम्बूनद-स्वर्णविशेष-से बने हुए यावत् अतिशय रमणीय और रथ के पहिये जितने विशाल गोल आकार के हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो पात्रियां रखी हैं। ये पात्रियां स्वच्छ निर्मल जल से भरी हुई हैं और विविध प्रकार के सद्य-ताजे हरे फलों से भरी हुई-सी प्रतिभासित होती हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! ये सभी पात्रियां रत्नमयी, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं और इनका आकार बड़े-बड़े गोकलिंजरो (गाय को घास रखने के टोकरो) के समान गोल हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो सुप्रतिष्ठकपात्र विशेष (प्रसाधन मंजूषा-शृंगारदान) रखे हैं। प्रसाधन-शृंगार की साधन भूत औषधियों आदि से भरे हुए भांडों से सुशोभित हैं और सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो मनोगुलिकायें हैं। इन मनोहर मनोगुलिकाओं पर अनेक सोने और चांदी के पाटिये जड़े हुए हैं और उन सोने और चांदी के पाटियों पर वज्ररत्नमय नागदन्त लगे हैं एवं उन नागदन्तों के ऊपर वज्ररत्नमय छींके टंगे हैं। उन छींकों पर काले, नीले, लाल, पीले और सफेद सूत के जालीदार वस्त्र खण्ड से ढंके हुए वातकरक (जल से रहित, कोरे घड़े) रखे हैं। ये सभी वातकरक वज्ररत्नमय, स्वच्छ यावत् अतिशय सुन्दर हैं।

उन तोरणों के आगे चित्रामों से युक्त दो-दो (रत्नकरंडक—रत्नों के पिटारे) रखे हैं। जिस तरह चातुरंत चक्रवर्ती (षट्खंडाधिपति) राजा का वैडूर्यमणि से बना एवं स्फटिक मणि के पटल से आच्छादित अद्भुत-आश्चर्यजनक रत्नकरंडक अपनी प्रभा से उस प्रदेश को पूरी तरह से प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करता है, उसी प्रकार ये रत्नकरंडक भी अपनी प्रभा—कांति से अपने निकटवर्ती प्रदेश को सर्वात्मना प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करते हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो अश्वकंठ (कंठ पर्यन्त घोड़े की मुखाकृति जैसे रत्न-विशेष) गजकंठ, नरकंठ, किन्नरकंठ, किंपुरुषकंठ, महोरगकंठ, गंधर्वकंठ और वृषभकंठ रखे हैं। ये सब अश्वकंठादिक सर्वथा रत्नमय, स्वच्छ-निर्मल यावत् असाधारण सुन्दर हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो पुष्प-चंगेरिकायें (फूलों से भरी छोटी-छोटी टोकरियां—डलियायें) माल्य-चंगेरिकायें, चूर्ण (सुगन्धित चूर्ण) चंगेरिकायें, गन्ध चंगेरिकायें, वस्त्र चंगेरिकायें, आभरण (आभूषण) चंगेरिकायें, सिद्धार्थ (सरसों) की चंगेरिकायें एवं लोमहस्त (मयूरपिच्छ) चंगेरिकायें रखी हैं। ये सभी रत्नों से बनी हुई, निर्मल यावत् प्रतिरूप—अतीव मनोहर हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो पुष्पपटलक (पिटारे) यावत् (माल्य, चूर्ण, गन्ध, वस्त्र, आभरण, सिद्धार्थ) तथा

मयूर पिच्छपटलक रखे हैं। ये सब भी पटलक रत्नमय, स्वच्छ—निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो सिंहासन हैं। इन सिंहासनों का वर्णन मुक्तादामपर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।

उन तोरणों के आगे रजतमय दो-दो छत्र हैं। इन रजतमय छत्रों के दण्ड विमल वैडूर्यमणियों के हैं, कर्णिकार्ये (बीच का केन्द्र) सोने की हैं, संधियां वज्र की हैं, मोती पिरोई हुई आठ हजार सोने की सलाइयां (तानें) हैं तथा दहर चन्दन और सभी ऋतुओं के पुष्पों की सुरभि से युक्त शीतल कान्ति वाले हैं। इन पर मंगलरूप स्वस्तिक आदि के चित्र बने हैं। इनका आकार चन्द्रमण्डलवत् गोल है।

उन तोरणों के आगे दो-दो चामर हैं। इन चामरों की डंडियां चन्द्रकांत वैडूर्य और वज्ररत्नों की हैं और उन पर अनेक प्रकार के मणि-रत्नों द्वारा विविध चित्र-विचित्र रचनायें बनी हैं, शंख, अंकरत्न, कुंदपुष्प, जलकण और मथित क्षीरोदधि के फेनपुंज सदृश श्वेत-धवल इनके पतले लम्बे बाल हैं। ये सभी चामर सर्वथा रत्नमय, निर्मल यावत् प्रतिरूप—अनुपम शोभाशाली हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो तेलसमुद्गक (सुगन्धित तेल से भरे पात्र), कोष्ठ (सुगन्धित द्रव्यविशेष कुटज) समुद्गक, पत्र (तमाल—के पत्ते) समुद्गक, चोयसमुद्गक, तगरसमुद्गक, एला (इलायची) समुद्गक, हरताल-समुद्गक, हिंगलुकसमुद्गक, मैनमिलसमुद्गक, अंजनसमुद्गक रखे हैं। ये सभी समुद्गक रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं।

### द्वारस्थ ध्वजाओं का वर्णन

१३३— सूरियाभे णं विमाणे एगमेगे दारे अट्टसयं चक्कज्झयाणं, अट्टसयं मिगज्झयाणं, गरुडज्झयाणं, छत्तज्झयाणं, पिच्छज्झयाणं, सउणिज्झयाणं, सीहज्झयाणं, उसभज्झयाणं, अट्टसयं सेयाणं चउविसाणाणं नागवरकेऊणं । एवमेव सपुव्वावरेणं सूरियाभे विमाणे एगमेगे दारे असीयं असीयं केउसहस्सं भवति इति मक्खायं ।

१३३— सूर्याभ विमान के प्रत्येक द्वार के ऊपर चक्र, मृग, गरुड़, छत्र, मयूरपिच्छ, पक्षी, सिंह, वृषभ, चार दांत वाले श्वेत हाथी और उत्तम नाग (सर्प) के चित्र (चिह्न) से अंकित एक सौ आठ-एक सौ आठ ध्वजायें फहरा रही हैं। इस तरह सब मिलाकर एक हजार अस्सी-एक हजार अस्सी ध्वजायें उस सूर्याभ विमान के प्रत्येक द्वार पर फहरा रही हैं—ऐसा तीर्थकर भगवन्तों ने कहा है।

### द्वारवर्ती भौमों ( विशिष्ट स्थानों ) का वर्णन

१३४— तेसि णं दाराणं एगमेगे दारे पण्णट्ठिं पण्णट्ठिं भोमा पन्नत्ता । तेसि णं भोमाणं भूमिभागा, उल्लोया च भाणियव्वा । तेसि णं भोमाणं च बहुमज्झदेसभागे पत्तेयं पत्तेयं सीहासणे, सीहासणवन्नओ सपरिवारो, अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं-पत्तेयं भद्दासणा पन्नत्ता ।

१३४— उन द्वारों के एक-एक द्वार पर पैंसठ-पैंसठ भौम (विशिष्ट स्थान—उपरिगृह) बताये हैं। यान विमान की तरह ही इन भौमों के समरमणीय भूमिभाग और उल्लोक (चन्देवों) का वर्णन करना चाहिए।

इन भौमों के बीचों-बीच एक-एक सिंहासन रखा है। यानविमानवर्ती सिंहासन की तरह उसका सपरिवार

वर्णन समझना चाहिए, अर्थात् उसके परिवार रूप सामानिक आदि देवों के भद्रासनों सहित इन सिंहासनों का वर्णन जानना चाहिए। शेष आसपास के भौमों में भद्रासन रखे हैं।

१३५— तेसि णं दाराणं उत्तमागारा<sup>१</sup> सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया, तं जहा—  
रयणेहिं जाव रिट्टेहिं ।

तेसि णं दाराणं उप्पिं अट्टमंगलगा सज्झया जाव छत्तातिछत्ता ।

एवमेव सपुव्वावरेणं सूरियाभे विमाणे चत्तारि दारसहस्सा भवंतीति मक्खयायं ।

१३५— उन द्वारों के ओतरंग (ऊपरी भाग) सोलह प्रकार के रत्नों से उपशोभित हैं। उन रत्नों के नाम इस प्रकार हैं—कर्केतनरत्न यावत् (वज्र, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, ज्योतिरस, अंक, अंजन, रजत, अंजनपुलक, जातरूप, स्फटिक), रिष्टरत्न।

उन द्वारों के ऊपर ध्वजाओं यावत् छत्रातिछत्रों से शोभित स्वस्तिक आदि आठ-आठ मंगल हैं।

इस प्रकार सूर्याभ विमान में सब मिलकर चार हजार द्वार सुशोभित हो रहे हैं।

### विमान के वनखण्डों का वर्णन

१३६— सूरियाभस्स विमाणस्स चउद्दिसिं पंच जोयणसयाइं अब्बाहाए चत्तारि वणसंडा पन्नत्ता, तं जहा—असोगवणे, सत्तवणवणे, चंपगवणे, चूयगवणे ।

पुत्थिमेणं असोगवणे, दाहिणेणं सत्तवन्नवणे, पच्चत्थिमेणं चंपगवणे, उत्तरेणं चूयगवणे ।

ते णं वणखंडा साइरेगाइं अब्दतेरस जोयणसयसहस्साइं आयामेणं, पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं, पत्तेयं पत्तेयं पागारपरिखित्ता, किण्हा किण्होभासा, नीला नीलोभासा, हरिया हरियो-भासा, सीया सीयोभासा, निब्बा निब्बोभासा, तिच्चा तिच्चोभासा, किण्हा किण्हच्छया, नीला नीलच्छया, हरिया हरियच्छया, सीया सीयच्छया, निब्बा निब्बच्छया, घणकडितडियच्छया, रम्मा महामेहनिकुरुंबभूया । ....ते णं पायवा मूलमंतो वणखंडवन्नओ ।

१३६— उन सूर्याभविमान के चारों ओर पांच सौ-पांच सौ योजन के अन्तर पर चार दिशाओं में १. अशोकवन, २. सप्तपर्णवन, ३. चंपकवन और ४. आम्रवन नामक चार वनखंड हैं।

पूर्व दिशा में अशोकवन, दक्षिण दिशा में सप्तपर्ण वन, पश्चिम में चंपक वन और उत्तर में आम्रवन है।

ये प्रत्येक वनखंड साढ़े बारह लाख योजन से कुछ अधिक लम्बे और पांच सौ योजन चौड़े हैं। प्रत्येक वनखंड एक-एक परकोटे से परिवेष्टित—घिरा है।

ये सभी वनखंड अत्यन्त घने होने के कारण काले और काली आभा वाले, नीले और नीली आभा वाले, हरे और हरी कांति वाले, शीत स्पर्श और शीत आभा वाले, स्निग्ध—कमनीय और कमनीय कांति दीप्ति—प्रभा वाले, तीव्र प्रभा वाले तथा काले और काली छाया वाले, नीले और नीली छाया वाले, हरे और हरी छाया वाले, शीतल और शीतल छाया वाले, स्निग्ध और स्निग्ध छाया वाले हैं एवं वृक्षों की शाखा-प्रशाखायें आपस में एक दूसरी से मिली होने के कारण अपनी सघन छाया से बड़े ही रमणीय तथा महा मेघों के समुदाय जैसे सुहावने दिखते हैं।

१. पाठान्तर—उवरिमागारा ।

इन वनखंडों के वृक्ष जमीन के भीतर गहरी फैली हुई जड़ों से युक्त हैं, इत्यादि वृक्षों का समग्र वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार यहां करना चाहिए।<sup>१</sup>

**विवेचन—** औपपातिक सूत्र के अनुसार संक्षेप में वनखंड के वृक्षों का वर्णन इस प्रकार है—

इन वनखंडों के वृक्ष जमीन के अन्दर विस्तृत गहरे फैले हुए मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रशाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज से युक्त हैं। छतरी के समान इनका रमणीय गोल आकार है। इनके स्कन्ध ऊपर की ओर उठी हुई अनेक शाखा-प्रशाखाओं से शोभित हैं और इतने विशाल एवं वृत्ताकार हैं कि अनेक पुरुष मिलकर भी अपने फैलाये हुए हाथों से उन्हें घेर नहीं पाते। पत्ते इतने घने हैं कि बीच में जरा भी अंतर दिखलाई नहीं देता है। पत्र-पल्लव सदैव नवीन जैसे दिखते हैं। कोपलें अत्यन्त कोमल हैं और सदैव सब ऋतुओं के पुष्पों से व्याप्त हैं तथा नमित, विशेष नमित, पुष्पित, पल्लवित, गुल्मित, गुच्छित, विनमित प्रणमित होकर मंजरी रूप शिरोभूषणों से अलंकृत रहते हैं। तोता, मयूर, मैना, कोयल, नंदीमुख, तीतर, बटेर, चक्रवाल, कलहंस, बतक, सारस आदि अनेक पक्षी-युगलों के मधुर स्वरो से गूंजते रहते हैं। अनेक प्रकार के गुच्छों और गुल्मों से निर्मित मंडप आदि से सुशोभित हैं। नासिका और मन को तृप्ति देने वाली सुगंध से महकते रहते हैं। इस प्रकार ये सभी वृक्ष सुरम्य, प्रासादिक दर्शनीय, अभिरूप-मनोहर एवं प्रतिरूप—विशिष्ट शोभासम्पन्न हैं।

**१३७—** तेसि णं वणसंडाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पणात्ता, से जहानामए आलिंगपुक्खरे ति वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहि य तणेहि य उवसोभिया, तेसि णं गंधो फासो णेयव्वो जहक्कमं ।

१३७— उन वनखंडों के मध्य में अति सम रमणीय भूमिभाग (मैदान) हैं। वे-मैदान आलिंग पुष्कर आदि के सदृश समतल यावत् नाना प्रकार के रंग-बिरंगे पंचरंगे मणियों और तृणों से उपशोभित हैं। इन मणियों के गंध और स्पर्श यथाक्रम से पूर्व में किये गये मणियों के गंध और स्पर्श के वर्णन के समान जानना चाहिए।

**मणियों और तृणों की ध्वनियाँ**

**१३८—** प्र०—तेसि णं भंते ! तणाण य मणीण य पुव्वावरदाहिणुत्तरागतेहिं वातेहिं मंदायं मंदायं एड्डयाणं वेड्डयाणं कंपियाणं चालियाणं फंदियाणं घट्टियाणं खोभियाणं उदीरिदाणं केरिसए सहे भवति ?

१३८— हे भदन्त! पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से आए वायु के स्पर्श से मंद-मंद हिलने-डुलने, कंपने, डगमगाने, फरकने, टकराने क्षुभित—विचलित और उदीरित—प्रेरित होने पर उन तृणों और मणियों की कैसी शब्द-ध्वनि होती है ?

**१३९—** उ०—हे गोयमा ! से जहानामए सीयाए वा, संदमाणीए वा, रहस्स वा सच्छत्तस्स सज्झयस्स, सघंटस्स, सपडागस्स, सतोरणवरस्स सनंदिघोसस्स, सखिंखिणिहेमजालपरिक्खत्तस्स,

१. एक जाति वाले श्रेष्ठ वृक्षों के समूह को वन और भिन्न-भिन्न जाति वाले वृक्षों के समुदाय को वनखंड कहते हैं— एक जाईएहिं रुक्खेहिं वणं अणेगजाईएहिं उत्तमेहिं रुक्खेहिं वणसण्डे (जीवाभिगम चूर्णि) ।

हेमवयचित्तिणिसकणगणिज्जत्तदारुयायस्स, सुसंपिन्नद्धचक्कमंडलधुरागस्स, कालायससुकयणे-  
मिजंतकम्मस्स आइण्णवर-तुरगसुसंपउत्तस्स, कुसलणरच्छेयसारहि-सुसंपरिग्गहियस्स, सरसबत्तीस-  
तोणपरिमंडियस्स सकंकडावयंगस्स, सचाव-सर-पहरण-आवरणभरिय-जोधजुज्झसज्जस्स, रायंगणंसि  
वा रायंतंउरंसि वा रम्मंसि वा मणिकुट्टिमतलंसि अभिक्खणं अभिक्खणं अभिघट्टिज्जमाणस्स वा  
नियट्टिज्जमाणस्स वा ओराला मणुण्णा मणोहरा कण्णमणनिव्वुइकरा सद्दा सव्वओ समंता  
अभिणित्थंति ।

भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे ।

१३९— हे गौतम! जिस तरह शिविका (डोली, पालकी) अथवा स्यन्दमानिका (बहली-सुखपूर्वक एक व्यक्ति के बैठने योग्य घोड़ा जुता यान-विशेष) अथवा रथ, जो छत्र, ध्वजा, घंटा, पताका और उत्तम तोरणों से सुशोभित, वाद्यसमूहवत् शब्द-निनाद करने वाले घुंघरुओं एवं स्वर्णमयी मालाओं से परिवेष्टित हो, हिमालय में उत्पन्न अति निगड़-सारभूत उत्तम तिनिश काष्ठ से निर्मित एवं सुव्यवस्थित रीति से लगाये गये आरो से युक्त पहियों और धुरा से सुसज्जित हो, सुदृढ़ उत्तम लोहे के पट्टों से सुरक्षित पट्टियों वाले, शुभलक्षणों और गुणों से युक्त कुलीन अश्व जिसमें जुते हों जो रथ-संचालन-विद्या में अति कुशल, दक्ष सारथी द्वारा संचालित हो, एक सौ-एक सौ बाण वाले, बत्तीस तूणीरों (तरकसों) से परिमंडित हो, कवच से आच्छादित अग्र-शिखर-भाग वाला हो, धनुष बाण, प्रहरण, कवच आदि युद्धोपकरणों से भरा हो और युद्ध के लिए तत्पर—सन्नद्ध योधाओं के लिए सजाया गया हो, ऐसा रथ बारम्बार मणियों और रत्नों से बनाये गये—फर्श वाले राजप्रांगण, अंतःपुर अथवा रमणीय प्रदेश में आवागमन करे तो सभी दिशा-विदिशा में चारों ओर उत्तम, मनोज्ञ, मनोहर, कान और मन को आनन्दकारक मधुर शब्द-ध्वनि फैलती है।

हे भदन्त! क्या इन रथादिकों की ध्वनि जैसी ही उन तूणों और मणियों की ध्वनि है ?

गौतम! नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं है। (उनकी ध्वनि तो इनसे भी विशेष मधुर है।)

१४०— से जहाणामए वेयालियवीणाए उत्तरमंदामुच्छियाए अंके सुपइट्टियाए कुसलनर-  
नारिसुसंपरिग्गहियाए चंदणसारनिम्मियकोणपरिघट्टियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंमि मंदायं-मंदायं  
वेइयाए, पवेइयाए, चलियाए, घट्टियाए, खोभियाए, उदीरियाए ओराला, मणुण्णा, मणहरा,  
कण्हमणनिव्वुइकरा सद्दा सव्वओ समंता अभिनिस्सवंति, भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे ।

१४०— भदन्त! क्या उन मणियों और तूणों की ध्वनि ऐसी है जैसी कि मध्यरात्रि अथवा रात्रि के अन्तिम प्रहर में वादनकुशल नर या नारी द्वारा अंक—गोद में लेकर चंदन के सार भाग से रचित कोण (वीणा बजाने का दण्ड, डांडी) के स्पर्श से उत्तर-मन्द मूर्च्छना वाली (राग-रागिनी के अनुरूप तीव्र-मन्द आरोह-अवरोह ध्वनियुक्त) वैतालिक वीणा को मन्द-मन्द ताड़ित, कंपित, प्रकंपित, चालित, घर्षित क्षुभित और उदीरित किये जाने पर सभी दिशाओं एवं विदिशाओं में चारों ओर उदार, सुन्दर, मनोज्ञ, मनोहर, कर्णप्रिय एवं मनमोहक ध्वनि गूंजती है ?

गौतम! नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं है। उन मणियों और तूणों की ध्वनि इससे भी अधिक मधुर है।

१४१— से जहानामए किन्नराण वा, किंपुरिसाण वा, महोरगाण वा, गंधव्वाण वा,

भद्रसालवणगयाणं वा, नंदणवणगयाणं वा, सोमणसवणगयाणं वा, पंडगवणगयाणं वा, हिमवंत-मलयमंदर-गिरिगुहासमन्नागयाण वा, एगओ सन्निहियाणं समागयाणं सन्निसन्नाणं समुवविट्ठाणं पमुइयपक्कीलियाणं गीयरइ गंधव्वहसियमणाणं गज्जं पज्जं, कत्थं, गेयं पयबद्धं, पायबद्धं उक्खित्तं पायंतं मंदायं रोइयावसाणं सत्तसरसमन्नागयं छद्दोसविप्पमुक्कं एक्कारसालंकारं अट्टगुणोववेयं, गुंजासवंककुहरोवगूढं रत्तं तिट्ठाणकरणसुद्धं पगीयाणं, भवेयारूवे ?

१४१— भगवन् ! तो क्या उनकी ध्वनि इस प्रकार की है, जैसे कि भद्रशालवन, नन्दनवन, सौमनसवन अथवा पांडुक वन या हिमवन, मलय अथवा मंदरगिरि की गुफायों में गये हुए एवं एक स्थान पर एकत्रित, समागत, बैठे हुए और अपने-अपने समूह के साथ उपस्थित, हर्षोल्लास पूर्वक क्रीड़ा करने में तत्पर, संगीत-नृत्य-नाटक-हास-परिहासप्रिय किन्नरों, किंपुरुषों, महोरगों अथवा गंधर्वों के गद्यमय-पद्यमय, कथनीय, गेय, पदबद्ध, पादबद्ध, उत्क्षिप्त, पादान्त, मन्द-मन्द घोलनात्मक, रोचितावसान-सुखान्त, मनमोहक सप्त स्वरों से समन्वित, षड्दोषों से रहित, ग्यारह अलंकारों और आठ गुणों से युक्त गुंजारव से दूर-दूर के कोनों—क्षेत्रों को व्याप्त करने वाले राग-रागिनी से युक्त त्रि-स्थानकरण शुद्ध गीतों के मधुर बोल होते हैं ?

**विवेचन**— भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक इन चार देवनिकायों में से किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गंधर्व व्यन्तरनिकाय के देव हैं। ये सभी प्रशस्त गीत, संगीत, नृत्य एवं नाट्य-कलाओं के प्रेमी होते हैं। बालसुलभ क्रीड़ा और हास-परिहास, कोलाहल करने में इन्हें आनन्दानुभूति होती है। पुष्पों से बनाये हुए मुकुट, कुंडल आदि इनके प्रिय आभूषण हैं। सर्व ऋतुओं के सुन्दर सुगन्धित पुष्पों द्वारा निर्मित वनमालाओं से इनके वक्षस्थल शोभित रहते हैं। ये अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र रंग-बिरंगे पंचरंगे परिधान—वस्त्र पहनते हैं। ये सभी प्रायः सुमेरु पर्वत और हिमवंत आदि पर्वतों के रमणीय प्रदेशों में निवास करते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में संगीत के स्वर, दोष और गुणों की संख्या का संकेत करने के लिए सत्तसरसमन्नागयं, छद्दोसविप्पमुक्कं, अट्टगुणोववेयं पद दिये हैं। स्वरों आदि के नाम इस प्रकार हैं—

**सप्तस्वर**— १. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गांधार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत और ७. निषाद।

**षड्दोष**— १. भीत, २. द्रुत, ३. उष्पिथ, ४. उत्ताल, ५. काकस्वर, ६. अनुनास।

**अष्टगुण**— १. पूर्ण, २. रक्त, ३. अलंकृत, ४. व्यक्त, ५. अविघुष्ट, ६. मधुर, ७. सम, ८. सुललित।

१४२— हंता सिया ।

१४२— हे गौतम ! हां, ऐसी ही मधुरातिमधुर ध्वनि उन मणियों और तृणों से निकलती है।

**वनखंडवती वापिकाओं आदि का वर्णन**

१४३— तेसि णं वणसंडाणं तत्थ-तत्थ तहिं तहिं देसे देसे बहूईओ खुड्डा खुड्डियातो वावीयाओ, पुक्खरिणीओ, दीहियाओ, गुंजालियाओ, सरपंतियाओ, सरसरपंतियाओ, बिलपंतियो, अच्छाओ सण्हाओ रययामयकूलाओ, समतीराओ वयरामयपासाणाओ तवणिज्जतलाओ, सुवण्ण-

सुङ्गरययवालुयाओ वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोयडाओ, सुहोयारसुउत्तराओ, पाणामणि-  
तित्थसुबद्धाओ, चउक्कोणाओ, आणुपुव्वसुजातवप्पगंभीरसीयलजलाओ, संछन्नपत्तभिसमुणालाओ,  
बहुउप्पलकुमुयनलिणसुभगसोगंधियपोडरीयसयवत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवचियाओ छप्पयपरिभुज्ज-  
माणकमलाओ, अच्छविमलसलिलपुण्णाओ, पडिहत्थभमंतमच्छकच्छभ-अणेगसउण-मिहुणग-  
णपविचरिताओ ।

पत्तेयं-पत्तेयं पउमवरवेदियापरिक्खत्ताओ, पत्तेयं-पत्तेयं वणसंडपरिक्खत्ताओ ।

अप्पेगइयाओ आसवोयगाओ, अप्पेगइयाओ वारुणोयगाओ, अप्पेगइयाओ खीरोयगाओ,  
अप्पेगइयाओ घओयगाओ, अप्पेगइयाओ खोदोयगाओ<sup>१</sup> अप्पेगतियाओ पगतीए उयगरसेणं पण्णत्ताओ,  
पासादीयाओ दरिसण्णिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ ।

१४३— उन वनखंडों में जहां-तहां स्थान-स्थान पर अनेक छोटी-छोटी चौरस वापिकायें-बावडियां, गोल  
पुष्करिणियां, दीर्घिकायें (सीधी बहती नदियां), गुंजालिकायें (टेड़ी-तिरछी-बांकी बहती नदियां), फूलों से ढकी  
हुई सरोवरों की पंक्तियां, सर-सर पंक्तियां (पानी के प्रवाह के लिए नहर द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए तालाबों की  
पंक्तियां) एवं कूपपंक्तियां बनी हुई हैं ।

इन सभी वापिकाओं आदि का बाहरी भाग स्फटिकमणिवत् अतीव निर्मल, स्निग्ध—कमनीय है । इनके तट  
रजतमय हैं और तटवर्ती भाग अत्यन्त सम-चौरस हैं । ये सभी जलाशय वज्ररत्नमय रूपी पाषाणों से बने हुए हैं । इनके  
तलभाग तपनीय स्वर्ण से निर्मित हैं तथा उन पर शुद्ध स्वर्ण और चांदी की बालू बिछी है । तटों के समीपवर्ती ऊंचे  
प्रदेश (मुंडेर) वैडूर्य और स्फटिक मणि-पटलों के बने हैं । इनमें उतरने और निकलने के स्थान सुखकारी हैं । घाटों  
पर अनेक प्रकार की मणियां जड़ी हुई हैं । चार कोने वाली वापिकाओं और कुओं में अनुक्रम से नीचे-नीचे पानी  
अगाध एवं शीतल है तथा कमलपत्र, बिस (कमलकंद) और मृणालों से ढका हुआ है । ये सभी जलाशय विकसित—  
खिले हुए उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुंडरीक, शतपत्र तथा सहस्रपत्र कमलों से सुशोभित हैं और उन  
पर पराग-पान के लिए भ्रमरसमूह गूंज रहे हैं । स्वच्छ-निर्मल जल से भरे हुए हैं । कल्लोल करते हुए मगर-मच्छ  
कछुआ आदि बेरोक-टोक इधर-उधर घूम फिर रहे हैं और अनेक प्रकार के पक्षिसमूहों के गमनागमन से सदा व्याप्त  
रहते हैं ।

ये सभी जलाशय एक-एक पद्मवरवेदिका और एक एक वनखंड से परिवेष्टित—घिरे हुए हैं ।

इन जलाशयों में से किसी में आसव जैसा, किसी में वारुणोदक (वारुण समुद्र के जल) जैसा, किसी में  
क्षीरोदक जैसा, किसी में घी जैसा, किसी में इक्षुरस जैसा और किसी-किसी में प्राकृतिक—स्वाभाविक पानी जैसा  
पानी भरा है ।

ये सभी जलाशय मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं ।

१४४— तासि णं वावीणं जाव बिलपंतीणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि तिसोपाणपडि-  
रूवगा पण्णत्ता, तेसि णं तिसोपाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—

१. पाठान्तर—अप्पेगइआओ खारोयगाओ ।

वडरामया नेमा.... तोरणाणं छत्ताइछत्ता य णेयव्वा ।

१४४— उन प्रत्येक वापिकाओं यावत् कूपपंक्तियों की चारों दिशाओं में तीन-तीन सुन्दर सोपान बने हुए हैं। उन त्रिसोपान प्रतिरूपकों का वर्णन इस प्रकार है, जैसे—उनकी नेमें वज्ररत्नों की हैं इत्यादि तोरणों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों पर्यन्त इनका वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

१४५— तासि णं खुड्डारखुड्डियाणं वावीणं जाव बिलपंतियाणं तत्थ-तत्थ तहिं-तहिं बहवे उप्पायपव्वयगा, नियइपव्वयगा, जगईपव्वयगा दारुइज्जपव्वयगा, दगमंडवा, दगमंचगा, दगमालगा, दगपासायगा, उसड्डा खुड्डुखुड्डुगा अंदोलगा पक्खंदोलगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

१४५— उन छोटी-छोटी वापिकाओं यावत् कूपपंक्तियों के मध्यवर्ती प्रदेशों में बहुत से उत्पात पर्वत, नियतिपर्वत, जगतीपर्वत, दारुपर्वत तथा कितने ही ऊंचे-नीचे, छोटे-बड़े दकमंडप, दकमंच, दकमालक, दकप्रासाद बने हुए हैं तथा कहीं-कहीं पर मनुष्यों और पक्षियों को झूलने के लिए झूले हिंडोले पड़े हैं। ये सभी पर्वत आदि सर्वरत्नमय अत्यन्त निर्मल यावत् असाधारण रूप से सम्पन्न हैं।

**विवेचन**— सूत्र में वापिकाओं आदि के अन्तरालवर्ती स्थानों में आये हुए जिन पर्वतों आदि का वर्णन किया है, उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

**उत्पातपर्वत**— ऐसे पर्वत जहां सूर्याभ-विमानवासी देव-देवियां विविध प्रकार की चित्र-विचित्र क्रीड़ाओं के निमित्त अपने-अपने उत्तर वैक्रिय शरीरों की रचना करते हैं।

**नियतिपर्वत**— इन पर्वतों पर सूर्याभ-विमानवासी देव-देवियां अपने-अपने भवधारणीय (मूल) वैक्रिय शरीरों से क्रीडारत रहते हैं।

**जगतीपर्वत**— इन पर्वतों का आकार कोट-परकोटे जैसा होता है।

**दारुपर्वत**— दारु अर्थात् काष्ठ-लकड़ी। लकड़ी से बने पर्वत जैसे आकार वाले कृत्रिम पर्वत।

**दकमंडप**— स्फटिक मणियों से निर्मित मंडप अथवा ऐसे मंडप जिनमें फव्वारों द्वारा कृत्रिम वर्षा की रिमझिम-रिमझिम फुहारें बरसती रहती हैं।

**दकमालक**— स्फटिक मणियों से बने हुए घर के ऊपरी भाग में बने हुए कमरे—मालिये।

उत्पात पर्वतों आदि की शोभा

१४६— तेसु णं उप्पाय-पव्वएसु पक्खंदोलएसु बहूइं हंसासणाइं, कोंचासणाइं गरुला-सणाइं उण्णयासणाइं, पणयासणाइं, दीहासणाइं, भहासणाइं पक्खासणाइं, मगरासणाइं उसभा-सणाइं, सीहासणाइं, पउमासणाइं, दिसासोवत्थियाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं जाव पडिरूवाइं ।

१४६— उन उत्पात पर्वतों, पक्षिहिंडोलों आदि पर सर्वरत्नमय, निर्मल यावत् अतीव मनोहर अनेक हंसासन

१. यथाक्रम से इन आसनों की नामबोधक संग्रहणी इस प्रकार है—

“हंसे कोंचे गरुडे उण्णय पणए य दीह भदे य ।

पक्खे मयरे पउमे सीहे दिसासोत्थि बारसमे ।”

(हंस जैसी आकृति वाले आसन) क्रौंचासन, गरुडासन, उन्नतासन (ऊपर की ओर उठे हुए आसन), प्रणतासन (नीचे की ओर झुके हुए आसन), दीर्घासन (शय्या जैसे लम्बे आसन), भद्रासन, पक्ष्यासन, मकरासन, वृषभासन, सिंहासन, पद्मासन और दिशास्वस्तिक आसन (पक्षी, मगर, वृषभ, सिंह, कमल और स्वस्तिक के चित्रामों से सुशोभित अथवा तदनु रूप आकृति वाले आसन रखे हुए हैं।

### वनखंडवतीं गृहों का वर्णन

१४७— तेसु णं वणसंडेसु तत्थ-तत्थ तहिं-तहिं देसे देसे बहवे आलियघरगा, मालियघरगा, कयलिघरगा, लयाघरगा, अच्छणघरगा, पिच्छणघरगा, मज्जणघरगा, पसाहणघरगा, गब्भघरगा, मोहणघरगा, सालघरगा, जालघरगा, कुसुमघरगा, चित्तघरगा, गंधव्वघरगा, आयंसघरगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

१४७— उन वनखंडों में यथायोग्य स्थानों पर बहुत से आलिगृह (वनस्पतिविशेष से बने हुए गृह जैसे मंडप), मालिगृह (वनस्पतिविशेष से बने हुए गृह), कदलीगृह, लतागृह, आसनगृह (विश्राम करने के लिए बैठने योग्य आसनों से युक्त घर), प्रेक्षागृह (प्राकृतिक शोभा के अवलोकन हेतु बने विश्रामगृह अथवा नाट्यगृह), मज्जनगृह (स्नानघर), प्रसाधनगृह (श्रृंगार-साधनों से सुसज्जित स्थान), गर्भगृह (भीतर का घर), मोहनगृह (रतिक्रीड़ा करने योग्य स्थान), शालागृह, जाली वाले गृह, कुसुमगृह, चित्रगृह (चित्रों से सज्जित स्थान), गंधर्वगृह (संगीत-नृत्य शाला), आदर्शगृह (दर्पणों से बने हुए भवन) सुशोभित हो रहे हैं। ये सभी गृह रत्नों से बने हुए अधिकाधिक निर्मल यावत् असाधारण मनोहर हैं।

१४८— तेसु णं आलियघरगेसु जाव<sup>१</sup> आयंसघरगेसु तहिं तहिं घरएसु हंसासणाइं जाव<sup>२</sup> दिसासोवत्थिआसणाइं सव्वरयणामयाइं जाव पडिरूवाइं ।

१४८— उन आलिगृहों यावत् आदर्शगृहों में सर्वरत्नमय यावत् अतीव मनोहर हंसासन यावत् दिशा-स्वस्तिक आसन रखे हैं।

### वनखंडवतीं मंडपों का वर्णन

१४९— तेसु णं वणसंडेसु तत्थ-तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे जातिमंडवगा, जूहियामंडवगा मल्लियामंडवगा, णवमालियामंडवगा, वासंतिमंडवगा, दहिवासुयमंडवगा, सूरिल्लियमंडवगा<sup>३</sup> तंबोलिमंडवगा, मुद्दियामंडवगा, णागलयामंडवगा, अतिमुत्तयलयामंडवगा, अप्फोयामंडवगा, मालुयामंडवगा, अच्छा सव्वरयणामया जाव पडिरूवा ।

१४९— उन वनखंडों में विभिन्न स्थानों पर बहुत से जातिमंडप (जाई के कुंज), यूथिकामंडप (जूही की बेल के मंडप), मल्लिकामंडप, नवमल्लिकामंडप, वासंतीमंडप, दधिवासुका (वनस्पतिविशेष) मंडप, सूरिल्लि (सूरजमुखी)

१. देखें सूत्र संख्या १४७

२. देखें सूत्र संख्या १४६

३. पाठान्तः—सूरिल्लि, सूरमल्लि ।

मंडप, नागरबेलमंडप, मृद्रीकामंडप (अंगूर की बेल के मंडप), नागलतामंडप, अतिमुक्तक (माधवीलतामंडप, अप्फोया मंडप और मालुकामंडप बने हुए हैं। ये सभी मंडप अत्यन्त निर्मल, सर्वरत्नमय यावत् प्रतिरूप— अतीव मनोहर हैं।

**विवेचन**— लता और बेलों से बने इन मंडपों में बहुत सी सुगंधित पुष्पों वाली लतायें और बेलें तो प्रसिद्ध हैं, परन्तु कुछ एक नामों के बारे में जानकारी नहीं मिलती है। जैसे दधिवासुका अप्फोया मालुका। लेकिन प्रसंग से ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी लतायें प्रायः सुगंधित पुष्पों वाली होनी चाहिए।

१५०— तेसु णं जातिमंडवएसु जाव मालुयामंडवएसु बहवे पुढविसिलापट्टगा हंसासण-संठिया जाव दिसासोवत्थियासणसंठिया, अण्णे य बहवे वरसयणासणविसिट्टुसंठाणसंठिया<sup>१</sup> पुढविसिलापट्टगा पण्णत्ता समाणाउसो ! आईणग-रूय-बूर-णवणीय-तूलफासा, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

१५०— हे आयुष्मन् श्रमणो ! उन जातिमंडपों यावत् मालुकामंडपों में कितने ही हंसासन सदृश आकार वाले यावत् कितने ही क्रौंचासन, कितने ही गरुडासन, कितने ही उन्नतासन, कितने ही प्रणतासन, कितने ही दीर्घासन, कितने ही भद्रासन, कितने ही पक्ष्यासन, कितने ही मकारासन, कितने ही वृषभासन, कितने ही सिंहासन, कितने ही पद्मासन, कितने ही दिशास्वस्तिकासन जैसे आकार वाले पृथ्वीशिलापट्टक तथा दूसरे भी बहुत से श्रेष्ठ शयनासन (शैया, पलंग) सदृश विशिष्ट आकार वाले पृथ्वीशिलापट्टक रखे हुए हैं। ये सभी पृथ्वीशिलापट्टक चर्मनिर्मित वस्त्र अथवा मृगछाला, रुई, बूर, नवनीत, तूल, सेमल या आक की रुई के स्पर्श जैसे सुकोमल, कमनीय, सर्वरत्नमय, निर्मल यावत् अतीव रमणीय हैं।

१५१— तत्थ णं बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य आसयंति, सयंति, चिट्ठंति, निसीयंति, तुयट्ठंति, रमंति, ललंति, कीलंति, किट्ठंति, मोहंति, पुरा पोरणाणं सुचिण्णाण सुपरिवक्कंताण सुभाण कडाण कम्माण कल्लाणाण कल्लाणं फलविवागं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ।

१५१— उन हंसासनों आदि पर बहुत से सूर्याभविमानवासी देव और देवियां सुखपूर्वक बैठते हैं, सोते हैं, शरीर को लम्बा कर लेटते हैं, विश्राम करते हैं, ठहरते हैं, करवट लेते हैं, रमण करते हैं, केलिक्रीड़ा करते हैं, इच्छानुसार भोग-विलास भोगते हैं, मनोविनोद करते हैं, रासलीला करते हैं और रतिक्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार वे अपने-अपने सुपुरुषार्थ से पूर्वोपार्जित शुभ, कल्याणमय शुभफलप्रद, मंगलरूप पुण्य कर्मों के कल्याणरूप फल-विपाक का अनुभव करते हुए समय बिताते हैं।

वनखण्डवती प्रासादावतंसक

१५२— तेसि णं वणसंडाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं-पत्तेयं पासायवडेंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडेंसगा पंच जोयणसयाइं उट्ठं उच्चत्तेणं, अट्ठाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं, अब्भुगय-मूसियपहसिया इव तहेव बहुसमरमणिज्जभूमिभागो, उल्लोओ, सीहासणं सपरिवारं । तत्थ णं

१. पाठान्तर—मांसलसुघट्टविसिट्टुसंठाणसंठिया ।

चत्वारि देवा महिड्विया जाव ( महज्जुइया, महाबला, महासुक्खा महाणुभावा ) पलिओवमद्वितीया परिवसंति, तं जहा असोए सत्तपण्णे चंपए चूए ।

१५२— उन वनखण्डों के मध्यातिमध्य भाग में ( बीचोंबीच ) एक-एक प्रासादावतंसक ( प्रासादों के शिरोभूषण रूप श्रेष्ठ प्रासाद ) कहे हैं ।

ये प्रासादावतंसक पांच सौ योजन ऊंचे और अढ़ाई सौ योजन चौड़े हैं और अपनी उज्ज्वल प्रभा से हंसते हुए से प्रतीत होते हैं । इनका भूमिभाग अतिसम एवं रमणीय है । इनके चंदेवा, सामानिक आदि देवों के भद्रासनों सहित सिंहासन आदि का वर्णन पूर्ववत् कर लेना चाहिए ।

इन प्रासादावतंसकों में महान् ऋद्धिशाली यावत् ( महाद्युतिसम्पन्न, महाबलिष्ठ, अतीव सुखसम्पन्न और महाप्रभावशाली ) एक पल्योपम की स्थिति वाले चार देव निवास करते हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—अशोकदेव, सप्तपर्णदेव, चंपकदेव और आम्रदेव ।

**विवेचन**— सूत्र में मात्र सूर्याभविमान के चतुर्दिग्वर्ती वनखंडों में निवास करने वाले देवों के नाम और उनकी आयु का उल्लेख किया है । इस विषय में ज्ञातव्य यह है—

ये चारों देव अपने-अपने नाम वाले वनखंड के स्वामी हैं तथा सूर्याभदेव के सदृश महान् ऋद्धिसम्पन्न हैं एवं अपने-अपने सामानिक देवों, सपरिवार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सप्त अनीकों—सेनाओं और सेनापतियों, आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य, स्वामित्व आदि करते हुए नृत्य, गीत, नाटक और वाद्यघोषों के साथ विपुल भोगोपभोगों का भोग करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं ।

इन वनखंडाधिपति देवों की आयु का कालप्रमाण बतलाने के लिए 'पल्योपम' शब्द का प्रयोग किया है । जो अतिदीर्घ काल का बोधक है ।

काल अनन्त है और इसमें से जिस समय-अवधि की दिन, मास और वर्षों के रूप में गणना की जा सकती है, उसके लिए तो जैन वाङ्मय में घड़ी, घंटा, पूर्वाग पूर्व आदि शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त संज्ञायें निश्चित की हैं । परन्तु इसके बाद जहां समय की अवधि इतनी लम्बी हो कि उसकी गणना वर्षों में न की जा सके, वहां उपमाप्रमाण की प्रवृत्ति होती है । अर्थात् उसका बोध उपमाप्रमाण द्वारा कराया जाता है । उस उपमाकाल के दो भेद हैं—पल्योपम और सागरोपम । प्रस्तुत में पल्योपम का उल्लेख होने से उसका आशय स्पष्ट करते हैं ।

पल्य या पल्ल का अर्थ है कुआ अथवा धान्य को मापने का पात्र-विशेष । उसके आधार या उसकी उपमा से की जाने वाली कालगणना की अवधि पल्योपम कहलाती है ।

पल्योपम के तीन भेद हैं—१. उद्धारपल्योपम, २. अद्धारपल्योपम और ३. क्षेत्रपल्योपम । ये तीनों भी प्रत्येक बादर<sup>१</sup> और सूक्ष्म के भेद से दो-दो प्रकार के हैं । इनका स्वरूप क्रमशः इस प्रकार है—

**उद्धारपल्योपम**— उत्सेधांगुल<sup>२</sup> द्वारा निष्पन्न एक योजन प्रमाण लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा एक गोल पल्य बनाकर उसमें एक दिन से लेकर सात दिन तक की आयु वाले भोगभूमिज मनुष्यों के बालाग्रों को इतना ठसाठस भरें कि न उन्हें आग जला सके, न वायु उड़ा सके और न जल का ही प्रवेश हो सके । इस प्रकार

१. अनुयोग द्वार में सूक्ष्म और व्यवहारिक ये दो भेद किये हैं ।
२. आठ यवमध्य का उत्सेधांगुल होता है ।

से भरे हुए उस कुए में से प्रतिसमय एक-एक बालाग्र बालखंड निकाला जाये तो निकालते निकालते जितने समय में वह कुआ खाली हो जाये उस कालपरिमाण को उद्धारपल्योपम कहते हैं। उद्धार का अर्थ है निकालना। अतएव बालों के उद्धार या निकाले जाने के कारण इसका उद्धारपल्योपम नामकरण किया गया है।

उपर्युक्त वर्णन बादर उद्धार-पल्योपम का है। अब सूक्ष्म उद्धार-पल्योपम का स्वरूप बतलाते हैं—

ऊपर बादर उद्धार-पल्योपम को समझाने के लिए कुए में जिन बालाग्रों का संकेत किया है। उनमें से प्रत्येक बालाग्र के बुद्धि के द्वारा असंख्यात खंड-खंड करके उन सूक्ष्म खंडों को पूर्ववर्णित कुए में ठसाठस भरा जाये और फिर प्रतिसमय एक-एक खंड को उस कुए से निकाला जाये। ऐसा करने पर जितने काल में वह कुआ निःशेष रूप से खाली हो जाये, उस समयावधि को सूक्ष्म उद्धारपल्योपम कहते हैं। इसका कालप्रमाण संख्यात करोड़ वर्ष है। इस सूक्ष्म उद्धारपल्योपम से द्वीप और समुद्रों की गणना की जाती है।

**अद्धापल्योपम**— अद्धा शब्द का अर्थ है काल या समय। प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित पल्योपम का आशय इसी पल्योपम से है। इसका उपयोग चतुर्गति के जीवों की आयु और कर्मों की स्थिति वगैरह को जानने में किया जाता है।

इसकी गणना का क्रम इस प्रकार है—पूर्वोक्त प्रमाण वाले कुए को बालाग्रों से ठसाठस भरने के बाद सौ-सौ वर्ष के अनन्तर एक-एक बालाग्र को निकाला जाये और इस प्रकार से निकालते-निकालते जितना काल लगे, निकालने पर कुआ खाली हो जाये, उतने काल प्रमाण को बादर अद्धा पल्योपम कहते हैं।

ऊपर कहे गये बादर अद्धापल्योपम के लिए जो बालाग्र लिए गए हैं, उनके बुद्धि द्वारा असंख्यात अदृश्य खंड करके कुए को ठसाठस भरा जाये और फिर प्रति सौ वर्ष बाद एक खंड को निकाला जाये एवं इस प्रकार से निकालते-निकालते जब कुआ खाली हो जाये और उसमें जितना समय लगे, उतने कालप्रमाण को सूक्ष्म अद्धा-पल्योपम कहते हैं।

**क्षेत्रपल्योपम**— उद्धार पल्योपम के प्रसंग में जिस एक योजन लम्बे-चौड़े और गहरे कुए का उल्लेख है उसको पूर्व की तरह एक से सात दिन तक के भोगभूमिज के बालाग्रों से ठसाठस भर दो। वे अग्रभाग आकाश के जिन प्रदेशों का स्पर्श करें, उनमें से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश का अपहरण करते-करते जितने समय में समस्त प्रदेशों का अपहरण हो जाये, उतने समय का प्रमाण बादरक्षेत्र पल्योपम कहलाता है। यह काल असंख्यात उत्सर्पिणी और असंख्यात अवसर्पिणी काल के बराबर होता है।

बादरक्षेत्र पल्योपम का प्रमाण जानने के लिए जिन बालाग्रों का संकेत है, उनके असंख्यात खंड करके पूर्ववत् पल्य में भर दो। वे खंड उस पल्य में आकाश के जिन प्रदेशों का स्पर्श करें और जिन प्रदेशों का स्पर्श न करें, उनमें से प्रति समय एक-एक प्रदेश का अपहरण करते-करते जितने समय में स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनों प्रकार के सभी प्रदेशों का अपहरण किया जा सके उतने समय के प्रमाण को सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपमकाल कहते हैं। इसका काल भी असंख्यात उत्सर्पिणी—अवसर्पिणी प्रमाण है। जो बादरक्षेत्र पल्योपम की अपेक्षा असंख्यात गुना अधिक जानना चाहिए। इसके द्वारा दृष्टिवाद में द्रव्यों के प्रमाण का विचार किया जाता है।

अनुयोगद्वार सूत्र और प्रवचनसारोद्धार में पल्योपम का विस्तार से विवेचन किया गया है।

दिगम्बर साहित्य में पल्योपम का जो वर्णन किया गया है, वह उक्त वर्णन से कुछ भिन्न है। उसमें क्षेत्र-पल्योपम नाम का कोई भेद नहीं है और न प्रत्येक पल्योपम के बादर और सूक्ष्म भेद ही किये हैं। वहां पल्योपम के

तीन प्रकारों के नाम इस प्रकार हैं—१. व्यवहारपल्य, २. उद्धारपल्य और ३. अद्धारपल्य। इनमें से व्यवहार पल्य का इतना ही उपयोग है कि उसके द्वारा उद्धारपल्य और अद्धारपल्य की निष्पत्ति होती है। उद्धारपल्य के द्वारा द्वीप और समुद्रों की संख्या और अद्धारपल्य के द्वारा जीवों की आयु आदि का विचार किया जाता है।

सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक और त्रिलोकसार में इनका विशद रूप से विवेचन किया गया है।

### उपकारिकालयन का वर्णन

१५३— सूरियाभस्स णं देवविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तं जहा— वणसंडविहूणे जाव बहवे वेमाणिया देवा देवीओ य आसयंति जाव विहरंति ।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसे एत्थ णं महेगे उवगारियालयणे पण्णत्ते, एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णिण जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णिण य सत्तावीसं जोयणसए तित्ति य कोसे अट्टावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं, जोयणं बाहल्लेणं सव्वजंबूणयामए अच्छे जाव पडिरूवे ।

१५३— सूर्याभ नामक देवविमान के अंदर अत्यन्त समतल एवं अतीव रमणीय भूमिभाग है। शेष बहुत से वैमानिक देव और देवियों के बैठने से लेकर विचरण करने तक का वर्णन पूर्ववत् कर लेना चाहिए। किन्तु यहां वनखंड का वर्णन छोड़ देना चाहिए।

उस अतीव सम रमणीय भूमिभाग के बीचों-बीच एक उपकारिकालयन बना हुआ है। जो एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है और उसकी परिधि (कुल क्षेत्र का घेराव) तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष और कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल है। एक योजन मोटाई है। यह विशाल लयन सर्वात्मना (पूरा का पूरा) स्वर्ण का बना हुआ, निर्मल यावत् प्रतिरूप—अतीव रमणीय है।

विवेचन— उपकारिकालयन—प्रशासनिक कार्यों की व्यवस्था के लिए निर्धारित सचिवालय सरीखे स्थान विशेष को कहना चाहिए—‘सौधोऽस्त्री राजसदनम् उपकार्योपकारिका’ (अमरकोश द्वि.कां. पुरवर्ग श्लोक १०, हैम अभिधान कां. ४, श्लोक ५९)। किन्तु ‘पाइअसद्महण्णवो’ में उवगारिय+लयण (लेण) इस प्रकार समास पद मानकर उवगारिया का अर्थ प्रासाद आदि की पीठिका और लयण (लेण) का अर्थ गिरिवर्ती पाषाण-गृह बताया है। यहां के वर्णन से प्रतीत होता है कि प्रासाद आदि की पीठिका अर्थ ग्रहण किया है।

१५४— से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेण य सव्वतो समंता संपरिक्खत्ते।

१५४— वह उपकारिकालयन सभी दिशा-विदिशाओं में—सब ओर से एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड (उद्यान) से घिरा हुआ है।

### पद्मवरवेदिका का वर्णन

१५५— सा णं पउमवरवेइया अद्धजोयणं उट्ठं उच्चत्तेणं, पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं उवकारियलेणसमा परिक्खेवेणं । तीसे णं पउमवरवेइयाए इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा वयरामया णिम्मा रिट्टामया पत्तिट्टाणा वेरुलियमया खंभा सुवण्ण-रुप्पमया फलया, नाणा-

मणिमया कलेवरसंघाडगा णाणामणिमया रूवा णाणामणिमया रूवसंघाडगा अंकामया पक्खा, पक्खबाहाओ, जोईरसामया वंसा वंसकवेल्लुयाओ, रययामईओ पट्टियाओ जायरूवमईओ ओहाडणीओ वडरामईओ उवरिपुच्छणी, सव्वरयणामए अच्छायणे ।

सा णं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेमजालेणं, ए०<sup>१</sup> गवक्खजालेणं, ए० खिंखिणीजालेणं, ए० घंटाजालेणं, ए० मुत्ताजालेणं, ए० मणिजालेणं, ए० कणगजालेणं, ए० पउमजालेणं सव्वतो समंता संपरिखित्ता, तेणं जाला तवणिज्जलंबूसगा जाव<sup>२</sup> चिट्ठंति । तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ-तत्थ-देसे तहिं तहिं बहवे हयसंघाडा जाव<sup>३</sup> उसभसंघाडा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा पासादीया जाव वीहीओ पंतीयो मिहुणाणि लयाओ ।

१५५— वह पद्मवरवेदिका ऊंचाई में आधे योजन ऊंची, पांच सौ धनुष चौड़ी और उपकारिकालयन जितनी इसकी परिधि है ।

उस पद्मवरवेदिका का वर्णन इस प्रकार का किया गया है, जैसे कि वज्ररत्नमय (इसकी नेम हैं)। रिष्टरत्नमय इसके प्रतिष्ठान—मूल पाद हैं। वैडूर्यरत्नमय इसके स्तम्भ हैं। स्वर्ण और रजतमय इसके फलक—पाटिये हैं। लोहिताक्ष रत्नों से बनी इसकी सूचियां—कीलें हैं। विविध मणिरत्नमय इसका कलेवर—ढांचा है तथा इसका कलेवरसंघात—भीतरी-बाहरी ढांचा विविध प्रकार की मणियों से बना हुआ है। अनेक प्रकार के मणि-रत्नों से इस पर चित्र बने हैं। नानामणि-रत्नों से इसमें रूपक संघात—बेल-बूटों, चित्रों आदि के समूह बने हैं। अंक रत्नमय इसके पक्ष—सभी हिस्से हैं और अंक रत्नमय ही इसके पक्षबाहा—प्रत्येक भाग हैं। ज्योतिरस रत्नमय इसके वंश—बांस, वला और वंशकवेल्लुक (सीधे रखे बांसों के दोनों ओर रखे तिरछे बांस एवं कवेल्लू) हैं। रजतमय इनकी पेट्टियां (बांसों को लपेटने के लिए ऊपर नीचे लगी पेट्टियां—लागें) हैं। स्वर्णमयी अवघाटनियां (ढंकनी) और वज्ररत्नमयी उपरिप्रौंछनी (नरियां) हैं। सर्वरत्नमय आच्छादन (तिरपाल) हैं।

वह पद्मवरवेदिका सभी दिशा-विदिशाओं में चारों ओर से एक-एक हेमजाल (स्वर्णमय माल्यसमूह) से जाल (गवाक्ष की आकृति के रत्नविशेष के माल्यसमूह) से, किंकणी (घुंघरू) घंटिका, मोती, मणि, कनक (स्वर्ण-विशेष) रत्न और पद्म (कमल) की लंबी-लंबी मालाओं से परिवेष्टित है अर्थात् उस पर लंबी-लंबी मालायें लटक रही हैं।

ये सभी मालायें सोने के लंबूसकों (गेंद की आकृति जैसे आभूषणविशेषों, मनकों) आदि से अलंकृत हैं।

उस पद्मवरवेदिका के यथायोग्य उन-उन स्थानों पर अश्वसंघात (समान आकृति—संस्थान वाले अश्वयुगल) यावत् वृषभयुगल सुशोभित हो रहे हैं। ये सभी सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् प्रतिरूप, प्रासादिक—मन को प्रफुल्लित करने वाले हैं यावत् इसी प्रकार इनकी वीथियां, पंक्तियां, मिथुन एवं लतायें हैं।

१५६— से केणट्टेणं भंते ! एवं वुच्चति पउमवरवेइया पउमवरवेइया ?

१. 'ए०' अक्षर 'एगमेगेणं' पद का दर्शक है।
२. देखें सूत्र संख्या ४९
३. देखें सूत्र संख्या १३०

१५६— गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से पूछा—हे भदन्त! किस कारण कहा जाता है कि पद्मवरवेदिका है, पद्मवरवेदिका है ? अर्थात् इस वेदिका को पद्मवरवेदिका कहने का क्या कारण है ?

१५७— गोयमा ! पउमवरवेइयाए णं तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं वेइयासु, वेइयाबाहासु य वेइयफलएसु य वेइयपुडंतरेसु य खंभेसु, खंभबाहासु खंभसीसेसु, खंभपुडंतरेसु, सूईसु, सूई-मुखेसु, सूईफलएसु, सूईपुडंतरेसु, पक्खेसु, पक्खबाहासु, पक्खपेरंतरेसु, पक्खपुडंतरेसु, बहुयाइं उप्पलाइं-पउमाइं-कुमुयाइं णलिणाति-सुभगाइं-सोगंधियाइं-पुंडरीयाइं-महापुंडरीयाणि-सयवत्ताइं-सहस्सवत्ताइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं पडिरूवाइं महया वासिक्कच्छत्तसमाणाइं पण्णत्ताइं समणा-उसो ! से एएणं अट्टेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ पउमवरवेइया 'पउमवरवेइया' ।

१५७— भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम! पद्मवर-वेदिका के आस-पास की (समीपवर्ती) भूमि में, वेदिका के फलकों—पाटियों में, वेदिकायुगल के अन्तरालों में, स्तम्भों, स्तम्भों की बाजुओं, स्तम्भों के शिखरों, स्तम्भयुगल के अन्तरालों, कीलियों, कीलियों के ऊपरीभागों, कीलियों से जुड़े हुए फलकों, कीलियों के अन्तरालों, पक्षों (स्थान विशेषों), पक्षों के प्रान्त भागों और उनके अन्तरालों आदि-आदि में वर्षाकाल के बरसते मेघों से बचाव करने के लिए छत्राकार—जैसे अनेक प्रकार के बड़े-बड़े विकसित, सर्व रत्नमय स्वच्छ, निर्मल अतीव सुन्दर, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुंडरीक, महापुंडरीक, शतपत्र और सहस्रपत्र कमल शोभित हो रहे हैं।

इसीलिए हे आयुष्मन् श्रमण गौतम! इस पद्मवरवेदिका को पद्मवरवेदिका कहते हैं।

१५८— पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया, असासया ?

गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया ।

से केणट्टेणं भंते ! एवं वुच्चइ सिय सासया, सिय असासया ?

गोयमा ! दव्वट्टयाए सासया, वन्नपज्जवेहिं, गंधपज्जवेहिं, रसपज्जवेहिं, फासपज्जवेहिं असासया, से एएणट्टेणं गोयमा ! एवं वुच्चति सिय सासया, सिय असासया ।

पउमवरवेइया णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! ण कयावि णासि, ण कयावि णत्थि, ण कयावि न भविस्सइ, भुविं च हवइ य, भविस्सइ य, धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्टिया णिच्चा पउमवरवेइया ।

१५८— हे भदन्त! वह पद्मवरवेदिका शाश्वत है अथवा अशाश्वत है ?

हे गौतम! (किसी अपेक्षा) शाश्वत—नित्य भी है और (किसी अपेक्षा) अशाश्वत भी है।

भगवन्! किस कारण आप ऐसा कहते हैं कि (किसी अपेक्षा) वह शाश्वत भी है और (किसी अपेक्षा) अशाश्वत भी है ?

हे गौतम! द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा वह शाश्वत है परन्तु वर्ण, गंध, रस और स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत है। इसी कारण हे गौतम! यह कहा है कि वह पद्मवरवेदिका शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है।

हे भदन्त! काल की अपेक्षा वह पद्मवरवेदिका कितने काल पर्यन्त—कब तक रहेगी ?

हे गौतम! वह पद्मवरवेदिका पहले (भूतकाल) में कभी नहीं थी, ऐसा नहीं है, अभी (वर्तमान में) नहीं है, ऐसा भी नहीं है और आगे (भविष्य में) नहीं रहेगी ऐसा भी नहीं है, किन्तु पहले भी थी, अब भी है और आगे भी रहेगी। इस प्रकार त्रिकालावस्थायी होने से वह पद्मवरवेदिका ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

**विवेचन**— प्रस्तुत सूत्र में पद्मवरवेदिका की शाश्वतता विषयक गौतम स्वामी की जिज्ञासा का समाधान द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो दृष्टियों (नयों से) किया गया है।

भगवान् ने पद्मवरवेदिका को द्रव्यार्थिक दृष्टि से शाश्वत बताने के साथ वर्णादि पर्यायों के परिवर्तनशील होने से अशाश्वत बताया है क्योंकि द्रव्य-पर्याय का यही स्वरूप है। नित्य शाश्वत ध्रुव होते हुए भी द्रव्य में भावात्मक-पर्यायात्मक परिवर्तन प्रतिसमय होता रहता है। इन्हीं परिवर्तनों को पर्याय कहते हैं और पर्यायें अशाश्वत होती हैं।

पर्यायें अवश्य ही प्रतिसमय परिवर्तित होती रहती हैं परन्तु प्रदेशों के लिए यह नियम नहीं है। किन्हीं द्रव्यों के प्रदेश नियत भी होते हैं और किन्हीं के अनियत भी। जैसे कि जीव के प्रदेश सभी देश और काल में नियत है, वे कभी घटते-बढ़ते नहीं हैं। किन्तु पुद्गलद्रव्य के प्रदेशों का नियम नहीं है, उनमें न्यूनाधिकता होती रहती है।

पद्मवरवेदिका पौद्गलिक है और पर्याय दृष्टि से परिवर्तनशील-अशाश्वत है किन्तु पुद्गल द्रव्य होते हुए भी अनियत प्रदेशी नहीं है।

इन सब विशेषताओं को सूत्र में ध्रुवा, णियया, सासया, अक्खया, अक्वया, अवट्टिया—ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित पदों से स्पष्ट किया है।

१५९— सा णं पउमवरवेइया एगेणं वणसंडेणं सव्वओ संपरिक्खत्ता ।

से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं उवयारियालेणसमे परिक्खेवेणं, वणसंडवण्णओ भाणितव्वो जाव विहरंति ।

१५९— वह पद्मवरवेदिका चारों ओर—सभी दिशा-विदिशाओं में—एक वनखंड से परिवेष्टित—घिरी हुई है।

उस वनखंड का चक्रवालविष्कम्भ (गोलाकार-चौड़ाई) कुछ कम दो योजन प्रमाण है तथा उपकारिकालयन की परिधि जितनी उसकी परिधि है। वहां देव-देवियां विचरण करती हैं, यहां तक वनखण्ड का वर्णन पूर्ववत् यहां कर लेना चाहिए।

**विवेचन**— सूत्र संख्या १३६-१५१ में वनखण्ड का विस्तार से वर्णन किया है। उसी वर्णन को यहां करने का संकेत 'वनसंडवण्णओ भाणितव्वो जाव विहरंति' पद से किया है। संक्षेप में उक्त वर्णन का सारांश इस प्रकार है—

यह वनखंड चारों ओर से एक परकोटे से घिरा हुआ है तथा वृक्षों की सघनता से हरा-भरा अत्यन्त शीतल और दर्शकों के मन को सुखप्रद है। वनखंड का भूभाग अत्यन्त सम तथा अनेक प्रकार की मणियों और तृणों से उपशोभित है।

इस वनखंड में स्थान-स्थान पर अनेक छोटी-बड़ी बावड़ियां, पुष्करणियां, गुंजालिकायें आदि बनी हुई हैं। इन सबके तट रजतमय हैं और तलभाग में स्वर्ण-रजतमय बालुका बिछी हुई है। कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुंडरीक आदि विविध जाति के कमलों से इनका जल आच्छादित है।

इन वापिकाओं आदि के अन्तरालवर्ती स्थानों में मनुष्यों और पक्षियों के झूलने के लिए झूले—हिंडोले पड़े हैं और बहुत से उत्पातपर्वत, नियतिपर्वत, दारुपर्वत, दकमंडप, दकमालक, दकमंच बने हुए हैं।

इन वनखण्डों में कहीं-कहीं आलिगृह, मालिगृह, कदलीगृह, लतागृह, मंडप आदि बने हैं और विश्राम करने के लिए जिनमें हंसासन आदि अनेक प्रकार के आसन तथा शिलापट्टक रखे हैं और जहां बहुत से देव-देवियां आ-आकर विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हुए पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मों के फलविपाक को भोगते हुए आनन्दपूर्वक विचरण करते हैं।

१६०— तस्स णं उवयारियालेणस्स चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ, तोरणा, झया, छत्ताइच्छत्ता ।

तस्स णं उवयारियालणस्स उवरि, बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीणं फासो ।

१६०— उस उपकारिकालयन की चारों दिशाओं में चार त्रिसोपानप्रतिरूपक (तीन-तीन सीढ़ियों की पंक्ति) बने हैं। यान विमान के सोपानों के समान इन त्रिसोपान-प्रतिरूपकों का वर्णन भी तोरणों, ध्वजाओं, छत्रातिछत्रों आदि पर्यन्त यहां करना चाहिए।

उस उपकारिकालयन के ऊपर अतिसम, रमणीय भूमिभाग है। यानविमानवत् मणियों के स्पर्शपर्यन्त इस भूमिभाग का वर्णन यहां करना चाहिए।

**विवेचन**— उपकारिकालयन की त्रिसोपान-पंक्तियों और भूमिभाग का वर्णन यानविमानवत् करने की सूचना प्रस्तुत सूत्र में दी गई है। संक्षेप में उक्त वर्णन इस प्रकार है—

इन त्रिसोपानों की नेम वज्ररत्नों से बनी हुई हैं। रिष्टरत्नमय इनके प्रतिष्ठान (पैर रखने के स्थान) हैं। वैदूर्यरत्नों से बने इनके स्तम्भ हैं और फलक—पाटिये स्वर्णरजतमय हैं। नाना मणिमय इनके अवलंबन और कटकड़ा हैं। मन को प्रसन्न करने वाले अतीव मनोहर हैं।

इन प्रत्येक त्रिसोपान-पंक्तियों के आगे अनेक प्रकार के मणि-रत्नों से बने हुए बेलबूटों आदि से सुशोभित तोरण बंधे हैं और तोरणों के ऊपरी भाग स्वस्तिक आदि आठ-आठ मंगलों एवं वज्ररत्नों से निर्मित और कमलों जैसी सुरभिगंध से सुगंधित, रमणीय चामरों से शोभित हो रहे हैं। इसके साथ ही अत्यन्त शोभनीक रत्नों से बने हुए छत्रातिछत्र, पताकायें, घंटा-युगल एवं उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुंडरीक, महापुंडरीक आदि कमलों के झूमके भी उन तोरणों पर लटक रहे हैं आदि।

उस उपकारिकालयन का भूमिभाग आलिंग-पुष्कर, मृदंगपुष्कर, सरोवर, करतल, चन्द्रमंडल, सूर्यमंडल आदि के समान अत्यन्त सम और रमणीय है।

उस भूभाग में अंजन, खंजन, सघन मेघ-घटाओं आदि के कृष्ण वर्ण से, भृंगकीट, भृंगपंख, नीलकमल, नील-अशोकवृक्ष आदि के नील वर्ण से, प्रातःकालीन सूर्य, पारिजात, पुष्प, हिंगलुक, प्रबाल आदि के रक्त वर्ण से, स्वर्णचंपा, हरताल, चिकुर, चंपाकुसुम आदि के पीत वर्ण से और शंख, चन्द्रमा, कुमुद आदि के श्वेत वर्ण से भी अधिक श्रेष्ठ कृष्ण आदि वर्ण वाली मणियां जड़ी हुई हैं।

वे सभी मणियां इलायची, चंदन, अगर, लवंग आदि सुगंधित पदार्थों से भी अधिक सुरभि गंध वाली हैं और बूर—रुई, मक्खन, हंसगर्भ नामक रुई विशेष से भी अधिक सुकोमल उनका स्पर्श है।

## मुख्य प्रासादावतंसक का वर्णन

१६१— तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महेगे मूलपासाय-वडेंसए पण्णत्ते ।

से णं मूलपासायवडिंसए पंच जोयणसयाइं उड्डं उच्चत्तेण, अड्डाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसिय-वण्णओ, भूमिभागो उल्लोओ सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं, अट्टुमंगलगा झया छत्ताइच्छत्ता ।

१६१— इस अतिसम रमणीय भूमिभाग के अतिमध्यदेश में एक विशाल मूल—मुख्य प्रासादावतंसक (उत्तम महल) है।

वह प्रासादावतंसक पांच सौ योजन ऊंचा और अढ़ाई सौ योजन चौड़ा है तथा अपनी फैल रही प्रभा से हंसता हुआ प्रतीत होता है, आदि वर्णन करते हुए उस प्रासाद के भीतर के भूमिभाग, उल्लोक—चंदेवा, परिवार रूप अन्य भद्रासनों आदि से सहित सिंहासन, आठ मंगल, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों का यहां कथन करना चाहिए।

१६२— से णं मूलपासायवडेंसगे अण्णेहिं चउहिं पासायवडेंसएहिं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं सव्वतो समंता संपरिखित्ते, ते णं पासायवडेंसगा अड्डाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्डं उच्चत्तेणं, पणवीसं जोयणसयं विक्खंभेणं जाव वण्णओ ।

ते णं पासयवडिंसया अण्णेहिं चउहिं पासायवडिंसएहिं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं सव्वओ समंता संपरिखित्ता । ते णं पासायवडेंसया पणवीसं जोयणसयं उड्डं उच्चत्तेणं बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिय वण्णओ, भूमिभागो उल्लोओ सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं अट्टु मंगलगा झया छत्तातिच्छत्ता ।

ते णं पासायवडेंसगा अण्णेहिं चउहिं पासायवडेंसएहिं तददधुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं सव्वतो समंता संपरिखित्ता, ते णं पासायवडेंसगा बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्डं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं, वण्णओ, उल्लोओ सीहासणं सपरिवारं पासाय० उवरिं अट्टु मंगलगा झया छत्तातिच्छत्ता ।

१६२— वह प्रधान प्रासादावतंसक सभी चारों दिशाओं में ऊंचाई में अपने से आधे ऊंचे अन्य चार प्रासादावतंसकों से परिवेष्टित है। अर्थात् उसकी चारों दिशाओं में और दूसरे प्रासाद बने हुए हैं। ये चारों प्रासादावतंसक ढाई सौ योजन ऊंचे और चौड़ाई में सवा सौ योजन चौड़े हैं, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् यहां करना चाहिए।

ये चारों प्रासादावतंसक भी पुनः चारों दिशाओं में अपनी ऊंचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों से घिरे हैं। ये प्रासादावतंसक एक सौ पच्चीस योजन ऊंचे और साढ़े बासठ योजन चौड़े हैं तथा ये चारों ओर फैल रही प्रभा से हंसते हुए—सें दिखते हैं, यहां से लेकर भूमिभाग, चंदेवा, सपरिवार सिंहासन, आठ—आठ मंगल, ध्वजाओं, छत्राति-छत्रों से सुशोभित हैं, पर्यन्त इनका वर्णन करना चाहिए।

ये प्रासादावतंसक भी चारों दिशाओं में अपनी ऊंचाई से आधी ऊंचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों से परिवेष्टित हैं। ये प्रासादावतंसक साढ़े बासठ योजन ऊंचे और एकतीस योजन एक कोस चौड़े हैं। इन प्रासादों के

भूमिभाग, चंदेवा, सपरिवार सिंहासन, ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाओं, छत्रातिछत्रों आदि का वर्णन भी पूर्ववत् यहाँ करना चाहिए।

**विवेचन**— प्रस्तुत सूत्र में प्रधान प्रासादावतंसक के आस-पास की चारों दिशाओं सम्बन्धी रचना का वर्णन किया है। वह प्रधान प्रासाद अपनी आस-पास की रचना के बीचों-बीच है और चारों दिशाओं में बने अन्य चार प्रासादों की अपेक्षा सबसे अधिक ऊंचा और लम्बा-चौड़ा है तथा शेष पार्श्ववर्ती प्रासाद अपने-अपने से पूर्व के प्रासादों की अपेक्षा ऊंचाई और चौड़ाई में उत्तरोत्तर आधे-आधे हैं। अर्थात् मूल प्रासादावतंसक की अपेक्षा उत्तरवर्ती अन्य-अन्य प्रासाद शिखर से लेकर तलहटी तक पर्वत के आकार के समान क्रमशः अर्ध, चतुर्थ और अष्ट भाग प्रमाण ऊंचे और चौड़े हैं।

### सुधर्मा सभा का वर्णन

१६३— तस्स णं मूलपासायवडेंसयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सभा सुहम्मा पण्णत्ता, एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खम्भेणं, बावत्तरि जोयणाइं उड्डं उच्चत्तेणं, अणेगखम्भ.... जाव<sup>१</sup> अच्छरगण<sup>२</sup>.... पासादीया ।

१६३— उस प्रधान प्रासाद के ईशान कोण में सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और बहत्तर योजन ऊंची सुधर्मा नामक सभा है। यह सभा अनेक सैकड़ों खंभों पर सन्निविष्ट यावत् अप्सराओं से व्याप्त अतीव मनोहर है।

१६४— सभाए णं सुहम्माए तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता तं जहा—पुरत्थिमेणं दाहिणेणं, उत्तरेणं ।

ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्डं उच्चत्तेणं, अट्ट जोयणाइं विक्खम्भेणं, तावत्तियं चेव पवेसेणं, सेया वरकणगथूभियागा जाव<sup>३</sup> वणमालाओ । तेसिं णं दाराणं उवरिं अट्टट्ट मङ्गलगा झया छत्ताइच्छत्ता ।

तेसिं णं दाराणं पुरओ पत्तेयं पत्तयं मुहमण्डवे पण्णत्ते, ते णं मुहमण्डवा एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खम्भेणं, साइरेगाइं सोलस जोयणाइं उड्डं उच्चत्तेणं, वण्णओ सभाए सरिसो ।

तेसिं णं मुहमण्डवाणं तिदिसिं ततो दारा पण्णत्ता, तं जहा पुरत्थिमेणं, दाहिणेणं, उत्तरेणं । ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्डं उच्चत्तेणं, अट्ट जोयणाइं विक्खम्भेणं, तावइयं चेव पवेसेणं, सेया वरकणगथूभियाओ जाव<sup>४</sup> वणमालाओ । तेसिं णं मुहमंडवाणं भूमिभागा, उल्लोया तेसिं णं मुहमंडवाणं उवरिं अट्टट्ट मङ्गलगा, झया, छत्ताइच्छत्ता ।

तेसिं णं मुहमंडवाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं पेच्छाघरमंडवे पण्णत्ते, मुहमंडववत्तव्वया जाव, दारा, भूमिभागा, उल्लोया ।

१-२. देखें सूत्र संख्या ४५

३-४. देखें सूत्र संख्या १२१ से १२९

१६४— इस सुधर्मा सभा की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं—पूर्व दिशा में एक, दक्षिण दिशा में एक और उत्तर दिशा में एक।

वे द्वार ऊंचाई में सोलह योजन ऊंचे, आठ योजन चौड़े और उतने ही प्रवेश मार्ग वाले हैं। वे द्वार श्वेत वर्ण के हैं। श्रेष्ठ स्वर्ण से निर्मित शिखरों एवं वनमालाओं से अलंकृत हैं, आदि वर्णन पूर्ववत् यहां करना चाहिए।

(उन द्वारों के ऊपर स्वस्तिक आदि आठ-आठ मंगल, ध्वजायें और छत्रातिछत्र विराजित हैं—शोभायमान हो रहे हैं।)

उन द्वारों के आगे सामने एक-एक मुखमंडप हैं। ये मंडप सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और ऊंचाई में कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचे हैं। सुधर्मा सभा के समान इनका शेष वर्णन कर लेना चाहिए।

इन मंडपों की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं, यथा—एक पूर्व दिशा में, एक दक्षिण दिशा में और एक उत्तर दिशा में। ये द्वार ऊंचाई में सोलह योजन ऊंचे हैं, आठ योजन चौड़े और उतने ही प्रवेशमार्ग वाले हैं। ये द्वार श्वेत धवल-वर्ण और श्रेष्ठ स्वर्ण से बनी शिखरों, वनमालाओं से अलंकृत हैं, पर्यन्त का वर्णन पूर्ववत् यहां करना चाहिए।

(उन मंडपों के भूमिभाग, चंदेवा और ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाओं, छत्रातिछत्र आदि का भी वर्णन करना चाहिए।)

उन मुखमंडपों में से प्रत्येक के आगे प्रेक्षागृहमंडप बने हैं। इन मंडपों के द्वार, भूमिभाग, चांदनी आदि का वर्णन मुखमंडपों की वक्तव्यता के समान जानना चाहिए।

१६५— तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वडरामए अक्खाडए पण्णत्ते ।

तेसि णं वयरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झ-देसभागे पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढिया पण्णत्ता, ताओ णं मणिपेढियाओ अट्ट जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव<sup>१</sup> पडिरूवाओ ।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरि पत्तेयं-पत्तेयं सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ सपरिवारो ।

तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं उवरि अट्टट्ट मंगलगा ज्ञया छत्तातिछत्ता ।

१६५— उन प्रेक्षागृह मंडपों के अतीव रमणीय समचौरस भूमिभाग के मध्यातिमध्य देश में एक-एक वज्ररत्नमय अक्षपाटक-मंच कहा गया है।

उन वज्ररत्नमय अक्षपाटकों के भी बीचों-बीच आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और विविध प्रकार के मणिरत्नों से निर्मित यावत् प्रतिरूप—असाधारण सुन्दर एक-एक मणिपीठिकायें बनी हुई हैं।

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर एक-एक सिंहासन रखा है। भद्रासनों आदि आसनों रूपी परिवार सहित उन सिंहासनों का वर्णन करना चाहिए।

उन प्रेक्षागृह मंडपों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजायें, छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

## स्तूप वर्णन

१६६— तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढियाओ पणत्ताओ । ताओ णं मणिपेढियातो सोलस-सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, अट्ट जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ अच्छाओ पडिरूवाओ ।

तासि णं उवरिं पत्तेयं-पत्तेयं थूभे पणत्ते । ते णं थूभा सोलस-सोलस जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं सोलस-सोलस जोयणाइं उड्डं उच्चत्तेणं, सेया संखंक ( कुंद-दगरय-अमय-महिय-फेणपुंजसंनिगासातो ) सव्वरयणामया अच्छा जाव ( सण्हा-लण्हा-घट्टा-मट्टा-णीरया-निम्मला-निप्यंका-निक्कंकाडच्छाया-सप्यभा-समिरीया-सउज्जोया पासादीया-दरिसणिज्जा अभिरूवा ) पडिरूवा ।

तेसि णं थूभाणं उवरिं अट्टट्ट मंगलगा, झया छत्तातिछत्ता जाव<sup>१</sup> सहस्सपत्तहत्थया ।

तेसि णं थूभाणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं मणिपेढियातो पणत्ताओ । ताओ णं मणिपेढियातो अट्ट जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणि-मईओ अच्छाओ जाव पडिरूवातो ।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिणपडिमातो जिणुस्सेहपमाणंमेत्ताओ संपलियं-क्कनिसन्नाओ, थूभाभिमुहीओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति, तं जहा—उसभा, वद्धमाणा, चंदाणणा वारिसेणा ।

१६६— उन प्रेक्षागृह मंडपों के आगे एक-एक मणिपीठिका है। ये मणिपीठिकायें सोलह-सोलह योजन लम्बी-चौड़ी आठ योजन मोटी हैं। ये सभी सर्वात्मना मणिरत्नमय, स्फटिक मणि के समान निर्मल और प्रतिरूप हैं।

उन प्रत्येक मणिपीठों के ऊपर सोलह-सोलह योजन लम्बे-चौड़े समचौरस और ऊंचाई में कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचे, शंख, अंक रत्न, कुन्दपुष्प, जलकण, मंथन किए हुए अमृत के फेनपुंज सदृश प्रभा वाले, श्वेत, सर्वात्मना रत्नों से बने हुए स्वच्छ यावत् ( चिकने, सलौने घुटे हुए, मृष्ट, शुद्ध, निर्मल पंक ( कीचड़ ) रहित, आवरण रहित छाया वाले, प्रभा, चमक और उद्योत वाले, मन को प्रसन्न करने वाले, देखने योग्य, मनोहर ) असाधारण रमणीय स्तूप बने हैं।

उन स्तूपों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजायें छत्रातिछत्र यावत् सहस्रपत्र कमलों के झुमके सुशोभित हो रहे हैं।

उन स्तूपों की चारों दिशाओं में एक-एक मणिपीठिका है। ये प्रत्येक मणिपीठिकायें आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और अनेक प्रकार के मणि रत्नों से निर्मित, निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं।

प्रत्येक मणिपीठिका के ऊपर, जिनका मुख स्तूपों के सामने है ऐसी जिनोत्सेध प्रमाण वाली चार जिन-प्रतिमायें पर्यकासन से विराजमान हैं, यथा—(१) ऋषभ, (२) वर्धमान, (३) चन्द्रानन, (४) वारिषेण की।

विवेचन— 'जिणुस्सेहपमाणमेत्ताओ' अर्थात् ऊंचाई में जिन-भगवान् के शरीर प्रमाण वाली। जिन भगवान् के शरीर की अधिकतम ऊंचाई पांच सौ धनुष और जघन्यतम सात हाथ की बताई है। वर्णन को देखते हुए यहां स्थापित जिन-प्रतिमायें पांच सौ धनुष प्रमाण ऊंची होनी चाहिए, ऐसा टीकाकार का अभिप्राय है।

### चैत्य वृक्ष

१६७— तेसि णं थूभाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ । ताओ णं मणिपेढियाओ सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, अट्ट जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ जाव पडिरूवाओ ।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरि पत्तेयं-पत्तेयं चेइयरुक्खे पण्णत्ते, ते णं चेइयरुक्खा अट्ट जोयणाइं उट्टं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहेणं, दो जोयणाइं खंधा, अद्धजोयणं विक्खंभेणं, छ जोयणाइं विडिमा, बहुमज्झदेसभाए अट्ट जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, साइरेगाइं अट्ट जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता ।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—

वयरामयमूल-रययसुपइट्टियविडिमा, रिट्टामयविउलकंदवेरुलियरुइलखंधा, सुजायवरजाय-रूवपढमगविसालसाला, नाणामणिमयरयणविविहसाहप्पसाह-वेरुलियपत्त-तवणिज्जपत्तबिंटा, जंबूणय-रत्तमउयसुकुमालपवालपल्लववरंकुरधरा, विचित्तमणिरयणसुराभिकुसुमफलभरनमियसाला, सच्छाया, सप्पभा, सस्सिरीया, सउज्जोया, अहियं नयणमणिव्वुइकरा, अमयरससमरसफला, पासाईया.....।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं उवरि अट्टट्ट मंगलगा झया छत्ताइछत्ता ।

१६७— उन प्रत्येक स्तूपों के आगे-सामने मणिमयी पीठिकायें बनी हुई हैं। ये मणिपीठिकायें सोलह योजन लम्बी-चौड़ी, आठ योजन मोटी और सर्वात्मना मणिरत्नों से निर्मित, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं।

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर एक-एक चैत्यवृक्ष है। ये सभी चैत्यवृक्ष ऊंचाई में आठ योजन ऊंचे, जमीन के भीतर आधे योजन गहरे हैं। इनका स्कन्ध भाग दो योजन का और आधा योजन चौड़ा है। स्कन्ध से निकलकर ऊपर की ओर फैली हुई शाखायें छह योजन ऊंची और लम्बाई-चौड़ाई में आठ योजन की हैं। कुल मिलाकर इनका सर्वपरिमाण कुछ अधिक आठ योजन है।

इन चैत्य वृक्षों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

इन वृक्षों के मूल (जड़ें) वज्ररत्नों के हैं, विडिमायें-शाखायें रजत की, कंद रिष्टरत्नों के, मनोरम स्कन्ध वैदूर्यमणि के, मूलभूत प्रथम विशाल शाखायें शोभनीक श्रेष्ठ स्वर्ण की, विविध शाखा-प्रशाखायें नाना प्रकार के मणि-रत्नों की, पत्ते वैदूर्यरत्न के, पत्तों के वृत्त (डंडियां) स्वर्ण के, अरुण-मृदु-सुकोमल-श्रेष्ठ प्रवाल, पल्लव एवं अंकुर जाम्बूनद (स्वर्णविशेष) के हैं और विचित्र मणिरत्नों एवं सुरभिगंध-युक्त पुष्प-फलों के भार से नमित शाखाओं एवं अमृत के समान मधुररस युक्त फल वाले ये वृक्ष सुंदर मनोरम छाया, प्रभा, कांति, शोभा, उद्योत से संपन्न नयन-मन को शांतिदायक एवं प्रासादिक हैं।

उन चैत्यवृक्षों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजायें और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

१६८— तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ । ताओ णं मणिपेढियाओ अट्ट जोयणाइं आयामविक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ।

१६८— उन प्रत्येक चैत्यवृक्षों के आगे एक-एक मणिपीठिका है । ये मणिपीठिकायें आठ योजन लंबी-चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्वात्मना मणिमय निर्मल यावत् प्रतिरूप—अतिशय मनोरम हैं ।

### माहेन्द्र-ध्वज

१६९— तासि णं मणिपेढियाणं उवरि पत्तेयं-पत्तेयं महिंदज्झए पण्णत्ते ।

ते णं महिंदज्झया सट्ठि जोयणाइं उट्ठं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं वइरामय-वट्ट-लट्ट-संठिय-सुसिलिट्ट-परिघट्ट-मट्ट-सुपत्तिट्टिए-विसिट्टे-अणेगवर-पंचवण्णकुडभी-सहस्सुस्सिए-परिमंडियाभिरामे-वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागच्छत्तातिच्छत्तकलिते, तुंगे, गगणतल-मणुलिहंतसिहरा पासादीया ।

तेसि णं महिंदज्झयाणं उवरि अट्ट अट्ट मंगलया झया छत्तातिछत्ता ।

१६९— उन मणिपीठिकाओं के ऊपर एक-एक माहेन्द्रध्वज (इन्द्र के ध्वज सदृश अति विशाल ध्वज) फहरा रहा है । वे माहेन्द्रध्वज साठ योजन ऊंचे, आधा कोस जमीन के भीतर ऊंडे—गहरे, आधा कोस चौड़े, वज्ररत्नों से निर्मित, दीप्तिमान, चिकने, कमनीय, मनोज्ञ वर्तुलाकार—गोल डंडे वाले शेष ध्वजाओं से विशिष्ट, अन्यान्य हजारों छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की मनोरम रंग-बिरंगी-पंचरंगी पताकाओं से परिमंडित, वायुवेग से फहराती हुई विजय-वैजयन्ती पताका, छत्रातिछत्र से युक्त आकाशमंडल को स्पर्श करने वाले ऐसे ऊंचे उपरिभागों से अलंकृत, मन को प्रसन्न करने वाले हैं ।

इन माहेन्द्र-ध्वजों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजायें और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं ।

१७०— तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं नंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ ।

ताओ णं पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, अच्छाओ जाव वण्णओ, एगइयाओ उदगरसेणं पण्णत्ताओ ।

पत्तेयं-पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खत्ताओ, पत्तेयं-पत्तेयं वणसंडपरिक्खत्ताओ ।

तासि णं णंदाणं पुक्खरिणीणं तिदिसिं तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता । तिसोवाणपडि-रूवगाणं वण्णओ, तोरणा, झया, छत्तातिछत्ता ।

१७०— उन माहेन्द्रध्वजाओं के आगे एक-एक नन्दा नामक पुष्करिणी बनी हुई है ।

ये पुष्करिणियां सौ योजन लंबी, पचास योजन चौड़ी, दस योजन ऊंडी-गहरी हैं और स्वच्छ-निर्मल हैं आदि वर्णन पूर्ववत् यहां जानना चाहिए । इनमें से कितनेक का पानी स्वाभाविक पानी जैसा मधुर रस वाला है ।

ये प्रत्येक नन्दा पुष्करिणियां एक-एक पद्मवर-वेदिका और वनखंडों से घिरी हुई हैं ।

इन नन्दा पुष्करिणियों की तीन दिशाओं में अतीव मनोहर त्रिसोपान-पंक्तियां हैं । इन त्रिसोपान-पंक्तियों के ऊपर तोरण, ध्वजायें, छत्रातिछत्र सुशोभित हैं आदि वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए ।

### सुधर्मासभावती मनोगुलिकायें गोमानसिकायें

१७१— सभाए णं सुहम्माए अडयालीसं मणोगुलियासाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तं जहा— पुरत्थिमेणं सोलससाहस्सीओ, पच्चत्थिमेणं सोलससाहस्सीओ, दाहिणेणं अट्टसाहस्सीओ, उत्तरेणं अट्टसाहस्सीओ ।

तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवण्णरूपमया फलगा पण्णत्ता । तेसु णं सुवन्नरूपमएसु फलगेसु बहवे वडरामया णागदंता पण्णत्ता । तेसु णं वडरामएसु णागदंतएसु किण्हसुत्तवट्टवग्घारिय-मल्लदामकलावा चिट्ठंति ।

१७१— सुधर्मा सभा में अडतालीस हजार मनोगुलिकायें (छोटे-छोटे चबूतरे) हैं, वे इस प्रकार हैं—पूर्व दिशा में सोलह हजार, पश्चिम दिशा में सोलह हजार, दक्षिण दिशा में आठ हजार और उत्तर दिशा में आठ हजार ।

उन मनोगुलिकाओं के ऊपर अनेक स्वर्ण एवं रजतमय फलक—पाटिये और उन स्वर्ण रजतमय पाटियों पर अनेक वज्ररत्नमय नागदंत लगे हैं । उन वज्रमय नागदंतों पर काले सूत से बनी हुई गोल लंबी-लंबी मालायें लटक रही हैं ।

१७२— सभाए णं सुहम्माए अडयालीसं गोमाणसियासाहस्सीओ पन्नत्ताओ । जह मणोगुलिया जाव णागदंतगा ।

तेसु णं णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता । तेसु णं रययामएसु सिक्कगेसु बहवे वेरुलियामडओ धूवघडियाओ पण्णत्ताओ । ताओ णं धूवघडियाओ कालागुरुपवर जाव चिट्ठंति ।

१७२— सुधर्मा सभा में अडतालीस हजार गोमानसिकायें (शय्या रूप स्थानविशेष) रखी हुई हैं । नागदन्तों पर्यन्त इनका वर्णन मनोगुलिकाओं के समान समझ लेना चाहिए ।

उन नागदंतों के ऊपर बहुत से रजतमय सींके लटके हैं । उन रजतमय सीकों में बहुत-सी वैडूर्य रत्नों से बनी हुई धूपघटिकायें रखी हैं । वे धूपघटिकायें काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुष्क आदि की सुगंध से मन को मोहित कर रही हैं ।

### माणवक चैत्यस्तम्भ

१७३— सभाए णं सुहम्माए अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीहिं उवसोभिए मणिफासो य उल्लोयो य ।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता, सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अट्ट जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमयी जाव पडिरूवा ।

१७३— उस सुधर्मा सभा के भीतर अत्यन्त रमणीय सम भू-भाग है । वह भूमिभाग यावत् मणियों से उपशोभित है आदि मणियों के स्पर्श एवं चंदेवा पर्यन्त का सब वर्णन यहां पूर्ववत् कर लेना चाहिए ।

उस अति सम रमणीय भूमिभाग के अति मध्यदेश में एक विशाल मणिपीठिका बनी हुई है । जो आयाम-

विष्कम्भ की अपेक्षा सोलह योजन लम्बी-चौड़ी और आठ योजन मोटी तथा सर्वात्मना रत्नों से बनी हुई यावत् प्रतिरूप—अतीव मनोरम है।

१७४— तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं माणवए चेइएखंभे पण्णत्ते, सट्ठि जोयणाइं उड्डं उच्चत्तेणं जोयणं उव्वेहेणं, जोयणं विक्खंभेणं, अडयालीसंसिए, अडयालीसइ कोडीए, अडयालीसइ विगगहिए सेसं जहा महिंदज्जयस्स ।

माणवगस्स णं चेइयखंभस्स उवरिं बारस जोयणाइं ओगाहेत्ता, हेट्टावि बारस जोयणाइं वज्जेत्ता मज्झे छत्तीसाए जोयणेसु एत्थ णं बहवे सुवण्णरूपमया फलगा पण्णत्ता । तेसु णं सुवण्णरूपमएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता । तेसु णं वइरामएसु नागदंतेसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता । तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वइरामया गोलवट्टसमुग्गा पण्णत्ता । तेसु णं वयरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिणसकहातो संनिक्खित्ताओ चिट्ठंति ।

ताओ णं सूरियाभस्स देवस्स अत्रेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ ।

माणवगस्स चेइयखंभस्स उवरिं अट्ट अट्ट मंगलगा, झया छत्ताइच्छत्ता ।

१७४— उस मणिपीठिका के ऊपर एक माणवक नामक चैत्यस्तम्भ है। वह ऊंचाई में साठ योजन ऊंचा, एक योजन जमीन के अंदर गहरा, एक योजन चौड़ा और अड़तालीस कोनों, अड़तालीस धारों और अड़तालीस आयामों—पहलुओं वाला है। इसके अतिरिक्त शेष वर्णन माहेन्द्रध्वज जैसा जानना चाहिए।

उस माणवक चैत्यस्तम्भ के ऊपरी भाग में बारह योजन और नीचे बारह योजन छोड़कर मध्य के शेष छत्तीस योजन प्रमाण भाग—स्थान में अनेक स्वर्ण और रजतमय फलक—पाटिये लगे हुए हैं। उन स्वर्ण-रजतमय फलकों पर अनेक वज्रमय नागदंत—खूंटियां हैं। उन वज्रमय नागदंतों पर बहुत से रजतमय सींके लटक रहे हैं। उन रजतमय सींकों में वज्रमय गोल गोल समुद्गक (डिब्बे) रखे हैं। उन गोल-गोल वज्ररत्नमय समुद्गकों में बहुत-सी जिन-अस्थियां सुरक्षित रखी हुई हैं।

वे अस्थियां सूर्याभदेव एवं अन्य देव-देवियों के लिए अर्चनीय यावत् (वंदनीय, पूजनीय, सम्माननीय, सत्कारणीय तथा कल्याण, मंगल देव एवं चैत्य रूप में) पर्युपासनीय हैं।

उस माणवक चैत्य के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजारों और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

## देव-शय्या

१७५— तस्स माणवगस्स चेइयखंभस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता, अट्ट जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा जाव पडिरूवा । तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ सपरिवारो ।

तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता, अट्ट जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमया अच्छा जाव पडिरूवा । तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे देवसयणिज्जे पण्णत्ते ।

तस्स णं देवसयणिज्जस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—णाणामणिमया पडिपाया, सोवन्निया पाया, णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं, जंबूणयामयाइं गत्तगाइं, वइरामया संधी, णाणामणिमए विच्चे, रययामईं तूली, लोहियक्खमया बिब्बोयणा, तवणिज्जमया गंडोवट्टाणया ।

से णं सयणिज्जे सालिंगणवट्टिए उभओ बिब्बोयणं दुहओ उण्णते, मज्जे णयगंभीरे गंगापुलिण-वालुया-उद्दालसालिसए, सुविरइयरयत्ताणे, उवचियखोमदुगुल्लपट्ट-पडिच्छायणे आईणग-रूय-बूर-णवणीय-तूलफासमउए, रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे पासादीए पडिरूवे ।

१७५— उस माणवक चैत्यस्तम्भ के पूर्व दिग्भाग में विशाल मणिपीठिका बनी हुई है। जो आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और सर्वात्मना मणिमय निर्मल यावत् प्रतिरूप है।

उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल सिंहासन रखा है। भद्रासन आदि आसनों रूप परिवार सहित उस सिंहासन का वर्णन करना चाहिए।

उस माणवक चैत्यस्तम्भ की पश्चिम दिशा में एक बड़ी मणिपीठिका है। वह मणिपीठिका आठ योजन लम्बी चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्व मणिमय, स्वच्छ-निर्मल यावत् असाधारण सुन्दर है।

उस मणिपीठिका के ऊपर एक श्रेष्ठ रमणीय देव-शय्या रखी हुई है।

उस देवशय्या का वर्णन इस प्रकार है, यथा—इसके प्रतिपाद अनेक प्रकार की मणियों से बने हुए हैं। स्वर्ण के पद—पाये हैं। पादशीर्षक (पायों के ऊपरी भाग) अनेक प्रकार की मणियों के हैं। गाते (ईषायें, पाटियां) सोने की हैं। सांघें वज्ररत्नों से भरी हुई हैं। बाण (निवार) विविध रत्नमयी है। तूली (बिछौना—गादला) रजतमय है। ओसीसा लोहिताक्षरत्न का है। गंडोपधानिका (तकिया) सोने की है।

उस शय्या पर शरीर प्रमाण उपधान—गद्दा बिछा है। उसके शिरोभाग और चरणभाग (सिरहाने और पांयते) दोनों ओर तकिये लगे हैं। वह दोनों ओर से ऊंची और मध्य में नत—झुकी हुई, गम्भीर गहरी है। जैसे गंगा किनारे की बालू में पांव रखने से पांव धंस जाता है, उसी प्रकार बैठते ही नीचे की ओर धंस जाते हैं। उस पर रजस्त्राण पड़ा रहता है—मसहरी लगी हुई है। कसीदा वाला क्षौमदुकूल (रूई का बना चदर) बिछा है। उसका स्पर्श आजिनक (मृगछाला, चर्मनिर्मित वस्त्र) रूई, बूर नामक वनस्पति, मक्खन और आक की रूई के समान सुकोमल है। रक्तांशुक—लाल तूस से ढका रहता है। अत्यन्त रमणीय, मनमोहक यावत् असाधारण सुन्दर है।

### आयुधगृह-शस्त्रागार

१७६— तस्स णं देवसयणिज्जस्स उत्तरपुरत्थिमेणं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता—अट्ट जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमयी जाव पडिरूवा ।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं महेगे खुड्डुए महिंदज्जाए पण्णत्ते, सट्ठिं जोयणाइं उट्ठं उच्चत्तेणं, जोयणं विक्खंभेणं वइरामया वट्टलट्टसंठियसुसिलिट्टु जाव पडिरूवा । उवरि अट्टु मंगलगा, झया, छत्तातिछत्ता ।

तस्स णं खुड्डुगमहिंदज्जायस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स चोप्पाले नाम

पहरणकोसे पन्नत्ते, सव्ववइरामए अच्छे जाव पडिरूवे ।

तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स फलिहरयण-खग्ग-गया-धणुप्पमुहा बहवे पहरणरयणा संनिक्खित्ता चिट्ठंति, उज्जला निसिया सुतिक्खधारा पासादीया....

सभाए णं सुहम्माए उवरिं अट्टुमंगलगा, झया, छत्तातिछत्ता ।

१७६— उस देव-शय्या के उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशान-कोण) में आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी सर्वमणिमय यावत् प्रतिरूप एक बड़ी मणिपीठिका बनी है ।

उस मणिपीठिका के ऊपर साठ योजन ऊंचा, एक योजन चौड़ा, वज्ररत्नमय सुन्दर गोल आकार वाला यावत् प्रतिरूप एक क्षुल्लक—छोटा माहेन्द्रध्वज लगा हुआ है—फहरा रहा है । जो स्वस्तिक आदि आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों से उपशोभित है ।

उस क्षुल्लक माहेन्द्रध्वज की पश्चिम दिशा में सूर्याभदेव का 'चोप्पाल' नामक प्रहरणकोश (आयुधगृह—शस्त्रागार) बना हुआ है । यह आयुधगृह सर्वात्मना रजतमय, निर्मल यावत् प्रतिरूप है ।

उस प्रहरणकोश में सूर्याभ देव के परिघरत्न, (मूसल, लोहे का मुद्गर जैसा शस्त्रविशेष तलवार, गदा, धनुष आदि बहुत से श्रेष्ठ प्रहरण) सुरक्षित रखे हैं । वे सभी अस्त्र अत्यन्त उज्ज्वल, चमकीले, तीक्ष्ण धार वाले और मन को प्रसन्न करने वाले आदि हैं ।

सुधर्मा सभा का ऊपरी भाग आठ-आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों से सुशोभित हो रहा है ।

### सिद्धायतन

१७७— सभाए णं सुहम्माए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगे सिद्धायतणे पण्णत्ते, एगं जोयणसयं आयामेणं, पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरि जोयणाइं उट्ठं उच्चत्तेणं, सभागमएणं जावं गोमाणसियाओ, भूमिभागा, उल्लोया तहेव ।

१७७— उस सुधर्मा सभा के उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में एक विशाल सिद्धायतन है । वह सौ योजन लम्बा, पचास योजन चौड़ा और बहत्तर योजन ऊंचा है । तथा इस सिद्धायतन का गोमानसिकाओं पर्यन्त एवं भूमि-भाग तथा चंदेवा का वर्णन सुधर्मा सभा के समान जानना चाहिए ।

विवेचन— 'सभागमएणं जाव गोमाणसियाओ' पाठ से सिद्धायतन का वर्णन सुधर्मा सभा के समान करने का जो संकेत किया है, संक्षेप में वह वर्णन इस प्रकार है—

सुधर्मा सभा के समान ही इस सिद्धायतन की पूर्व, दक्षिण और उत्तर इन तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । उन प्रत्येक द्वारों के आगे एक-एक मुखमण्डप बना है । मुखमण्डपों के आगे प्रेक्षागृह मण्डप हैं । प्रेक्षागृह मण्डपों के आगे प्रतिमाओं सहित चार चैत्यस्तूप हैं तथा उन चैत्य स्तूपों के आगे चैत्यवृक्ष हैं । चैत्य वृक्षों के आगे एक-एक माहेन्द्रध्वज फहरा रहा है । माहेन्द्रध्वजों के आगे नन्दा पुष्करिणियां हैं और उनके अनन्तर मनोगुलिकार्यें एवं गोमानसिकार्यें हैं ।

१७८— तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमञ्जदेसभाए एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता— सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अट्ट जोयणाइं बाहल्लेणं । तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं महेगे देवच्छंदए पण्णत्ते सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, साइरेगाइं सोलस जोयणाइं उट्ठं उच्चत्तेणं, सव्वरयणामए जाव पडिरूवे । एत्थ णं अट्टसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाण-मित्ताणं संनिक्खत्तं संचिट्ठति ।

तासि णं जिणपडिमाणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—

तवणिज्जमया हत्थतलपायतला, अंकांमयाइं नक्खाइं अंतोलोहियक्खपडिसेगाइं कणगामईओ जंघाओ, कणगामया जाणू, कणगामया उरू, कणगामईओ गायलट्टीओ, तवणिज्जमयाओ नाभीओ, रिट्टामईओ रोमराईओ, तवणिज्जमया चुचुया, तवणिज्जमया सिरिवच्छा सिलप्पवालमया ओट्टा, फालियामया दंता, तवणिज्जमईओ जीहाओ, तवणिज्जमया तालुया, कणगामईओ नासिगाओ अंतोलोहियक्खपडिसेगाओ, अंकांमयाणि अच्छीणि अंतोलोहियक्खपडिसेगाणि [ रिट्टामईओ ताराओ ] रिट्टामयाणि अच्छिपत्ताणि, रिट्टामईओ भमुहाओ, कणगामया कवोला, कणगामया सवणा, कणगामईओ णिडालपट्टियाओ, वइरामईओ सीसघडीओ, तवणिज्जमईओ केसंतकेसभूमीओ, रिट्टामया उवरि मुद्धया ।

१७८— उस सिद्धायतन के ठीक मध्यप्रदेश में सोलह योजन लम्बी-चौड़ी, आठ योजन मोटी एक विशाल मणिपीठिका बनी हुई है। उस मणिपीठिका के ऊपर सोलह योजन लम्बा-चौड़ा और कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचा, सर्वात्मना मणियों से बना हुआ यावत् प्रतिरूप एक विशाल देवच्छन्दक (आसन विशेष) स्थापित है और उस जिनोत्सेध तीर्थकरों की ऊंचाई के बराबर वाली एक सौ आठ जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं।

उन जिन प्रतिमाओं का वर्णन इस प्रकार है, जैसे कि—

उन प्रतिमाओं की हथेलियां और पगथलियां तपनीय स्वर्णमय हैं। मध्य में खचित लोहिताक्ष रत्न से युक्त अंकरत्न के नख हैं। जंघायें—जानुयें—घुटने—पिंडलियां और देहलता—शरीर कनकमय है। नाभियां तपनीयमय हैं। रोमराजि रिष्ट रत्नमय है। चूचक (स्तन का अग्र भाग) और श्रीवत्स (वक्षस्थल पर बना हुआ चिह्न-विशेष) तपनीयमय हैं। होठ प्रवाल (मूंगा) के बने हुए हैं, दंतपंक्ति स्फटिकमणियों और जिह्वा एवं तालु तपनीय-स्वर्ण (लालिमायुक्त स्वर्ण) के हैं। नासिकायें बीच में लोहिताक्ष रत्न खचित कनकमय हैं (नेत्र लोहिताक्ष रत्न से खचित मध्य-भाग युक्त अंकरत्न के हैं और नेत्रों की तारिकायें (कनीनिकायें—आंख के बीच का काला भाग) अक्षिपत्र-पलकें तथा भौंहें रिष्टरत्नमय हैं। कपोल, कान और ललाट कनकमय हैं। शीर्षघटी (खोपड़ी) वज्ररत्नमय है। केशान्त एवं केशभूमि (चांद) तपनीय स्वर्णमय है और केश रिष्टरत्नमय हैं।

१७९— तासि णं जिणपडिमाणं पिट्ठतो पत्तेयं-पत्तेयं छत्तधारगपडिमाओ पण्णत्ताओ । ताओ णं छत्तधारगपडिमाओ हिम-रयय-कुंदेंदुप्पगासाइं, सकोरंटमल्लदामधवलाइं आयवत्ताइं सलीलं धारेमाणीओ धारेमाणीओ चिट्ठति ।

तासि णं जिणपडिमाणं उभओ पासे पत्तेयं पत्तेयं चामरधार (ग) पडिमाओ पण्णत्ताओ । ताओ णं चामर-धारगपडिमातो चंदप्पहवयरवेरुलियनानामणिरयणखचियचितदंडाओ सुहुमरयत-

दीहवालाओ संखंककुंद-दगरय-अमतमहियफेणपुंजसन्निकासाओ धवलाओ चामराओ सलीलं धारे-  
माणीओ चिट्ठंति ।

तासि णं जिणपडिमाणं पुरतो दो-दो नागपडिमाओ जक्खपडिमाओ, भूयपडिमाओ,  
कुंडधारपडिमाओ सव्वरयणामईओ अच्छाओ जाव चिट्ठंति ।

तासि णं जिणपडिमाणं पुरतो अट्टसयं घंटाणं, अट्टसयं चंदणकलसाणं, अट्टसयं भिंगाराणं  
एवं आयंसणं, थालाणं पाईणं सुपइट्टाणं, मणोगुलियाणं वायकरगाणं, चित्तगराणं रयण-  
करंडगाणं, हयकंठाणं जाव<sup>१</sup> उसभकंठाणं, पुप्फचंगेरीणं जाव<sup>२</sup> लोमहत्थचंगेरीणं, पुप्फपडल-  
गाणं तेल्लसमुग्गाणं जाव<sup>३</sup> अंजणसमुग्गाणं अट्टसयं झयाणं, अट्टसयं धूवकडुच्छुयाणं संनिक्खत्तं  
चिट्ठंति । सिद्धायतणस्स णं उवरि अट्टट्ट मंगलगा, झया छत्तातिछत्ता ।

१७९— उन जिन प्रतिमाओं में से प्रत्येक प्रतिमा के पीछे एक-एक छत्रधारक—छत्र लिये खड़ी देवियों की  
प्रतिमायें हैं। वे छत्रधारक प्रतिमायें लीला करती हुई-सी भावभंगिमा पूर्वक हिम, रजत, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के  
समान प्रभा—कांतिवाले कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त धवल-श्वेत आतपत्रों (छत्रों) को अपने-अपने हाथों में  
धारण किये हुए खड़ी हैं।

प्रत्येक जिन-प्रतिमा के दोनों पार्श्व भागों—बाजुओं में एक-एक चामरधारक प्रतिमायें हैं। वे चामर-धारक  
प्रतिमायें अपने अपने हाथों में विविध मणिरत्नों से रचित चित्रामों से युक्त चन्द्रकान्त, वज्र और वैडूर्य मणियों की  
डंडियों वाले, पतले रजत जैसे श्वेत लम्बे-लम्बे बालों वाले शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प, जलकण, रजत और मन्थन  
किये हुए अमृत के फेनपुंज सदृश श्वेत-धवल चामरों को धारण करके लीलापूर्वक बीजती हुई-सी खड़ी हैं।

उन जिन-प्रतिमाओं के आगे दो-दो नाग-प्रतिमायें, यक्षप्रतिमायें, भूतप्रतिमायें, कुंड (पात्रविशेष) धारक  
प्रतिमायें खड़ी हैं। ये सभी प्रतिमायें सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—निर्मल यावत् अनुपम शोभा से सम्पन्न हैं।

उन जिन-प्रतिमाओं के आगे एक सौ आठ—एक सौ आठ घंटा, चन्दनकलश, भुंगार, दर्पण, थाल, पात्रियां,  
सुप्रतिष्ठान, मनोगुलिकायें, वातकरक, चित्रकरक, रत्नकरंडक, अश्वकंठ यावत् वृषभकंठ पुष्पचंगेरिकायें यावत्  
मयूरपिच्छ चंगेरिकायें, पुष्पषटलक, तेलसमुद्गक यावत् अंजनसमुद्गक, एक सौ आठ ध्वजायें, एक सौ आठ  
धूपकडुच्छुक (धूपदान) रखे हैं।

सिद्धायतन का ऊपरी भाग स्वस्तिक आदि आठ-आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों से शोभायमान है।

## उपपात आदि सभाएं

१८०— तस्स णं सिद्धायतणस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगा उववायसभा पण्णत्ता,  
जहा सभाए सुहम्माए तहेव जाव<sup>४</sup> मणिपेढिया अट्ट जोयणाइं, देवसयणिज्जं तहेव सयणिज्ज-  
वण्णओ, अट्टट्ट मंगलगा, झया, छत्तातिछत्ता ।

१८०— इस सिद्धायतन के ईशान कोण में एक विशाल श्रेष्ठ उपपात-सभा बनी हुई है। सुधर्मा-सभा के समान

१, २, ३.—देखें सूत्र संख्या १३२

४. देखें सूत्र संख्या १६३ से १७६

ही इस उपपात-सभा का वर्णन समझना चाहिए। मणिपीठिका की लम्बाई-चौड़ाई आठ योजन की है और सुधर्मा-सभा में स्थित देवशैया के समान यहां की शैया का ऊपरी भाग आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों से शोभायमान हो रहा है।

**विवेचन**— सुधर्मासभा के समान इस उपपात-सभा के वर्णन करने के संकेत का आशय यह है कि—

सुधर्मासभा के समान ही इस उपपात-सभा के लिए भी पूर्वादि दिग्वर्ती तीन द्वारों, मुखमण्डप प्रेक्षागृहमण्डप, चैत्यस्तूप, चैत्यवृक्ष, माहेन्द्रध्वज एवं नन्दा-पुष्करिणी से लेकर उल्लोक तक का तथा मध्यभाग में स्थित—मणि-पीठिका और उस पर विद्यमान देवशैया एवं ऊपरी भाग में आठ—आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रों का वर्णन करना चाहिए।

१८१— तीसे णं उववायसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगे हरए पण्णत्ते, एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, तहेव से णं हरए एगाए पडमवरवेइयाए, एगेण वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खत्ते । तस्स णं हरयस्स तिदिसं तिसोवाणपडिरूवगा पन्नत्ता ।

१८१— उस उपपातसभा के उत्तर-पूर्व दिग्भाग में एक विशाल हृद-जलाशय—सरोवर है। इस हृद का आयाम (लम्बाई) एक सौ योजन एवं विस्तार (चौड़ाई) पचास योजन है तथा गहराई दस योजन है। यह हृद सभी दिशाओं में एक पद्मवरवेदिका एवं एक वनखण्ड से परिवेष्टित—घिरा हुआ है तथा इस हृद के तीन ओर अतीव मनोरम त्रिसोपान-पंक्तियां बनी हुई हैं।

१८२— तस्स णं हरयस्स उत्तरपुरत्थिमे णं एत्थ णं महेगा अभिसेगसभा पण्णत्ता, सुहम्मागमएणं जाव<sup>१</sup> गोमाणसियाओ मणिपेढिया सीहासणं सपरिवारं जाव<sup>२</sup> दामा चिट्ठंति ।

तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स सुबहु अभिसेयभंडे संनिक्खत्ते चिट्ठइ, अट्ठइ मंगलगा तहेव ।

१८२— उस हृद के ईशानकोण में एक विशाल अभिषेकसभा है। सुधर्मा-सभा के अनुरूप ही यावत् गोमानसिकार्ये, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन यावत् मुक्तादाम हैं इत्यादि इस अभिषेक सभा का भी वर्णन जानना चाहिए।

वहां सूर्याभदेव के अभिषेक योग्य साधन—सामग्री से भरे हुए बहुत-से भाण्ड (पात्र आदि सामग्री) रखे हैं तथा इस अभिषेक-सभा के ऊपरी भाग में आठ-आठ मंगल आदि सुशोभित हो रहे हैं।

१८३— तीसे णं अभिसेगसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं अलंकारियसभा पण्णत्ता, जहा सभा सुधम्मा मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं, सीहासणं सपरिवारं । तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स सुबहु अलंकारियभंडे संनिक्खत्ते चिट्ठंति, सेसं तहेव ।

१८३— उस अभिषेकसभा के ईशान कोण में एक अलंकार-सभा है। सुधर्मासभा के समान ही इस अलंकार-

१. देखें सूत्र संख्या १६३ से १७१

२. देखें सूत्र संख्या ४८ से ५१

सभा का तथा आठ योजन की मणिपीठिका एवं सपरिवार सिंहासन आदि का वर्णन समझ लेना चाहिए।

अलंकारसभा में सूर्याभदेव के द्वारा धारण किये जाने वाले अलंकारों से भरे हुए बहुत-से अलंकार-भांड रखे हैं। शेष सब कथन पूर्ववत् समझ जानना चाहिए।

१८४— तीसे णं अलंकारियसभाए उत्तरपुरत्थिमे णं तत्थ णं महेगा ववसायसभा पण्णत्ता, जहा उववायसभा जाव सीहासणं सपरिवारं मणिपेढिया, अट्टट्ट मंगलगा० ।

१८४— उस अलंकारसभा के ईशानकोण में एक विशाल व्यवसायसभा बनी है। उपपातसभा के अनुरूप ही यहां पर भी सपरिवार सिंहासन, मणिपीठिका आठ-आठ मंगल आदि का वर्णन कर लेना चाहिए।

### पुस्तकरत्न एवं नन्दा-पुष्करिणी

१८५— तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स एत्थ महेगे पोत्थयरयणे सन्निक्खित्ते चिट्ठइ, तस्स णं पोत्थयरयणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तं जहा—

रिट्टामईओ कंबिआओ, तवणिज्जमए दोरे, नाणामणिए गंठी, रयणामयाइं पत्तगाइं, वेरुलियमए लिप्पासणे, रिट्टामए छंदणे, तवणिज्जमई संकला, रिट्टामई मसी, वइरामई लेहणी, रिट्टामयाइं अक्खराइं, धम्मिए लेक्खे ।

ववसायसभाए णं उवरि अट्टट्ट मंगलगा ।

तीसे णं ववसायसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं नंदा पुक्खरिणी पण्णत्ता हरयसरिसा ।

तीसे णं णंदाए पुक्खरिणीए उत्तरपुरत्थिमेणं महेगे बलिपीढे पण्णत्ते सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे ।

१८५— उस व्यवसाय-सभा में सूर्याभ देव का विशाल श्रेष्ठतम पुस्तकरत्न रखा है। उस पुस्तकरत्न का वर्णन इस प्रकार है—

इसके पूठे रिष्ट रत्न के हैं। डोरा स्वर्णमय है, गांठें विविध मणिमय हैं। पत्र रत्नमय हैं। लिप्पासन—दवात वैदूर्य रत्न की है, उसका ढक्कन रिष्टरत्नमय है और सांकल तपनीय स्वर्ण की बनी हुई है। रिष्टरत्न से बनी हुई स्याही है, वज्ररत्न की लेखनी—कलम है। रिष्टरत्नमय अक्षर हैं और उसमें धार्मिक लेख लिखे हैं।

व्यवसाय-सभा का ऊपरी भाग आठ-आठ मंगल आदि से सुशोभित हो रहा है।

उस व्यवसाय-सभा में उत्तरपूर्वदिग्भाग में एक नन्दा पुष्करिणी है। हृद के समान इस नन्दा पुष्करिणी का वर्णन जानना चाहिए।

उस नन्दा पुष्करिणी के ईशानकोण में सर्वात्मना रत्नमय, निर्मल, यावत् प्रतिरूप एक विशाल बलिपीठ (आसन-विशेष) बना है।

### उपपातान्तर सूर्याभदेव का चिन्तन

१८६— तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरियाभे देवे अहुणोववण्णमित्तए चेव समाणे पंच-विहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तं जहा—आहारपज्जत्तीए, सरीरपज्जत्तीए, इंदियपज्जत्तीए, आणपाणपज्जत्तीए, भासा-मणपज्जत्तीए ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स पंचविहाए पज्जतीए पज्जतीभावं गयस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं मे पुव्विं करणिज्जं ? किं मे पच्छा करणिज्जं किं मे पुव्विं सेयं ? किं मे पच्छा सेयं ? किं मे पुव्विं पि पच्छा वि हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ ?

१८६— उस काल और उस समय में तत्काल उत्पन्न होकर वह सूर्याभ देव (१) आहार-पर्याप्ति, (२) शरीर-पर्याप्ति, (३) इन्द्रिय-पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति और (५) भाषामनःपर्याप्ति—इन पांच पर्याप्तियों से पर्याप्त अवस्था को प्राप्त हुआ।

पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तभाव को प्राप्त होने के अनन्तर उस सूर्याभदेव को इस प्रकार का आन्तरिक विचार, चिन्तन, अभिलाष एवं मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि—मुझे पहले क्या करना चाहिए ? और उसके अनन्तर क्या करना चाहिए ? मुझे पहले क्या करना उचित (शुभ, कल्याणकर) है ? और बाद में क्या करना उचित है ? तथा पहले भी और पश्चात् भी क्या करना योग्य है जो मेरे हित के लिए, सुख के लिए, क्षेम के लिए, कल्याण के लिए और अनुगामी रूप (परंपरा) से शुभानुबंध का कारण होगा ?

**विवेचन**— जीव की उस शक्ति को पर्याप्ति कहते हैं जिसके द्वारा पुद्गलों को ग्रहण करने तथा उनको आहार, शरीर आदि के रूप में परिवर्तित करने का कार्य होता है। संसारी जीव को पुद्गलों को ग्रहण करने और परिणामाने की शक्ति पुद्गलों के उपचय (पोषण, वृद्धि) से प्राप्त होती है एवं इस उपचय से ग्रहण और परिणामन करता है। इस प्रकार के कार्य-कारण भाव से उपचय, ग्रहण और परिणामन इन तीनों का क्रम निरन्तर चलता रहता है।

पर्याप्ति के छह भेद हैं—१. आहार-पर्याप्ति, २. शरीर-पर्याप्ति, ३. इन्द्रिय-पर्याप्ति, ४. श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, ५. भाषा-पर्याप्ति और ६. मन-पर्याप्ति।

उक्त छह पर्याप्तियों के अनुक्रम से एकेन्द्रिय जीवों के आदि की चार, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों के आदि की चार पर्याप्तियों के साथ भाषा-पर्याप्ति को मिलाने से पांच तथा संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीवों के मनपर्यन्त छहों पर्याप्तियां होती हैं।

इहभव सम्बन्धी शरीर को छोड़ने के पश्चात् जब जीव परभव सम्बन्धी शरीर ग्रहण करने के लिए उत्पत्ति-स्थान में पहुंच कर कार्मण शरीर के द्वारा प्रथम समय में जिन पुद्गलों को ग्रहण करता है, उनके आहार-पर्याप्ति आदि रूप छह विभाग हो जाते हैं और उनके द्वारा एक साथ आहार आदि छहों पर्याप्तियों का बनना प्रारम्भ हो जाता है, लेकिन उनकी पूर्णता क्रमशः होती है। अर्थात् आहार के बाद शरीर, शरीर के बाद इन्द्रिय आदि। यह क्रम मन-पर्याप्तिपर्यन्त समझना चाहिए। इसको एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझना चाहिए।

जैसे कि छह सूत कातने वाली स्त्रियों ने रुई का कातना तो एक साथ प्रारम्भ किया, किन्तु उनमें मोटा सूत कातने वाली जल्दी कात लेती है और उत्तरोत्तर बारीक-बारीक कातने वाली अनुक्रम से विलम्ब से कातती है। इसी प्रकार यद्यपि पर्याप्तियों का प्रारम्भ तो एक साथ हो जाता है किन्तु उनकी पूर्णता अनुक्रम से होती है।

पर्याप्तियां औदारिक, वैक्रिय और आहारक इन तीन शरीरों में होती हैं और उनमें उनकी पूर्णता का क्रम इस प्रकार जानना चाहिए—

औदारिक शरीर वाला जीव पहली आहार-पर्याप्ति एक समय में पूर्ण करता है और इसके बाद दूसरी से लेकर

छठी तक प्रत्येक अनुक्रम से एक-एक अन्तर्मुहूर्त के बाद पूर्ण करता है।

वैक्रिय और आहारक शरीर वाले जीव पहली पर्याप्ति एक समय में पूर्ण कर लेते हैं और उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में दूसरी पर्याप्ति पूर्ण करते हैं और उसके बाद तीसरी से छठी पर्यन्त अनुक्रम से एक-एक समय में पूरी करते हैं। लेकिन देव पांचवीं और छठी इन दोनों पर्याप्तियों को अनुक्रम से पूर्ण न कर एक साथ एक समय में ही पूरी कर लेते हैं।

सूत्र में “भासामणपज्जतीए” पद से सूर्याभदेव को पांच पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त होने का संकेत देवों के पांचवीं और छठी भाषा और मन-पर्याप्तियां एक साथ पूर्ण होने की अपेक्षा किया गया है।

### सामानिक देवों द्वारा कृत्य-संकेत

१८७— तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा सूरियाभस्स देवस्स इमेयारूवमज्झत्थियं जाव समुप्पन्नं समभिजाणित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति, सूरियाभं देवं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावन्ति, वद्धावित्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पियाणं सूरियाभे विमाणे सिद्धायतणंसि जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप-माणमित्ताणं अट्टसयं संनिक्खित्तं चिट्ठंति, सभाए णं सुहम्माए माणवए चेइयखंभे, वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ संनिक्खित्ताओ चिट्ठंति, ताओ णं देवाणुप्पियाणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ ।

तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं करणिज्जं, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पच्छा करणिज्जं । तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं सेयं, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पच्छा सेयं । तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पि पच्छा वि हियाए, सुहाए, खमाए, निस्सेयसाए, आणुगामियत्ताए भविस्सति ।

१८७— तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देव सूर्याभदेव के इस आन्तरिक विचार यावत् उत्पन्न संकल्प को अच्छी तरह से जानकर सूर्याभदेव के पास आये और उन्होंने दोनों हाथ जोड़ आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से सूर्याभदेव को अभिनन्दन करके इस प्रकार कहा—

आप देवानुप्रिय के सूर्याभविमान स्थित सिद्धायतन में जिनोत्सेधप्रमाण वाली एक सौ आठ जिन-प्रतिमायें विराजमान हैं तथा सुधर्मा सभा के माणवक—चैत्यस्तम्भ में वज्ररत्नमय गोल समुदगकों (डिब्बों) में बहुत-सी जिन अस्थियां व्यवस्थित रूप से रखी हुई हैं। वे आप देवानुप्रिय तथा दूसरे भी बहुत से वैमानिक देवों एवं देवियों के लिए अर्चनीय यावत् पर्युपासनीय हैं।

अतएव आप देवानुप्रिय के लिए उनकी पर्युपासना करने रूप कार्य करने योग्य है और यही कार्य पीछे करने योग्य है। आप देवानुप्रिय के लिए यह पहले भी श्रेय-रूप है और बाद में भी यही श्रेय रूप है। यही कार्य आप देवानुप्रिय के लिए पहले और पीछे भी हितकर, सुखप्रद, क्षेमकर, कल्याणकर एवं परम्परा से सुख का साधन रूप होगा।

१८८— तए णं से सूरियाभे देवे तेसिं सामाणियपरिसोववन्नगाणं देवाणं अंतिए एयमटुं सोच्चा-निसम्म हट्ट-तुट्ट जाव ( चित्तामाणंदिए-पीडमणे-परमसोमणस्सिए-हरिसवसविसप्पमाण ) हयहियए सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेति, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेत्ता उववायसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं निग्गच्छइ, जेणेव हरए तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता हरयं अणुपयाहिणीकरेमाणे-अणुपयाहिणी-करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाण-पडिरूवएणं पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जलावगाहं जलमज्जणं करेइ, करित्ता जलकिट्ठुं करेइ, करित्ता जलाभिसेयं करेइ, करित्ता आयंते चोक्खे परमसूइभूए हरयाओ पच्चोत्तरइ, पच्चोत्तरित्ता जेणेव अभिसेयसभा तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता अभिसेयसभं अणुपयाहिणी-करेमाणे अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने ।

१८८— तत्पश्चात् वह सूर्याभदेव उन सामानिकपरिषदोपगत देवों से इस अर्थ—बात को सुनकर और हृदय में अवधारित-मनन कर हर्षित, सन्तुष्ट यावत् (चित्त में आनन्दित, अनुरागी, परम प्रसन्न, हर्षातिरेक से विकसित) हृदय होता हुआ शय्या से उठा और उठकर उपपात सभा के पूर्वदिशवर्ती द्वार से निकला, निकलकर हृद (जलाशय—तालाब) पर आया, आकर हृद की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशावर्ती तोरण से होकर उसमें प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर पूर्वदिशावर्ती त्रिसोपान पंक्ति से नीचे उतरा, उतर कर जल में अवगाहन और जलमज्जन (स्नान) किया, जल-मज्जन करके जलक्रीड़ा की, जलक्रीड़ा करके जलाभिषेक किया, जलाभिषेक करके आचमन (कुल्ला आदि) द्वारा अत्यन्त स्वच्छ और शुचिभूत-शुद्ध होकर हृद से बाहर निकला, निकल कर जहां अभिषेकसभा थी वहां आया, वहां आकर अभिषेकसभा की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशावर्ती द्वार से उसमें प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर सिंहासन के समीप आया और आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।<sup>१</sup>

### सूर्याभदेव का अभिषेक-महोत्सव

१८९— तए णं सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेत्ति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सूरियाभस्स देवस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं इंदाभिसेयं उवट्टवेह ।

१८९— तदनन्तर सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवों ने आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर उनसे कहा—

देवानुप्रियो! तुम लोग शीघ्र ही सूर्याभदेव का अभिषेक करने हेतु महान् अर्थ वाले महर्घ (बहुमूल्य) एवं महापुरुषों के योग्य विपुल इन्द्राभिषेक की सामग्री उपस्थित करो—तैयार करो।

१९०— तए णं ते आभिओगिआ देवा सामाणियपरिसोववन्नेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा

हट्ट जाव हियया करयलपरिगहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं देवो ! तह' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति ।

समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं जाव<sup>१</sup> दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणित्ता अट्टसहस्सं सोवन्नियाणं कलसाणं, अट्टसहस्सं रूपमयाणं कलसाणं, अट्टसहस्सं मणिमयाणं कलसाणं, अट्टसहस्सं सुवन्नमणिमयाणं कलसाणं, अट्टसहस्सं रूपमणिमयाणं कलसाणं, अट्टसहस्सं सुवण्णरूपमणिमयाणं कलसाणं अट्टसहस्सं भोमिज्जाणं कलसाणं एवं भिंगाराणं, आयंसाणं थालाणं, पाईणं, सुपत्तिट्ठाणं वायकरगाणं, रयणकरंडगाणं, पुप्फचंगेरीणं, जाव<sup>२</sup> लोमहत्थचंगेरीणं, पुप्फपडलगाणं जाव लोमहत्थपडलगाणं, सीहासणाणं, छत्ताणं, चामराणं, तेल्लसमुग्गाणं जाव<sup>३</sup> अंजणसमुग्गाणं, ज्जबाणं, अट्टसहस्सं धूवकडुच्छुयाणं विउव्वंति ।

विउव्वित्ता ते साभाविए य वेउव्विए य कलसे य जाव कडुच्छुए य गिण्हंति, गिण्हित्ता सूरियाभाओ विमाणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता ताए उक्किट्ठाए चवलाए जाव<sup>४</sup> तिरियमसंखेज्जाणं जाव<sup>५</sup> वीतिवयमाणे-वीतिवयमाणे जेणेव खीरोदयसमुद्दे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता खीरोयगं गिण्हंति, जाइं तत्थुप्पलाइं ताइं गेण्हंति जाव ( पउमाइं, कुमुयाइं, नलिणाइं सुभगाइं, सोगंधियाइं, पोंडरियाइं, महापोंडरियाइं ) सयसहस्सपत्ताइं गिण्हंति ।

गिण्हित्ता जेणेव पुक्खरोदए समुद्दे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पुक्खरोदयं गेण्हंति, जाइं तत्थुप्पलाइं सबसहस्सपत्ताइं ताइं जाव गिण्हंति । गिण्हित्ता समयखत्ते जेणेव भरहेरवयाइं वासाइं जेणेव मागहवरदाम-पभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता तित्थमट्टियं गेण्हंति ।

गेण्हित्ता जेणेव गंगा-सिंधु-रत्ता-रत्तवईओ महानईओ तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति, सलिलोदगं गेण्हित्ता उभओकूलमट्टियं गेण्हंति ।

मट्टियं गेण्हित्ता जेणेव चुल्लहिमवंत-सिहरीवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता दगं गेण्हंति, सव्वतुरे सव्वपुप्फे, सव्वगंधे, सव्वमल्ले, सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पउमपुंडरीयदहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता दहोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हंति ।

गेण्हित्ता जेणेव हेमवएरवयाइं वासाइं जेणेव रोहिय-रोहियंसा-सुवण्णकूल-रुप्पकूलाओ महाणाइंओ तेणेव उवागच्छंति, सलिलोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता उभओकूलमट्टियं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव सद्दावाति-वियडावातिपरियागा वट्टवेयडुषव्वया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्वतुरे तहेव ।

१. देखें सूत्र संख्या १३ २-३. देखें सूत्र संख्या १३२

४-५. देखें सूत्र संख्या १३

जेणेव महाहिमवंतरुप्पिवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छन्ति तहेव, जेणेव महापउम-महापुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छत्ता द्दहोदगं गिण्हन्ति तहेव ।

जेणेव हरिवास-रम्मगवासाइं जेणेव हरिकंत-नारिकंताओ महाणईओ, तेणेव उवागच्छन्ति तहेव, जेणेव गंधावाइमालवंतपरियाया वट्टवेयड्डुपव्वया तेणेव तहेव ।

जेणेव णिसद-णीलवंतवासधरपव्वया तहेव, तेणेव तिगिच्छ-केसरिद्दहाओ तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छत्ता तहेव ।

जेणेव महाविदेहे वासे जेणेव सीता-सीतोदाओ महाणदीओ तेणेव तहेव ।

जेणेव सव्वचक्कवट्टिविजया जेणेव सव्वमागह-वरदाम पभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छन्ति, तेणेव उवागच्छत्ता तित्थोदगं गेण्हन्ति, गेण्हत्ता सव्वंतरणईओ जेणेव सव्ववक्खारपव्वया तेणेव उवागच्छन्ति, सव्वतूयरे तहेव ।

जेणेव मंदरे पव्वते जेणेव भद्दसालवणे तेणेव उवागच्छन्ति सव्वतूयरे सव्वपुप्फे सव्वमल्ले सव्वोसहिसिद्धत्थए य गेण्हन्ति, गेण्हत्ता जेणेव णंदणवणे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छत्ता सव्वतूयरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं गिण्हन्ति, गिण्हत्ता जेणेव सोमणसवणे तेणेव उवागच्छन्ति सव्वतूयरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं च दिव्वं च सुमणदामं गिण्हन्ति, गिण्हत्ता जेणेव पंडगवणे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छत्ता सव्वतूयरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए च सरसं च गोसीसचंदणं च दिव्वं च सुमणदामं दद्दरमलयसुगंधियगंधे गिण्हन्ति ।

गिण्हत्ता एगतो मिलायन्ति मिलाइत्ता ताए उक्किट्टाए जाव जेणेव सोहम्मे कप्पे जेणेव सूरियाभे विमाणे जेणेव अभिसेयसभा जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छत्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावित्ति वद्धावित्ता तं महत्थं महग्घं मरिहं विउलं इंदाभिसेयं उवट्टुवेत्ति ।

१९०— तत्पश्चात् उन आभियोगिक देवों ने सामानिक देवों की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित यावत् विकसित हृदय होते हुए दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'देव! बहुत अच्छा! ऐसा ही करेंगे' कहकर विनयपूर्वक आज्ञा-वचनों को स्वीकार किया। स्वीकार करके वे उत्तरपूर्व दिग्भाग में गये और उस उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) में जाकर उन्होंने वैक्रिय समुद्घात किया।

वैक्रिय समुद्घात करके संख्यात योजन का दण्ड बनाया यावत् पुनः दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात करके एक हजार आठ स्वर्णकलशों की, एक हजार आठ रूप्यकलशों की, एक हजार आठ मणिमय कलशों की, एक हजार आठ स्वर्ण-रजतमय कलशों की, एक हजार आठ स्वर्ण-मणिमय कलशों की, एक हजार आठ रजत-मणिमय कलशों की, एक हजार आठ स्वर्ण-रूप्य-मणिमय कलशों की, एक हजार आठ भौमेय (मिट्टी के) कलशों की एवं इसी प्रकार एक हजार आठ—एक हजार आठ भृंगारों, दर्पणों, थालों, पात्रियों, सुप्रतिष्ठानों वातकरकों, रत्नकरंडकों, पुष्पचंगेरिकाओं यावत् मयूरपिच्छचंगेरिकाओं, पुष्पपटलकों यावत् मयूरपिच्छपटलकों, सिंहासनों, छत्रों, चामरों, तेलसमुद्गकों यावत् अंजनसमुद्गकों, ध्वजाओं, धूपकडुच्छकों (धूपदानों) की विकुर्वणा (रचना) की।

विकुर्वणा करके उन स्वाभाविक और विक्रियाजन्य कलशों यावत् धूपकडुच्छकों को अपने-अपने हाथों में लिया और लेकर सूर्याभविमान से बाहर निकले। निकलकर अपनी उत्कृष्ट चपल दिव्य गति से यावत् तिर्यक् लोक में असंख्यात योजनप्रमाण क्षेत्र को उलांघते हुए जहां क्षीरोदधि समुद्र था, वहां आये। वहां आकर कलशों में क्षीरसमुद्र के जल को भरा तथा वहां के उत्पल यावत् (पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुंडरीक, महापुण्डरीक) शतपत्र, सहस्रपत्र कमलों को लिया।

कमलों आदि को लेकर जहां पुष्करोदक समुद्र था वहां आये, आकर पुष्करोदक को कलशों में भरा तथा वहां के उत्पल शतपत्र सहस्रपत्र आदि कमलों को लिया।

तत्पश्चात् जहां मनुष्यक्षेत्र था और उसमें भी जहां भरत-ऐरवत क्षेत्र थे, जहां मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ थे वहां आये और आकर उन-उन तीर्थों के जल को भरा और वहां की मिट्टी ग्रहण की।

इस प्रकार से तीर्थोदक और मृत्तिका को लेकर जहां गंगा, सिन्धु, रक्ता रक्तवती महानदियां थीं, वहां आये। आकर नदियों के जल और उनके दोनों तटों की मिट्टी को लिया।

नदियों के जल और मिट्टी को लेकर चुल्लहिमवंत और शिखरी वर्षधर पर्वत पर आये। वहां आकर कलशों में जल भरा तथा सर्व ऋतुओं के श्रेष्ठ—उत्तम पुष्पों, समस्त गंधद्रव्यों, समस्त पुष्पसमूहों और सर्व प्रकार की औषधियों एवं सिद्धार्थकों (सरसों) को लिया और फिर पद्मद्रह एवं पुंडरीकद्रह पर आये। यहां आकर भी पूर्ववत् कलशों में द्रह-जल भरा तथा सुन्दर श्रेष्ठ उत्पल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलों को लिया।

इसके पश्चात् फिर जहां हैमवत और ऐरण्यवत क्षेत्र थे, जहां उन दोनों क्षेत्रों की रोहित, रोहितांसा तथा स्वर्णकूला और रूप्यकूला महानदियां थीं, वहां आये और कलशों में उन नदियों का जल भरा तथा नदियों के दोनों तटों की मिट्टी ली। जल मिट्टी को लेने के पश्चात् जहां शब्दापाति विकटापाति वृत्त वैताढ्य पर्वत थे, वहां आये। आकर समस्त ऋतुओं के उत्तमोत्तम पुष्पों आदि को लिया।

वहां से वे महाहिमवंत और रुक्मि वर्षधर पर्वत पर आये और वहां से जल एवं पुष्प आदि लिये, फिर जहां महापद्म और महापुण्डरीक द्रह थे, वहां आये। आकर द्रह जल एवं कमल आदि लिये।

तत्पश्चात् जहां हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्र थे, हरिकांता और नारिकांता महानदियां थीं, गंधापाति, माल्यवंत और वृत्तवैताढ्य पर्वत थे, वहां आये और इन सभी स्थानों से जल, मिट्टी, औषधियां एवं पुष्प लिये।

इसके बाद जहां निषध, नील नामक वर्षधर पर्वत थे, जहां तिगिंछ और केसरीद्रह थे, वहां आये, वहां आकर उसी प्रकार से जल आदि लिया।

तत्पश्चात् जहां महाविदेह क्षेत्र था जहां सीता, सीतोदा महानदियां थीं वहां आये और उसी प्रकार से उनका जल, मिट्टी, पुष्प आदि लिये।

फिर जहां सभी चक्रवर्ती विजय थे, जहां मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ थे, वहां आये, वहां आकर तीर्थोदक लिया और तीर्थोदक लेकर सभी अन्तर-नदियों के जल एवं मिट्टी को लिया फिर जहां वक्षस्कार पर्वत थे वहां आये और वहां से सर्व ऋतुओं के पुष्पों आदि को लिया।

तत्पश्चात् जहां मन्दर पर्वत के ऊपर भद्रशाल वन था वहां आये, वहां आकर सर्व ऋतुओं के पुष्पों, समस्त औषधियों और सिद्धार्थकों को लिया। लेकर वहां से नन्दनवन में आये, आकर सर्व ऋतुओं के पुष्पों यावत् सर्व

औषधियों, सिद्धार्थकों (सरसों) और सरस गोशीर्ष चन्दन को लिया। लेकर जहां सौमनस वन था, वहां आये। आकर वहां से सर्व ऋतुओं के उत्तमोत्तम पुष्पों यावत् सर्व औषधियों, सिद्धार्थकों, सरस गोशीर्ष चन्दन और दिव्य पुष्प-मालाओं को लिया, लेकर पांडुक वन में आये और वहां आकर सर्व ऋतुओं के सर्वोत्तम पुष्पों यावत् सर्व औषधियों, सिद्धार्थकों, सरस गोशीर्ष चन्दन, दिव्य पुष्पमालाओं, दर्दरमलय चन्दन की सुरभि गंध से सुगन्धित गंध-द्रव्यों को लिया।

इन सब उत्तमोत्तम पदार्थों को लेकर वे सब आभियोगिक देव एक स्थान पर इकट्ठे हुए और फिर उत्कृष्ट दिव्यगति से यावत् जहां सौधर्म कल्प था और जहां सूर्याभविमान था, उसकी अभिषेक सभा थी और उसमें भी जहां सिंहासन पर बैठा सूर्याभदेव था, वहां आये। आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके सूर्याभ-देव को 'जय हो विजय हो' शब्दों से बधाया और बधाई देकर उसके आगे महान् अर्थ वाली, महा मूल्यवान्, महान् पुरुषों के योग्य विपुल इन्द्राभिषेक की सामग्री उपस्थित की—रखी।

१९१— तए णं तं सूरियाभं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ, तिन्नि परिसाओ, सत्त अणियाहिवइणो जाव अन्नेवि बहवे सूरियाभविमाणवासिणो देवा य देवीओ य तेहिं साभाविएहि य वेउव्विएहि य वरकमलपइट्ठाणेहि य सुरभिवरवारिपडि-पुत्तेहिं चंदणकयचच्चिएहिं आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं सुकुमालकोमलकरपरिग्गहिएहिं अट्टसहस्सेणं सोवन्नियाणं कलसाणं जाव अट्टसहस्सेणं भोमिज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतूयरेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहि य सव्विड्डीए जाव वाइएणं महया-महया इंदाभिसेएणं अभिसिंचंति ।

१९१— तत्पश्चात्—अभिषेक की सामग्री आ जाने के बाद चार हजार सामानिक देवों, परिवार सहित चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकाधिपतियों यावत् अन्य दूसरे बहुत से देवों-देवियों ने उन स्वाभाविक एवं विक्रिया शक्ति से निष्पादित—बनाये गये श्रेष्ठ कमलपुष्पों पर संस्थापित, सुगंधित शुद्ध श्रेष्ठ जल से भरे हुए, चन्दन के लेप से चर्चित, पंचरंगे सूत-कलावे से आविद्ध बन्धे-लिपटे हुए कंठ वाले, पद्म (सूर्यविकासी कमलों) एवं उत्पल (चन्द्रविकासी कमलों) के ढक्कनों से ढके हुए, सुकुमाल कोमल हाथों से लिये गये और सभी पवित्र स्थानों के जल से भरे हुए एक हजार आठ स्वर्ण कलशों यावत् एक हजार आठ मिट्टी के कलशों, सब प्रकार की मृत्तिका एवं ऋतुओं के पुष्पों, सभी काषायिक सुगन्धित द्रव्यों यावत् औषधियों और सिद्धार्थकों—सरसों से महान् ऋद्धि यावत् वाद्यघोषों पूर्वक सूर्याभदेव को अतीव गौरवशाली उच्चकोटि के इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त किया।

### अभिषेककालीन देवोल्लास

१९२— तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स महया-महया इंदाभिसेए वट्टमाणे अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं नच्चोययं नातिमट्टियं पविरल-फुसियरेणुविणासणं दिव्वं सुरभिगंधोदणं वासं वासंति, अप्पेगतिया देवा हयरयं, नट्टुरयं, भट्टुरयं, उवसंतरयं, पसंतरयं करंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं मंचाइमंचकलियं करंति, अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं णाणाविहरा-गोसियं झयपडागाइपडागमंडियं करंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं लाउल्लोइमहियं,

गोसीससरसरत्तचंदणदहरदिण्णपंचंगुलितलं करेति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं उवचिय-चंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं करेति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं करेति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं पंचवण्ण-सुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेति, अप्पेगतिया सूरियाभं विमाणं कालागुरुपवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धूयाभिराम करेति, अप्पेगइतया देवा सूरियाभं विमाणं सुगंधगंधियं गंधवट्टिभूतं करेति ।

अप्पेगतिया देवा हिरण्णवासं वासंति, सुवण्णवासं वासंति, रययवासं वासंति, वड्ढरवासं<sup>१</sup> पुप्फवासं० फलवासं० मल्लवासं० गंधवासं० चुण्णवासं० आभरणवासं० वासंति । अप्पेगतिया देवा हिरण्णविहिं भाएंति, एवं सुवन्नविहिं भाएंति रयणविहिं, पुप्फविहिं, फलविहिं, मल्लविहिं चुण्णविहिं वत्थविहिं गंधविहिं, तत्थ अप्पेगतिया देवा आभरणविहिं भाएंति ।

अप्पेगतिया चउच्चिहं वाइत्तं वाइंति-ततं-विततं-घणं-झुसिरं, अप्पेगइया देवा चउच्चिहं गेयं गायंति तं०—उक्खित्तायं-पायत्तायं-मंदायं-रोइतावसाणं, अप्पेगतिया देवा दुयं नट्टविहिं उवदंसिंति, अप्पेगतिया विलंबियणट्टविहिं उवदंसंति, अप्पेगतिया देवा दुतविलंबियं णट्टविहिं उवदंसंति, एवं अप्पेगतिया अंचियं नट्टविहिं उवदंसंति, अप्पेगतिया देवा आरभटं, भसोलं, आरभटभसोलं उप्पायनिवायपवत्तं संकुचियपसारियं, रियारियं भंतसंभतणामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसंति, अप्पे-गतिया देवा चउच्चिहं अभिणयं अभिणयंति, तं जहा—दिट्ठितियं-पाडंतियं-सामंतोवणिवाइयं-लोगअंतोमज्झावसाणियं ।

अप्पेगतिया देवा बुक्कारेति, अप्पेगतिया देवा पीणेति, अप्पेगतिया लासेति, अप्पेगतिया हक्कारेति, अप्पेगतिया विणंति, तंडवेति, अप्पेगतिया वग्गंति, अप्फोडेति, अप्पेगतिया अप्फोडेति, वग्गंति, अप्पे<sup>२</sup> तिवइं छिंदंति, अप्पेगतिया हयहेसियं करेति, अप्पेगतिया हत्थिगुलगुलाइयं करेति, अप्पेगतिया रह-घणघणाइयं करेति, अप्पेगतिया हयहेसिय-हत्थिगुलगुलाइय-रहघण-घणाइयं करेति, अप्पेगतिया उच्छलेति, अप्पेगतिया पोच्छलेति, अप्पेगतिया उक्खिट्टियं करेति, अ० उच्छलेति, पोच्छलेति, अप्पेगतिया तित्ति वि, अप्पेगतिया उवयंति, अप्पेगतिया उप्पयंति, अप्पेगतिया परिवयंति, अप्पेगतिया तित्ति वि, अप्पेगइया सीहनायंति अप्पेगतिया दहरयं करेति, अप्पेगतिया भूमिचवेडं दलयंति अप्पे० तित्ति वि, अप्पेगतिया गज्जंति, अप्पेगतिया विज्जुयायंति, अप्पेगइया वासं वासंति, अप्पेगतिया तित्ति वि करेति, अप्पेगतिया जलंति अप्पेगतिया तवंति, अप्पेगतिया पतवेति, अप्पेगतिया तित्ति वि, अप्पेगतिया हक्कारेति अप्पेगतिया थुक्कारेति अप्पेगतिया धक्कारेति, अप्पेगतिया साइं साइं नामाइं साहेति, अप्पेगतिया चत्तारि वि, अप्पेगइया देवा देवसन्निवायं

१. 'वासंति' शब्द का सूचक है तथा भाएंति शब्द का भी संकेत किया गया है। संदर्भानुसार उस उस शब्द को ग्रहण करना चाहिए।

२. अप्पे० शब्द 'अप्पेगतिया' का सूचक है।

करेंति, अप्पेगतिया देवुज्जोयं करेंति, अप्पेगइया देवुक्कलियं करेंति, अप्पेगइया देवा कहकहगं करेंति, अप्पेगतिया देवा दुहदुहगं करेंति, अप्पेगतिया चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइया देवसन्निवायं-देवुज्जोयं-देवुक्कलियं-देवकहकहगं-देव-दुहदुहगं-चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगतिया उप्पलहत्थगया जाव सयसहस्सपत्तहत्थगया, अप्पेगतिया कलसहत्थगया जाव धूवकडुच्छुयहत्थगया हट्ट-तुट्ट जाव हियया सव्वतो समंता आहावंति परिधावंति ।

११२— इस प्रकार के महिमाशाली महोत्सवपूर्वक जब सूर्याभदेव का इन्द्राभिषेक हो रहा था, तब कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान में इस प्रकार से झरमर-झरमर विरल नन्हीं-नन्हीं बूंदों में अतिशय सुगंधित गंधोदक की वर्षा बरसाई कि जिससे वहां की धूलि दब गई, किन्तु जमीन में पानी नहीं फैला और न कीचड़ हुआ। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान को झाड़-बुहार कर हतरज, नष्टरज, भ्रष्टरज, उपशांतरज और प्रशांतरज वाला बना दिया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान की गलियों, बाजारों और राजमार्गों को पानी से सींचकर, कचरा वगैरह झाड़-बुहार कर और गोबर से लीपकर साफ किया। कितने ही देवों ने मंच बनाये एवं मंचों के ऊपर भी मंचों की रचना कर सूर्याभ विमान को सजाया। कितने ही देवों ने विविध प्रकार की रंग-बिरंगी ध्वजाओं, पताकातिपताकाओं से मंडित किया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान को लीप-पोतकर स्थान-स्थान पर सरस गोरोचन और रक्त दर्दर चंदन के हाथे लगाये। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान के द्वारों को चंदनचर्चित कलशों से बने तोरणों से सजाया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान को ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लंबी-लंबी गोल मालाओं से विभूषित किया। कितने ही देवों ने पंचरंगे सुगंधित पुष्पों को बिखेर कर मांडने मांडकर सुशोभित किया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान को कृष्ण अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क तुरुष्क और धूप की मघमघाती सुगंध से मनमोहक बनाया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान को सुरभि गंध से व्याप्त कर सुगंध की गुटिका जैसा बना दिया।

किसी ने चांदी की वर्षा बरसाई तो किसी ने सोने की, रत्नों की, वज्र रत्नों की, पुष्पों की, फलों की, पुष्पमालाओं की, गंध द्रव्यों की, सुगन्धित चूर्ण की और किसी ने आभूषणों की वर्षा बरसाई।

कितने ही देवों ने एक दूसरे को भेंट में चांदी दी। इसी प्रकार से किसी ने आपस में एक दूसरे को स्वर्ण, रत्न, पुष्प, फल, पुष्पमाला, सुगन्धित चूर्ण, वस्त्र, गंध, द्रव्य और आभूषण भेंट रूप में दिये।

कितने ही देवों ने तत, वितत, घन और शुपिर इन चार प्रकार के वाद्यों को बजाया। कितने ही देवों ने उत्क्षिप्त, पादान्त, मंद एवं रोचितावसान ये चार प्रकार के संगीत गाये। किसी ने द्रुत नाट्यविधि का प्रदर्शन किया तो किसी ने विलंबित नाट्यविधि का एवं द्रुतविलंबित नाट्यविधि और किसी ने अंचित नाट्यविधि दिखलाई। कितने ही देवों ने आरभट, कितने ही देवों ने भसोल, कितने ही देवों ने आरभट-भसोल, कितने ही देवों ने उत्पात-निपातप्रवृत्त, कितने ही देवों ने संकुचित-प्रसारित-रितारित और कितने ही देवों ने भ्रांत-संभ्रांत नामक दिव्य नाट्यविधि प्रदर्शित की। किन्हीं किन्हीं देवों ने दार्ष्टान्तिक, प्रात्यान्तिक, सामन्तोपनिपातिक और लोकान्तमध्यावसानिक इन चार प्रकार के अभिनयों का प्रदर्शन किया।

साथ ही कितने ही देव हर्षातिरेक से बकरे-जैसी बुकबुकाहट करने लगे। कितने ही देवों ने अपने शरीर को फुलाने का दिखावा किया। कितनेक नाचने लगे, कितनेक हक-हक की आवाजें लगाने लगे। कितने ही लम्बी-लम्बी दौड़ दौड़ने लगे। कितने ही गुनगुनाने लगे। कितने ही तांडव नृत्य करने लगे। कितने ही उछलने के साथ ताल ठोकने

लगे और कितने ही ताली बजा-बजाकर कूदने लगे। कितने ही तीन पैर की दौड़ लगाने, कितने ही घोड़े जैसे हिनहिनाने लगे। कितने ही हाथी जैसी गुलगुलाहट करने लगे। कितने ही रथ जैसी घनघनाहट करने लगे और कितने ही कभी घोड़ों की हिनहिनाहट, कभी हाथी की गुलगुलाहट और रथों की घनघनाहट जैसी आवाजें करने लगे। कितनेक ने ऊंची छलांग लगाई, कितनेक और अधिक ऊपर उछले। कितने ही हर्षध्वनि करने लगे। हर्षित हो किलकारियां करने लगे। कितने उछले और अधिक ऊपर उछले और साथ ही हर्षध्वनि करने लगे। कोई ऊपर से नीचे, कोई नीचे से ऊपर और कोई लम्बे कूदे। किसी ने नीची-ऊंची और लंबी—तीनों तरह की छलांगें मारी। कितनेक ने सिंह जैसी गर्जना की, कितनेक ने एक दूसरे को रंग-गुलाल से भर दिया, कितनेक ने भूमि को थपथपाया और कितनेक ने सिंहनाद किया, रंग-गुलाल उड़ाई और भूमि को भी थपथपाया। कितने ही देवों ने मेघों की गड़गड़ाहट, कितने ही देवों ने बिजली की चमक जैसा दिखावा किया और किन्हीं ने वर्षा बरसाई। कितने ही देवों ने मेघों के गरजने चमकने और बरसने के दृश्य दिखाये। कुछ एक देवों ने गरमी से आकुल-व्याकुल होने का, कितने ही देवों ने तपने का, कितने ही देवों ने विशेष रूप से तपने का तो कितने ही देवों ने एक साथ इन तीनों का दिखावा किया। कितने ही हक-हक, कितने ही थक-थक कितने ही धक-धक जैसे शब्द और कितने ही अपने-अपने नामों का उच्चारण करने लगे। कितने ही देवों ने एक साथ इन चारों को किया। कितने ही देवों ने टोलियां (समूह, झुंड) बनाई, कितने ही देवों ने देवोद्योत किया, कितने ही देवों ने रुक-रुक कर बहने वाली वाततरंगों का प्रदर्शन किया। कितने ही देवों ने कहकहे लगाये, कितने ही देव दुहदुहाहट करने लगे, कितनेक देवों ने वस्त्रों की बरसा की और कितने ही देवों ने टोलियां बनाई, देवोद्योत किया देवोत्कलिका की, कहकहे लगाये, दुहदुहाहट की और वस्त्रवर्षा की। कितनेक देव हाथों में उत्पल यावत् शतपत्र सहस्रपत्र कमलों को लेकर, कितने ही हाथों में कलश यावत् धूप-दान दोनों को लेकर हर्षित सन्तुष्ट यावत् हर्षातिरेक से विकसितहृदय होते हुए इधर-उधर चारों ओर दौड़-धूप करने लगे।

**विवेचन**— प्रस्तुत सूत्र में उल्लास और प्रमोद के समय होने वाली मानसिक वृत्तियों एवं हर्षातिरेक के कारण की जाने वाली प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया है। उपर्युक्त वर्णन में प्रदर्शित चेष्टाओं के चित्र हमें त्यौहारों-मेलों आदि के अवसरों पर देखने को मिलते हैं, जब बालक से लेकर वृद्ध जन तक सभी अपने-अपने पद और मर्यादा को भूलकर मस्ती में रम जाते हैं।

११३— तए णं तं सूरियाभं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ जाव<sup>१</sup> सोलस आयरक्ख-देवसाहस्सीओ अण्णे य बहवे सूरियाभरायहाणिवत्थव्वा देवा य देवीओ य महया महया इंदाभिसे-गेणं अभिसिंचंति, अभिसिंचित्ता पत्तेयं-पत्तेयं करयलपरिगहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

जय जय नंदा ! जय जय भद्रा ! जय जय नंदा ! भद्रं ते, अजियं जिणाहि, जियं पालेहि, जियमज्झे वसाहि, इंदो इव देवाणं, चंदो इव ताराणं, चमरो इव असुराणं, धरणो इव नागाणं, भरहो इव मणुयाणं बहूइं पलिओवमाइं, बहूइं सागरोवमाइं बहूइं पलिओवमसागरोवमाइं, चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव आयरक्खदेवसाहस्सीणं सूरियाभस्स विमाणस्स अन्नेसिं च बहूणं

सूरियाभविमाणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव ( पोरेवच्चं-सामित्तं-भट्टित्तं-महत्तर-गतं-आणाईसरसेणावच्चं ) महया महयाहयनट्टु० कारेमाणे पालेमाणे विहराहि त्ति कट्टु जय जय सहं पउंजंति ।

१९३— तत्पश्चात् चार हजार सामानिक देवों यावत् सपरिवार चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा दूसरे भी बहुत से सूर्याभ राजधानी में वास करने वाले देवों और देवियों ने सूर्याभदेव को महान् महिमाशाली इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके प्रत्येक ने दोनों हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

हे नन्द! तुम्हारी जय हो, जय हो! हे भद्र! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम्हारा भद्र—कल्याण हो! हे जगदानन्दकारक! तुम्हारी बारंबार जय हो! तुम न जीते हुआओं को जीतो और विजितों (जीते हुआओं) का पालन करो, जितों—शिष्ट आचार वालों के मध्य में निवास करो। देवों में इन्द्र के समान, ताराओं में चन्द्र के समान, असुरों में चमरेन्द्र के समान, नागों में धरणेन्द्र के समान, मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती के समान, अनेक पल्योपमों तक, अनेक सागरोपमों तक, अनेक-अनेक पल्योपमों-सागरोपमों तक, चार हजार सामानिक देवों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा सूर्याभ विमान और सूर्याभ विमानवासी अन्य बहुत से देवों और देवियों का बहुत-बहुत अतिशय रूप से आधिपत्य (शासन) यावत् (पुरोवर्तित्व), (प्रमुखत्व) भर्तृत्व, (पोषकत्व) महत्तरकत्व एवं आज्ञेश्वरत्व, सेनापतित्व करते हुए पालन करते हुए विचरण करो।

इस प्रकार कहकर पुनः जय जयकार किया।

### अभिषेकानंतर सूर्याभदेव का अलंकरण

१९४— तए णं से सूरियाभे देवे महया महया इंदाभिसेगेणं अभिसित्ते समाणे अभिसेय-सभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अलंकारियसभं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे करेमाणे अलंकारियसभं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छति सीहासणवरगते पुरत्थाभि-मुहे सन्निसन्ने ।

१९४— अतिशय महिमाशाली इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त होने के पश्चात् सूर्याभदेव अभिषेकसभा के पूर्व-दिशावर्ती द्वार से बाहर निकला, निकलकर जहां अलंकार-सभा थी वहां आया। आकर अलंकार-सभा की अनु-प्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से अलंकार-सभा में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहां सिंहासन था, वहां आया और आकार पूर्व की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर आरूढ हुआ।

१९५— तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोवन्नगा अलंकारियभंडे उवट्ठुवेंति।

तए णं से सूरियाभे देवे तप्पढमयाए पम्हलसुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेति लूहिता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपति, अणुलिंपित्ता नासानीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वन्नफरिसजुत्तं हयलालापेसवातिरेगं धवलं कणगखचियन्तकम्मं आगासफालियसमप्पभं दिव्वं देवदूसजुयलं नियंसेति, नियंसेत्ता हारं पिणद्धेति, पिणद्धित्ता अद्धहारं पिणद्धेइ, एगावलिं पिणद्धेति,

पिणद्धित्ता मुत्तावलिं पिणद्धेति पिणद्धित्ता, रयणावलिं पिणद्धेइ, पिणद्धित्ता एवं अंगयाइं केयूराइं कडगाइं तुडियाइं कडिसुत्तगं दसमुद्दाणंतगं वच्छसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं पालंबं कुंडलाइं चूडामणिं मउडं पिणद्धेइ, गंधिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अप्पाणं अलंकियविभूसियं करेइ, करित्ता दहर-मलय-सुगंधगंधिएहिं गायाइं भुखंडेइ दिव्वं च सुमणदां पिणद्धेइ ।

११५— तदनन्तर उस सूर्याभ देव की सामानिक परिषद् के देवों ने उसके सामने अलंकार—भांड उपस्थित किया ।

इसके बाद सूर्याभदेव ने सर्वप्रथम रोमयुक्त सुकोमल काषायिक सुरभि गंध से सुवासित वस्त्र से शरीर को पोंछा । पोंछकर शरीर पर स्मरस गोशीर्ष चंदन का लेप किया, लेप करके नाक की निःश्वास से भी उड़ जाये, ऐसा अति बारीक नेत्राकर्षक, सुन्दर वर्ण और स्पर्श वाले, घोड़े के थूक ( लार ) से भी अधिक सुकोमल, धवल जिनके पल्लों और किनारों पर सुनहरी बेलबूटे बने हैं, आकाश एवं स्फटिक मणि जैसी प्रभा वाले दिव्य देवदूष्य ( वस्त्र ) युगल को धारण किया । देवदूष्य युगल धारण करने के पश्चात् गले में हार पहना, अर्धहार पहना, एकावली पहनी, मुक्ताहार पहना, रत्नावली पहनी, एकावली पहन कर भुजाओं में अंगद, केयूर ( बाजूबन्द ), कड़ा, तुटित, करधनी, हाथों की दशों अंगुलियों में दस अंगूठियां, वक्षसूत्र, मुरवि ( मादलिया ), कंठमुरवि ( कंठी ), प्रालंब ( झूमके ), कानों में कुंडल पहने तथा मस्तक पर चूडामणि ( कलगी ) और मुकुट पहना । इन आभूषणों को पहनने के पश्चात् ग्रंथिम ( गूंथी हुई ), वेष्टिम ( लपेटी हुई ), पूरिम ( पूरी हुई ) और संघातिम ( सांधकर बनाई हुई ), इन चार प्रकार की मालाओं से अपने को कल्पवृक्ष के समान अलंकृत—विभूषित किया । विभूषित कर दहर मलय चंदन की सुगन्ध से सुगन्धित चूर्ण को शरीर पर भुरका—छिड़का और फिर दिव्य पुष्पमालाओं को धारण किया ।

**विवेचन**— उपर्युक्त वस्त्र परिधान एवं आभूषणों को पहनने से यह ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर के समकालीन भारतीय जन दो वस्त्र पहनने के साथ-साथ यथायोग्य आभूषणों को धारण करते थे । शृंगारप्रसाधनों में अतिशय सुरभिगंध वाले पदार्थों का उपयोग किया जाता था । वस्त्र-वर्णन तो तत्कालीन वस्त्र-कला की परम प्रकर्षता की प्रतीति कराता है । उस समय 'पाउडर' चूर्ण का भी प्रयोग किया जाता था ।

### सूर्याभदेव द्वारा कार्य-निश्चय

११६— तए णं से सूरियाभे देवे केसालंकारेणं, मल्लालंकारेणं आभरणालंकारेणं वत्थालंकारेणं चउव्विहेण अलंकारेण अलंकिय-विभूसिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्टेति, अब्भुट्टित्ता अलंकारियसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छति, ववसायसभं अणुपयाहिणीकरेमाणे अणुपयाहिणी-करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति जेणेव सीहासणवरगए ( ? ) जाव सन्निसन्ने ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा पोत्थयरयणं उवट्टुवेंति, तते णं से सूरियाभे देवे पोत्थयरयणं गिण्हति, गिण्हित्ता पोत्थयरयणं मुयइ मुइत्ता पोत्थयरयणं विहाडेइ, विहाडित्ता पोत्थयरयणं वाएति, पोत्थयरयणं वाएत्ता धम्मियं ववसायं ववसइ, ववसइत्ता पोत्थयरयणं

पडिनिक्खवइ, सीहासणाओ अब्भुट्ठेति, अब्भुट्ठेत्ता ववसायसभातो पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिनिक्ख-  
मिन्ता जेणेव नंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता णंदापुक्खरिणिं पुरत्थिमिल्लेणं  
तोरणेणं तिसोवाणपडिरूवणं पच्चोरुहइ हत्थपादं पक्खालेति, पक्खलित्ता आयंते चोक्खे  
परमसुइभए एणं महं सेयं रययामयं विमलं सलिलपुण्णं मत्तगयमुहागितिकुंभसमाणं भिंगारं पगेण्हत्ता  
जाइं तत्थ उत्पलाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हति गेण्हत्ता णंदातो पुक्खरिणीतो पच्चुत्तरति,  
पच्चुत्तरित्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

१९६— तत्पश्चात् केशालंकारों (केशों को सजाने वाले अलंकार), पुष्प-मालादि रूप माल्यालंकारों, हार  
आदि आभूषणालंकारों एवं देवदूष्यादि वस्त्रालंकारों—इन चारों प्रकार के अलंकारों से (अलंकृत-विभूषित होकर  
वह सूर्याभदेव सिंहासन से उठकर) अलंकारसभा के पूर्वदिग्वर्ती द्वार से बाहर निकला। निकलकर व्यवसाय सभा  
में आया एवं बारंबार व्यवसायसभा की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशा के द्वार से उसमें प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहां  
सिंहासन था वहां आकर यावत् सिंहासन पर आसीन हुआ।

तत्पश्चात् सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवों ने व्यवसायसभा में रखे पुस्तक-रत्न को उसके समक्ष रखा।  
सूर्याभदेव ने उस उपस्थित पुस्तक-रत्न को हाथ में लिया, हाथ में लेकर पुस्तक-रत्न खोला, खोलकर उसे बांचा।  
पुस्तकरत्न को बांचकर धर्मानुगत-धार्मिक कार्य करने का निश्चय किया। निश्चय करके वापस यथास्थान पुस्तकरत्न  
को रखकर सिंहासन से उठा एवं व्यवसाय सभा के पूर्व-दिग्वर्ती द्वार से बाहर निकलकर जहां नन्दापुष्करिणी थी,  
वहां आया। आकर पूर्व-दिग्वर्ती तोरण और त्रिसोपान पंक्ति से नन्दा पुष्करिणी में प्रविष्ट हुआ—उतरा। प्रविष्ट होकर  
हाथ पैर धोये। हाथ-पैर धोकर और आचमन-कुल्ला कर पूर्ण रूप से स्वच्छ और परम शुचिभूत—शुद्ध होकर मत्त  
गजराज की मुखाकृति जैसी एक विशाल श्वेतधवल रजतमय जल से भरी हुई भृंगार (झारी) एवं वहां के उत्पल  
यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलों को लिया। फिर नन्दा पुष्करिणी से बाहर निकला। बाहर निकलकर सिद्धायतन की  
ओर चलने के लिए उद्यत हुआ।

## सिद्धायतन का प्रमार्जन

१९७— तए णं ते सूरियाभं देवं चत्तारि य सामाणियसाहस्सीओ जाव सोलस आयरक्खदेव-  
साहस्सीओ अन्ने य बहवे सूरियाभविमाणवासिणो जाव देवीओ य अप्पेगतिया देवा उप्पलहत्थगा  
जाव सय-सहस्सपत्त-हत्थगा सूरियाभं देवं पिट्ठतो समणुगच्छंति ।

तए णं तं सूरियाभं देवं बहवे आभियोगिया देवा य देवीओ य अप्पेगतिया कलसहत्थगा  
जाव अप्पेगतिया धूवकडुच्छुयहत्थगता हट्ठतुट्ठ जाव सूरियाभं देवं पिट्ठतो समणुगच्छंति ।

१९७— तब उस सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देव यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देव तथा कितने ही  
अन्य बहुत से सूर्याभविमानवासी देव और देवी भी हाथों में उत्पल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलों को लेकर  
सूर्याभदेव के पीछे-पीछे चले।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव के बहुत-से आभियोगिक देव और देवियां हाथों में कलश यावत् धूप-दानों को लेकर  
हृष्ट-तुष्ट यावत् विकसितहृदय होते हुए सूर्याभदेव के पीछे-पीछे चले।

१९८— तए णं से सूरियाभे देवे चउहिं सामाणिगसाहस्सीहिं जाव अत्रेहि य बहूहि य जाव देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्डीए जाव णातियरवेणं जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छत्ता सिद्धायतणं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति, अणुपविसत्ता जेणेव देवच्छंदए जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छत्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेति, करित्ता लोमहत्थगं गिणहति, गिणहत्ता जिणपडिमाणं लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा गंधोदएणं णहाणेइ, णहाणित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ, अणुलिंपइत्ता सुरभिगंधकासाइएणं गायाइं लूहेति, लूहित्ता जिणपडिमाणं अहयाइं देवदूसजुयलाइं नियंसेइ, नियंसित्ता पुप्फारुहणं-मल्लारुहणं-गंधारुहणं-चुण्णारुहणं-वन्नारुहणं-आभरणारुहणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्धारियमल्लदामकलावं करेइ, मल्लदामकलावं करेत्ता कयग्गहगहिय-करयलपब्भट्टविप्पमुक्केणं दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेति, करित्ता जिणपडिमाणं पुरतो अच्छेहिं सणहेहिं रययामएहिं अच्छरसातंदुलेहिं अट्टट्ट मंगले आलिहइ, तं जहा—सोत्थियं जाव दप्पणं ।

तयाणंतरं च णं चंदप्पभवइरवेरुलियविमलदंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघंतगंधुत्तमाणुविद्धं च धूववट्टिं विणिम्पुयंतं वेरुलियमय कडुच्छुयं पग्गहिय पयत्तेणं धूवं दारुण जिणवराणं अट्टसयविसुद्धगंधजुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं महावित्तेहिं संथुणइ, संथुणित्ता सत्तट्ट पयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवाडेइ निवाडित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

१९८— तत्पश्चात् सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवों यावत् और दूसरे बहुत से देवों और देवियों से परिवेष्टित होकर अपनी समस्त ऋद्धि, वैभव यावत् वाद्यों की तुमुल ध्वनिपूर्वक जहां सिद्धायतन था, वहां आया। पूर्वद्वार से प्रवेश करके जहां देवछंदक और जिनप्रतिमाएं थीं वहां आया। वहां आकर उसने जिनप्रतिमाओं को देखते ही प्रणाम करके लोममयी प्रमार्जनी (मयूरपिच्छ की पूजनी) हाथ में ली और प्रमार्जनी को लेकर जिनप्रतिमाओं को प्रमार्जित किया (पूजा)। प्रमार्जित करके सुरभि गन्धोदक से उन जिनप्रतिमाओं का प्रक्षालन किया। प्रक्षालन करके सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। लेप करके काषायिक (कसैली) सुरभि गन्ध से सुवासित वस्त्र से उनको पोंछा। उन जिन-प्रतिमाओं को अखण्ड (अक्षत) देवदूष्य-युगल पहनाया। देवदूष्य पहना कर पुष्प, माला, गन्ध, चूर्ण, वर्ण, वस्त्र और आभूषण चढ़ाये। इन सबको चढ़ाने के अनन्तर फिर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी-लम्बी गोल मालायें पहनाईं। मालायें पहनाकर पंचरंगे पुष्पपुंजों को हाथ में लेकर उनकी वर्षा की और मांडने मांडकर उस स्थान को सुशोभित किया। फिर उन जिनप्रतिमाओं के सन्मुख शुभ्र, सलौने, रजतमय अक्षत तन्दुलों—चावलों से आठ-आठ मंगलों का आलेखन किया, यथा—स्वतिक यावत् दर्पण।

तदनन्तर उन जिनप्रतिमाओं के सन्मुख श्रेष्ठ काले अगर, कुन्दरु, तुरुष्क और धूप की महकती सुगन्ध से व्याप्त और धूपबत्ती के समान सुरभिगन्ध को फैलाने वाले चन्द्रकांत मणि, वज्ररत्न और वैदूर्य मणि की दंडी तथा स्वर्ण-मणिरत्नों से रचित चित्र-विचित्र रचनाओं से युक्त वैदूर्यमय धूपदान को लेकर धूप-क्षेप किया तथा विशुद्ध (काव्य-

दोष से रहित) अपूर्व अर्थसम्पन्न अपुनरुक्त महिमाशाली एक सौ आठ छन्दों में स्तुति की। स्तुति करके सात-आठ पग पीछे हटा, और फिर पीछे हटकर बायां घुटना ऊंचा किया और दायां घुटना जमीन पर टिकाकर तीन बार मस्तक को भूमितल पर नमाया। नमाकर कुछ ऊंचा उठाया तथा मस्तक ऊंचा कर दोनों हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

### अरिहंत-सिद्ध भगवन्तों की स्तुति

१९९— नमोऽथु णं अरिहंताणं भगवंताणं, आदिगराणं, तित्थगराणं सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुण्डरीआणं, पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहिआणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोअगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं मग्गदयाणं, सरणदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं, अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं, विअट्टच्छउमाणं, जिणाणं, जावयाणं तिन्राणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं, सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं सिवं, अयलं, अरुअं, अणंतं, अक्खयं, अव्वाबाहं, अपुणरावित्तिसिद्धिगइनामधयं ठाणं संपत्ताणं; वंदइ नमंसइ ।

१९९— अरिहंत भगवन्तों को नमस्कार हो, श्रुत-चारित्र रूप धर्म की आदि करने वाले, तीर्थकर—तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयंबुद्ध—गुरुपदेश के बिना स्वयं ही बोध को प्राप्त पुरुषों में उत्तम, कर्मशत्रुओं का विनाश करने में पराक्रमी होने के कारण पुरुषों में सिंह के समान, सौम्य और लावण्यशाली होने से पुरुषों में श्रेष्ठ पुंडरीक-कमल के समान, अपने पुण्य प्रभाव से ईति-व्याधि भीति—भय आदि को शांत, विनाश करने के कारण पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, संसारीप्राणियों को सन्मार्ग दिखाने के कारण लोक में प्रदीप के समान केवलज्ञान द्वारा लोका-लोक को प्रकाशित करने वाले—वस्तु स्वरूप को बताने वाले, अभय दाता, श्रद्धा-ज्ञान रूप नेत्र के दाता, मोक्षमार्ग के दाता, शरणदाता, बोधिदाता, धर्मदाता, देशविरति सर्वविरतिरूप धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी, सम्यक् धर्म के प्रवर्तक चातुर्गतिक संसार का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्म के चक्रवर्ती, अप्रतिहत—श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक, कर्मावरण या कषाय रूप छद्म के नाशक, रागादि शत्रुओं को जीतने वाले तथा अन्य जीवों को भी कर्मशत्रुओं को जीतने के लिए प्रेरित करने वाले, संसार-सागर को स्वयं तिरि हुए दूसरों को भी तिरने का उपदेश देने वाले, बोध को प्राप्त तथा दूसरों को भी उपदेश द्वारा बोधि प्राप्त कराने वाले, स्वयं कर्ममुक्त एवं अन्यो को भी कर्ममुक्त होने का उपदेश देने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा शिव—उपद्रव रहित, अचल, नीरोग, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध अपुनरावृत्ति रूप (जन्म-मरण रूप संसार से रहित) सिद्धगति नामक स्थान में विराजमान सिद्ध भगवन्तों को वन्दन—नमस्कार हो।

### सूर्याभदेव द्वारा सिद्धायतन के देवच्छन्दक आदि की प्रमार्जना

२००— वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव देवच्छंदए जेणेव सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थेणं परामुसइ, सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभागं लोमहत्थेणं पमज्जति, दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलं मंडलगं आलिहइ कयग्गहगहिय जावं

पुंजोवयारकलियं करेइ, करित्ता धूवं दलयइ, जेणेव सिद्धायतणस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छति, लोमहत्थगं परामुसइ, दारचेडीओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहणं मल्ला० जाव<sup>१</sup> आभरणारुहणं करेइ, करेत्ता आसत्तोसत्त जाव<sup>२</sup> धूवं दलयइ ।

जेणेव दाहिणिल्ले दारे मुहमंडवे जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्जदेसभाए तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थगं परामुसइ, बहुमज्जदेसभागं लोमहत्थेणं पमज्जइ दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलं मंडलगं आलिहइ, कयगगहगहिय जाव धूवं दलयइ ।

जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थगं परामुसइ दारचेडीओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थेणं पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए०<sup>३</sup> सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, पुप्फारुहणं जाव आभरणारुहणं करेइ आसत्तोसत्त० कयगगहगहिय० धूवं दलयइ ।

जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स उत्तरिल्ला खंभपंती तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थं परामुसइ थंभे य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थेणं पमज्जइ जहा चेव पच्चत्थिमिल्लस्स दारस्स जाव धूवं दलयइ ।

जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थगं परामुसति दारचेडीओ तं चेव सव्वं ।

जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ दारचेडीओ तं चेव सव्वं ।

जेणेव दाहिणिल्ले पेच्छाघरमंडवे, जेणेव दाहिणिल्लस्स पेच्छाघरमंडवस्स बहुमज्जदेसभागे, जेणेव वइरामए अक्खाडए, जेणेव मणिपेढिया, जेणेव सीहासणे, तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थगं परामुसइ, अक्खाडगं च मणिपेढियं च सीहासणं च लोमहत्थेणं पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, पुप्फारुहणं आसत्तोसत्त जाव धूवं दलेइ, जेणेव दाहिणिल्लस्स पेच्छाघरमंडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे उत्तरिल्ले दारे तं चेव जं चेव पुरत्थिमिल्ले दारे तं चेव दाहिणे दारे तं चेव ।

जेणेव दाहिणिल्ले चेइयथुमे तेणेव उवागच्छइ थूभं मणिपेढियं च दिव्वाए दगधाराए सरसेण गोसीसचंदणेणं चच्चए दलेइ पुप्फारु० आसत्तो० जाव धूवं दलेइ ।

जेणेव पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव पच्चत्थिमिल्ला जिणपडिमा तं चेव, जेणेव उत्तरिल्ला जिणपडिमा तं चेव सव्वं । जेणेव पुरत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव पुरत्थिमिल्ला जिणपडिमा तेणेव उवागच्छइ तं चेव, दाहिणिल्ला मणिपेढिया दाहिणिल्ला जिणपडिमा तं चेव ।

१-२. देखें सूत्र संख्या ११८

३. दगधाराए के अनन्तर आगत० से 'अब्भुक्खेइ' शब्द ग्रहण करना चाहिए।

जेणेव दाहिणिल्ले चेइयरुक्खे तेणेव उवागच्छइ तं चेव, जेणेव मर्हिदज्झए, जेणेव दाहिणिल्ला नंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति, लोमहत्थगं परामुसति, तोरणे य तिसोवाणपढिरूवए सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं० पुष्कारुहणं आसत्तोसत्त० धूवं दलयति ।

सिद्धाययणं अणुपयाहिणीकरेमाणे जेणेव उत्तरिल्ला णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति तं चेव, जेणेव उत्तरिल्ले चेइयरुक्खे तेणेव उवागच्छति, जेणेव उत्तरिल्ले चेइयथूभे तहेव, जेणेव पच्चत्थिमिल्ला पेढिया जेणेव पच्चत्थिमिल्ला जिणपडिमा तं चेव ।

जेणेव उत्तरिल्ले पेच्छाघरमंडवे तेणेव उवागच्छति जा चेव दाहिणिल्लवत्तव्वया सा चेव सव्वा पुरत्थिमिल्ले दारे, दाहिणिल्ला खंभपंती तं चेव सव्वं ।

जेणेव उत्तरिल्ले मुहमंडवे जेणेव उत्तरिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तं चेव सव्वं, पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव उत्तरिल्ले दारे दाहिणिल्ला खंभपंती सेसं तं चेव सव्वं ।

जेणेव सिद्धायतणस्स उत्तरिल्ले दारे तं चेव, जेणेव सिद्धायतणस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ तं चेव, जेणेव पुरत्थिमिल्ले मुहमंडवे जेणेव पुरत्थिमिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ तं चेव, पुरत्थिमिल्लस्स मुहमंडवस्स दाहिणिल्ले दारे पच्चत्थिमिल्ला खंभपंती उत्तरिल्ले दारे तं चेव पुरत्थिमिल्ले दारे तं चेव ।

जेणेव पुरत्थिमिल्ले पेच्छाघरमंडवे एवं थूभे, जिणपडिमाओ चेइयरुक्खा, मर्हिदज्झया णंदापुक्खरिणी तं चेव धूवं दलयइ ।

जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छति, सभं सुहम्मं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, जेणेव माणवए चेइयखंभे जेणेव वइरामए गोलवट्टसमुग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता लोमहत्थगं परामुसइ, वइरामए गोलवट्टसमुग्गए लोमहत्थेणं पमज्जइ, वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहाडेइ, जिणसगहाओ लोमहत्थेणं पमज्जइ, सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, पक्खालित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहि य भल्लेहि य अच्चेइ, धूवं दलयइ, जिणसकहाओ वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु पडि-  
निक्खवइ माणवगं चेइयखंभं लोमहत्थेणं पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, पुष्कारुहणं जाव धूवं दलयइ, जेणेव सीहासणे तं चेव, जेणेव देवसयणिज्जे तं चेव, जेणेव खुड्ढागमर्हिदज्झए तं चेव ।

जेणेव पहरणकोसे चोप्पालए तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थगं परामुसइ पहरणकोसं चोप्पालं लोमहत्थेणं पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं दलेइ, पुष्कारुहणं आसत्तोसत्त० धूवं दलयइ ।

जेणेव सभाए सुहम्माए बहुमज्झदेसभाए, जेणेव मणिपेढिया जेणेव देवसयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थगं पारमुसइ, देवसयणिज्जं च मणिपेढियं च लोमहत्थेणं पमज्जइ जाव धूवं दलयइ ।

जेणेव उववायसभाए दाहिणिल्ले दारे तहेव अभिसेयसभा सरिसं जाव पुरत्थिमिल्ला णंदा पुक्खरिणी जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ, तोरणे य तिसोवाणे य सालभंजियाओ य वालरूवए य तहेव ।

जेणेव अभिसेयसभा, तेणेव उवागच्छइ तहेव सीहासणं च मणिपेढियं च, सेसं तहेव आययणसरिसं जाव पुरत्थिमिल्ला णंदा पुक्खरिणी । जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ जहा अभिसेयसभा तहेव सव्वं ।

जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छइ तहेव लोमहत्थयं परामुसति, पोत्थयरयणं लोमहत्थ-एणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए अग्गेहिं वरेहि य गंधेहिं मल्लेहि य अच्छेति मणि-पेढियं सीहासणं य सेसं तं चैव पुरत्थिमिल्ला णंदा पुक्खरिणी जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ तोरणे य तिसोवाणे य सालभंजियाओ य वालरूवए य तहेव । जेणेव बलिपीढं तेणेव उवागच्छइ बलिविसज्जणं करेइ, आभिओगिए देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

२००— सिद्ध भगवन्तो को वन्दन नमस्कार करने के पश्चात् सूर्याभदेव देवच्छन्दक और सिद्धायतन के मध्य देशभाग में आया। वहां आकर मोरपीछी उठाई और मोरपीछी से सिद्धायतन के अतिमध्यदेशभाग को प्रमार्जित किया (पूजा, झाड़ा-बुहारा) फिर दिव्य जल-धारा से सींचा, सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप करके हाथे लगाये, मांडने-मांडे यावत् हाथ में लेकर पुष्पपुंज बिखरे। पुष्प बिखेर कर धूप प्रक्षेप किया—और फिर सिद्धायतन के दक्षिण द्वार पर आकर मोरपीछी ली और उस मोरपीछी से द्वारशाखाओं पुतलियों एवं व्यालरूपों को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा सींची, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, सन्मुख धूप जलाई, पुष्प चढ़ाये, मालायें चढ़ाई, यावत् आभूषण चढ़ाये। यह सब करके फिर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई गोल-गोल लम्बी मालाओं से विभूषित किया।

धूपप्रक्षेप करने के बाद जहां दक्षिणद्वारवर्ती मुखमण्डप था और उसमें भी जहां उस दक्षिण दिशा के मुखमण्डप का अतिमध्य देशभाग था, वहां आया और मोरपीछी ली, मोरपीछी को लेकर उस अतिमध्य देशभाग को प्रमार्जित किया—बुहारा, दिव्य जलधारा सींची, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया—हाथे लगाये, मांडने मांडे तथा ग्रहीत पुष्प पुजों को बिखेर कर उपचरित किया यावत् धूपक्षेप किया।

इसके बाद उस दक्षिणदिगवर्ती मुखमण्डप के पश्चिमी द्वार पर आया, वहां आकर मोरपीछी ली। उस मोरपीछी से द्वारशाखाओं, पुतलियों एवं व्याल (सर्प) रूपों को पूजा, दिव्य जलधारा से सींचा, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया। धूपक्षेप किया, पुष्प चढ़ाये यावत् आभूषण चढ़ाये। लम्बी-लम्बी गोल मालायें लटकाईं। कचग्रहवत् विमुक्त पुष्पपुंजों से उपचरित किया, धूप जलाई।

तत्पश्चात् उसी दक्षिणी मुखमण्डप की उत्तरदिशा में स्थित स्तम्भ-पंक्ति के निकट आया। वहां आकर लोमहस्तक—मोरपंखों से बनी प्रमार्जनी को उठाया, उससे स्तम्भों को, पुतलियों को और व्यालरूपों को प्रमार्जित किया तथा पश्चिमी द्वार के समान दिव्य जलधारा से सींचने आदि रूप सब कार्य धूप जलाने तक किये।

इसके बाद दक्षिणदिशावर्ती मुखमण्डप के पूर्वी द्वार पर आया, आकर लोमहस्तक हाथ में लिया और उससे द्वारशाखाओं, पुतलियों सर्परूपों को साफ किया, दिव्य जलधारा सींची आदि सब कार्य धूप जलाने तक के किये।

तत्पश्चात् उस दक्षिण दिशावर्ती मुखमण्डप के दक्षिण द्वार पर आया, द्वारचेटियों आदि को साफ किया,

जलधारा सींची आदि धूप जलाने तक करने योग्य पूर्वोक्त सब कार्य किये।

तदनन्तर जहां दक्षिणात्य प्रेक्षागृहमण्डप था, एवं उस दक्षिणदिशावर्ती प्रेक्षागृहमण्डप का अतिमध्य देशभाग था और उसके मध्य में बना हुआ वज्रमय अक्षपाट तथा उस पर बनी मणिपीठिका एवं मणिपीठिका पर स्थापित सिंहासन था, वहां आया और मोरपीछी लेकर उससे अक्षपाट, मणिपीठिका और सिंहासन को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा से सिंचित किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूपप्रक्षेप किया, पुष्प चढ़ाये तथा ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी-लम्बी गोल-गोल मालाओं से विभूषित किया यावत् धूपक्षेप करने के बाद अनुक्रम से जहां उसी दक्षिणी प्रेक्षागृहमण्डप के पश्चिमी द्वार एवं उत्तरी द्वार थे वहां आया और वहां आकर पूर्ववत् प्रमार्जनादि कार्य से लेकर धूपदान तक करने योग्य कार्य सम्पन्न किये। उसके बाद पूर्वी द्वार पर आया। यहां आकर भी प्रमार्जनादि कार्य से लेकर धूपदान तक के सब कार्य पूर्ववत् किये। तत्पश्चात् दक्षिणी द्वार पर आया, वहां आकर भी उसने प्रमार्जनादि कार्य से लेकर धूपदान तक के सब कार्य किये।

इसके पश्चात् दक्षिणदिशावर्ती चैत्यस्तूप के सन्मुख आया। वहां आकर स्तूप और मणिपीठिका को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा से सिंचित किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूप जलाई, पुष्प चढ़ाये, लम्बी-लम्बी मालायें लटकाई आदि सब कार्य सम्पन्न किये। अनन्तर जहां पश्चिम दिशा की मणिपीठिका थी, जहां पश्चिम दिशा में विराजमान जिनप्रतिमा थी वहां आकर प्रमार्जनादि कृत्य से लेकर धूपदान तक सब कार्य किये। इसके बाद उत्तरदिशावर्ती मणिपीठिका और जिनप्रतिमा के पास आया। आकर प्रमार्जन करने से लेकर धूपक्षेप-पर्यन्त सब कार्य किये।

इसके पश्चात् जहां पूर्वदिशावर्ती मणिपीठिका थी तथा पूर्वदिशा में स्थापित जिनप्रतिमा थी, वहां आया। वहां आकर पूर्ववत् प्रमार्जन करना आदि धूप जलाने पर्यन्त सब कार्य किये। इसके बाद जहां दक्षिण दिशा की मणि-पीठिका और दक्षिणदिशावर्ती जिनप्रतिमा थी वहां आया और पूर्ववत् धूप जलाने तक सब कार्य किये।

इसके पश्चात् दक्षिणदिशावर्ती चैत्यवृक्ष के पास आया। वहां आकर भी पूर्ववत् प्रमार्जनादि कार्य किये। इसके बाद जहां माहेन्द्रध्वज था, दक्षिण दिशा की नंदा पुष्करिणी थी, वहां आया। आकर मोरपीछी को हाथ में लिया और फिर तोरणों, त्रिसोपानों, काष्ठपुतलियों और सर्परूपकों को मोरपीछी से प्रमार्जित किया—पोंछा, दिव्य जलधारा सींची, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, पुष्प चढ़ाये, लम्बी-लम्बी पुष्पमालाओं से विभूषित किया और धूपक्षेप किया।

तदनन्तर सिद्धायतन की प्रदक्षिणा करके उत्तरदिशा की नंदा पुष्करिणी पर आया और वहां पर भी पूर्ववत् प्रमार्जनादि धूपक्षेप पर्यन्त कार्य किये। इसके बाद उत्तरदिशावर्ती चैत्यवृक्ष और चैत्यस्तम्भ के पास आया एवं पूर्ववत् प्रमार्जन से लेकर धूपक्षेप करने तक के कार्य किये। इसके पश्चात् जहां पश्चिमदिशावर्ती मणिपीठिका थी, पश्चिम दिशा में स्थापित प्रतिमा थी, वहां आकर भी पूर्ववत् धूपक्षेपपर्यन्त करने योग्य कार्य किये।

तत्पश्चात् वह उत्तर दिशा के प्रेक्षागृह मण्डप में आया और धूपक्षेपपर्यन्त दक्षिण दिशा के प्रेक्षागृहमण्डप जैसी समस्त वक्तव्यता यहां जानना चाहिए तथा वही सब पूर्वदिशावर्ती द्वार के लिए और दक्षिण दिशा की स्तम्भपंक्ति के लिए भी पूर्ववत् वही सब कार्य किये अर्थात् स्तम्भों, काष्ठपुतलियों और व्यालरूपों आदि के प्रमार्जन से लेकर धूपक्षेप तक सब कार्य किये।

इसके बाद वह उत्तर दिशा के मुखमण्डप और उस उत्तरदिशा के मुखमण्डप के बहुमध्यदेशभाग (स्थान) में आया। यहां आकर पूर्ववत् अक्षपाटक, मणिपीठिका एवं सिंहासन आदि की प्रमार्जना से धूपक्षेपपर्यन्त सब कार्य किये। इसके बाद वह पश्चिमी द्वार पर आया, वहां पर भी द्वारशाखाओं आदि के प्रमार्जनादि से लेकर धूपदान तक के सब कार्य किये। तत्पश्चात् उत्तरी द्वार और उसकी दक्षिण दिशा में स्थित स्तम्भपंक्ति के पास आया। वहां भी पूर्ववत् स्तम्भ पुतलियों एवं व्याल रूपों की संमार्जना आदि से लेकर धूपदान तक के सब कार्य किये।

तदनन्तर सिद्धायतन के उत्तरी द्वार पर आया। यहां भी पुतलियों आदि के प्रमार्जन आदि से लेकर धूपक्षेप तक के सब कार्य किये। इसके अनन्तर सिद्धायतन के पूर्वदिशा के द्वार पर आया और यहां पर भी पूर्ववत् कार्य किये। इसके बाद जहां पूर्वदिशा का मुखमण्डप था और उस मुखमण्डप का अतिमध्य देशभाग था, वहां आया और अक्षपाट, मणिपीठिका, सिंहासन की प्रमार्जना करके धूपक्षेप तक के सब कार्य किये। इसके बाद जहां उस पूर्व दिशा के मुखमण्डप का दक्षिणी द्वार था और उसकी पश्चिम दिशा में स्थित स्तम्भपंक्ति थी वहां आया। फिर उत्तरदिशा के द्वार पर आया और पहले के समान इन स्थानों पर स्तम्भों, पुतलियों, व्यालरूपों वगैरह को प्रमार्जित किया आदि धूपदान तक के सभी कार्य किये। इसी प्रकार से पूर्व दिशा के द्वार पर आकर भी पूर्ववत् सब कार्य किये।

इसके अनन्तर पूर्व दिशा के प्रेक्षागृह मण्डप में आया। यहां आकर अक्षपाटक, मणिपीठिका, सिंहासन का प्रमार्जन आदि किया और फिर क्रमशः उस प्रेक्षागृहमण्डप के पश्चिम, उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण दिशावर्ती प्रत्येक द्वार पर जाकर उन-उनकी द्वारशाखाओं, पुतलियों, व्यालरूपों की प्रमार्जना करने से लेकर धूपदान तक के सब कार्य पूर्ववत् किये। इसी प्रकार स्तूप की, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन चार दिशाओं में स्थित मणिपीठिकाओं की, जिनप्रतिमाओं की, चैत्यवृक्ष की, माहेन्द्रध्वजों की, नन्दा पुष्करिणी की, त्रिसोपानपंक्ति की, पुतलियों की, व्यालरूपों की प्रमार्जना करने से लेकर धूपक्षेप तक के सब कार्य किये।

इसके पश्चात् जहां सुधर्मा सभा थी, वहां आया और पूर्वदिग्वर्ती द्वार से उस सुधर्मा सभा में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहां माणवक चैत्यस्तम्भ था और उस स्तम्भ में जहां वज्रमय गोल समुद्गक रखे थे वहां आया। वहां आकर मोरपीछी उठाई और उस मोरपीछी से वज्रमय गोल समुद्गकों को प्रमार्जित कर उन्हें खोला। उनमें रखी हुई जिन-अस्थियों को लोमहस्तक से पौंछा, सुरभि गंधोदक से उनका प्रक्षालन करके फिर सर्वोत्तम श्रेष्ठ गन्ध और मालाओं से उनकी अर्चना की, धूपक्षेप किया और उसके बाद उन जिन-अस्थियों को पुनः उन्हीं वज्रमय गोल समुद्गकों में बन्द कर रख दिया। इसके बाद मोरपीछी से माणवक चैत्यस्तम्भ को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा से सिंचित किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, उस पर पुष्प चढ़ाये यावत् धूपक्षेप किया। इसके पश्चात् सिंहासन और देवशैया के पास आया। वहां पर भी प्रमार्जना से लेकर धूपक्षेप तक के सब कार्य किये। इसके बाद क्षुद्र माहेन्द्रध्वज के पास आया और वहां भी पहले की तरह प्रमार्जना से लेकर धूपदान तक के सब कार्य किये।

इसके अनन्तर चौपाल नामक अपने प्रहरणकोश (आयुधशाला, शस्त्रभण्डार) में आया। आकर मोर पंखों की प्रमार्जनिका—बुहारी हाथ में ली एवं उस प्रमार्जनिका से आयुधशाला चौपाल को प्रमार्जित किया। उसका दिव्य जलधारा से प्रक्षालन किया। वहां सरस गोशीर्ष चन्दन के हाथे लगाये, पुष्प आदि चढ़ाये और ऊपर से नीचे तक लटकती लम्बी-लम्बी मालाओं से उसे सजाया यावत् धूपदान पर्यन्त सर्व कार्य सम्पन्न किये।

इसके बाद सुधर्मा सभा के अतिमध्यदेश भाग में बनी हुई मणिपीठिका एवं देवशैया के पास आया और मोरपीछी लेकर उस देवशैया और मणिपीठिका को प्रमार्जित किया यावत् धूपक्षेप किया।

इसके पश्चात् पूर्वदिशा के द्वार से होकर उपपातसभा में प्रविष्ट हुआ। यहां पर भी पूर्ववत् उसके अतिमध्य भाग की प्रमार्जना आदि कार्य करके उपपातसभा के दक्षिणी द्वार पर आया। वहां आकर अभिषेकसभा (सुधर्मासभा) के समान यावत् पूर्ववत् पूर्वदिशा की नन्दा पुष्करिणी की अर्चना की। इसके बाद हृद पर आया और पहले की तरह तोरणों, त्रिसोपानों, काष्ठ-पुतलियों और व्यालरूपों की मोरपीछी से प्रमार्जना की, उन्हें दिव्य जलधारा से सिंचित किया आदि धूपक्षेपपर्यन्त सर्व कार्य सम्पन्न किये।

इसके अनन्तर अभिषेकसभा में आया और यहां पर भी पहले की तरह सिंहासन मणिपीठिका को मोरपीछी से प्रमार्जित किया, जलधारा से सिंचित किया आदि धूप जलाने तक के सब कार्य किये। तत्पश्चात् दक्षिणद्वारादि के क्रम से पूर्व दिशावर्ती—नन्दापुष्करिणीपर्यन्त सिद्धायतनवत् धूपप्रक्षेप तक के कार्य सम्पन्न किये।

इसके पश्चात् अलंकारसभा में आया और अभिषेकसभा की वक्तव्यता की तरह यहां धूपदान तक के सब कार्य सम्पन्न किये।

इसके बाद व्यवसाय सभा में आया और मोरपीछी को उठाया। उस मोरपीछी से पुस्तकरत्न को पोंछा, फिर उस पर दिव्य जल छिड़का और सर्वोत्तम श्रेष्ठ गन्ध और मालाओं से उसकी अर्चना की इसके बाद मणिपीठिका की, सिंहासन की अति मध्य देशभाग की प्रमार्जना की, आदि धूपदान तक के सर्व कार्य किये। तदनन्तर दक्षिणद्वारादि के क्रम से पूर्व नन्दा पुष्करिणी तक सिद्धायतन की तरह प्रमार्जना आदि कार्य किये। इसके बाद वह हृद पर आया। वहां आकर तोरणों, त्रिसोपानों, पुतलियों और व्यालरूपों की प्रमार्जना आदि धूपक्षेपपर्यन्त कार्य सम्पन्न किये। इन सबकी अर्चना कर लेने के बाद वह बलिपीठ के पास आया और बलि-विसर्जन करके अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर उनको यह आज्ञा दी—

### आभियोगिक देवों द्वारा आज्ञापालन

२०१— खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सूरियाभे विमाणे सिंघाडएसु तिएसु चउक्केसु चच्चरेसु चउम्हेसु महापहेसु पागारेसु अट्टालएसु चरियासु दारेसु गोपुरेसु तोरणेसु आरामेसु उज्जाणेसु वणेसु वणराईसु काणणेसु वणसंडेसु अच्चणियं करेह, अच्चणियं करेत्ता एवमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।

२०१— हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और शीघ्रातिशीघ्र सूर्याभ विमान के श्रृंगाटकों (सिंघाड़े की आकृति जैसे त्रिकोण स्थानों) में, त्रिकों (तिराहों) में, चतुष्कों (चौकों) में, चत्वरों में, चतुर्मुखों (चारों ओर द्वार वाले स्थानों) में, राजमार्गों में, प्राकारों में, अट्टालिकाओं में, चरिकाओं में, द्वारों में, गोपुरों में, तोरणों, आरामों, उद्यानों, वनों, वनराजियों, काननों, वनखण्डों में जा-जा कर अर्चनिका करो और अर्चनिका करके शीघ्र ही यह आज्ञा मुझे वापस लौटाओ, अर्थात् आज्ञानुसार कार्य करने की मुझे सूचना दो।

२०२— तए णं ते आभिओगिआ देवा सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा जाव पडि-सुणित्ता सूरियाभे विमाणे सिंघाडएसु-तिएसु-चउक्कएसु-चच्चरेसु-चउम्हेसु-महापहेसु-पागारेसु-अट्टालएसु-चरियासु-दारेसु-गोपुरेसु-तोरणेसु-आरामेसु-उज्जाणेसु-वणेसु-वणरातीसु-काणणेसु-वणसंडेसु अच्चणियं करेन्ति, जेणेव सूरियाभे देवे जाव पच्चप्पिणंति ।

२०२— तदनन्तर उन आभियोगिक देवों ने सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुनकर यावत् स्वीकार करके सूर्याभ विमान के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों, प्राकारों, अट्टालिकाओं, चरिकाओं, द्वारों, गोपुरों, तोरणों, आरामों, उद्यानों, वनों, वनराजियों और वनखण्डों की अर्चनिका की और अर्चनिका करके सूर्याभदेव के पास आकर आज्ञा वापस लौटाई—आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दी।

२०३— तते णं से सूरियाभे देवे जेणेव णंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, नंदापुक्खरिणिं पुरत्थिमिल्लेणं तिसोपाणपडिरूवएणं पच्चोरुहति, इत्थपाए पक्खालेइ, णंदाओ पुक्खरिणीओ पच्चुत्तरेइ, जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव पहारित्थ गमणाए ।

२०३— तदनन्तर वह सूर्याभदेव जहां नन्दा पुष्करिणी थी, वहां आया और पूर्व दिशावर्ती तिसोपानों से नन्दा पुष्करिणी में उतरा। हाथ पैरों को धोया और फिर नन्दा पुष्करिणी से बाहर निकला। निकल कर सुधर्मा सभा की ओर चलने के लिए उद्यत हुआ।

२०४— तए णं सूरियाभे देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव<sup>१</sup> सोलसहिं आयरक्ख-देवसाहस्सीहिं, अत्रेहि य बहूहिं सूरियाभविमाणवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्डीए जाव<sup>२</sup> नाइयरवेणं जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव उवागच्छइ, सभं सुधम्मं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, सीहासणवरगाए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।

२०४— इसके बाद सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवों यावत् (परिवार सहित चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकों-सेनाओं, सात अनीकाधिपतियों सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा और दूसरे भी बहुत से सूर्याभ विमानवासी देव-देवियों से परिवेष्टित होकर सर्व ऋद्धि यावत् तुमुल वाद्यध्वनि पूर्वक जहां सुधर्मा सभा थी वहां आया और पूर्व दिशा के द्वार से सुधर्मा सभा में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर सिंहासन के समीप आया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

### सूर्याभदेव का सभा-वैभव

२०५— तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स अवरुत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं दिसिभाएणं चत्तारि य सामाणियसाहस्सीओ चउसु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयंति ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स पुरत्थिमिल्लेणं चत्तारि अग्गमहिस्सीओ चउसु भद्दासणेसु निसीयंति ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भित्तारियपरिसाए अट्ट देवसाहस्सीओ अट्टसु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयंति ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स दाहिणेणं मज्झिमाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ दससु, भद्दासणसाहस्सीसु निसीयंति ।

१. देखें सूत्र संख्या ७

२. देखें सूत्र संख्या १९

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरियाए परिसाए बारस देव-साहस्सीओ बारससु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयंति ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स पच्चत्थिमेणं सत्त अणियाहिवइणो सत्तहिं भद्दासणेहिं णिसीयंति ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स चउद्विसिं सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ सोलसहिं भद्दासणसाहस्सीहिं णिसीयंति, तं जहा—पुरत्थिमिल्लेणं चत्तारि साहस्सीओ० ।

ते णं आयरक्खा सन्नद्धबद्धवम्मियकवया, उप्पीलियसरासणपट्टिया, पिणद्धगेविज्जा आविद्धविमलवरचिंधपट्टा, गहियाउहपहरणा, तिणयाणि तिसंधियाइं वयरामयकोडीणि धणूइं पगिज्झ पडियाइयकंडकलावा णीलपाणिणो, पीतपाणिणो, रत्तपाणिणो, चावपाणिणो-चारुपाणिणो, चम्मपाणिणो, दंडपाणिणो, खग्गपाणिणो, पासपाणिणो, नीलपीयरत्तचावचारुचम्मदंडखग्गपासधरा, आयरक्ख रक्खोवगा, गुत्ता, गुत्तापालिया जुत्ता, जुत्तापालिया पत्तेयं-पत्तेयं समयओ विणयओ किंकरभूया चिट्ठंति ।

२०५— तदनन्तर उस सूर्याभदेव की पश्चिमोत्तर और उत्तरपूर्व दिशा में स्थापित चार हजार भद्रासनों पर चार हजार सामानिक देव बैठे ।

उसके बाद सूर्याभदेव की पूर्व दिशा में चार भद्रासनों पर चार अग्रमहिषियां बैठीं ।

तत्पश्चात् सूर्याभ देव के दक्षिण-पूर्वदिक्कोण में अभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देव आठ हजार भद्रासनों पर बैठे ।

सूर्याभदेव की दक्षिण दिशा में मध्यम परिषद् के दस हजार देव दस हजार भद्रासनों पर बैठे ।

तदनन्तर सूर्याभ देव के दक्षिण-पश्चिम दिग्भाग में बाह्य परिषद् के बारह हजार देव बारह हजार भद्रासनों पर बैठे ।

तत्पश्चात् सूर्याभदेव की पश्चिम दिशा में सात अनीकाधिपति सात भद्रासनों पर बैठे ।

इसके बाद सूर्याभदेव की चारों दिशाओं में सोलह हजार आत्मरक्षक देव पूर्व दिशा में चार हजार, दक्षिण दिशा में चार हजार, पश्चिम दिशा में चार हजार और उत्तर दिशा में चार हजार, इस प्रकार सोलह हजार भद्रासनों पर बैठे ।

वे सभी आत्मरक्षक देव अंगरक्षा के लिए गाढबन्धन से बद्ध कवच को शरीर पर धारण करके, बाण एवं प्रत्यंचा से सन्नद्ध धनुष को हाथों में लेकर, गले में ग्रैवेयक नामक आभूषण-विशेष को पहनकर, अपने-अपने विमल और श्रेष्ठ चिह्नपट्टकों को धारण करके, आयुध और पहरणों से सुसज्जित हो, तीन स्थानों पर नमित और जुड़े हुए वज्रमय अग्र भाग वाले धनुष, दंड और बाणों को लेकर, नील-पीत-लाल प्रभा वाले बाण, धनुष चारु (शस्त्र-विशेष) चमड़े के गोफन, दंड, तलवार, पाश-जाल को लेकर एकाग्रमन से रक्षा करने में तत्पर, स्वामी-आज्ञा का पालन करने में सावधान, गुप्त-आदेश पालन में तत्पर, सेवकोचित गुणों से युक्त, अपने-अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए उद्यत, विनयपूर्वक अपनी आचार-मर्यादा के अनुसार किंकर—सेवक जैसे होकर स्थित थे ।

## सूर्याभदेव विषयक गौतम की जिज्ञासा

२०६ प्र०— सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

प्र०— सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

उ— गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

महिङ्गीए महज्जुतीए, महब्बले, महायसे, महासोक्खे, महाणुभागे सूरियाभे देवे ।

अहो णं भंते ! सूरियाभे देवे महिङ्गीए जाव महाणुभागे ।

सूरियाभेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविङ्गी, सा दिव्वा देवज्जुई, से दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे, किण्णा पत्ते, किण्णा अभिसमन्नागए ? पुव्वभवे के आसी ? किंनामए वा ? को वा गुत्तेणं ? कयरंसि वा गामंसि वा नगरंसि वा निगमंसि वा रायहाणीए वा खेडंसि वा कब्बडंसि वा मडंबंसि वा पट्टणंसि वा दोणमुहंसि वा आगरंसि वा आसमंसि वा संबाहंसि वा सन्निवेसंसि वा ? किं वा दच्चा, किं वा भोच्चा किं वा किच्चा, किं वा समायरित्ता, कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मयं सुवयणं सुच्चा निसम्म जं णं सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्वा देविङ्गी जाव देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए ?

२०६— सूर्याभदेव के समस्त चरित को सुनने के पश्चात् भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर से निवेदन किया—

प्र.— भदन्त! सूर्याभदेव की भवस्थिति कितने काल की है ?

उ.— गौतम! सूर्याभदेव की भवस्थिति चार पल्लोपम की है।

प्र.— भगवन्! सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की है ?

उ.— गौतम! उनकी चार पल्लोपम की स्थिति है।

यह सूर्याभदेव महाऋद्धि, महाद्युति, महान् बल, महायश, महासौख्य और महाप्रभाव वाला है।

भगवान् के इस कथन को सुनकर गौतम प्रभु ने आश्चर्य चकित होकर कहा—अहो भदन्त! यह सूर्याभदेव ऐसा महाऋद्धि, यावत् महाप्रभावशाली है। उन्होंने पुनः प्रश्न किया—

भगवन्! सूर्याभदेव को इस प्रकार की वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव कैसे मिला है ? उसने कैसे प्राप्त किया ? किस तरह से अधिगत किया है, स्वामी बना है ? वह सूर्याभदेव पूर्वभव में कौन था ? उसका क्या नाम और गोत्र था ? वह किस ग्राम, नगर, निगम (व्यापारप्रधान नगर), राजधानी, खेट (ऊंचे प्राकार से वेष्टित नगर), कर्बट (छोटे प्राकार से घिरी वस्ती), मडंब (जिसके आसपास चारों ओर एक योजन तक कोई दूसरा गांव न हो), पत्तन, द्रोणमुख (जल और स्थलमार्ग से जुड़ा नगर), आकर (खानों वाला स्थान, नगर), आश्रम (आश्रम ऋषि-महर्षि प्रधान स्थान), संबाह (संबाह—जहां यात्री पड़ाव डालते हों, ग्वाले आदि बसते हों), संनिवेश सामाय जनों की बस्ती का निवासी था ? इसने ऐसा क्या दान में दिया, ऐसा अन्त-प्रान्तादि विरस आहार

खाया, ऐसा क्या कार्य किया, कैसा आचरण किया और तथारूप श्रमण अथवा माहण से ऐसा कौनसा धार्मिक आर्य सुवचन सुना कि जिससे सूर्याभदेव ने यह दिव्य देवऋद्धि यावत् देवप्रभाव उपाजित किया है, प्राप्त किया है और अधिगत किया है ?

### केकय अर्ध जनपद और प्रदेशी राजा

२०७— 'गोयमाइ' समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे केयइअद्धे नामं जणवए होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे सव्वोउयफलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे पासाईए जाव (दरिसणिज्जे, अभिरूवे) पडिरूवे ।

तत्थ णं केयइअद्धे जणवए सेयविया णामं नगरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव<sup>१</sup> पडिरूवा ।

तीसे णं सेयवियाए नगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे एत्थ णं म्गिवणे णामं उज्जाणे होत्था—रम्मे नंदणवणप्पगासे, सव्वोउयफलसमिद्धे, सुभसुरभिसीयलाए छायाए सव्वओ चेव समणुबद्धे पासादीए जाव पडिरूवे ।

तत्थ णं सेयवियाए णगरीय पएसी णामं राया होत्था, महयाहिमवंत जाव<sup>२</sup> विहरइ । अधम्मिए, अधम्मिट्ठे, अधम्मक्खाई, अधम्माणुए, अधम्मपलोई, अधम्मपजणणे, अधम्म-सीलसमुयायारे, अधम्मणे चेव वित्तिं कप्पेमाणे 'हण'-'छिंद'-'भिंद'-पवत्तए, लोहियपाणी, पावे, रुद्धे, खुद्धे, साहस्सीए उक्कंचण-वंचण-माया-नियडि-कूड-कवड-सायिसंजोगबहुले, निस्सीले, निव्वए, निग्गुणे, निम्मेरे, निप्पच्चक्खाणपोसहोववासे, बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खी-सिरिसवाण घायाए वहाए उच्छायणयाए अधम्मकेऊ, समुट्टिए, गुरूणं णो अब्भुट्टेति, णो विणयं पउंजइ, सयस्स वि य णं जणवयस्स णो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेइ ।

२०७— हे गौतम ! इस प्रकार गौतम स्वामी को सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा—

हे गौतम ! उस काल और उस समय में (इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे रूप काल एवं केशीस्वामी कुमार श्रमण के विचरने के समय में) इसी जंबूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में केकयअर्ध (केकयि-अर्ध) नामक जनपद—देश था। जो भवनादिक वैभव से युक्त, स्तिमित-स्वचक्र-परचक्र के भय से रहित और समृद्ध—धनधान्यादि वैभव से सम्पन्न—परिपूर्ण था। सर्व ऋतुओं के फल-फूलों से समृद्ध, रमणीय, नन्दनवन के समान मनोरम, प्रासादिक—मन को प्रसन्न करने वाला, यावत् (दर्शनीय, बारंबार देखने योग्य प्रतिरूप) अतीव मनोहर था।

उस केकय-अर्ध जनपद में सेयविया नाम की नगरी थी। यह नगरी भी ऋद्धि-सम्पन्न स्तिमित—शत्रुभय से मुक्त एवं समृद्धिशाली यावत् प्रतिरूप थी।

१. देखें सूत्र संख्या १

२. देखें सूत्र संख्या ४

उस सेयविया नगरी के बाहर ईशान कोण में मृगवन नामक उद्यान था। यह उद्यान रमणीय, नन्दनवन के समान सर्व ऋतुओं के फल-फूलों से समृद्ध, शुभ—सुखकारी, सुरभिगंध और शीतल छाया से समनुबद्ध (व्यास) प्रासादिक यावत् प्रतिरूप—असाधारण शोभा से सम्पन्न था।

उस सेयविया नगरी के राजा का नाम प्रदेशी था। प्रदेशी राजा महाहिमवान्, मलय पर्वत, मन्दर एवं महेन्द्र पर्वत जैसा महान् था। किन्तु वह अधार्मिक—(धर्म विरोधी), अधर्मिष्ठ (अधर्मप्रेमी), अधर्माख्यायी (अधर्म का कथन और प्रचार करने वाला), अधर्मानुग (अधर्म का अनुसरण करने वाला), अधर्मप्रलोकी (सर्वत्र अधर्म का अवलोकन करने वाला), अधर्मप्रजनक (विशेष रूप से अधार्मिक आचार-विचारों का जनक—प्रचार करने वाला—प्रजा को अधर्माचरण की ओर प्रवृत्त करने वाला), अधर्मशीलसमुदाचारी (अधर्ममय स्वभाव और आचार-वाला) तथा अधर्म से ही आजीविका चलाने वाला था। वह सदैव 'मारो, छेदन करो, भेदन करो' इस प्रकार की आज्ञा का प्रवर्तक था। अर्थात् मारो आदि वचनों के द्वारा अपने आश्रितों को जीवों की हिंसा वगैरह के कार्यों में लगाये रखता था। उसके हाथ सदा रक्त से भरे रहते थे। साक्षात् पाप का अवतार था। प्रकृति से प्रचण्ड-क्रोधी, रौद्र—भयानक और क्षुद्र—अधम था। वह साहसिक (बिना विचारे प्रवृत्ति करनेवाला) था। उत्कंचन—धूर्त, बदमाशों और ठगों को प्रोत्साहन देने वाला, उकसाने वाला था। लांच—रिश्वत लेने वाला, वंचक—दूसरों को ठगने वाला, धोखा देने वाला, मायावी, कपटी—वकवृत्ति वाला, कूट-कपट करने में चतुर और अनेक प्रकार के झगड़ा-फसाद रचकर दूसरों को दुःख देने वाला था। निश्शील—शील रहित था। निर्व्रत—हिंसादि पापों से विरत न होने से व्रतरहित था, क्षमा आदि गुणों का अभाव होने से निर्गुण था, परस्त्रीवर्जन आदि रूप मर्यादा से रहित होने से निर्मर्यादा था, कभी भी उसके मन में प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास आदि करने का विचार नहीं आता था। अनेक द्विपद-मनुष्यादि, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृप—सर्प आदि की हत्या करने, उन्हें मारने, प्राणरहित करने, विनाश करने से साक्षात् अधर्म की ध्वजा जैसा था, अथवा अधर्म रूपी केतुग्रह था। गुरुजनों—माता पिता आदि को देखकर भी उनका आदर करने के लिए आसन से खड़ा नहीं होता था, उनका विनय नहीं करता था और जनपद के प्रजाजनों से राजकर लेकर भी उनका सम्यक् प्रकार से—यथार्थ रूप में पालन और रक्षण नहीं करता था।

**विवेचन—** 'केकय-अर्ध'—शास्त्रों में साढ़े पच्चीस (२५।१) आर्य देशों और उन देशों की एक—एक राजधानी के नामों का उल्लेख है। पच्चीस देश तो पूर्ण रूप से आर्य थे, किन्तु केकय देश का आधा भाग आर्य था। बौद्ध ग्रंथों में भी केकय देश का उल्लेख है। उस देश का वर्तमान स्थान उत्तर में पेशावर (पाकिस्तान) के आसपास होना चाहिए, ऐसा इतिहासवेत्ताओं का मतव्य है। परन्तु अभी भी उसके नाम और भौगोलिक स्थिति का निश्चित निर्णय नहीं हो सकता है।

मूल पाठ में 'अद्धे' शब्द है, जिसकी टीकाकार ने 'केकया नाम अर्धम्' लिखकर मूल शब्द की व्याख्या की है। राजा दशरथ की एक रानी का नाम 'कैकयी' था। जो इस केकय देश की थी, जिससे उसका नाम कैकयी पड़ा हो, यह संभव है।

'सेयविया'—केकय देश की राजधानी के रूप में इस नगरी का उल्लेख सूत्रों में किया गया है। आवश्यक सूत्र में बताया है कि श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थ-अवस्था में विहार करते हुए उत्तर वाचाल प्रदेश में गये और वहां से 'सेयविया' गये। इस नगरी के श्रमणोपासक राजा प्रदेशी ने भगवान् की महिमा की और उसके पश्चात् भगवान् वहां

से सुरभिपुर पधारे। परन्तु वर्तमान में यह नगरी कहां है, एतद् विषयक कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

दीर्घनिकाय (बौद्ध ग्रन्थ) के 'पायासि सुत्तंत' में इस नगरी का नाम 'सेतव्या' बताया है और कौशल देश में विहार करते हुए कुमार कश्यप इस नगरी में आये थे, यह सूचित करके इसे कोसल देश का नगर बताया है— 'येन सेतव्या नाम कोसलानं नगरं तद् अवसरि' (—दीर्घ-निकाय भाग २)।

जैन दृष्टि से कोशल देश अयोध्या और उसके आस-पास का प्रदेश माना गया है।

सेयविया का किसी किसी ने 'श्वेतविका' यह भी संस्कृत रूपान्तर किया है।

'पएसी'—सूत्र में उल्लिखित इस शब्द का टीकाकार आचार्य ने 'प्रदेशी' संस्कृत भाषान्तर किया है और आवश्यक सूत्रों में 'पदेशी' शब्द का प्रयोग किया है।

इस राजा सम्बन्धी जो वर्णन इस 'रायपसेणइय' सूत्र में आगे किया जाने वाला है, उससे मिलता-जुलता वर्णन दीर्घनिकाय के, 'पायासि सुत्तंत' में भी किया गया है। इसमें मुख्य प्रश्नकार राजा पयासी है और उसका वंश राजन्य एवं सम्बन्ध कोशल वंश के राजा 'पसेनदि' के साथ बताया है। 'रायपसेणइय' सूत्र में जिस प्रकार से राजा पयेसी को अत्यन्त पापिष्ठ के रूप में वर्णित किया है, वैसा तो दीर्घनिकाय में नहीं कहा है, किन्तु वहां इतना उल्लेख अवश्य है कि इस राजा के विचार पापमय थे और यह मानता था कि परलोक नहीं, औपपातिक सत्ता नहीं है और सुकृत-दुष्कृत का किसी प्रकार का फल-विपाक नहीं है (—दीर्घनिकाय, भाग-२)।

इस राजा के विषय में और कोई ऐतिहासिक जानकारी नहीं मिलती है।

## रानी सूर्यकान्ता और युवराज सूर्यकान्त

२०८— तस्स णं पएसिस्स रत्तो सूरियकंता नामं देवी होत्था, सुकुमालपाणिपाया धारिणी वण्णओ<sup>१</sup> । पएसिणा रत्ता सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सद्दे फरिसे रसे रूवे जाव (गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा) विहरइ ।

तस्स णं पएसिस्स रण्णो जेट्ठे पुत्ते सूरियकंताए देवीए अत्तए सूरियकंते नामं कुमारे होत्था, सुकुमालपाणिपाए जाव पडिरूवे ।

से णं सूरियकंते कुमारे जुवराया वि होत्था, पएसिस्स रत्तो रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्टागारं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव पच्चुवेक्खमाणे पच्चुवेक्खमाणे विहरइ ।

२०८— उस प्रदेशी राजा की सूर्यकान्ता नाम की रानी थी, जो सुकुमाल हाथ पैर आदि अंगोपांग वाली थी, इत्यादि धारिणी रानी के समान इसका वर्णन करना चाहिए। वह प्रदेशी राजा के प्रति अनुरक्त—अतीव स्नेहशील थी, उससे कभी विरक्त नहीं होती थी और इष्ट प्रिय—शब्द, स्पर्श, रस (यावत् गन्धमूलक) अनेक प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगती हुई रहती थी।

उस प्रदेशी राजा का ज्येष्ठ पुत्र और सूर्यकान्ता रानी का आत्मज सूर्यकान्त नामक राजकुमार था। वह सुकोमल हाथ पैर वाला, अतीव मनोहर था।

वह सूर्यकान्त कुमार युवराज भी था। वह प्रदेशी राजा के राज्य (शासन), राष्ट्र (देश), बल (सेना), वाहन

१. धारिणी रानी के लिए देखिए सूत्र संख्या ५

(रथ, हाथी, अश्व आदि) कोश, कोठार (अन्न-भण्डार) पुर और अंतःपुर की स्वयं देखभाल किया करता था।

### चित्त सारथी

२०९— तस्स णं पएसिस्स रत्तो जेट्ठे भाउयवयंसए चित्ते णामं सारही होत्था, अट्ठे जावं बहुजणस्स अपरिभूए, साम-दंड-भेय-उवप्पयाण-अत्थसत्थ-ईहा-मइविसारए, उप्पत्तियाए-वेणतियाए-कम्मथाए-षारिणाभियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेए, पएसिस्स रण्णो बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य कुडुंबेसु य मंतेसु य गुज्जेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छ-णिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, मेढी, पमाणं, आहारे, आलंबणं, चक्खू, मेढिभूए, पमाणभूए, आहारभूए, चक्खुभूए, सव्वट्ठाणसव्वभूमियासु लद्धपच्चए विदिण्णविचारे रज्जधुराचिंतए आवि होत्था ।

२०९— उस प्रदेशी राजा का उम्र में बड़ा (ज्येष्ठ) भाई एवं मित्र सरीखा चित्त नाम सारथी था। वह समृद्धिशाली यावत् (दीप्त-तेजस्वी, प्रसिद्ध, विशाल भवनों, अनेक सैकड़ों शय्या-आसन-यान-रथ आदि तथा विपुल धन, सोने-चांदी का स्वामी, अर्थोपार्जन के उपायों का ज्ञाता था। उसके यहां इतना भोजन-पान बनता था कि खाने के बाद भी बचा रहता था। दास, दासी, गायें, भैंसें, भेड़ें, बहुत बड़ी संख्या में उसके यहां थी) और बहुत से लोगों के द्वारा भी पराभव को प्राप्त नहीं करने वाला था। साम-दण्ड-भेद और उपप्रदान नीति, अर्थशास्त्र एवं विचार-विमर्श प्रधान बुद्धि में विशारद—कुशल था। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी तथा पारिणामिकी इन चार प्रकार की बुद्धियों से युक्त था। प्रदेशी राजा के द्वारा अपने बहुत से कार्यों में, कार्य में सफलता मिलने के उपायों में, कौटुम्बिक कार्यों में, मन्त्रणा (सलाह) में, गुप्त कार्यों में, रहस्यमय गोपनीय प्रसंगों में, निश्चय—निर्णय करने में, राज्य सम्बन्धी व्यवहार-विधानों में पूछने योग्य था, बार-बार विशेष रूप से पूछने योग्य था। अर्थात् सभी छोटे-बड़े कार्यों में उससे सलाह ली जाती थी। वह सबके लिए मेढी (खलिहान के केन्द्र में गाड़ा हुआ स्तम्भ, जिसके चारों ओर घूमकर बैल धान्य कुचलते हैं) के समान था, प्रमाण था, पृथ्वी के समान आधार—आश्रय था, रस्सी के समान आलम्बन था, नेत्र के समान मार्गदर्शक था, मेढीभूत था, प्रमाणभूत था, आधार और अवलम्बनभूत था एवं चक्षुभूत था। सभी स्थानों—सन्धिविग्रह आदि कार्यों में और सभी भूमिकाओं—मन्त्री, अमात्य आदि पदों में प्रतिष्ठा—प्राप्त था। सबको विचार देने वाला था अर्थात् सभी का विश्वासपात्र था तथा चक्र की धुरा के समान राज्य-संचालक था—सकल राज्य कार्यों का प्रेक्षक था।

**विवेचन**— उक्त वर्णन से यह प्रतीत होता है कि चित्त सारथी अतिनिपुण राजनीतिज्ञ, राज्यव्यवस्था करने में प्रवीण एवं अत्यन्त बुद्धिशाली था। उसे औत्पत्तिकी आदि चार प्रकार की बुद्धियों से युक्त बताया है। इन चार प्रकार की बुद्धियों का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) औत्पत्तिकी बुद्धि— अदृष्ट, अननुभूत और अश्रुत किसी विषय को एकदम समझ लेने तथा विषम समस्या के समाधान का तत्क्षण उपाय खोज लेने वाली बुद्धि या अकस्मात्, सहसा, तत्काल उत्पन्न होने वाली सूझ।

(२) वैनयिकी— गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा, विनय करने से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

(३) कार्मिकी— कार्य करते-करते अनुभव-अभ्यास से प्राप्त होने वाली दक्षता, निपुणता। इसको कर्मजा अथवा कर्मसमुत्था बुद्धि भी कहते हैं।

(४) पारिणामिकी— उम्र के परिपाक से अर्जित विभिन्न अनुभवों से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

उक्त चार बुद्धियां मतिज्ञान के श्रुतनिश्चित और अश्रुतनिश्चित इन दो मूल विभागों में से दूसरे विभाग के अन्तर्गत हैं। जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के पूर्वकालिक संस्कार के निमित्त से उत्पन्न किन्तु वर्तमान में श्रुतनिरपेक्ष होता है, उसे श्रुतनिश्चित कहते हैं एवं जिसमें श्रुतज्ञान के संस्कार की किञ्चित्मात्र भी अपेक्षा नहीं होती है वह अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान कहलाता है।

### कुणाला जनपद, श्रावस्ती नगरी, जितशत्रु राजा

२१०— तेषां कालेणं तेषां समयेणं कुणाला नामं जणवए होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे । तत्थ णं कुणालाए जणवए सावत्थी नामं नयरी होत्था रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव<sup>१</sup> पडिरूवा ।

तीसे णं सावत्थीए णगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए कोट्टए नामं चेइए होत्था, पोराणे जाव<sup>२</sup> पासादीए ।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पएसिस्स रत्तो अंतेवासी जियसत्तू नामं राया होत्था, महया-हिमवंत जाव विहरइ ।

२१०— उस काल और उस समय में कुणाला नामक जनपद-देश था। वह देश वैभवसंपन्न, स्तिमित-स्वपरचक्र (शत्रुओं) के भय से मुक्त और धन-धान्य से समृद्ध था।

उस कुणाला जनपद में श्रावस्ती नाम की नगरी थी, जो ऋद्ध, स्तिमित, समृद्ध यावत् (देखने योग्य, मन को प्रसन्न करने वाली, अभिरूप-मनोहर और) प्रतिरूप-अतीव मनोहर थी।

उस श्रावस्ती नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान दिक्कोण) में कोष्ठक नाम का चैत्य था। यह चैत्य अत्यन्त प्राचीन यावत् प्रतिरूप था।

उस श्रावस्ती नगरी में प्रदेशी राजा का अन्तेवासी जैसा अर्थात् अधीनस्थ—आज्ञापालक जितशत्रु नामक राजा था, जो महाहिमवन्त आदि पर्वतों के समान प्रख्यात था।

विवेचन— दीघनिकाय के 'महासुदस्सन सुत्तंत' में श्रावस्ती नगरी को उस समय का एक महानगर बताया है। प्राचीन भूगोलशोधकों का अभिमत है कि वर्तमान में सेहट-मेहट के नाम से जो ग्राम जाना जाता है, वह प्राचीन श्रावस्ती नगरी है।

### चित्त सारथी का श्रावस्ती की ओर प्रयाण

२११— तए णं से पएसी राया अन्नया कयाइ महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं सज्जावेइ, सज्जावित्ता चित्तं सारहिं सद्दावेत्ति, सद्दावित्ता एवं पयासी—

गच्छ णं चित्ता ! तुमं सावत्थिं नगरिं जियसत्तुस्स रण्णो इमं महत्थं जाव (महग्घं, महरिहं,

रायारिहं) पाहुडं उवणेहि, जाइं तत्थ रायकज्जाणि य रायकिच्चाणि य रायनीतिओ य राय-  
ववहारा य ताइं जियसत्तुणा सद्धिं सयमेव पच्चुवेक्खमाणे विहराहि त्ति कट्टु विसज्जिए ।

तए णं से चित्ते सारही पएसिणा रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्टु जाव ( तुट्टु-चित्तमाणंदिए-  
पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाण-हियए करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं  
मत्थाए अंजलिं कट्टु 'एवं देवो तहत्ति' आणाए विणएणं वयणं) पडिसुणेत्ता तं महत्थं जाव  
पाहुडं गेण्हइ, पएसिस्स रण्णो जाव पडिणिक्खमइ सेयवियं नगरि मज्झंमज्झेणं जेणेव सए  
गिहे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव पाहुडं ठवेइ, कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ,  
सद्दावेत्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सच्छत्तं जाव चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टुवेह जाव  
पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सच्छत्तं जाव जुद्धसज्जं  
चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टुवेन्ति, तमाणत्तियं पच्चप्पिणांति ।

तए णं से चित्ते सारही कोडुंबियपुरिसाण अंतिए एयमट्टुं जाव हियए ण्हाए, कयबलि-  
कम्मे, कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सन्नद्धबद्धवम्मियकवए, उप्पीलियसरासणपट्टिए, पिणद्धगेविज्ज-  
विमलवरचिंधपट्टे, गहियाउहपहरणे तं महत्थं जाव पाहुडं गेण्हइ, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव  
उवागच्छइ चाउग्घंटं आसरहं दुरूहेति ।

बहूहिं पुरिसेहि सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणेहिं सद्धिं संपरिवुडे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं  
धरेज्जमाणेणं महया भडचडगररहपहकरविंदपरिक्खित्ते साओ गिहाओ णिग्गच्छइ सेयवियं नगरि  
मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, सुहेहिं वासेहिं पायरासेहिं नाइविकिट्ठेहिं अंतरा वासेहिं वसमाणे-वसमाणे  
केइयअद्धस्स जणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव कुणालाजणवए जेणेव सावत्थी नयरी तेणेव  
उवागच्छइ, सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झेणं अणुपविसइ । जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो गिहे, जेणेव  
बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तुरए निगिण्हह, रहं ठवेति, रहाओ पच्चोरुहइ ।

तं महत्थं जाव पाहुडं गिण्हइ जेणेव अब्भितरिया उवट्टाणसाला जेणेव जियसत्तू राया तेणेव  
उवागच्छइ, जियसत्तुं रायं करयलपरिग्गहियं जाव कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, तं महत्थं जाव  
पाहुडं उवणेइ ।

तए णं से जियसत्तू राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पाहुडं पडिच्छइ, चित्तं सारहिं  
सक्कारेइ सम्माणेइ पडिविसज्जेइ रायमग्गमोगाढं च से आवासं दलयइ ।

२११— तत्पश्चात् किसी एक समय प्रदेशी राजा ने महार्थ (विशिष्ट प्रयोजनयुक्त) बहुमूल्य, महान् पुरुषों के  
योग्य, विपुल, राजाओं को देने योग्य प्राभृत (उपहार) सजाया—तैयार किया। सजाकर चित्त सारथी को बुलाया और  
बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

हे चित्त! तुम श्रावस्ती नगरी जाओ और वहां जितशत्रु राजा को यह महार्थ यावत् (महान् पुरुषों के अनुरूप और राजा के योग्य मूल्यवान्) भेंट दे आओ तथा जितशत्रु राजा के साथ रहकर स्वयं वहां की शासन-व्यवस्था, राजा की दैनिकचर्या, राजनीति और राजव्यवहार को देखो, सुनो और अनुभव करो—ऐसा कहकर विदा किया।

तब वह चित्त सारथी प्रदेशी राजा की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित हुआ यावत् (संतुष्ट हुआ, चित्त में आनन्दित, मन में अनुरागी हुआ, परमसौमनस्य भाव को प्राप्त हुआ एवं हर्षातिरेक से विकसित-हृदय होकर उसने दोनों हाथ जोड़ शिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके—‘राजन्! ऐसा ही होगा’ कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार किया।) आज्ञा स्वीकार करके उस महार्थक यावत् उपहार को लिया और प्रदेशी राजा के पास से निकल कर बाहर आया। बाहर आकर सेयविया नगरी के बीचों-बीच से होता हुआ जहां अपना घर था, वहां आया। आकर उस महार्थक उपहार को एक तरफ रख दिया और कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

देवानुप्रियो! शीघ्र ही छत्र सहित यावत् चार घंटों वाला अश्वरथ जोतकर तैयार कर लाओ यावत् इस आज्ञा को वापस लौटाओ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने चित्त सारथी की आज्ञा सुनकर आज्ञानुरूप शीघ्र ही छत्रसहित यावत् युद्ध के लिये सजाये गये चातुर्घटिक अश्वरथ को जोत कर उपस्थित कर दिया और आज्ञा वापस लौटाई, अर्थात् रथ तैयार हो-जाने की सूचना दी।

कौटुम्बिक पुरुषों का यह कथन सुनकर चित्त-सारथी हृष्ट-तुष्ट हुआ यावत् विकसित हृदय होते हुए उसने स्नान किया, बलिकर्म (कुलदेवता की अर्चना की, अथवा पक्षियों को दाना डाला), कौतुक (तिलक आदि) मंगल-प्रायश्चित्त किये और फिर अच्छी तरह से शरीर पर कवच बांधा। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई, गले में ग्रैवेयक और अपने श्रेष्ठ संकेतपट्टक को धारण किया एवं आयुध तथा प्रहरणों को ग्रहण कर, वह महार्थक यावत् उपहार लेकर वहां आया जहां चातुर्घट अश्वरथ खड़ा था। आकर उस चातुर्घट अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ।

तत्पश्चात् सन्नद्ध यावत् आयुध एवं प्रहरणों से सुसज्जित बहुत से पुरुषों से परिवृत्त हो, कोरंट पुष्प की मालाओं से विभूषित छत्र को धारण कर, सुभटों और रथों के समूह के साथ अपने घर से रवाना हुआ और सेयविया नगरी के बीचोंबीच से निकल कर सुखपूर्वक रात्रिविश्राम, प्रातःकलेवा, अति दूर नहीं किन्तु पास-पास अन्तरावास (पड़ाव) करते और जगह-जगह ठहरते-ठहरते केकयअर्ध जनपद के बीचोंबीच से होता हुआ जहां कुणाला जनपद था, जहां श्रावस्ती नगरी थी, वहां आ पहुंचा। वहां आकर श्रावस्ती नगरी के मध्यभाग में प्रविष्ट हुआ। इसके बाद जहां जितशत्रु राजा का प्रासाद था और जहां राजा की बाह्य उपस्थानशाला थी, वहां आकर घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया और फिर रथ से नीचे उतरा।

तदनन्तर उस महार्थक यावत् भेंट को लेकर आभ्यन्तर उपस्थानशाला (बैठक) में जहां जितशत्रु राजा बैठा था, वहां आया। वहां दोनों हाथ जोड़ यावत् जय-विजय शब्दों से जितशत्रु राजा का अभिनन्दन किया और फिर उस महार्थक यावत् उपहार को भेंट किया।

तब जितशत्रु राजा ने चित्त सारथी द्वारा भेंट किये गये इस महार्थक यावत् उपहार को स्वीकार किया एवं चित्त सारथी का सत्कार-सम्मान किया और विदा करके विश्राम करने के लिए राजमार्ग पर आवास स्थान दिया।

**विवेचन—** ऊपर के सूत्र में बताया कि श्रावस्ती का राजा जितशत्रु सेयविया के राजा प्रदेशी का अंतेवासी था

अर्थात् अधीनस्थ राजा था। तब प्रश्न होता है कि अधीनस्थ राजा होते हुए भी राजा प्रदेशी का जितशत्रु राजा को भेंट भेजने और चित्त सारथी को श्रावस्ती जाकर राजव्यवस्था देखने के संकेत का क्या कारण था ? प्रतीत होता है, अनेक बार अधीनस्थ राजा अपने से मुख्य राजा की अपेक्षा बल, सेना, कोष और कितनी ही दूसरी बातों में बढ़ने का गुप्त प्रयास करते हैं और प्रच्छन्न रूप से उसे अपदस्थ करके स्वयं उसके राज्य पर अधिकार करने आदि का प्रयत्न करते हैं। इस स्थिति का पता जब उस मुख्य राजा को लगता है, तब वह राजनीति का अवलंबन लेकर उसकी खोजबीन करने का प्रयास करता है। इस प्रयास के दूसरे-दूसरे उपायों की तरह भेंट भेजना भी एक उपाय है। यही बात प्रदेशी राजा द्वारा कहे गये इन शब्दों से विदित होती है—

‘तुम यह भेंट दे आओ तथा जितशत्रु राजा के साथ रहकर स्वयं वहां की शासनव्यवस्था, राजा की दैनिक चर्चा, राजनीति और व्यवहार को देखो, सुनो और अनुभव करो।’

२१२— तए णं से चित्ते सारही विसज्जित्ते समाणे जियसत्तुस्स रत्तो अंतियाओ पडिनिक्ख-मइ, जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंटे आसरहं दुरूहइ, सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ, तुरए निगिण्हइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिते अप्पमहग्घाभरणालंक्रियसरीरे जिमियभुत्तत्तराए वि य णं समाणे पुव्वावरण्हकालसमयंसि गंधव्वेहि य णाडगेहि य उवनच्चिज्जमाणे उवनच्चिज्ज-माणे, उवगाइज्जमाणे, उवगाइज्जमाणे, उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सद्-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

२१२— तत्पश्चात् चित्त सारथी विदाई लेकर जितशत्रु राजा के पास से निकला और जहां बाह्य उपस्थानशाला थी, चार बंटों बाला अश्वरथ खड़ा किया था, वहां आया। आकर उस चातुर्घट अश्वरथ पर सवार हुआ। फिर श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच से होता हुआ राजमार्ग पर अपने ठहरने के लिए निश्चित किये गये आवास-स्थान पर आया। वहां घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया और नीचे उतरा। इसके पश्चात् उसने स्नान किया, बलिकर्म किया और कौतुक, मंगल प्रायश्चित्त करके शुद्ध और उचित—योग्य मांगलिक वस्त्र पहने एवं अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। भोजन आदि करके तीसरे प्रहर गंधर्वों, नर्तकों और नाट्यकारों के संगीत, नृत्य और नाट्याभिनयों को सुनते-देखते हुए तथा इष्ट-अभिलषित शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गंधमूलक पांच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगते हुए विचरने लगा।

**श्रावस्ती नगरी में केशी कुमारश्रमण का पदार्पण**

२१३— तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमाणे जातिसंपण्णे कुलसंपण्णे बलसंपण्णे रूवसंपण्णे विणयसंपण्णे नाणसंपण्णे दंसणसंपण्णे चरित्तसंपण्णे लज्जासंपण्णे लाघवसंपण्णे लज्जालाघवसंपण्णे ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोहे जियणिहे जितिदिए जियपरीसहे जीवियास-मरणभयविष्यमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे करणप्पहाणे चरणप्पहाणे निग्गहप्पहाणे निच्छयप्पहाणे अज्जवप्पहाणे

मह्वप्यहाणे लाघवप्यहाणे खंतिप्यहाणे गुत्तिप्यहाणे मुत्तिप्यहाणे विज्जप्यहाणे मंतप्यहाणे बंधप्यहाणे वेयप्यहाणे नयप्यहाणे नियमप्यहाणे सच्चप्यहाणे सोयप्यहाणे नाणप्यहाणे दंसणप्यहाणे चरित्तप्यहाणे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंधचेरवासी उच्छूडसरीरे संखित्तविपुलतेउलेस्से चउद्दसपुव्वी चउणाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थी नयरी, जेणेव कोट्टए चेइए, तेणेव उवागच्छइ, सावत्थी नयरीए बहिया कोट्टए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ, उग्गिण्हत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं विहरइ ।

२१३— उस काल और उस समय में जातिसंपन्न—उत्तम मातृपक्ष वाले, कुलसंपन्न—उत्तम पितृपक्ष वाले, आत्मबल से युक्त, अनुत्तर विमानवासी देवों से भी अधिक रूपवान् (शरीर-सौन्दर्यशाली), विनयवान्, सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चरित्र के धारक, लज्जावान्—पाप कार्यों के प्रति भीरु, लाघववान्, (द्रव्य से अल्प उपधि वाले और भाव से ऋद्धि, रस और साता रूप तीन गौरवों से रहित), लज्जालाघवसंपन्न, ओजस्वी—मानसिक तेज से संपन्न, तेजस्वी—शारीरिक कांति से देदीप्यमान, वचस्वी—सार्थक वचन बोलने वाले, यशस्वी, क्रोध को जीतने वाले, मान को जीतने वाले, माया को जीतने वाले, लोभ को जीतने वाले, जीवित रहने की आकांक्षा एवं मृत्यु के भय से विमुक्त, तपः—प्रधान अर्थात् उत्कृष्ट तप करने वाले, गुणप्रधान अर्थात् उत्कृष्ट संयम गुण के धारक, करणप्रधान (पिंडविशुद्धि आदि करणसत्तरी में प्रधान), चरणप्रधान (महाव्रत आदि चरणसत्तरी में प्रधान), निग्रह—प्रधान (मन और इन्द्रियों की अनाचार में प्रवृत्ति को रोकने में सदैव सावधान), तत्त्व का निश्चय करने में प्रधान, आर्जवप्रधान (माया का निग्रह करने वाले), मार्दवप्रधान (अभिमानरहित), लाघवप्रधान अर्थात् क्रिया करने के कौशल में दक्ष, क्षमाप्रधान अर्थात् क्रोध का निग्रह करने में प्रधान, गुप्तिप्रधान (मन, वचन, काय के संयमी), मुक्ति (निर्लोभता) में प्रधान, विद्याप्रधान (देवता-अधिष्ठित प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं में प्रधान), मंत्रप्रधान (हरिणोगमैषी आदि देवों से अधिष्ठित अथवा साधना से प्राप्त होने वाली विद्याओं में प्रधान), ब्रह्मचर्य अथवा समस्त कुशल अनुष्ठानों में प्रधान, वेदप्रधान अर्थात् लौकिक और लोकोत्तर आगमों में निष्णात, नयप्रधान अर्थात् समस्त वाचनिक अपेक्षाओं के मर्मज्ञ, नियमप्रधान—विचित्र अभिग्रहों को धारण करने में कुशल, सत्यप्रधान, शौचप्रधान (द्रव्य और भाव से ममत्व रहित), ज्ञानप्रधान, दर्शन—प्रधान, चरित्रप्रधान, उदार, घोर परिषहों, इन्द्रियों और कषायों आदि आन्तरिक शत्रुओं का निग्रह करने में कठोर, घोरव्रती—अप्रमत्त भाव से महाव्रतों का पालन करने वाले, घोरतपस्वी—महातपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी— उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, शरीरसंस्कार के त्यागी, विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में ही समाये रखने वाले, चौदह पूर्वों के ज्ञाता, मतिज्ञानादि मनःपर्यायज्ञानपर्यन्त चार ज्ञानों के धनी पार्श्वपत्य (भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य-परम्परा के) केशी नामक कुमारश्रमण (कुमार अवस्था में दीक्षित साधु) पांच सौ अनगारों से परिवृत्त होकर अनुक्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहां श्रावस्ती नगरी थी, जहां कोष्ठक चैत्य था, वहां पधारे एवं श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में यथोचित अवग्रह को ग्रहण किया अर्थात् स्थान की याचना की और फिर अवग्रह ग्रहण कर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

**विवेचन**— मूल पाठ में आगत 'करणप्यहाणे' एवं 'चरणप्यहाणे' पद में करण और चरण शब्द करणसत्तरी और चरणसत्तरी के बोधक हैं। इन दोनों का तात्पर्य है—करण के सत्तर भेद और चरण के सत्तर भेद। प्रयोजन होने

पर साधु जिन नियमों का सेवन करते हैं उन्हें करण अथवा करणगुण कहते हैं और जिन नियमों का निरंतर आचरण किया जाता है, वे चरण अथवा चरणगुण कहलाते हैं।

करण के सत्तर भेद इस प्रकार हैं—

पिंडविसोही समिद्ध भावण पडिमा य इन्दियनिरोहो ।

पडिलेहण गुत्तीओ अभिग्गहा चेव करणं तु ॥

—ओघनिर्युक्ति गाथा ३

आहार, वस्त्र, पात्र और शय्या की शुद्ध गवेषणा, पांच समिति, अनित्य आदि बारह भावनाएं, बारह प्रतिमाएं, पंच इन्द्रियों का निग्रह, पच्चीस प्रकार की प्रतिलेखना, तीन गुप्ति एवं चार प्रकार के अभिग्रह (ये करण गुण के सत्तर भेद हैं)।

चरण के सत्तर भेद इस प्रकार हैं—

वय समणधम्म संजम वेयावच्चं च बम्भगुत्तीओ ।

णाणाइतियं तवं कोहनिग्गहाई चरणमेयं ॥

पांच महाव्रत, क्षमा आदि इस प्रकार का यतिधर्म, सत्रह प्रकार का संयम, आचार्य आदि का दस प्रकार का वैयावृत्य, नौ ब्रह्मचर्य-गुप्तियां, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना, बारह प्रकार का तप, क्रोधादि चार कषायों का निग्रह (ये चरणगुण के सत्तर भेद हैं)।

### दर्शनार्थ परिषदा का गमन और चित्त की जिज्ञासा

२१४— तए णं सावत्थीए नयरीए सिंधाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महापहपहेसु महया जणसहे इ वा जाणबूहे इ वा जणबोले इ वा जणकलकले इ वा जणउम्मी इ वा जणउक्कलिया इ वा जणसन्निवाए इ वा जाव ( बहुजणो अण्णमण्णं एवं आइक्खइ एवं भासेइ एवं पण्णेवइ एवं परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे जाइसंपन्ने जावं गामाणुगामं दूइज्जमाणे इह मागए, इह संपत्ते, इह समोसढे, इहेव सावत्थीए नयरीए बहिया कोट्टुए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं समणाणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंगपुण अभिगमण-वंदन-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग ! पुण विउलस्स अट्टस्स गहणयाए ? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं वंदामो णमंसामो सक्काणेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासामो ( एयं णं इहभवे पेच्चभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेय-साए आणुगामियत्ताए भविस्सइ-त्ति कट्टु परिसा निग्गया, केसी नामं कुमारसमणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति, वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पंजलियउडे अभिमुहे विणएणं ) परिसा पज्जुवासइ ।

२१४— तत्पश्चात् (केशी कुमारश्रमण का पदार्पण होने के पश्चात्) श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों (त्रिकोण वाले स्थानों), त्रिकों (तिराहों), चतुष्कों (चौराहों), चत्वरों (चौकों), चतुर्मुखों (चारों तरफ द्वार वाले स्थान-विशेषों), राजमार्गों और मार्गों (गलियों) में लोग आपस में चर्चा करने लगे, लोगों के झुंड इकट्ठे होने लगे, लोगों के बोलने की घोंघाट सुनाई पड़ने लगी, जनकोलाहल होने लगा, भीड़ के कारण लोग आपस में टकराने लगे, एक के बाद एक लोगों के टोले आते दिखाई देने लगे, इधर-उधर से आकर लोग एक स्थान पर इकट्ठे होने लगे, यावत् (बहुत से लोग परस्पर एक दूसरे से कहने लगे, बोलने लगे, प्ररूपणा करने लगे—हे देवानुप्रियो! जाति आदि से संपन्न श्रेष्ठ पार्श्वपत्य केशी कुमारश्रमण अनुक्रम से गमन करते हुए, ग्रामानुग्राम—एक गांव से दूसरे गांव में—विचरते हुए आज यहां आये हैं, प्राप्त हुए हैं, पधार गए हैं और इसी श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में यथारूप (साधुमर्यादा के अनुरूप) अवग्रह—आज्ञा लेकर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं।

अतएव हे देवानुप्रियो! जब तथारूप श्रमण भगवतों के नाम और गोत्र के सुनने से ही महाफल प्राप्त होता है, तब उनके समीप जाने, उनकी वंदना करने, उनसे प्रश्न पूछने और उनकी पर्युपासना—सेवा करने से प्राप्त होने वाले अनुपम फल के लिए तो कहना ही क्या है! आर्य धर्म के एक सुवचन के सुनने से जब महाफल प्राप्त होता है, तब हे आयुष्मन्! विपुल अर्थों को ग्रहण करने से प्राप्त होने वाले फल के विषय में तो कहना ही क्या है? इसलिए हे देवानुप्रियो! हम उनके पास चलें; उनको वंदन-नमस्कार करें, उनका सत्कार करें, भक्तिपूर्वक सम्मान करें एवं कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप उनकी विनयपूर्वक पर्युपासना करें। यह वंदन-नमस्कार करना हमें इस भव तथा परभव में हितकारी है, सुखप्रद है, क्षेम-कुशल एवं परमनिश्रेयस्—कल्याण का साधन रूप होगा तथा इसी प्रकार अनुगामी रूप से जन्म-जन्मान्तर में भी सुख देने का निमित्त बनेगा—ऐसा विचार कर परिषदा (जनसमुदाय) निकली और केशी कुमारश्रमण के पास पहुंच कर दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके न तो अधिक दूर और न अधिक निकट किन्तु उनके सम्मुख यथायोग्य स्थान पर बैठकर शुश्रूषा और नमस्कार करते हुए सविनय अंजलि करके) पर्युपासना—सेवा करने लगी।

२१५— तए णं तस्स सारहिस्स तं महाजणसदं च जणकलकलं च सुणेत्ता य पासेत्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव (चिंतिए, पत्थिए मणोगते संकप्पे) समुप्पज्जित्था, किं णं अज्ज सावत्थिए णयरीए इंदमहे इ वा, खंदमहे इ वा, रुद्धमहे इ वा, मउंदमहे इ वा, सिवमहे इ वा, वेसमणमहे इ वा, नागमहे इ वा, जक्खमहे इ वा, भूयमहे इ वा, थूममहे इ वा, चेइय-महे इ वा, रुक्खमहे इ वा, गिरिमहे इ वा, दरिमहे इ वा, अगडमहे इ वा, नईमहे इ वा, सरमहे इ वा, सागरमहे इ वा, जं णं इमे बहवे उग्गा उग्गपुत्ता भोगा राइन्ना इक्खागा णाया कोरव्वा जाव (खत्तिया माहणा भडा जोहा मल्लई मल्लइपुत्ता लेच्छइ, लेच्छइपुत्ता) इब्भ इब्भपुत्ता अण्णे य बहवे राया-ईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभित्तियो णहाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सिरसाकंठेमालकडा आविद्धमणिसुवण्णा ऋप्पिय-हार-अद्धहार-तिसरपालंबपलंबमाण-कडिसुत्तयकयसोहाहरणा चंदणोलित्तगायसरीरा पुरिसवग्गुरा-परिखित्ता महया उक्किडुसीहणायबोलकलकलरवेणं एगदिसाए जहा उववाइए जाव अप्पेगत्तिया

हयगया गयगया जाव ( रहगया सिबियागया संदमाणिया अप्पेगतिया ) पायचारविहरेणं महया महया वंदावंदएहिं निग्गच्छंति, एवं संपेहेइ, संपेहिता कंचुइज्जपुरिसं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—

किं णं देवाणुप्पिया ! अज्ज सावत्थीए नगरीए इंदमहे इ वा जाव सागरमहे इ वा जेणं इमे बहवे उग्गा भोगा० णिग्गच्छंति ?

२१५— तब लोगों की बातचीत, जनकोलाहल सुनकर तथा जनसमूह को देखकर चित्त सारथी को इस प्रकार का यह आन्तरिक यावत् ( चिन्तित, प्रार्थित—इष्ट और मनोगतसंकल्प-विचार ) उत्पन्न हुआ कि क्या आज श्रावस्ती नगरी में इन्द्रमह ( इन्द्र-निमित्तक उत्सव—इन्द्रमहोत्सव ) है ? अथवा स्कन्द ( कार्तिकेय ) मह है ? या रुद्रमह, मुकुन्दमह, शिवमह, वैश्रमण ( कुबेर ) मह, नागमह ( नाग सम्बन्धी उत्सव ), यक्षमह, भूतमह, स्तूपमह, चैत्यमह, वृक्षमह, गिरिमह, दरि ( गुफा ) मह, कूपमह, नदीमह, सर ( तालाब ) मह, अथवा सागरमह है ? कि जिससे ये बहुत से उग्रवंशीय, उग्रवंशीयकुमार, भोगवंशीय, राजन्यवंशीय, इक्ष्वाकुवंशीय, ज्ञातवंशीय, कौरववंशीय यावत् ( क्षत्रिय—सामान्य राजकुल के सम्बन्धी, माहण-ब्राह्मण, सुभट, योधा, मल्लक्षत्रिय ( मल्लिक गणराज्य से सम्बन्धित ), मल्लपुत्र, लिच्छवी क्षत्रिय लिच्छवीपुत्र ), इब्भ, इब्भपुत्र तथा दूसरे भी अनेक राजा ( मांडलिक राजा ) ईश्वर युवराज, तलवर ( जागीरदार ), मांडबिक, कौटुम्बिक, इभ्यश्रेष्ठी ( महाधनी—हाथी प्रमाण धन से संपन्न सेठ ), सेनापति, सार्थवाह आदि सभी स्नान कर, बलिकर्म कर, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त कर, मस्तक और गले में मालाएं धारण कर, मणिजटित स्वर्ण के आभूषणों से शरीर को विभूषित कर, गले में हार ( अठारह लड़ का हार ), अर्धहार, तिलड़ी, झुमका और कमर में लटकते हुए कटिसूत्र ( करधनी ) पहनकर, शरीर पर चंदन का लेप कर, आनंदातिरेक से सिंहनाद और कलकल ध्वनि से श्रावस्ती नगरी को गुंजाते हुए जनसमूह के साथ एक ही दिशा में मुख करके जा रहे हैं आदि वर्णन औपपत्तिक सूत्र के अनुसार यहां जानना चाहिए। यावत् उनमें से कितने ही घोड़ों पर सवार होकर, कई हाथी पर सवार होकर, कोई रथों में बैठ कर या पालखी में बैठ कर स्यंदमानिका में बैठकर और कितने ही अपने अपने समुदाय बनाकर पैदल ही जा रहे हैं। ऐसा विचार किया और विचार करके कंचुकी पुरुष ( द्वारपाल ) को बुलाकर उससे पूछा—

देवानुप्रिय! आज क्या श्रावस्ती नगरी में इन्द्र-महोत्सव है यावत् सागरयात्रा है कि जिससे ये बहुत से उग्रवंशीय भोगवंशीय आदि सभी लोग अपने-अपने घरों से निकलकर एक ही दिशा में जा रहे हैं ?

२१६— तए णं से कंचुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स आगमणगहियविणिच्छए चित्तं सारहिं करयलपरिग्गहियं जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी—णो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज सावत्थीए णयरीए इंदमहे इ वा जाव सागरमहे इ वा जे णं इमे बहवे जाव<sup>१</sup> विंदाविंदएहिं निग्गच्छंति, एवं खलु भो देवाणुप्पिया ! पासावचिज्जे केसी नामं कुमारसमणे जाइसंपन्ने जाव<sup>२</sup> दूइज्जमाणे इहमाणे जाव विहरइ । तेणं अज्ज सावत्थीए नयरीए बहवे उग्गा जाव इब्भा इब्भपुत्ता अप्पेगतिया वंदणवत्तियाए जाव महया वंदावंदएहिं णिग्गच्छंति ।

२१६— तब उस कंचुकी पुरुष ने केशी कुमारश्रमण के पदार्पण होने के निश्चित समाचार जान कर दोनों हाथ जोड़ यावत् जय-विजय शब्दों से वधाकर चित्तसारथी से निवेदन किया—देवानुप्रिय! आज श्रावस्ती नगरी में इन्द्र-महोत्सव यावत् समुद्रयात्रा आदि नहीं है कि जिससे ये बहुत से उग्रवंशीय आदि लोग अपने-अपने समुदाय बनाकर निकल रहे हैं। परन्तु हे देवानुप्रिय! बात यह है कि आज जाति आदि से संपन्न पार्श्वपत्य केशी नामक कुमारश्रमण यावत् एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करते हुए यहां पधारे हैं यावत् कोष्ठक चैत्य में विराजमान हैं। इसी कारण आज श्रावस्ती नगरी के ये अनेक उग्रवंशीय यावत् इब्भ, इब्भपुत्र आदि वंदना करने के विचार से बड़े-बड़े समुदायों में अपने घरों से निकल रहे हैं।

### चित्त सारथी का दर्शनार्थ गमन

२१७— तए णं से चित्ते सारही कंचुइपुरिसस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टु-जाव हियए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउगघंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टुवेह जाव सच्छत्तं उवट्टुवेति ।

२१७— तत्पश्चात् कंचुकी पुरुष से यह बात सुन-समझ कर चित्त सारथी ने तुष्ट हृदय यावत् हर्षविभोर-हृदय होते हुए कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घंटों वाले अश्वरथ को जोतकर उपस्थित करो। यावत् वे कौटुम्बिक पुरुष छत्रसहित अश्वरथ को जोतकर लाये।

२१८— तए णं से चित्ते सारही ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पा-वेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिते अप्पमहग्घाभरणालंक्रियसरीरे जेणेव चाउगघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउगघंटं आसरहं दुरूहइ सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्ज-माणेणं महया भडचडगरेण विंदपरिखित्ते सावन्थीनगरीय मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ । निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्टए चेइए जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता केसिकुमार-समणस्स अदूरसामंते तुरए णिगिणहइ रहं ठवेइ य, ठवित्ता पच्चोरुहति । पच्चोरुहित्ता जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता केसिकुमारसमणं तिव्वुत्तो आयाहिणं-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता णच्चासण्णे णाति दूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे पंजलिउडे विणएणं पज्जुवासइ ।

२१८— तदनन्तर चित्त सारथी ने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक मंगल प्रायश्चित्त किया, शुद्ध एवं सभोचित मांगलिक वस्त्रों का पहना, अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया और उसके बाद वह चार घंटों वाले अश्वरथ के पास आया। आकर उस चातुर्घट अश्वरथ पर आरूढ हुआ एवं कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित छत्र धारण करके सुभटों के विशाल समुदाय के साथ श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच होकर निकला। निकलकर जहां कोष्ठक नामक चैत्य था और उसमें भी जहां केशी कुमारश्रमण विराज रहे थे, वहां आया। आकर केशी कुमारश्रमण से कुछ दूर घोड़ों को रोका और रथ खड़ा किया। रथ खड़ा कर उससे नीचे उतरा। उतर कर जहां केशी कुमारश्रमण थे, वहां आया। आकर दक्षिण दिशा से प्रारंभ कर केशी कुमारश्रमण की तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके न अत्यन्त समीप और न अति दूर किन्तु समुचित

स्थान पर सम्मुख बैठकर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से नमस्कार करता हुआ विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करने लगा।

### केशी श्रमण की देशना

२१९— तए णं से केसिकुमारसमणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे महतिमहालियाए महच्च-परिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ । तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं । तए णं सा महतिमहालिया महच्चपरिसा केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा-निसम्म जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

२१९— तत्पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी और उस अतिविशाल परिषद् को चार याम धर्म का उपदेश दिया। उन चातुर्यामों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) समस्त प्राणातिपात (हिंसा) से विरमण (निवृत्त होना) (२) समस्त मृषावाद (असत्य) से विरत होना, (३) समस्त अदत्तादान से विरत होना, (४) समस्त बहिद्धादान (मैथुन-परिग्रह) से विरत होना।

इसके बाद वह अतिविशाल परिषद् (जनसमूह) केशी कुमारश्रमण से धर्मदेशना सुनकर एवं हृदय में धारण कर—मनन कर जिस दिशा से आई थी, उसी ओर लौट गई अर्थात् वह आगत जनसमूह अपने-अपने घरों को वापस लौट गया।

विवेचन—कुमारश्रमण केशी पार्श्वनाथ के अनुयायी थे और भगवान् पार्श्व ने चार यामों की प्ररूपणा की है। अतः इन्होंने चार यामों (महाव्रतों) का उपदेश दिया। लेकिन भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित पंच महाव्रतों से संख्या-भेद के सिवाय इन चार महाव्रतों के आशय में अन्य कोई अन्तर नहीं है। स्थानांगसूत्र टीका में 'बहिद्धा' का अर्थ मैथुन और 'आदान' का अर्थ परिग्रह बताया है। अथवा स्त्री-परिग्रह एवं अन्य किसी भी प्रकार का परिग्रह बहिद्धादान में गर्भित है।

२२०— तए णं से चित्ते सारही केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ट-जाव हियाए उट्ठाए उट्टेइ, उट्टेत्ता केसिं कुमारसमणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासी—

सहहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं ।

पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं ।

रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं ।

अब्भुट्टेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं ।

एवमेयं निग्गंथं पावयणं ।

तहमेयं भंते !०<sup>१</sup> अविहतहमेयं भंते !० असंदिद्धमेयं०, इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! जं णं

१. यहां ० 'निग्गंथं पावयणं' का बोधक संकेत है।

तुम्हे वदह त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासी—जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा जाव इब्भा इब्भपुत्ता चिच्चा हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं एवं धणं-धन्नं-बलं-वाहणं-कोसं कोट्टागारं पुरं अंतेउरं, चिच्चा विउलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल संतसारसावएज्जं विच्छड्डित्ता विगोवइत्ता दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयंति, णो खलु अहं ता संचाएति चिच्चा हिरण्णं तं चेव जाव पव्वइत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।

२२०— तदनन्तर वह चित्त सारथी केशी कुमारश्रमण से धर्म श्रवण कर एवं उसे हृदय में धारण कर हृष्ट-तुष्ट होता हुआ यावत् (चित्त में आनन्द का अनुभव करता हुआ, प्रीति-अनुराग युक्त होता हुआ, सौम्यभावों वाला होता हुआ और हर्षातिरेक से विकसित) हृदय होता हुआ अपने आसन से उठा। उठकर केशी कुमारश्रमण की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—भगवन्! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा है। भगवन्! इस पर प्रतीति (विश्वास) करता हूँ। भदन्त! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचता है अर्थात् तदनुरूप आचरण करने का आकांक्षी हूँ। हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अंगीकार करना चाहता हूँ। भगवन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ऐसा ही है। भगवन्! यह तथ्य-यथार्थ है। भगवन्! यह अवितथ-सत्य है। असंदिग्ध है—शंका-संदेह से रहित है। मुझे इच्छित है अर्थात् मैंने इसकी इच्छा की है। मुझे इच्छित, प्रतीच्छित है अर्थात् मैं इसकी पुनः पुनः इच्छा करता हूँ। भगवन्! यह वैसा ही है जैसा आप निरूपण—कथन करते हैं। ऐसा कहकर वन्दन-नमस्कार किया और नमस्कार करके पुनः बोला—

हे देवानुप्रिय! जिस तरह से आपके पास अनेक उग्रवंशीय, भोगवंशीय यावत् इभ्य एवं इभ्यपुत्र आदि हिरण्य—चांदी का त्याग कर, स्वर्ण को छोड़कर तथा धन, धान्य, बल, वाहन, कोश, कोठार, पुर-नगर, अन्तःपुर का त्याग कर और विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल (मूंगा) आदि सारभूत द्रव्यों का ममत्व छोड़कर, उन सबको दीन-दरिद्रों में वितरित कर, पुत्रादि में बंटवारा कर, मुंडित होकर, गृहस्थ जीवन का परित्याग कर अनगारधर्म में प्रव्रजित हुए हैं, उस प्रकार चांदी का त्याग कर यावत् प्रव्रजित होने में तो मैं समर्थ नहीं हूँ। मैं आप देवानुप्रिय के पास पंच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत मूलक बारह प्रकार का गृहीधर्म (श्रावकधर्म) अंगीकार करना चाहता हूँ।

चित्त सारथी की भावना को जानकर केशी कुमारश्रमण ने कहा—देवानुप्रिय! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा ही करो, किन्तु प्रतिबंध—विलम्ब मत करो।

विवेचन— चित्त सारथी संसारभीरु था और प्रदेशी राजा के पाप कार्यों से खेदभिन्न रहता था। लेकिन अपनी मानसिक, पारिवारिक और प्रजाजनों की स्थिति को देखकर तत्काल उसे यह सम्भव प्रतीत नहीं हुआ कि अनगार-प्रव्रज्या अंगीकार कर लूँ। इसीलिए उसने निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति भावपूर्ण शब्दों में अपनी आन्तरिक श्रद्धा का निवेदन किया।

केशी कुमारश्रमण के समक्ष जब चित्त सारथी ने अपनी आन्तरिक भावना को व्यक्त करते हुए अपने विचारों को प्रकट किया तो केशी कुमारश्रमण ने अपने मध्यस्थभाव के अनुसार कहा—अहासुहं देवाणुप्पिया ! और फिर यह

जानकर कि यह भव्य आत्मा संसारसागर से पार होने की अभिलाषी है, इसे पथप्रदर्शन एवं तदनुकूल निमित्तों का बोध कराने की आवश्यकता है। बिना पथप्रदर्शन के भटक सकती है तो हल्का सा संकेत भी उन्होंने कर दिया कि 'मा पडिबंधं करेहि।'

सारांश यह हुआ कि इच्छानुसार चित्त सारथी श्रावकधर्म ग्रहण करना चाहे तो कर ले। क्योंकि जीवनशुद्धि के लिए कम-से-कम इतना त्याग तो प्रत्येक मनुष्य को करना ही चाहिए।

२२१— तए णं से चित्ते सारही केसिकुमारसमणस्स अंतिए पंचाणुव्वतियं जाव गिहिधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरति । तए णं से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए । चाउग्घंटे आसरहं दुरूहइ, जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

२२१— तब चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण के पास पांच अणुव्रत यावत् (सात शिक्षाव्रतरूप) श्रावक धर्म को अंगीकार किया—

तत्पश्चात् चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण की वन्दना की, नमस्कार किया। नमस्कार करके जहां चार घंटों वाला अश्वरथ था, उस ओर चलने को तत्पर—उन्मुख हुआ। वहां जाकर चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ, फिर जिस ओर से आया था, वापस उसी ओर लौट गया।

**विवेचन—** श्रावक धर्म पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रतरूप है। ये दोनों मिलकर श्रावक के बारह व्रत कहलाते हैं। इनमें अणुव्रत श्रावक के मूलव्रत हैं और शिक्षाव्रत उनके पोषण, संवर्धन एवं रक्षण में सहायक वाङ्मूल्य व्रत हैं। अणुव्रतों के बिना जैसे इन शिक्षाव्रतों का महत्त्व नहीं है, उसी प्रकार इनके बिना अणुव्रतों का यथारूप में अभ्यास, पालन नहीं किया जा सकता है। शिक्षाव्रतों के अभ्यास से अणुव्रतों में उत्तरोत्तर स्थिरता आती जाती है।

पांच अणुव्रत इस प्रकार हैं—अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, स्वदार-संतोषव्रत, परिग्रहपरिमाणव्रत। १. प्राणातिपात (शरीर, इन्द्रिय आदि द्रव्यप्राणों और चैतन्यरूप भावप्राणों का घात करना) से विरत-निवृत्त होना। इस व्रत में निरपराधी त्रसजीवों की संकल्पपूर्वक विराधना का त्याग करके निष्प्रयोजन स्थावर-एकेन्द्रिय जीवों का भी प्राणव्यपरोपण (हनन) नहीं किया जाता है। २. मृषावाद (असत्य) से निवृत्त होना। ३. अदत्तादान (चोरी) से निवृत्त होना। ४. स्वदारसंतोष—अपनी परिणीता पत्नी से अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के साथ मैथुनसेवन न करना। ५. परिग्रह का परिमाण करना।

सात शिक्षाव्रतों का दो प्रकारों में विभाजन है—गुणव्रत और शिक्षाव्रत। गुणव्रत तीन और शिक्षाव्रत चार हैं। गुणव्रत अणुव्रतों के गुणात्मक विकास में सहायक एवं साधक के चारित्रगुणों की वृद्धि करने वाले हैं और शिक्षाव्रत अणुव्रतों के अभ्यास एवं साधना में स्थिरता लाने में उपयोगी हैं।

२२२— तए णं से चित्ते सारही समणोवासए जाव अहिगयजीवाजीवे, उवलद्ध पुण्ण-पावे; आसव-संवर-निज्जर-किरियाहिगरण-बंध-मोक्ख-कुसले असहिज्जे देवासुर-गाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगाईहिं देवगणेहिं निगंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, निगंथे पावयणे णिस्संकिए, णिक्कंखिए, णिव्वितिगिच्छे, लद्धे गहियडे

पुच्छियट्टे अहिगयट्टे विणिच्छियट्टे अट्टिमिंजपेम्माणुरागरत्ते—‘अयमाउसो ! निगंथे पावयणे अट्टे अयं परमट्टे सेसे अणट्टे’ ऊसियफलिहे अवंगुयदुवारे चियत्तंतेउरघरप्पवसे चाउद्दसट्टमुद्दिट्टपुण्ण-मासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे, समणेणिगंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारेणं-वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पडिलाभेमाणे, अहापरिग्गहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे, जाइं तत्थ रायकज्जाणि य जाव<sup>१</sup> रायववहाराणि य ताइं जियसत्तुणा रण्णा सद्धिं सयमेव पच्चुवेक्खमाणे पच्चुवेक्खमाणे विहरइ ।

२२२— तब वह चित्त सारथी श्रमणोपासक हो गया। उसने जीव-अजीव पदार्थों का स्वरूप समझ लिया था, पुण्य-पाप के भेद को जान लिया था, वह आश्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण (क्रिया का आधार, जिसके आधार से क्रिया की जाये), बंध, मोक्ष के स्वरूप को जानने में कुशल हो गया था, दूसरे की सहायता का अनिच्छुक (आत्मनिर्भर) था अर्थात् कुतीर्थिकों के कुतर्कों के खंडन में पर की सहायता की अपेक्षा वाला नहीं रहा। देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गंधर्व, महोरग आदि देवताओं द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से अनतिक्रमणीय था, अर्थात् विचलित किये जा सकने योग्य नहीं था। निर्ग्रन्थ-प्रवचन में निःशंक-शंकारहित था, आत्मोत्थान के सिवाय अन्य आकांक्षा रहित था। अथवा अन्य मतों की आकांक्षा उसके चित्त में नहीं थी, विचिकित्सा—फल के प्रति संशय रहित था, लब्धार्थ—(गुरुजनों से) यथार्थ तत्त्व का बोध प्राप्त कर लिया था, ग्रहीतार्थ—उसे ग्रहण किये हुए था, विनिश्चितार्थ—निश्चित रूप से उस अर्थ को आत्मसात् कर लिया था एवं अस्थि और मज्जा पर्यन्त धर्मानुराग से भरा था अर्थात् उसकी रग-रग में निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति प्रेम और अनुराग व्याप्त था। वह दूसरों को सम्बोधित करते हुए कहता था कि—आयुष्मन्! यह निर्ग्रन्थप्रवचन ही अर्थ—प्रयोजनभूत है, यही परमार्थ है, इसके सिवाय अन्य—अन्यतीर्थिक के कथन कुगतिप्रापक होने से अनर्थ—अप्रयोजनभूत हैं। असद् विचारों से रहित हो जाने के कारण उसका हृदय स्फटिक की तरह निर्मल हो गया था। निर्ग्रन्थ श्रमणों का भिक्षा के निमित्त सरलता से प्रवेश हो सकने के विचार से उसके घर का द्वार अर्गलारहित था अर्थात् सुपात्र दान के लिए उसका द्वार सदा खुला रहता था। सभी के घरों, यहां तक कि अन्तःपुर में भी उसका प्रवेश शंकारहित होने से प्रीतिजनक था। चतुर्दशी, अष्टमी, उद्दिष्ट—अमावस्या एवं पूर्णिमा को परिपूर्ण पौषधव्रत का समीचीन रूप से पालन करते हुए, श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय—स्वीकार करने योग्य—निर्दोष अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार, पीठ फलक, शैय्या, संस्तारक, आसन, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोच्छन (रजोहरण), औषध, भैषज से प्रतिलाभित करते हुए एवं यथाविधि ग्रहण किये हुए तपःकर्म से आत्मा को भावित—शुद्ध करते हुए जितशत्रु राजा के साथ रहकर स्वयं उस श्रावस्ती नगरी के राज्यकार्यों यावत् राज्यव्यवहारों का बारम्बार अवलोकन-अनुभव करते हुए विचरने लगा।

**विवेचन**— प्रस्तुत सूत्र में ऐसे मनुष्य का चरित्र-चित्रण किया है, जो जीवनशुद्धि के निमित्त धार्मिक आचार-विचारों के अनुरूप प्रवृत्ति करता है।

२२३— तए णं से जियसत्तुराया अण्णया कयाइ महत्थं जाव पाहुडं सज्जेइ, चित्तं सारहिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—गच्छाहि णं त्थं चित्ता ! सेयवियं नगरिं, पएसिस्स रत्तो इमं

महत्थं जाव पाहुडं उवणेहि । मम पाउगं च णं जहाभणियं अविताहमसंदिद्धं वयणं विन्नेवहि त्ति कट्टु विसज्जिए ।

२२३— तत्पश्चात् अर्थात् चित्त सारथी को श्रावस्ती नगरी में रहते-रहते पर्याप्त समय हो जाने के पश्चात् जितशत्रु राजा ने किसी समय महाप्रयोजनसाधक यावत् प्राभृत (उपहार) तैयार किया और चित्त सारथी को बुलाया। बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—हे चित्त! तुम वापस सेयविया नगरी जाओ और महाप्रयोजनसाधक यावत् इस उपहार को प्रदेशी राजा के सन्मुख भेंट करना तथा मेरी ओर से विनयपूर्वक उनसे निवेदन करना कि आपने मेरे लिए जो संदेश भिजवाया है, उसे उसी प्रकार अविताथ—सत्य, प्रमाणिक एवं असंदिग्ध रूप से स्वीकार करता हूं। ऐसा कहकर चित्त सारथी को सम्मानपूर्वक विदा किया।

चित्त की केशी कुमारश्रमण से सेयविया पधारने की प्रार्थना

२२४— तए णं से चित्ते सारही जियसत्तुणा रत्ता विसज्जिए समाणे तं महत्थं जाव (महग्घं, महरिहं, रायरिहं पाहुडं) गिण्हइ जाव जियसत्तुस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ । सावत्थी नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ । जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ, तं महत्थं जाव ठवइ, पहाए जाव (कयबलिकम्मे, कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पवेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकिय) सरीरे सकोरंट०<sup>१</sup> महया०<sup>२</sup> पायचारविहारेण महया पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ते रायमग्गमोगाढाओ आवासाओ निग्गच्छइ, सावत्थीनगरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छति, जेणेव कोट्टए चेइए जेणेव केसी कुमारसमणे तेणेव उवागच्छति, केसी कुमारसमणस्स अन्तिए धम्मं सोच्चा जाव (निसम्म हट्टु-तुट्टु-चित्तमाणंदिए-पीइमणे-परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए उट्टाए उट्टेइ, उट्टेत्ता केसि कुमारसमणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदई णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता) एवं वयासी—एवं खलु अहं भंते ! जियसत्तुणा रत्ता पएसिस्स रत्तो इमं महत्थं जाव उवणेहि त्ति कट्टु विसज्जिए, तं गच्छामि णं अहं भंते ! सेयवियं नगरि, पासादीया णं भंते ! सेयविया णगरी, एवं दरिसणिज्जा णं भंते ! सेयविया णगरी, अभिरूवा णं भंते ! सेयविया नगरी, पडिरूवा णं भंते ! सेयविया नगरी, समोसरह णं भंते ! तुब्भे सेयवियं नगरि ।

२२४— तत्पश्चात् जितशत्रु राजा द्वारा विदा किये गये चित्त सारथी ने उस महाप्रयोजनसाधक यावत् उपहार को ग्रहण किया यावत् जितशत्रु राजा के पास से रवाना होकर श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच से निकला। निकल कर राजमार्ग पर स्थित अपने आवास में आया और उस महार्थक यावत् उपहार को एक ओर रखा। फिर स्नान किया, यावत् शरीर को विभूषित किया, कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर विशाल जनसमुदाय के साथ पैदल ही राजमार्ग स्थित आवासगृह से निकला और श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच से चलता हुआ वहां आया जहां कोष्ठक चैत्य था, उसमें भी जहां केशी कुमारश्रमण विराजमान थे। वहां आकर केशी कुमारश्रमण से धर्म सुनकर

१. यहां '०' से 'मल्लदामेणं छत्तेणं धरेज्जमाणेणं' पदों का संग्रह किया है।

२. यहां '०' से 'भडचडगररहपहकरविंद परिक्खित्ते' पद का संग्रह किया है।

यावत् (उसका मनन कर हर्षित, परितुष्ट, चित्त में आनन्द एवं प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ, सौम्य मानसिक भावों से युक्त एवं हर्षातिरेक से विकसितहृदय होकर अपने आसन से उठा, और उठकर केशी कुमारश्रमण की तीनवार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके) इस प्रकार निवेदन किया—

भगवन्! 'प्रदेशी राजा के लिए यह महार्थक यावत् उपहार ले जाओ' कहकर जितशत्रु राजा ने मुझे विदा किया है। अतएव हे भदन्त! मैं सेयविया नगरी लौट रहा हूँ। हे भदन्त! सेयविया नगरी प्रासादीया—मन को आनन्द देने वाली है। भगवन्! सेयविया नगरी दर्शनीय—देखने योग्य है। भदन्त! सेयविया नगरी अभिरूपा—मनोहर है। भगवन्! सेयविया नगरी प्रतिरूपा—अतीव मनोहर है। अतएव हे भदन्त! आप सेयविया नगरी में पधारने की कृपा करें।

२२५— तए णं से केशी कुमारसमणे चित्तेणं सारहिणा एवं वुत्ते समाणे चित्तस्स सारहिस्स एयमट्ठं णो आढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तए णं से चित्ते सारही केशी कुमारसमणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—एवं खलु अहं भंते ! जियसत्तुणा रत्ता पएसिस्स रण्णो इमं महत्थं जाव विसज्जिए, तं चेव् जाव समोसरह णं भंते ! तुब्भे सेयवियं नगरि ।

२२५— इस प्रकार से चित्त सारथी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी के कथन का आदर नहीं किया अर्थात् उसे स्वीकार नहीं किया। वे मौन रहे।

तब चित्त सारथी ने पुनः दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—हे भदन्त! प्रदेशी राजा के लिए महाप्रयोजन साधक उपहार देकर जितशत्रु राजा ने मुझे विदा कर दिया है। अतएव मैं लौट रहा हूँ। सेयविया नगरी प्रासादिक है, आप वहां पधारने की अवश्य कृपा करें।

केशी कुमारश्रमण का उत्तर

२२६— तए णं केशी कुमारसमणे चित्तेण सारहिणा दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—चित्ता ! से जहानामए वणसंडे सिया—किण्हे किण्होभासे जाव पडिरूवे, से णूणं चित्ता ! से वणसंडे बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खी-सिरीसिवाणं अभिगमणिज्जे ?

हंता अभिगमणिज्जे ।

तंसि च णं चित्ता ! वणसंडंसि बहवे भिलुंगा नाम पावसउणा परिवसंति, जे णं तेसिं बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खी-सिरीसिवाणं ठियाणं चेव मंससोणियं आहारेंति । से णूणं चित्ता ! से वणसंडे तेसि णं बहूणं दुपय जाव सिरीसिवाणं अभिगमणिज्जे ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

कम्हा णं ?

भंते ! सोवसग्गे ।

एवामेव चित्ता ! तुब्भं पि सेयवियाए णयरीए पएसी नामं राया परिवसइ अधम्मिए जाव (अधम्मिट्ठे-अधम्मक्खाई-अधम्माणुए-अधम्मपलोई-अधम्मपजणणे-अधम्मसीलसमुयायारे-अधम्मेण

चेव वित्तिं कप्पेमाणे 'हण'-'छिंद'-'भिंद'-पवत्तए, लोहिय-पाणी, पावे, चंडे, रुद्धे, खुद्धे, साहस्सीए, उक्कंचणवंचण-माया-नियडि-कूड-कवड-सायिसंपओग-बहुले, निस्सीले, निव्वए, निग्गुणे, निम्मेरे, निप्पच्चक्खाणपोसहोववासे, बहूणं दुप्पय-चउप्पयमिय-पसु-पक्खी-सिरीसिवाण घायाए बहाए उच्छायणयाए अधम्मकेऊ, समुट्टिए गुरूण णो अब्भुट्टेति, णो विणयं पउंजइ, सयस्स वि य णं जणवयस्स) णो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तइ, तं कहं णं अहं चित्ता ! सेयवियाए नगरीए समोसरिस्सामि ?

२२६— चित्त सारथी द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार से विनति किये जाने पर केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त! जैसे कोई एक कृष्णवर्ण एवं कृष्णप्रभा वाला अर्थात् हरा-भरा यावत् अतीव मनमोहक सघन छाया वाला वनखंड हो तो हे चित्त! वह वनखंड अनेक द्विपद (मनुष्य आदि), चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृपों आदि के गमन योग्य—रहने लायक है, अथवा नहीं है ?

चित्त ने उत्तर दिया—हां भदन्त! वह उनके गमन योग्य—वास करने योग्य—होता है।

इसके पश्चात् पुनः केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से पूछा—और यदि उसी वनखण्ड में, हे चित्त! उन बहुत-से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सर्प आदि प्राणियों के रक्त-मांस को खाने वाले भीलुंगा नामक पापशकुन (पशुओं का शिकार करने वाले पापिष्ठ भील) रहते हों तो क्या वह वनखंड उन अनेक द्विपदों यावत् सरीसृपों के रहने योग्य हो सकता है ?

चित्त ने उत्तर दिया—यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् ऐसी स्थिति में वह वास करने योग्य नहीं हो सकता है।

पुनः केशी कुमारश्रमण ने पूछा—क्यों ? अर्थात् वह उनके लिए अभिगमनीय—प्रवेश करने योग्य, रहने योग्य क्यों नहीं हो सकता ?

चित्त सारथी—क्योंकि भदन्त! वह वनखंड उपसर्ग (त्रास, भय, दुःख) सहित होने से रहने योग्य नहीं है।

यह सुनकर केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी को समझाने के लिए कहा—इसी प्रकार हे चित्त! तुम्हारी सेयविया नगरी कितनी ही अच्छी हो, परन्तु वहां भी प्रदेशी नामक राजा रहता है। वह अधार्मिक यावत् (अधर्म को प्रिय मानने वाला, अधर्म का कथन और प्रचार करने वाला, अधर्म का अनुसरण करने वाला, सर्वत्र अधर्म-प्रवृत्तियों को भी देखने वाला, विशेषरूप में अधार्मिक आचार-विचारों का प्रचार करने वाला अथवा अधर्ममय प्रवृत्तियों का प्रचलन—उत्पन्न करने वाला, प्रजा को अधर्माचरण की ओर प्रेरित करने वाला, अधर्ममयस्वभाव और आचार वाला, अधर्म से ही आजीविका चलाने वाला है। अपने आश्रितों को सदैव जीवों को मारने, छेदने, भेदने की आज्ञा देने वाला है। उसके हाथ सदा खून से भरे रहते हैं। वह साक्षात् पाप का अवतार है। स्वभाव से प्रचंड क्रोधी, भयानक, क्षुद्र—अधम और बिना विचारे प्रवृत्ति करने वाला है। धूर्त-बदमाशों को प्रोत्साहन देने वाला, उकसाने वाला, लांघि—रिश्तव लेने वाला, वंचक—धोखा देने वाला, मायावी, कपटी, वकवृत्तिवत् प्रवृत्ति करने वाला, कूटकपट करने में चतुर और किसी-न-किसी उपाय से दूसरों को दुःख देने वाला है। शील और व्रतों से रहित है, क्षमा आदि गुणों का अभाव होने से निर्गुण है, निर्मर्याद है, उसके मन में प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास आदि करने का विचार ही नहीं आता है। अनेक द्विपद, चतुष्पद—मृग, पशु, पक्षी, सर्प आदि सरीसृपों की हत्या करने, उन्हें मारने, प्राणरहित करने, उनका विनाश करने से साक्षात् अधर्मरूप केतु—जैसा है। गुरुजनों का कभी विनय नहीं करता है, उनको

आदर देने के लिए आसन से भी खड़ा नहीं होता और) प्रजाजनों से राज-कर लेकर भी उनका अच्छी तरह से पालन-पोषण और रक्षण नहीं करता है। अतएव हे चित्त ! मैं उस सेयविया नगरी में कैसे आ सकता हूँ ?

**विवेचन—** प्रस्तुत सूत्र में साधु की विहारचर्या का संकेत किया है कि साधु को उन ग्राम, नगर या जनपदों में नहीं जाना चाहिए, जहां राज्य-व्यवस्था उचित नहीं हो, राजभय से प्रजा का जीवन संकट में हो, शासक अन्यायी हो अथवा दुर्भिक्ष महामारी का प्रकोप हो, युद्ध की आशंका हो, युद्ध हो रहा हो। क्योंकि ऐसे स्थानों में यथाकल्प साध्वाचार का पालन किया जाना संभव नहीं है।

२२७— तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—

किं णं भंते ! तुब्भं पएसिणा रत्ता कायव्वं ? अत्थि णं भंते ! सेयवियाए नगरीए अन्ने बहवे ईसर-तलवर जाव सत्थवाहपभिइओ जे णं देवाणुप्पियं वंदिस्संति नमंसिस्संति जाव पज्जुवासिस्संति विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभिस्संति, पाडिहारिएण पीढ-फलग-सेज्जा-संथारेणं उवनिमंतिस्संति ।

तए णं से केसी कुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—अवि या इं चित्ता ! जाणिस्सामो ।

२२७— इस उत्तर को सुनकर चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण से निवेदन किया—हे भदन्त ! आपको प्रदेशी राजा से क्या करना है—क्या लेना-देना है ? भगवन् ! सेयविया नगरी में दूसरे राजा, ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदि बहुत से जन हैं, जो आप देवानुप्रिय को वंदन करेंगे, नमस्कार करेंगे यावत् आपकी पर्युपासना करेंगे। विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, आहार से प्रतिलाभित करेंगे तथा प्रतिहारिक (वापस लौटाने योग्य) पीठ, फलक, शैय्या, संस्तारक ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रित करेंगे अर्थात् प्रार्थना करेंगे।

तब केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त ! ध्यान में रखेंगे अर्थात् तुम्हारा आमंत्रण ध्यान में रहेगा।

चित्त की उद्यानपालकों को आज्ञा

२२८— तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं वंदइ नमंसइ, केसिस्स कुमारसमणस्स अंतियाओ कोट्टयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, जेणेव सावत्थी णगरी जेणेव रायमग्ग-मोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ कोडुंबियपुरिसे सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउघंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह, जहा सेयवियाए नगरीए निग्गच्छइ तहेव जाव<sup>१</sup> वसमाणे कुणालाजणवयस्स मज्झंमज्जेणं जेणेव केइयअद्धे, जेणेव सेयविया नगरी, जेणेव मियवणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ । उज्जाणपालए सहावेइ एवं वयासी—

जया णं देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागच्छिज्जा तथा णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! केसिकुमारसमणं वंदिज्जाह, नमंसिज्जाह, वंदित्ता नमंसित्ता अहापडिरूवं उग्गहं अणुजाणेज्जाह, पडिहारिएणं पीढ-फलग जाव

उवनिमंतिज्जाह, एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणेज्जाह ।

तए णं ते उज्जाणपालगा चित्तेणं सारहिणा एवं वुत्ता समाणा हट्ट-तुट्ट जाव हियया करयलपरिग्गहियं जाव एवं वयासी—तहत्ति, आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति ।

२२८— तत्पश्चात् (केशी कुमारश्रमण से आशवासन मिलने के पश्चात्) चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण की वंदना की, नमस्कार किया और केशी कुमारश्रमण के पास से एवं कोष्ठक चैत्य से बाहर निकला। निकलकर जहां श्रावस्ती नगरी थी, जहां राजमार्ग पर स्थित अपना आवास था, वहां आया और कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर उनसे कहा—

हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घंटों वाला अश्वरथ जोतकर लाओ। इसके बाद जिस प्रकार पहले सेयविया नगरी से प्रस्थान किया था उसी प्रकार श्रावस्ती नगरी से निकल कर यावत् बीच-बीच में विश्राम करता हुआ— पड़ाव डालता हुआ, कुणाला जनपद के मध्य भाग में से चलता हुआ जहां केकय-अर्ध देश था, उसमें जहां सेयविया नगरी थी और जहां उस नगरी का मृगवन नामक उद्यान था, वहां आ पहुंचा। वहां आकर उद्यानपालकों (चौकीदारों एवं मालियों) को बुलाकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो! जब पार्श्वपत्य (भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में विचरने वाले) केशी नामक कुमारश्रमण श्रमणचर्यानुसार अनुक्रम से विचरते हुए, ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यहां पधारें तब देवानुप्रियो! तुम केशी कुमारश्रमण को वंदना करना, नमस्कार करना। वंदना-नमस्कार करके उन्हें यथाप्रतिरूप-साधुकल्पानुसार वसतिका की आज्ञा देना तथा प्रातिहारिक पीठ, फलक आदि के लिए उपनिमंत्रित करना—प्रार्थना करना और इसके बाद मेरी इस आज्ञा को शीघ्र ही मुझे वापस लौटाना अर्थात् जब केशी कुमारश्रमण का यहां पदार्पण हो जाये तो उनके आगमन की मुझे सूचना देना।

चित्त सारथी की इस आज्ञा को सुनकर वे उद्यानपालक हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए यावत् विकसितहृदय होते हुए दोनों हाथ जोड़ यावत् इस प्रकार बोले—

हे स्वामिन्! 'आपकी आज्ञा प्रमाण' और यह कहकर उसकी आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

२२९— तए णं चित्ते सारही जेणेव सेयविया णगरी तेणेव उवागच्छइ, सेयवियं नगरि मज्झंमज्झेणं अणुपविसइ, जेणेव पएसिस्स रण्णो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तुरए णिगिणहइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तं महत्थं जाव गेणहइ, जेणेव पएसी राया तेणेव उवागच्छइ, पएसिं रायं करयल जाव वद्धावेत्ता तं महत्थं जाव (महग्घं, महरिहं, रायरिहं पाहुडं) उवणेइ ।

तए णं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पडिच्छइ चित्तं सारहिं सक्कारेइ सम्माणेइ पडिविसज्जेइ ।

तए णं से चित्ते सारही पएसिणा णण्णा विसज्जिए समाणे हट्ट जाव हियए पएसिस्स रत्तो अंतियाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंटे आसरहं दुरूहइ, सेयवियं नगरि मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, तुरए णिगिणहइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ णहाए जाव उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुड्ढंमत्थएहिं बत्तीसइबद्धएहिं

नाडएहिं वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे उवगाइज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सहफरिस जाव विहरइ ।

२२९— तत्पश्चात् चित्त सारथी सेयविया नगरी में आ पहुंचा। सेयविया नगरी के मध्य भाग में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहां प्रदेशी राजा का भवन था, जहां भवन की बाह्य उपस्थानशाला थी, वहां आया। आकर घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया, रथ से नीचे उतरा और उस महार्थक यावत् भेंट को लेकर जहां प्रदेशी राजा था, वहां पहुंचा। पहुंच कर दोनों हाथ जोड़ यावत् जय-विजय शब्दों से वधाकर प्रदेशी राजा के सन्मुख उस महार्थक यावत् (महर्घ, महान् पुरुषों के योग्य, राजाओं के अनुरूप भेंट) को उपस्थित किया।

इसके बाद प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से वह महार्थक यावत् भेंट स्वीकार की और सत्कार-सम्मान करके चित्त सारथी को विदा किया।

प्रदेशी राजा से विदा लेकर चित्त सारथी हृष्ट यावत् विकसितहृदय हो प्रदेशी राजा के पास से निकला और जहां चार घंटों वाला अश्वरथ था, वहां आया। उस चातुर्घट अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ तथा सेयविया नगरी के बीचों-बीच से गुजर कर अपने घर आया। घर आकर घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया और रथ से नीचे उतरा। इसके बाद स्नान करके यावत् श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर जोर-जोर से बजाये जा रहे मृदंगों की ध्वनिपूर्वक उत्तम तरुणियों द्वारा किये जा रहे बत्तीस प्रकार के नाटकों आदि के नृत्य, गान और क्रीड़ा (लीला) को सुनता, देखता और हर्षित होता हुआ मनोज्ञ शब्द, स्पर्श यावत् (रस, रूप और गंध बहुल मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगता हुआ) विचरने लगा।

### केशी कुमारश्रमण का सेयविया में पदार्पण

२३०— तए णं केसी कुमारसमणे अण्णया कयाइ पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संधारणं पच्चप्पिणइ सावत्थीओ नगरीओ कोट्टगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पंचहिं अणगार सएहिं जाव विहरमाणे जेणेव केइयअद्धे जणवए जेणेव सेयविया नगरी, जेणेव मियवणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, अहापडिरूवं उगहं उग्गिण्हत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति ।

२३०— तत्पश्चात् किसी समय प्रातिहारिक (वापिस लौटाने योग्य) पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक आदि उन-उनके स्वामियों को सौंपकर केशी कुमारश्रमण श्रावस्ती नगरी और कोष्ठक चैत्य से बाहर निकले। निकलकर पांच सौ अन्तेवासी अनगारों के साथ यावत् विहार करते हुए जहां केकय-अर्ध जनपद था, उसमें जहां सेयविया नगरी थी और उस नगरी का मृगवन नामक उद्यान था, वहां आये। यथाप्रतिरूप अवग्रह (वसतिका की आज्ञा—अनुमति) लेकर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन— पीठ आदि को लौटाने के उपर्युक्त उल्लेख से प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में साधु पीठ, फलक, संस्तारक आदि स्वयं गृहस्थ के यहां से गवेषणापूर्वक मांग कर लाते थे और उपयोग कर लेने के बाद स्वयं ही उनके स्वामियों को वापस लौटाते थे।

२३१— तए णं सेयवियाए नगरीए सिंघाडग महया जणसद्दे वा०<sup>१</sup> परिसा णिग्गच्छइ । तए

णं ते उज्जाणपालगा इमीसे कहाए लद्धुद्धा समाणा हडुतुडु जाव हियया जेणेव केसी कुमार-समणे तेणेव उवागच्छन्ति, केसिं कुमारसमणं वंदंति नमंसंति, अहापडिरूवं उगहं अणुजाणंति, पाडिहारिणं जाव संथारणं उवनिमंतंति, णामं गोयं पुच्छंति, ओधारेंति, एगंतं अवक्कमंति, अन्नमन्नं एवं वयासी—जस्स णं देवाणुप्पिया ! चित्ते सारही दंसणं कंखइ, दंसणं पत्थेइ, दंसणं पीहेइ, दंसणं अभिलसइ, जस्स णं णामगोयस्स वि सवणयाए हडुतुडु जाव हियए भवति, से णं एस केसी कुमारसमणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे इहेव सेयवियाए णगरीए बहिया मियवणे उज्जाणे अहापडिरूवं जाव विहरइ । तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! चित्तस्स सारहिस्स एयमट्टं पियं निवेएमो, पियं से भवउ । अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्टं पडिसुणेंति ।

जेणेव सेयविया णगरी जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे, जेणेव चित्तसारही तेणेव उवागच्छंति, चित्तं सारहिं करयल जाव वद्धावेति एवं वयासी—जस्स णं देवाणुप्पिया ! दंसणं कंखंति जाव अभिलसंति, जस्स णं णामगोयस्स वि सवणयाए हडु जाव भवह, से णं अयं केसी कुमारसमणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे समोसढे जाव विहरइ ।

२३१— तत्पश्चात् (केशी कुमारश्रमण का आगमन होने के पश्चात्) सेयविया नगरी के शृंगाटकों आदि स्थानों पर लोगों में बातचीत होने लगी। यावत् परिषद् वंदना करने निकली। वे उद्यानपालक भी इस संवाद को सुनकर और समझ कर हर्षित, सन्तुष्ट हुए यावत् विकसितहृदय होते हुए जहां केशी कुमारश्रमण थे, वहां आये। आकर केशी कुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार किया एवं यथाप्रतिरूप अवग्रह (स्थान सम्बन्धी अनुमति) प्रदान की। प्रातिहारिक यावत् संस्तारक आदि ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रित किया अर्थात् उनसे लेने की प्रार्थना की।

इसके बाद उन्होंने नाम एवं गोत्र पूछकर (चित्त सारथी की आज्ञा का) स्मरण किया फिर एकान्त में वे परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार बातचीत करने लगे—‘देवानुप्रियो ! चित्त सारथी जिनके दर्शन की आकांक्षा करते हैं, जिनके दर्शन की प्रार्थना करते हैं, जिनके दर्शन की स्पृहा—चाहना करते हैं, जिनके दर्शन की अभिलाषा करते हैं, जिनका नाम, गोत्र सुनते ही हर्षित, सन्तुष्ट यावत् विकसितहृदय होते हैं, वे यही केशी कुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वी से गमन करते हुए, एक गांव से दूसरे गांव में विहार करते हुए यहां आये हैं, यहां प्राप्त हुए हैं, यहां पधारे हैं तथा इसी सेयविया नगरी के बाहर मृगवन उद्यान में यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके यावत् विराजते हैं। अतएव हे देवानुप्रियो ! हम चलें और चित्त सारथी के प्रिय इस अर्थ को (केशी कुमारश्रमण के आगमन होने के समाचार को) उनसे निवेदन करें। हमारा यह निवेदन उन्हें बहुत ही प्रिय लगेगा।’ एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया।

इसके बाद वे वहां आये जहां सेयविया नगरी, चित्त सारथी का घर तथा घर में जहां चित्त सारथी था। वहां आकर दोनों हाथ जोड़ यावत् चित्त सारथी को बधाया और इस प्रकार निवेदन किया—हे देवानुप्रिय ! आपको जिनके दर्शन की इच्छा है यावत् आप अभिलाषा करते हैं और जिनके नाम एवं गोत्र को सुनकर आप हर्षित होते हैं, ऐसे केशी कुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वी से विचरते हुए यहां (मृगवन उद्यान में) पधार गये हैं यावत् विचर रहे हैं।

## चित्त का प्रदेशी राजा को प्रतिबोध देने का निवेदन

२३२— तए णं से चित्ते सारही तेसिं उज्जाणपालगाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म हट्टुत्तु जाव आसणाओ अब्भुट्ठेति, पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पाउयाओ ओमुयइ, एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, अंजलिमउलियगहत्थे केसिकुमारसमणाभिमुहे सत्तट्टु पयाइं अणुगच्छइ करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

नमोऽत्थु णं अरहंताणं जाव<sup>१</sup> संपत्ताणं नमोऽत्थु णं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स । वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगाए, पासउ मे त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ ।

ते उज्जाणपालए विउलेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, पडिविसज्जेइ ।

कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ एवं वयासी—खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह जाव पच्चप्पिणह ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव खिप्पामेव सच्छत्तं सज्झयं जाव उवट्टवित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति । तए णं से चित्ते सारही कोडुंबियपुरिसाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुत्तु जाव हियए णहाए कयबलिकम्मे जाव सरीरे जेणेव चाउग्घंटे जाव दुरूहित्ता सकोरंटं० महया भडचडगरेणं तं चेव जाव पज्जुवासइ धम्मकहाए जाव ।

२३२— तब वह चित्त सारथी उन उद्यानपालकों से इस संवाद को सुनकर एवं हृदय में धारण कर हर्षित, संतुष्ट हुआ। चित्त में आनन्दित हुआ, मन में प्रीति हुई। परम सौमनस्य को प्राप्त हुआ। हर्षातिरेक से विकसित-हृदय होता हुआ अपने आसन से उठा, पादपीठ से नीचे उतरा, पादुकाएं उतारीं, एकशाटिक उत्तरासंग किया और मुकुलित हस्ताग्रपूर्वक अंजलि करके जिस ओर केशी कुमारश्रमण विराजमान थे, उस ओर सात-आठ डग चला और फिर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

अरिहंत भगवन्तो को नमस्कार हो यावत् सिद्धगति को प्राप्त सिद्ध भगवन्तो को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य, मेरे धर्मोपदेशक केशी कुमारश्रमण को नमस्कार हो। उनकी मैं वन्दना करता हूँ। वहां विराजमान वे भगवान् यहां विद्यमान मुझे देखें, इस प्रकार कहकर वंदन-नमस्कार किया।

इसके पश्चात् उन उद्यानपालकों का विपुल वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों से सत्कार-सन्मान किया तथा जीविकायोग्य विपुल प्रीतिदान (पारितोषिक) देकर उन्हें विदा किया। तदनन्तर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनको आज्ञा दी—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही तुम चार घंटों वाला अश्वरथ जोतकर उपस्थित करो यावत् हमें इसकी सूचना दो।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष यावत् शीघ्र ही छत्र एवं ध्वजा-पताकाओं से शोभित रथ को उपस्थित कर आज्ञा वापस लौटाते हैं—रथ लाने की सूचना देते हैं।

कौटुम्बिक पुरुषों से रथ लाने की बात सुनकर एवं हृदय में धारण कर हृष्ट-तुष्ट यावत् विकसितहृदय होते हुए

चित्त सारथी ने स्नान किया, बलिकर्म किया यावत् आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। जहां चार घण्टों वाला रथ था, वहां आया और उस पर आरूढ़ होकर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर विशाल सुभटों के समुदाय सहित रवाना हुआ। वहां पहुंच कर पर्युपासना करने लगा। केशी कुमारश्रमण ने धर्मोपदेश दिया। इत्यादि कथन पहले के समान यहां समझ लेना चाहिए।

२३३— तए णं से चित्ते सारही केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टे तहेव एवं वयासी—एवं खलु भंते ! अहं पएसी राया अधम्मिए जाव<sup>१</sup> सयस्स वि णं जणवयस्स नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेइ, तं जइ णं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं खलु होज्जा पएसिस्स रण्णो तेसिं च बहूणं दुपयचउप्पय-मियपसुपक्खीसिरीसवाणं, तेसिं च बहूणं समणमाहणभिक्खुयाणं, तं जइ णं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स बहुगुणतरं होज्जा सयस्स वि य णं जणवयस्स ।

२३३— तत्पश्चात् धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर हर्षित, सन्तुष्ट, चित्त में आनन्दित, अनुरागी, परम सौम्यभाव युक्त एवं हर्षातिरेक से विकसितहृदय होकर चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण से निवेदन किया—

हे भदन्त ! हमारा प्रदेशी राजा अधार्मिक है, यावत् राजकर लेकर भी समीचीन रूप से अपने जनपद का पालन एवं रक्षण नहीं करता है। अतएव आप देवानुप्रिय ! यदि प्रदेशी राजा को धर्म का व्याख्या करेंगे—धर्मोपदेश देंगे तो प्रदेशी राजा के लिए, साथ ही अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृपों आदि के लिए, बहुत से श्रमणों, माहणों एवं भिक्षुओं आदि के लिए बहुत-बहुत गुणकारी—हितावह, लाभदायक होगा। हे देवानुप्रिय ! यदि वह धर्मोपदेश प्रदेशी के लिए हितकर हो जाता है तो उससे जनपद—देश को भी बहुत लाभ होगा।

**केशी कुमारश्रमण का उत्तर**

२३४— तए णं केसी कुमारसमणं चित्तं सारहिं एवं वयासी—

एवं खलु चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवा केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए, तं जहा—

( १ ) आरामगयं वा उज्जाणगयं वा समणं वा माहणं वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो णमंसइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेइ, नो अट्टाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छइ, एएणं ठाणेणं चित्ता ! जीवा केवलपत्तं धम्मं नो लभंति सवणयाए ।

( २ ) उवस्सयगयं समणं वा तं चेव जाव एतेण वि ठाणेणं चित्ता ! जीवा केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभंति सवणयाए ।

( ३ ) गोयरगगयं समणं वा माहणं वा जाव नो पज्जुवासइ, णो विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभइ० णो अट्टाइं जाव पुच्छइ, एएणं ठाणेणं चित्ता ! केवलपन्नत्तं धम्मं

नो लभइ सवणयाए ।

(४) जत्थ वि य णं समणेण वा माहणेण वा सद्धिं अभिसमागच्छइ, तत्थ वि णं हत्थेण वा वत्थेण वा छत्तेण वा अप्पाणं आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्ठाइं जाव पुच्छइ, एएण वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं णो लभइ सवणयाए । एएहिं च णं चित्ता ! चउहिं ठाणेहिं जीवे णो लभइ केवलपन्नत्तं धम्मं सवणयाए ।

चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए तं जहा—(१) आरामगयं वा उज्जाणगयं वा समणं वा माहणं वा वंदइ नमंसइ जाव (सक्कारेइ, सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं) पज्जुवासइ अट्ठाइं जाव (हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं) पुच्छइ, एएणं वि जाव लभइ सवणयाए एवं (२) उवस्सयगयं (३) गोयरग्गयं समणं वा जाव पज्जुवासइ विउलेणं जाव (असण-पाण-खाइम-साइमेणं) पडिलाभेइ, अट्ठाइं जाव पुच्छइ एएण वि० (४) जत्थ वि य णं समणेण वा माहणेण वा अभिसमागच्छइ तत्थ वि य णं णो हत्थेण वा जाव (वत्थेण वा, छत्तेण वा अप्पाणं) आवरेत्ताणं चिट्ठइ, एएण वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए ।

तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगयं वा तं चेव सव्वं भाणियव्वं आइल्लएणं गमएणं जाव अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ, तं कहं णं चित्ता ! पएसिस्स रत्तो धम्ममाइक्खिस्सामो ?

२३४— चित्त सारथी की भावना को सुनने के अनन्तर केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी को समझाया—

हे चित्त ! जीव निश्चय ही इन चार कारणों से केवल-भाषित धर्म को सुनने का लाभ प्राप्त नहीं कर पाता है । वे चार कारण इस प्रकार हैं—

१. आराम (बाग) में अथवा उद्यान में स्थित श्रमण या माहन के अभिमुख जो नहीं जाता है, मधुर वचनों से जो उनकी स्तुति नहीं करता है, मस्तक नमाकर उनको नमस्कार नहीं करता है, अभ्युत्थानादि द्वारा (आसन से उठकर) उनका सत्कार नहीं करता है, उनका सम्मान नहीं करता है तथा कल्याण स्वरूप, मंगल स्वरूप, देव स्वरूप, विशिष्ट ज्ञान स्वरूप मानकर जो उनकी पर्युपासना नहीं करता है; जो अर्थ—जीवाजीवादि पदार्थों को, हेतुओं (मुक्ति के उपायों) को जानने की इच्छा से प्रश्नों को, कारणों (संसारबन्ध के कारणों) को, व्याख्याओं (तत्त्वों का पूर्ण ज्ञान करने के लिए उनके स्वरूप) को नहीं पूछता है, तो हे चित्त ! वह जीव केवल-प्रज्ञत धर्म को सुन नहीं पाता है ।

२. उपाश्रय में स्थित श्रमण आदि का वन्दन, नमन, सत्कार-सम्मान आदि करने के निमित्त जो उनके समक्ष नहीं जाता यावत् उनसे व्याकरण (तत्त्व का विवेचन) नहीं पूछता, तो इस कारण भी हे चित्त ! वह जीव केवल-भाषित धर्म को सुन नहीं पाता है ।

३. गोचरी—भिक्षा के लिए गांव में गये हुए श्रमण अथवा माहन का सत्कार आदि करने के निमित्त जो उनके समक्ष नहीं जाता यावत् उनकी पर्युपासना नहीं करता तथा विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार से उन्हें प्रतिलाभित नहीं करता एवं शास्त्र के अर्थ यावत् व्याख्या को उनसे नहीं पूछता, तो ऐसा जीव भी हे चित्त ! केवली भगवान् द्वारा निरूपित धर्म को नहीं सुन पाता है ।

४. कहीं श्रमण या माहन का सुयोग मिल जाने पर भी वहां अपने आप को छिपाने के लिए अथवा पहचाना

न जाऊं, इस विचार से, वस्त्र से, छत्ते से स्वयं को आवृत कर लेता है, ढांक लेता है एवं उनसे अर्थ आदि नहीं पूछता है, तो इस कारण से भी हे चित्त ! वह जीव केवलिप्रज्ञत धर्म श्रवण करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सकता है।

उक्त चार कारणों से हे चित्त ! जीव केवलिभाषित धर्म श्रवण करने का लाभ नहीं ले पाता है, किन्तु हे चित्त ! इन चार कारणों से जीव केवलिप्रज्ञत धर्म को सुनने का अवसर प्राप्त कर सकता है। वे चार कारण इस प्रकार हैं—

१. आराम में अथवा उद्यान में पधारे हुए श्रमण या माहन को जो वन्दन करता है, नमस्कार करता है यावत् (सत्कार सन्मान करता है और कल्याणरूप मंगलरूप देवरूप एवं ज्ञानरूप मानकर) उनकी पर्युपासना करता है, अर्थों को यावत् (हेतुओं, प्रश्नों, कारणों, व्याख्याओं को) पूछता है तो हे चित्त ! वह जीव केवलिप्ररूपित धर्म को सुनने का अवसर प्राप्त कर सकता है।

२. इसी प्रकार जो जीव उपाश्रय में रहे हुए श्रमण या माहन को वन्दन-नमस्कार करता है यावत् उनकी पर्युपासना करता हुआ अर्थों आदि को पूछता है तो वह केवलि-प्रज्ञत धर्म को सुन सकता है।

३. इसी प्रकार जो जीव गोचरी—भिक्षाचर्या के लिए गए हुए श्रमण या माहन को वन्दन-नमस्कार करता है यावत् उनकी पर्युपासना करता है तथा विपुल (अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य रूप आहार से) उन्हें प्रतिलाभित करता है, उनसे अर्थों आदि को पूछता है, वह जीव इस निमित्त से भी केवलिभाषित अर्थ को सुनने का अवसर प्राप्त कर सकता है।

४. इसी प्रकार जो जीव जहां कहीं श्रमण या माहन का सुयोग मिलने पर हाथों, वस्त्रों, छत्ता आदि से स्वयं को छिपाता नहीं है, हे चित्त ! वह जीव केवलिप्रज्ञत धर्म सुनने का लाभ प्राप्त कर सकता है।

लेकिन हे चित्त ! तुम्हारा प्रदेशी राजा जब बाग में पधारे हुए श्रमण या माहन के सन्मुख ही नहीं आता है यावत् अपने को आच्छादित कर लेता है, तो फिर हे चित्त ! प्रदेशी राजा को मैं कैसे धर्म का उपदेश दे सकूंगा ? (यहां पूर्व के चारों कारण समझ लेना चाहिए।)

### प्रदेशी राजा को लाने हेतु चित्त की युक्ति

२३५— तए णं से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं एवं वयासी—एवं खलु भंते ! अण्णया कयाइं कंबीएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया, ते मए पएसिस्स रण्णो अन्नया चव उवणीया, तं एएणं खलु भंते ! कारणेणं अहं पएसिं रायं देवाणुप्पियाणं अंतिए हव्वमाणेस्सामो, तं मा णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे पएसिस्स रत्तो, धम्ममाइक्खमाण्णा गिलाएज्जाह, अगिलाए णं भंते ! तुब्भे पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जाह, छंदेणं भंते ! तुब्भे पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जाह ।

तए णं से केसी कुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—अवि या इं चित्ता ! जाणिस्सामो।

तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं वंदइ नमंसइ, जेणेव चउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंटे आसरहं दुरूहइ, जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

२३५— केशी कुमारश्रमण के कथन को सुनने के अनन्तर चित्त सारथी ने उनसे निवेदन किया— हे भदन्त ! किसी समय कंबोज देशवासियों ने चार घोड़े उपहार रूप भेंट किये थे। मैंने उनको प्रदेशी राजा के यहां भिजवा दिया था, तो भगवन् ! इन घोड़ों के बहाने मैं शीघ्र ही प्रदेशी राजा को आपके पास लाऊंगा। तब हे देवानुप्रिय ! आप प्रदेशी

राजा को धर्मकथा कहते हुए लेशमात्र भी ग्लानि मत करना—खेदखिन्न, उदासीन न होना। हे भदन्त! आप अग्लानभाव से प्रदेशी राजा को धर्मोपदेश देना। हे भगवन् ! आप स्वेच्छानुसार प्रदेशी राजा को धर्म का कथन करना।

तब केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त! अवसर—प्रसंग आने पर देखा जायेगा।

तत्पश्चात् चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार किया और फिर जहां चार घंटों वाला अश्वरथ खड़ा था, वहां आया। आकर उस चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ। फिर जिस दिशा से आया था उसी ओर लौट गया।

२३६— तए णं से चित्ते सारही कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमल-कोमलुम्मिलियंमि अहापंडुरे पभाए कयनियमावस्सए सहस्सरस्सिमि दिणयरे तेयसा जलंते साओ गिहाओ णिग्गच्छइ, जेणेव पएसिस्स रत्तो गिहे, जेणेव पएसी राया तेणेव उवागच्छइ, पएसिं रायं करयल-जाव त्ति कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं कंबोएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया, ते य मए देवाणुप्पियाणं अण्णया चव विणइया । तं एह णं सामी ! ते आसे चिट्ठं पासह ।

तए णं से पएसी राया चित्तं सारहि एवं वयासी—गच्छाहि णं तुमं चित्ता ! तेहिं चव चउहिं आसेहिं आसरहं जुत्तामेव उवट्टुवेहि जाव पच्चप्पिणाहि ।

तए णं से चित्ते सारही पएसिणा रत्ता एवं वुत्ते समाणे हट्टुट्टु-जाव-हियए उवट्टुवेइ, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ।

तए णं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्टुट्टु जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे साओ गिहाओ निग्गच्छइ । जेणामेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंटे आसरहं दुरूहइ, सेयवियाए नगरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ ।

तए णं से चित्ते सारही तं रहं णेगाइं जोयणाइं उब्भामेइ । तए णं से पएसी राया उण्हेण य तण्हाए य रहवाएणं परिकिलंते समाणे चित्तं सारहि एवं वयासी—चित्ता ! परिकिलंते मे सरीरे, परावत्तेहि रहं ।

तए णं से चित्ते सारही रहं परावत्तेइ । जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, पएसिं रायं एवं वयासी—एस णं सामी ! मियवणे उज्जाणे, एत्थ णं आसाणं समं किलामं सम्मं अवणेमो ।

तए णं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वदासी—एवं होउ चित्ता !

२३६— तत्पश्चात् कल (आगामी दिन) रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित हो जाने से जब कोमल उत्पल कमल विकसित हो चुके और धूप भी सुनहरी हो गई तब नियम एवं आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्त्ररश्मि दिनकर के चमकने के बाद चित्त सारथी अपने घर से निकला। जहां प्रदेशी राजा का भवन था, उसमें भी जहां प्रदेशी राजा था, वहां आया। आकर दोनों हाथ जोड़ यावत् अंजलि करके जय-विजय शब्दों से प्रदेशी राजा का अभिनन्दन किया और इस प्रकार बोला—कंबोज देशवासियों ने देवानुप्रिय के लिए जो चार घोड़े उपहार-स्वरूप भेजे थे, उन्हें मैंने आप देवानुप्रिय के योग्य प्रशिक्षित कर दिया है। अतएव स्वामिन् ! आज आप

पधारिए और उन घोड़ों की गति आदि चेष्टाओं का निरीक्षण कीजिये।

तब प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त ! तुम जाओ और उन्हीं चार घोड़ों को जोतकर अश्वरथ को यहां लाओ यावत् मेरी इस आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ अर्थात् रथ आने की मुझे सूचना दो।

चित्त सारथी प्रदेशी राजा के कथन को सुनकर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ। यावत् विकसितहृदय होते हुए उसने अश्वरथ उपस्थित किया और रथ ले आने की सूचना राजा को दी।

तत्पश्चात् वह प्रदेशी राजा चित्त सारथी की बात सुनकर और हृदय में धारण कर हृष्ट-तुष्ट हुआ यावत् मूल्यवान् अल्प आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके अपने भवन से निकला और जहां चार घंटों वाला अश्वरथ था, वहां आया। आकर उस चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ होकर सेयविया नगरी के बीचों-बीच से निकला।

चित्त सारथी ने उस रथ को अनेक योजनों अर्थात् बहुत दूर तक बड़ी तेज चाल से दौड़ाया—चलाया। तब गरमी, प्यास और रथ की चाल से लगती हवा से व्याकुल-परेशान-खिन्न होकर प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त ! मेरा शरीर थक गया है। रथ को वापस लौटा लो।

तब चित्त सारथी ने रथ को लौटाया और वहां आया जहां मृगवन उद्यान था। वहां आकर प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ! यह मृगवन उद्यान है, यहां रथ को रोक कर हम घोड़ों के श्रम और अपनी थकावट को अच्छी तरह से दूर कर लें।

इस पर प्रदेशी राजा ने कहा—हे चित्त ! ठीक, ऐसा ही करो।

### केशी कुमारश्रमण को देखकर प्रदेशी का चिन्तन

२३७— तए णं से चित्ते सारही जेणेव मियवणे, उज्जाणे, जेणेव केसिस्स कुमार-समणस्स अदूरसामंते तेणेव उवागच्छइ, तुरए णिगिण्हेइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तुरए मोएति, पएसिं रायं एवं वयासी—एह णं सामी ! आसाणं समं किलामं सम्मं अवणेमो ।

तए णं से पएसी राया रहाओ पच्चोरुहइ, चित्तेण सारहिणा सद्धिं आसाणं समं किलामं सम्मं अवणेमाणे पासइ जत्थ केसीकुमारसमणं महइमहालियाए महच्चपरिसाए मज्झगए महया सहेणं धम्ममाइक्खमाणं, पासाइत्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जड्डा खलु भो ! जड्डुं पज्जुवासंति, मुंडा खलु भो ! मुंडं पज्जुवासंति, मूढा खलु भो ! मूढं पज्जुवासंति, अपंडिया खलु भो ! अपंडियं पज्जुवासंति, निव्विण्णाणा खलु भो ! निव्विण्णाणं पज्जुवासंति । से केस णं एस पुरिसे जड्डे मुंडे मूढे अपंडिए निव्विण्णाणे, सिरीए हिरीए उवगए उत्तप्पसरिरे । एसं णं पुरिसे किमाहारमाहारेइ ? किं परिणामेइ ? किं खाइ, किं पियइ, किं दलइ, किं पयच्छइ, जं णं एस एमहालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया सहेणं बूयाए ? एवं संपेहेइ चित्तं सारहिं एवं वयासी—

चित्ता ! जड्डा खलु भो ! जड्डुं पज्जुवासंति जाव बूयाए, साए वि णं उज्जाणभूमीए नो संचाएमि सम्मं पकामं पवियरित्तए !

२३७— राजा के 'हां' कहने पर चित्त सारथी ने मृगवन उद्यान की ओर रथ मोड़ा और फिर उस स्थान पर

आया जो केशी कुमारश्रमण के निवासस्थान के पास था। वहां घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया, रथ से उतरा और फिर घोड़ों को खोलकर—छोड़कर प्रदेशी राजा से कहा—हे स्वामिन्! हम यहां घोड़ों के श्रम और अपनी थकावट को दूर कर लें।

यह सुनकर प्रदेशी राजा रथ से नीचे उतरा और चित्त सारथी के साथ घोड़ों की थकावट और अपनी व्याकुलता को मिटाते हुए उस ओर देखा जहां केशी कुमारश्रमण अतिविशाल परिषद् के बीच बैठकर उच्च ध्वनि से धर्मोपदेश कर रहे थे। यह देखकर उसे मन-ही-मन यह विचार एवं संकल्प उत्पन्न हुआ—

जड़ ही जड़ की पर्युपासना करते हैं! मुंड ही मुंड की उपासना करते हैं! मूढ ही मूढ़ों की उपासना करते हैं! अपंडित ही अपंडित की उपासना करते हैं! और अज्ञानी ही अज्ञानी की उपासना-सन्मान करते हैं! परन्तु यह कौन पुरुष है जो जड़, मुंड, मूढ, अपंडित और अज्ञानी होते हुए भी श्री-ही से सम्पन्न है, शारीरिक कांति से सुशोभित है? यह पुरुष किस प्रकार का आहार करता है? किस रूप में खाये हुए भोजन को परिणमाता है? यह क्या खाता है, क्या पीता है, लोगों को क्या देता है, विशेष रूप से उन्हें क्या वितरित करता है—बांटता है—समझाता है? यह पुरुष इतने विशाल मानव-समूह के बीच बैठकर जोर-जोर से बोल रहा है। उसने ऐसा विचार किया और चित्त सारथी से कहा—

चित्त! जड़ पुरुष ही जड़ की पर्युपासना करते हैं आदि। यह कौन पुरुष है जो ऊंची ध्वनि से बोल रहा है? इसके कारण हम अपनी ही उद्यानभूमि में भी इच्छानुसार घूम-फिर नहीं सकते हैं।

२३८— तए णं से चित्ते सारही पएसीरायं एवं वयासी—एस णं सामी ! पासावच्चिज्जे केली नामं कुमारसमणे जाइसंपण्णे जावं चउनाणोवगए अधोऽवहिए अण्णजीविए ।

तए णं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी—आहोहियं णं वदासि चित्ता ! अण्णजीवियत्तं णं वदासि चित्ता !

हंता, सामी ! आहोहिअं णं वयामि, अण्णजीवियत्तं णं वयामि सामी !

अभिगमणिज्जे णं चित्ता ! एस पुरिसे ?

हंता ! सामी ! अभिगमणिज्जे ।

अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्हे एयं पुरिसं ?

हंता सामी ! अभिगच्छामो ।

२३८— तब चित्त सारथी ने प्रदेशी राजा से कहा—स्वामिन् ! ये पार्श्वपत्य ( भगवान् पार्श्वनाथ की आचार-परम्परा के अनुगामी) केशी कुमारश्रमण हैं, जो जातिसम्पन्न यावत् मतिज्ञान आदि चार ज्ञानों के धारक हैं। ये आधोऽवधिज्ञान (परमावधि से कुछ न्यून अवधिज्ञान) से सम्पन्न एवं (एषणीय) अन्नजीवी हैं।

तब आश्चर्यचकित हो प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त ! यह पुरुष अधोऽवधिज्ञान-सम्पन्न है और अन्नजीवी है ?

चित्त—हां स्वामिन्! ये आधोऽवधिज्ञानसम्पन्न एवं अन्नजीवी हैं।

प्रदेशी—हे चित्त ! तो क्या यह पुरुष अभिगमनीय है अर्थात् इस पुरुष के पास जाकर बैठना चाहिए ?

चित्त—हां स्वामिन्! अभिगमनीय है।

प्रदेशी—तो फिर, चित्त! हम इस पुरुष के पास चलें ?

चित्त—हां स्वामिन्! चलें।

२३९— तए णं से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं जेणेव केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसामंते ठिच्चा एवं वयासी—तुब्भे णं भंते ! आहोहिया अण्णजीविया ?

तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वदासी—पएसी ! से जहाणामए अंक-वाणिया इ वा, संखवाणिया इ वा, दंतवाणिया इ वा, सुकं भंसिउंकामा णो सम्मं पंथं पुच्छइ, एवामेव पएसी ! तुब्भे वि विणयं भंसेउकामो नो सम्मं पुच्छसि । से णूणं तव पएसी मम पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-जड्ढा खलु भो ! जडुं पज्जुवासंति, जाव पवियरित्तए, से णूणं पएसी अट्टे समत्थे ?

हंता ! अत्थि ।

२३९— तत्पश्चात् चित्त सारथी के साथ प्रदेशी राजा, जहां केशी कुमारश्रमण विराजमान थे, वहां आया और केशी कुमारश्रमण से कुछ दूर खड़े होकर बोला—हे भदन्त! क्या आप आधोऽवधिज्ञानधारी हैं ? क्या आप अन्नजीवी हैं ?

तब केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—हे प्रदेशी ! जैसे कोई अंकवणिक् (अंकरत्न का व्यापारी) अथवा शंखवणिक्, दन्तवणिक्, राजकर न देने के विचार से सीधा मार्ग नहीं पूछता, इसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम भी विनयप्रतिपत्ति नहीं करने की भावना से प्रेरित होकर मुझ से योग्य रीति से नहीं पूछ रहे हो। हे प्रदेशी ! मुझे देखकर क्या तुम्हें यह विचार समुत्पन्न नहीं हुआ था कि ये जड़ जड़ की पर्युपासना करते हैं, यावत् मैं अपनी ही भूमि में स्वेच्छापूर्वक घूम-फिर नहीं सकता हूं ? प्रदेशी ! मेरा यह कथन सत्य है ?

प्रदेशी—हां आपका कहना सत्य है अर्थात् मेरे मन में ऐसा विचार आया था।

२४०— तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वदासी—से केणट्टेणं भंते ! तुज्झं नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्झे मम एयारूवं अज्झत्थियं जाव संकप्पं समुप्पण्णं जाणह पासह ?

२४०— तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—हे भदन्त! तुम्हें ऐसा कौनसा ज्ञान और दर्शन है कि जिसके द्वारा आपने मेरे इस प्रकार के आन्तरिक यावत् मनोगत संकल्प को जाना और देखा ?

२४१— तए णं से केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—एवं खलु पएसी ! अहं समणाणं निगंथाणं पंचविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियणाणे सुयनाणे ओहिणाणे मणपज्जवणाणे केवलणाणे ।

से किं तं आभिणिबोहियणाणे ?

आभिणिबोहियणाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—उग्गहो ईहा अवाए धारणा ।

से किं तं उगगहे ?

उगगहे दुविहे पण्णत्ते, जहा नंदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिणिबोहियणाणे ।

से किं तं सुयनाणे ?

सुयनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अंगपविट्ठं च, अंगबाहिरं च, सव्वं भाणियव्वं जाव दिट्ठिवाओ ।

ओहिणाणं भवपच्चइयं, खओवसमियं जहा णंदीए ।

मणपज्जवनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उज्जुमई य, विउलमई य, तहेव केवलनाणं सव्वं भाणियव्वं ।

तत्थ णं जे से आभिणिबोहियणाणे से णं ममं अत्थि, तत्थ णं जे से सुयनाणे से वि य ममं अत्थि, तत्थ णं जे से ओहिणाणे से वि य ममं अत्थि, तत्थ णं जे से मणपज्जवनाणे से वि य ममं अत्थि, तत्थ णं जे से केवलनाणे से णं ममं नत्थि, से णं अरिहंताणं भगवंताणं ।

इच्चेएणं पएसी अहं तव चउव्विहेणं छउमत्थेणं णाणेणं इमेयारूवं अज्झत्थियं जाव समुप्पण्णं जाणामि पासामि ।

२४१— तब केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—हे प्रदेशी ! निश्चय ही हम निर्ग्रन्थ श्रमणों के शास्त्रों में ज्ञान के पांच प्रकार बतलाये हैं। वे पांच यह हैं—(१) आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान), (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यायज्ञान और (५) केवलज्ञान।

प्रदेशी—आभिनिबोधिक ज्ञान कितने प्रकार का है ?

केशी कुमारश्रमण—आभिनिबोधिक ज्ञान चार प्रकार का है—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा।

प्रदेशी—अवग्रह कितने प्रकार का है ?

केशी कुमारश्रमण—अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का प्रतिपादन किया है इत्यादि धारणा पर्यन्त आभिनिबोधिक ज्ञान का विवेचन नंदीसूत्र के अनुसार जानना चाहिए।

प्रदेशी—श्रुतज्ञान कितने प्रकार का है ?

केशी कुमारश्रमण—श्रुतज्ञान दो प्रकार का है, यथा अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य। दृष्टिवाद पर्यन्त श्रुतज्ञान के भेदों का समस्त वर्णन नंदीसूत्र के अनुसार यहां करना चाहिए।

भवप्रत्ययिक और क्षयोपशमिक के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का है। इनका विवेचन भी नंदीसूत्र के अनुसार यहां जान लेना चाहिए।

मनःपर्यायज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा ऋजुमति और विपुलमति। नंदीसूत्र के अनुरूप इनका भी वर्णन यहां करना चाहिए।

इसी प्रकार केवलज्ञान का भी वर्णन यहां करना चाहिए।

इन पांच ज्ञानों में से आभिनिबोधिक ज्ञान मुझे है, श्रुतज्ञान मुझे है, अवधिज्ञान भी मुझे है, मनःपर्याय ज्ञान भी मुझे प्राप्त है, किन्तु केवलज्ञान प्राप्त नहीं है। वह केवलज्ञान अरिहंत भगवन्तों को होता है।

इन चतुर्विध छाद्मस्थिक ज्ञानों के द्वारा हे प्रदेशी ! मैंने तुम्हारे इस प्रकार के आन्तरिक यावत् मनोगत संकल्प

को जाना और देखा है।

**विवेचन**— सूत्र में जैनदर्शनमान्य आभिनिबोधिक (मति) आदि पांच ज्ञानों के नाम और उन ज्ञानों के कतिपय अवान्तर भेदों का उल्लेख करके शेष विस्तृत वर्णन नंदीसूत्र के अनुसार करने का संकेत किया गया है। नंदीसूत्र के आधार से उन मति आदि पांच ज्ञानों का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है—

ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है। अतएव ज्ञानावरणकर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम से आत्मा का जो बोध रूप व्यापार होता है, वह ज्ञान है। आभिनिबोधिक आदि के भेद से ज्ञान के पांच प्रकार हैं। उनके लक्षण इस प्रकार हैं—

**आभिनिबोधिक ज्ञान**— जो ज्ञान पांच इन्द्रियों और मन के द्वारा उत्पन्न हो और सन्मुख आये हुए पदार्थों के प्रतिनियत स्वरूप को देश, काल, अवस्था की अपेक्षा इन्द्रियों के आश्रित होकर जाने, ऐसे बोध को आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं। इसका अपर नाम मतिज्ञान भी है। किन्तु अंतर यह है कि मति शब्द से ज्ञान और अज्ञान दोनों का ग्रहण किया जाता है किन्तु आभिनिबोधिक शब्द ज्ञान के लिए ही प्रयुक्त होता है।

**श्रुतज्ञान**— शब्द को सुनकर जिससे अर्थ की उपलब्धि हो, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान का कारण शब्द है अतः उपचार से शब्द के ज्ञान को भी श्रुतज्ञान कहते हैं।

**अवधिज्ञान**— इन्द्रिय और मन की अपेक्षा न रखते हुए केवल आत्मा के द्वारा रूपी—मूर्त पदार्थों का साक्षात् बोध करने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है। अवधि शब्द का अर्थ मर्यादा भी होता है। अवधि ज्ञान रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष करने की शक्ति रखता है अरूपी को नहीं, यही उसकी मर्यादा है। अथवा 'अव' शब्द अधो अर्थ का वाचक है। इसलिए जो ज्ञान अधोऽधो (नीचे-नीचे) विस्तृत जानने की शक्ति रखता है, अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा को लेकर जो ज्ञान मूर्त द्रव्यों को प्रत्यक्ष करता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

**मनःपर्यायज्ञान**— समनस्क-संज्ञी जीव किसी भी वस्तु का चिन्तन-मनन मन से ही करते हैं। मन के चिन्तनीय परिणामों को जिस ज्ञान से प्रत्यक्ष किया जाये, उसे मनःपर्याय ज्ञान कहते हैं। यद्यपि मन और मानसिक आकार-प्रकारों को प्रत्यक्ष करने की शक्ति अवधिज्ञान में भी है, किन्तु मनःपर्यायज्ञान मन के पर्यायों-आकार-प्रकारों को सूक्ष्म एवं निर्मल रूप में प्रत्यक्ष कर सकता है, अवधिज्ञान नहीं।

**केवलज्ञान**— केवल शब्द एक, असहाय, विशुद्ध, प्रतिपूर्ण, अनन्त और निरावरण, इन अर्थों में प्रयुक्त होता है। अतः इन अर्थों के अनुसार केवलज्ञान की व्याख्या इस प्रकार है—

जिसके उत्पन्न होने पर क्षयोपशमजन्य मतिज्ञानादि (आभिनिबोधिकादि) चारों ज्ञानों का विलीनीकरण होकर एक ही ज्ञान शेष रह जाये, उसे केवलज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान मन, इन्द्रिय आदि किसी की सहायता के बिना संपूर्ण मूर्त-अमूर्त (रूपी-अरूपी) ज्ञेय पदार्थों को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष करने में सक्षम हो, वह केवलज्ञान है। जो ज्ञान विशुद्धतम हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान सभी पदार्थों की प्रतिपूर्ण—समस्त पर्यायों को जानने की शक्ति वाला हो, वह केवलज्ञान है। जो ज्ञान अनन्त-अनन्त पदार्थों को जानने में सक्षम है, अथवा उत्पन्न होने के पश्चात् जिसका कभी अन्त न हो, ऐसे ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान निरावरण, नित्य और शाश्वत हो, वह केवलज्ञान है।

इन पांच प्रकार के ज्ञानों में से आदि के दो ज्ञान परोक्ष और अंतिम तीन प्रत्यक्ष हैं। मन और इन्द्रियों के माध्यम से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे परोक्ष और जो ज्ञान साक्षात् आत्मा के द्वारा होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। यद्यपि मन और इन्द्रियों के माध्यम से होने वाला ज्ञान भी किसी अपेक्षा (लौकिक दृष्टि से) प्रत्यक्ष कहा जाता है, किन्तु वह ज्ञान

मन और इन्द्रियों के आश्रित होने से परोक्ष ही है।

जब हम इन्द्रियजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कोटि में ग्रहण करते हैं तो वहां यह आशय समझना चाहिए कि लोक-प्रतिपत्ति, व्यवहार की दृष्टि से वह ज्ञान प्रत्यक्ष है, लेकिन यथार्थतः तो साक्षात् आत्मा से उत्पन्न होने वाला ज्ञान ही प्रत्यक्ष कहलाता है। इन दोनों दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए जैनदर्शन में प्रत्यक्ष के सांख्यवहारिक और पारमार्थिक ये दो भेद किये हैं। नन्दीसूत्र में इन दोनों के लिए क्रमशः इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग किया है। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र के भेद से इन्द्रियां पांच होने से इन्द्रियप्रत्यक्ष के पांच भेद हैं। कान से होने वाला ज्ञान श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्ष है, इसी प्रकार शेष इन्द्रियों के लिए समझना चाहिए। अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान एवं केवलज्ञान ये तीन नोइन्द्रियप्रत्यक्ष हैं।

उक्त नोइन्द्रियप्रत्यक्ष के तीन भेदों में से अवधिज्ञान के दो प्रकार हैं—भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक। तत्तत् योनिविशेष में जन्म लेने पर जो ज्ञान उत्पन्न हो अर्थात् जिसकी उत्पत्ति में भव प्रधान कारण हो, ऐसा ज्ञान भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कहलाता है। यह भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान देवों और नारकों को होता है। तपस्या आदि विशेष गुणों के कारण अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहते हैं। यह मनुष्यों और तिर्यचों में पाया जाता है।

क्षायोपशमिक अवधिज्ञान १. आनुगामिक, २. अनानुगामिक, ३. वर्धमान, ४. हीयमान, ५. प्रतिपातिक और ६. अप्रतिपातिक के भेद से छह प्रकार का है।

क्षायोपशमिक अवधिज्ञान के उक्त छह भेदों में से आनुगामिक अवधिज्ञान दो प्रकार का है—१. अन्तगत और २. मध्यगत। इनमें से अन्तगत अवधिज्ञान तीन प्रकार का है—१. पुरतः (आगे से) अन्तगत—जो अवधिज्ञान आगे-आगे संख्यात, असंख्यात योजनों तक पदार्थ को जाने, २. मार्गतः (पीछे से) अन्तगत—जो ज्ञान पीछे के संख्यात, असंख्यात योजनों तक के पदार्थ को जाने, ३. पार्श्वतः (दोनों पार्श्वों—बाजूओं) से अन्तगत—जो ज्ञान दोनों पार्श्वों में संख्यात, असंख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र में स्थित पदार्थों को जाने। जो ज्ञान चारों ओर के पदार्थों को जानते हुए ज्ञाता के साथ रहता है, उसे मध्यगत अवधिज्ञान कहते हैं।

अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस स्थान पर उत्पन्न होता है, उसी स्थान पर स्थित रहकर अवधिज्ञानी संख्यात, असंख्यात योजन प्रमाण सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध द्रव्यों को जानता है, अन्यत्र चले जाने पर नहीं जानता है।

जो अवधिज्ञान पारिणामिक विशुद्धि से उत्तरोत्तर दिशाओं और विदिशाओं में बढ़ता जाता है, उसे वर्धमानक अवधिज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान पारिणामिक संक्लेश के कारण उत्तरोत्तर हीन-हीन होता जाता है, वह हीयमान अवधिज्ञान है।

नारक, देव और तीर्थंकर अवधिज्ञान से युक्त ही होते हैं। वे सब दिशाओं-विदिशाओंवर्ती पदार्थों को जानते हैं, किन्तु सामान्य मनुष्यों और तिर्यचों के लिए ऐसा नियम नहीं है। वे सब दिशाओं में और एक दिशा में भी क्षयोपशम के अनुसार जानते हैं।

मनःपर्यायज्ञान पर्याप्त, गर्भज संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज सम्यग्दृष्टि, ऋद्धिसम्पन्न अप्रमत्तसंयत मुनियों में ही पाया जाता है। इसके दो भेद हैं—ऋजुमति और विपुलमति। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा ऋजुमति मनःपर्यायज्ञानी से विपुलमति मनःपर्यायज्ञान वाला अधिक-अधिक विशुद्धि, निर्मलता से पदार्थों को जानता है। वह मनुष्यक्षेत्र में रहे हुए प्राणियों के मन में परिचिन्तित अर्थ को जानने वाला है।

केवलज्ञान दो प्रकार का है—भवस्थ केवलज्ञान और सिद्ध-केवलज्ञान। भवस्थ-केवलज्ञान सयोगिकेवल और अयोगिकेवल गुणस्थानतवर्ती जीवों को होता है।

सिद्ध केवलज्ञान सिद्धों को होता है। उसके भी दो भेद हैं—१. अनन्तर-सिद्ध केवलज्ञान और २. परंपर-सिद्ध केवलज्ञान। जिन्हें सिद्ध हुए प्रथम ही समय है और जिन्हें सिद्ध हुए एक से अधिक समय हो गये हैं, उन्हें क्रमशः अनन्तरसिद्ध और परंपरसिद्ध कहते हैं और उनका केवलज्ञान अनन्तर सिद्ध-केवलज्ञान एवं परंपरसिद्ध-केवलज्ञान कहलाता है।

द्रव्य से केवलज्ञानी सर्व द्रव्यों को जानता है, क्षेत्र से सर्व लोकालोक को जानता है, काल से भूत, वर्तमान और भविष्य, इन तीनों कालवर्ती द्रव्यों को जानता है और भाव से सर्व भावों—पर्यायों को जानता है।

पूर्वोक्त प्रकार से प्रत्यक्ष ज्ञानों की संक्षेप में रूपरेखा बतलाने के अनन्तर अब परोक्ष ज्ञानों का वर्णन करते हैं।

आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान श्रुतनिश्चित और अश्रुतनिश्चित के भेद से दो प्रकार का है। श्रुतज्ञान के संस्कार के आधार से उत्पन्न होने वाले मतिज्ञान को श्रुतनिश्चित मतिज्ञान कहते हैं और जो तथाविध क्षयोपशमभाव से उत्पन्न हो, जिसमें श्रुतज्ञान के संस्कार की अपेक्षा न हो, वह अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान है।

अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान चार प्रकार का है—

१. औत्पत्तिकीबुद्धि— तथाविध क्षयोपशमभाव के कारण और शास्त्र-अभ्यास के बिना अचानक जिस बुद्धि की उत्पत्ति हो।

२. वैनयिकीबुद्धि— गुरु आदि की विनय-भक्ति से उत्पन्न बुद्धि।

३. कर्मजाबुद्धि— शिल्पादि के अभ्यास से उत्पन्न बुद्धि।

४. पारिणामिकीबुद्धि— चिरकालीन पूर्वापर पर्यालोचन से उत्पन्न बुद्धि।

श्रुतनिश्चित मतिज्ञान के चार भेद हैं—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय, (४) धारणा।

१. जो अनिर्देश्य सामान्य मात्र अर्थ को जानता है, उसे अवग्रह कहते हैं। इसके दो भेद हैं—अर्थावग्रह, व्यंजनावग्रह। जो सामान्य मात्र का ग्रहण होता है, उसे अर्थावग्रह कहते हैं। पांच इन्द्रियों और मन से अर्थावग्रह होने से अर्थावग्रह के छह भेद हैं। प्राप्यकारी श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा (जीभ) और स्पर्शन, इन चार इन्द्रियों से बद्ध—स्पृष्ट अर्थों का जो अत्यन्त अव्यक्त सामान्यात्मक ग्रहण हो, उसे व्यंजनावग्रह कहते हैं। इन चार इन्द्रियों से होने के कारण व्यंजनावग्रह के चार भेद हैं।

अर्थावग्रह में अभ्यस्तदशा तथा विशिष्ट क्षयोपशम की अपेक्षा है और व्यंजनावग्रह अनभ्यस्तावस्था एवं क्षयोपशम की मंदता में होता है। अर्थावग्रह का काल एक समय है, किन्तु व्यंजनावग्रह का असंख्यात समय है।

२. अवग्रह के उत्तर और अवाय से पूर्व सद्भूत अर्थ की पर्यालोचना रूप चेष्टा को ईहा कहते हैं। अथवा अवग्रह से जाने हुए पदार्थ में विशेष जानने की इच्छा अथवा अवग्रह द्वारा गृहीत सामान्य विषय को विशेष रूप से निश्चित करने के लिए होने वाली विचारणा ईहा है। पांच इन्द्रियों और मन के द्वारा होने से ईहा के तत्तत् नामक छह भेद हैं।

३. ईहा के द्वारा ग्रहण किये अर्थों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना, अवाय कहलाता है। ईहा की तरह इसके भी छह भेद हैं।

४. निर्णीत अर्थ का धारण करना अथवा कालान्तर में भी उसकी स्मृति हो आना धारणा है। पांच इन्द्रियों और

मन से होने के कारण धारणा के भी छह भेद हैं।

अवग्रह आदि चारों में से अवग्रह का काल एक समय, ईहा और अवाय का अन्तर्मुहूर्त्त तथा धारणा का संख्यात, असंख्यात समय प्रमाण है। पांच इन्द्रियों और मन, इन छह निमित्तों से होने वाले अर्थावग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के छह-छह भेद हैं तथा मन और चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों से होने के कारण व्यंजनावग्रह के चार भेद हैं। सब मिलाकर ये अट्ठाईस (२८) भेद हैं। ये सब पुनः विषय और क्षयोपशम की विविधता से १२-१२ प्रकार के हैं। जिससे अवग्रहादि रूप श्रुतनिश्चित मतिज्ञान के कुल मिलाकर ३३६ भेद हो जाते हैं। अश्रुतनिश्चित के औत्पत्तिकीबुद्धि आदि चार भेदों को मिलाने से मतिज्ञान के ३४० भेद होते हैं।

क्षायोपशमिक विविधता के बारह प्रकार ये हैं—

१-२. बहु-अल्पग्राही, ३-४. बहुविध-एकविधग्राही, ५-६. क्षिप्र-अक्षिप्रग्राही, ७-८. निश्चित-अनिश्चितग्राही, ९-१०. असंदिग्ध-संदिग्धग्राही, ११-१२. ध्रुव-अध्रुवग्राही।

श्रुतज्ञान के भेदों का विचार विस्तार और संक्षेप, इन दो दृष्टियों से किया गया है। विस्तार से श्रुतज्ञान के चौदह भेदों के नाम इस प्रकार हैं—

१-२. अक्षर-अनक्षर श्रुत, ३-४. संज्ञी-असंज्ञी श्रुत, ५-६. सम्यक्-मिथ्या श्रुत, ७-८. सादि-अनादि श्रुत, ९-१०. सपर्यवसित-अपर्यवसित श्रुत, ११-१२. गमिक-अगमिक श्रुत, १३-१४. अंगप्रविष्ट-अंगबाह्य श्रुत।

१-२. अक्षर-अनक्षर श्रुत— क्षर् संचलने धातु से अक्षर बनता है, 'न क्षरति-न चलति इत्यक्षरम्' अर्थात् जो अपने स्वरूप से चलित नहीं होता, उसे अक्षर कहते हैं। इसीलिए ज्ञान का नाम अक्षर है। इसके संज्ञाक्षर, व्यंजनाक्षर और लब्ध्यक्षर, ये तीन भेद हैं। अक्षर की आकृति-संस्थान, बनावट को संज्ञाक्षर कहते हैं। उच्चारण किये जाने— बोले जाने वाले अक्षर व्यंजनाक्षर हैं और शब्द को सुनकर अर्थ का अनुभवपूर्वक पर्यालोचन होना लब्धि-अक्षर कहलाता है। अनक्षरश्रुत अनेक प्रकार का है। छींकना, श्वासोच्छ्वास आदि सब अनक्षरश्रुत रूप हैं।

३-४. संज्ञी-असंज्ञी श्रुत— संज्ञी और असंज्ञी जीवों के श्रुत को क्रमशः संज्ञी, असंज्ञी श्रुत कहते हैं। कालिकी-उपदेश, हेतु-उपदेश और दृष्टिवाद-उपदेश के भेद से संज्ञिश्रुत तीन प्रकार का है।

ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, इस प्रकार के विचार-विमर्श से वस्तु के स्वरूप को अधिगत करने की शक्ति जिसमें है, वह कालिकी-उपदेश से संज्ञी है और जिसमें उक्त ईहा, अपोह आदि रूप शक्ति नहीं, वह असंज्ञी है।

जिस जीव की विचारपूर्वक क्रिया करने में प्रवृत्ति होती है, वह हेतु-उपदेश की अपेक्षा से संज्ञी है और जिसमें विचारपूर्वक क्रिया करने की शक्ति नहीं, वह असंज्ञी है।

दृष्टि दर्शन का नाम है और सम्यग्ज्ञान का नाम संज्ञा है। ऐसी संज्ञा जिसमें हो, उसे दृष्टिवादोपदेश से संज्ञी कहते हैं, उक्त संज्ञा जिसमें नहीं वह असंज्ञी है।

५-६. सम्यक् मिथ्या श्रुत— सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवन्तों द्वारा प्ररूपित श्रुत सम्यक्श्रुत और मिथ्यादृष्टि स्वच्छन्द बुद्धि वालों के द्वारा कहा गया श्रुत मिथ्याश्रुत कहलाता है। आचारांग आदि दृष्टिवाद पर्यन्त द्वादशांग रूप तथा सम्पूर्ण दशपूर्वधारी द्वारा कहा गया श्रुत सम्यक्श्रुत है।

७-८-९-१०. सादि, सपर्यवसित, अनादि, अपर्यवसित श्रुत— व्यवच्छिन्ति—पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा सादि—सपर्यवसित (सान्त) है और अव्यवच्छिन्ति—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अनादिअपर्यवसित (अनन्त) है।

११-१२. गमिक-अगमिक श्रुत— जिस श्रुत के आदि, मध्य और अवसान में किंचित् विशेषता रखते हुए पुनः-पुनः पूर्वोक्त शब्दों का उच्चारण हो, उसे गमिक श्रुत और जिस शास्त्र में पुनः-पुनः एक सरीखे पाठ न आते हों, उसे अगमिक श्रुत कहते हैं।

१३-१४. अंगप्रविष्ट-अंगबाह्य श्रुत— जिन शास्त्रों की रचना तीर्थकरों के उपदेशानुसार गणधर स्वयं करते हैं, वे अंगप्रविष्ट तथा गणधरों के अतिरिक्त अंगों का आधार लेकर स्थविरो द्वारा प्रणीत शास्त्र अंगबाह्य कहलाते हैं।

अंगप्रविष्ट श्रुत के आचारांग आदि बारह भेद हैं।

आवश्यक और आवश्यक-व्यतिरिक्त के भेद से अंगबाह्य श्रुत दो प्रकार का है। गुणों के द्वारा आत्मा को वश में करना आवश्यक है, ऐसा वर्णन जिसमें हो, उसे आवश्यक श्रुत कहते हैं। आवश्यक श्रुत के छह भेद हैं— १. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वंदना, ४. प्रतिक्रमण, ५. कायोत्सर्ग और ६. प्रत्याख्यान तथा आवश्यकव्यतिरिक्त श्रुत के दो भेद हैं—कालिक और उत्कालिक।

जो शास्त्र दिन और रात्रि के पहले और पिछले प्रहर में पढ़े जाते हैं, वे कालिक और जिनका कालवेला वर्ज कर अध्ययन किया जाता है अर्थात् अस्वाध्याय के समय को छोड़कर शेष रात्रि और दिन में पढ़े जाते हैं, वे उत्कालिक शास्त्र कहलाते हैं। उत्कालिक और कालिक शास्त्र अनेक प्रकार के हैं।

इन सभी अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य शास्त्रों का विशेष परिचय नंदीसूत्र और उसकी चूर्णि एवं वृत्ति में दिया गया है।

### तज्जीव-तच्छरीरवाद मंडन-खंडन

२४२— तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—अह णं भंते ! इहं उवविसामि ?

पएसी ! एसाए उज्जाणभूमीए तुमंसि चव जाणए ।

तए णं से पएसी राया चित्तेणं सारहिणा सद्धिं केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसामंते उवविसइ, केसिकुमारसमणं एवं वदासी—तुब्भे णं भंते ! समणाणं णिगंथाणं एसा सण्णा, एसा पइण्णा, एसा दिट्ठी, एसा रुई, एस हेऊ, एस उवएसे, एस संकप्पे, एसा तुला, एस माणे, एस पमाणे, एस समोसरणे जहा अण्णो जीवो अण्णं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं ?

२४२— केशीस्वामी के कथन को सुनने के अनन्तर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से निवेदन किया— भदन्त! क्या मैं यहां बैठ जाऊं ?

केशी—हे प्रदेशी ! यह उद्यानभूमि तुम्हारी अपनी है, अतएव बैठने या न बैठने के विषय में तुम स्वयं समझ लो—निर्णय कर लो।

तत्पश्चात् चित्त सारथी के साथ प्रदेशी राजा केशी कुमारश्रमण के समीप बैठ गया और बैठकर केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार पूछा—

भदन्त! क्या आप श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी सम्यग्ज्ञान रूप संज्ञा है, तत्त्वनिश्चय रूप प्रतिज्ञा है, दर्शन रूप दृष्टि है, श्रद्धानुगत अभिप्राय रूप रूचि है, अर्थ का प्रतिपादन करने रूप हेतु है, शिक्षा वचन रूप उपदेश है, तात्त्विक अध्यवसाय रूप संकल्प है, मान्यता है, तुला-समीचीन निश्चयकसौटी है, दृढ धारणा है, अविशंवादी दृष्ट एवं इष्ट

रूप प्रत्यक्षादि प्रमाणसंगत मंतव्य है और स्वीकृत सिद्धान्त है कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है ? अर्थात् जीव शरीर भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले हैं ? शरीर और जीव दोनों एक नहीं हैं ?

२४३— तए णं केशी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—पएसी ! अम्हं समणाणं णिग्गंथाणं एसा सण्णा जाव<sup>१</sup> एस समोसरणे, जहा अण्णो जीवो अण्णं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं ।

२४३— प्रदेशी राजा के प्रश्न को सुनकर प्रत्युत्तर में केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—हे प्रदेशी ! हम श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी संज्ञा यावत् समोसरण—सिद्धान्त है कि जीव भिन्न—पृथक् है और शरीर भिन्न है, परन्तु जो जीव है वही शरीर है, ऐसी धारणा नहीं है ।

२४४— तए णं से पएसी राया केशिं कुमारसमणं एवं वयासी—जति णं भंते ! तुब्भं समणाणं णिग्गंथाणं एसा सण्णा जाव<sup>२</sup> समोसरणे जहा अण्णो जीवो अण्णं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं, एवं खलु ममं अज्जए होत्था, इहेव जंबूदीवे दीवे सेयवियाए णगरीए अधम्मिए जाव<sup>३</sup> सगस्स वि य णं जणवयस्स नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेति, से णं तुब्भं वत्तव्वयाए सुबहुं पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उववण्णे ।

तस्स णं अज्जगस्स णं अहं णत्तुए होत्था इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए अणुमए रयणकरंडगसमाणे जीविउस्सविए हियणंदिजणणे उंवरपुप्फं पिव दुल्लभे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? तं जति णं से अज्जए ममं आगंतुं वएज्जा—

एवं खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जए होत्था, इहेव सेयवियाए नयरीए अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेमि, तए णं अहं सुबहुं पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणित्ता नरएसु उववण्णे, तं मा णं नत्तुया ! तुमं पि भवाहि अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेहि, मा णं तुमं पि एवं चेव, सुबहुं पावकम्मं जाव उववज्जिहिसि । तं जइ णं से अज्जए ममं आगंतुं वएज्जा तो णं अहं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं । जम्हा णं से अज्जए ममं आगंतुं नो एवं वयासी तम्हा सुपइट्ठिया मम पइन्ना समणाउसो ! जहा तज्जीवो तं सरीरं ।

२४४— तब प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—हे भदन्त ! यदि आप श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी संज्ञा यावत् सिद्धान्त है कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, किन्तु ऐसी मान्यता नहीं है कि जो जीव है वही शरीर है, तो मेरे पितामह, जो इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप की सेयविया नगरी में अधार्मिक यावत् राजकर लेकर भी अपने जनपद का भली-भांति पालन, रक्षण नहीं करते थे, वे आपके कथनानुसार अत्यन्त कलुषित पापकर्मों को उपाजित करके मरण-समय में मरण करके किसी एक नरक में नारक रूप में उत्पन्न हुए हैं । उन पितामह का मैं इष्ट,

१-२. देखें सूत्र संख्या २४२

३. देखें सूत्र संख्या २२६

कान्त (अभिलाषित), प्रिय, मनोज्ञ, मणाम (अति प्रिय), धैर्य और विश्वास का स्थान (आधार, पात्र), कार्य करने में सम्मत (माना हुआ), बहुत कार्य करने से माना हुआ तथा कार्य करने के बाद भी अनुमत, रत्नकरंडक (आभूषणों की पेटी) के समान, जीवन की श्वासोच्छ्वास के समान, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला, गुलर के फूल के समान जिसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की बात ही क्या है, ऐसा पौत्र हूँ। इसलिए यदि मेरे पितामह आकर मुझ से इस प्रकार कहें कि—

हे पौत्र ! मैं तुम्हारा पितामह था और इसी सेयविया नगरी में अधार्मिक यावत् प्रजाजनों से राजकर लेकर भी यथोचित रूप में उनका पालन, रक्षण नहीं करता था। इस कारण मैं बहुत एवं अतीव कलुषित पापकर्मों का संचय करके नरक में उत्पन्न हुआ हूँ। किन्तु हे नाती (पौत्र) ! तुम अधार्मिक नहीं होना, प्रजाजनों से कर लेकर उनके पालन, रक्षण में प्रमाद मत करना और न बहुत से मलिन पाप कर्मों का उपार्जन—संचय ही करना।

तो मैं आपके कथन पर श्रद्धा कर सकता हूँ, प्रतीति (विश्वास) कर सकता हूँ एवं उसे अपनी रुचि का विषय बना सकता हूँ कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है। जीव और शरीर एक रूप नहीं हैं। लेकिन जब तक मेरे पितामह आकर मुझसे ऐसा नहीं कहते तब तक हे आयुष्मन् श्रमण ! मेरी यह धारणा सुप्रतिष्ठित—समीचीन है कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है।

**विवेचन—** यहां राजा पएसी (प्रदेशी) ने अपने दादा का दृष्टान्त देकर जो कथन किया है, उसी बात को दीघनिकाय में राजा पायासि ने अपने मित्रों का उदाहरण देकर कहा है। दीघनिकाय में जिसका उल्लेख इस प्रकार से किया गया है—

राजा पायासि और कुमार काश्यप के मिलने पर पायासि अपनी शंका काश्यप के समक्ष उपस्थित करता है और काश्यप उसका समाधान करते हैं कि—राजन्व ! ये सूर्य, चन्द्र क्या हैं ? वे इहलोक हैं या परलोक हैं ? देव हैं या मानव हैं ? अर्थात् इन उदाहरणों के द्वारा काश्यप परलोक की सिद्धि करते हैं। किन्तु राजा को यह बात समझ में नहीं आती है और वह पुनः कहता है—मेरे कुछ ज्ञातिजन एवं मित्र प्राणातिपात—हिंसा आदि पापकार्यों में निरत रहते थे, उनको मैंने कह रहा था कि हिंसादिक पापकर्मों से तुम नरक में जाओ तो मुझे इसकी सूचना देना। लेकिन वे यहां आये नहीं और न कोई दूत भी भेजा। इसलिए परलोक नहीं है, मेरी यह श्रद्धा सुसंगत है।

२४५— तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वदासी—अत्थि णं पएसी ! तव सूरियकंता णामं देवी ?

हंता अत्थि ।

जइ णं तुमं पएसी ! तं सूरियकंतं देविं ण्हायं कयबलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं केणइ पुरिसेणं ण्हाएणं जाव सव्वालंकारविभूसिएणं सद्धिं इट्ठे सद-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणिं पासिज्जासि, तस्स णं तुमं पएसी ! पुरिसस्स कं दंडं निव्वत्तेज्जासि ?

अहं णं भंते ! तं पुरिसं हत्थच्छिण्णगं वा, सूलाइगं वा, सूलभिन्नगं वा, पायच्छिन्नगं वा, एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवएज्जा ।

अहं णं पएसी से पुरिसे तुमं एवं वदेज्जा—‘मा ताव मे सामी ! मुहुत्तगं हत्थच्छिण्णगं वा

जाव जीवियाओ ववरोवेहि जाव ताव अहं मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजणं एवं वयामि—एवं खलु देवाणुप्पिया ! पावाइं कम्माइं समायरेत्ता इमेयारूवं आवइं पाविज्जामि, तं मा णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे वि केइ पावाइं कम्माइं समायरह, मा णं से वि एवं चेव आवइं पाविज्जिहिह जहा णं अहं ।' तस्स णं तुमं पएसी ! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठं पडि-सुणेज्जासि ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

कम्हा णं ?

जम्हा णं भंते ! अवराही णं से पुरिसे ।

एवामेव पएसी ! तव वि अज्जए होत्था, इहेव सेयवियाए णयरीए अधम्मिए जाव<sup>१</sup> णो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेइ, से णं अहं वत्तव्वयाए सुबहुं जाव उववन्नो, तस्स णं अज्जगस्स तुमं णत्तुए होत्था इट्ठे कंते जाव<sup>२</sup> पासणयाए । से णं इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए । चउहिं ठाणेहिं पएसी अहुणोववण्णए नरएसु नेरइए इच्छेइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ—

१. अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए से णं तत्थ महब्भूयं वेयणं वेदेमाणे इच्छेज्जा माणुस्सं लोगं हव्वं ( आगच्छित्तए ) णो चेव णं संचाएइ ।

२. अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए निरयपालेहिं भुज्जो-भुज्जो समहिट्ठिज्जमाणे इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ ।

३. अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए निरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अनिज्जिन्नंसि इच्छइ माणुसं लोगं ( हव्वमागच्छित्तए ) नो चेव णं संचाएइ ।

४. एवं णेरइए निरयाउयंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिन्नंसि इच्छइ माणुसं लोगं० नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ।

इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं पएसी अहुणोववन्ने नरएसु नेरएसु इच्छइ माणुसं लोगं० णो चेव णं संचाएइ ।

तं सहहाहि णं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं जीवो तं सरीरं ।

२४५— प्रदेशी राजा की युक्ति को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा— हे प्रदेशी ! तुम्हारी सूर्यकान्ता नाम की रानी है ?

प्रदेशी—हां भदन्त ! है ।

केशी कुमारश्रमण—तो है प्रदेशी ! यदि तुम उस सूर्यकान्ता देवी को स्नान, बलिकर्म और कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त करके एवं समस्त आभरण-अलंकारों से विभूषित होकर किसी स्नान किये हुए यावत् समस्त आभरण-अलंकारों से विभूषित पुरुष के साथ इष्ट-मनोनुकूल शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंधमूलक पांच प्रकार के मानवीय

कामभोगों को भोगते हुए देख लो तो, हे प्रदेशी ! उस पुरुष के लिए तुम क्या दंड निश्चित करोगे ?

प्रदेशी—हे भगवन् ! मैं उस पुरुष के हाथ काट दूंगा, उसे शूली पर चढ़ा दूंगा, कांटों से छेद दूंगा, पैर काट दूंगा अथवा एक ही वार से जीवनरहित कर दूंगा—मार डालूंगा ।

प्रदेशी राजा के इस कथन को सुनकर केशी कुमारश्रमण ने उससे कहा—हे प्रदेशी ! यदि वह पुरुष तुमसे यह कहे कि—‘हे स्वामिन् ! आप घड़ी भर रुक जाओ, तब तक आप मेरे हाथ न काटें, यावत् मुझे जीवन रहित न करें जब तक मैं अपने मित्र, ज्ञातिजन, निजक—पुत्र आदि स्वजन-सम्बन्धी और परिचितों से यह कह आऊं कि हे देवानुप्रियो ! मैं इस प्रकार के पापकर्मों का आचरण करने के कारण यह दंड भोग रहा हूँ, अतएव हे देवानुप्रियो ! तुम कोई ऐसे पाप कर्मों में प्रवृत्ति मत करना, जिससे तुमको इस प्रकार का दंड भोगना पड़े, जैसा कि मैं भोग रहा हूँ।’ तो हे प्रदेशी ! क्या तुम क्षणमात्र के लिए उस पुरुष की यह बात मानोगे ?

प्रदेशी—हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । अर्थात् उसकी यह बात नहीं मानूंगा ।

केशी कुमारश्रमण—उसकी बात क्यों नहीं मानोगे ?

प्रदेशी—क्योंकि हे भदन्त ! वह पुरुष अपराधी है ।

तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम्हारे पितामह भी हैं, जिन्होंने इसी सेयविया नगरी में अधार्मिक होकर जीवन व्यतीत किया यावत् प्रजाजनों से कर लेकर भी उनका अच्छी तरह से पालन, रक्षण नहीं किया एवं मेरे कथनानुसार वे बहुत से पापकर्मों का उपार्जन करके नरक में उत्पन्न हुए हैं । उन्हीं पितामह के तुम इष्ट, कान्त यावत् दुर्लभ पौत्र हो । यद्यपि वे शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहते हैं किन्तु वहां से आने में समर्थ नहीं हैं । क्योंकि—प्रदेशी ! तत्काल नरक में नारक रूप से उत्पन्न जीव शीघ्र ही चार कारणों से मनुष्यलोक में आने की इच्छा तो करते हैं, किन्तु वहां से आ नहीं पाते हैं । वे चार कारण इस प्रकार हैं—

१. नरक में अधुनोत्पन्न नारक वहां की अत्यन्त तीव्र वेदना का वेदन करने के कारण मनुष्यलोक में शीघ्र आने की आकांक्षा करते हैं, किन्तु आने में असमर्थ हैं ।

२. नरक में तत्काल नैरयिक रूप से उत्पन्न जीव परमाधार्मिक नरकपालों द्वारा बारंबार ताड़ित-प्रताड़ित किये जाने से घबराकर शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा तो करते हैं, किन्तु वैसा करने में समर्थ नहीं हो पाते हैं ।

३. अधुनोत्पन्न नारक मनुष्यलोक में आने की अभिलाषा तो रखते हैं किन्तु नरक सम्बन्धी असातावेदनीय कर्म के क्षय नहीं होने, अननुभूत एवं अनिर्जीर्ण होने से वे वहां से निकलने में सक्षम नहीं हो पाते हैं ।

४. इसी प्रकार नरक सम्बन्धी आयुर्कर्म के क्षय नहीं होने से, अननुभूत एवं अनिर्जीर्ण होने से नारक जीव मनुष्यलोक में आने की अभिलाषा रखते हुए भी वहां से आ नहीं सकते हैं ।

अतएव हे प्रदेशी ! तुम इस बात पर विश्वास करो, श्रद्धा रखो कि जीव अन्य—भिन्न है और शरीर अन्य है, किन्तु यह मत मानो कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है ।

विवेचन—नरक में से जीव के न आ सकने के इन्हीं कारणों का दीघनिकाय (बौद्ध ग्रन्थ) में भी इसी प्रकार से उल्लेख किया है ।

२४६— तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वदासी—

अत्थि णं भंते! एसा पणणा उवमा, इमेण पुण कारणेण नो उवागच्छइ, एवं खलु भंते !

मम अज्जिया होत्था, इहेव सेयवियाए नगरीए धम्मिया जाव वित्तिं कप्पेमाणी समणोवासिया अभिगयजीवा० सव्वो वण्णओ जाव<sup>१</sup> अप्पाणं भावेमाणी विहरइ, सा णं तुज्झं वत्तव्वयाए सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णा, तीसे णं अज्जियाए अहं नत्तुए होत्था इट्ठे कंते जाव<sup>२</sup> पासणयाए, तं जइ णं सा अज्जिया मम आगंतुं एवं वएज्जा—एवं खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जिया होत्था, इहेव सेयवियाए नगरीए धम्मिया जाव वित्तिं कप्पेमाणी समणोवासिया जाव विहरामि । तए णं अहं सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता जाव देवलोएसु उववण्णा, तं तुमं पि णत्तुया ! भवाहि धम्मिए जाव विहराहि, तए णं तुमं पि एयं चेव सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता जाव ( कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए ) उववज्जिहिसि ।

तं जइ अज्जिया मम आगंतुं एवं वएज्जा तो णं अहं सदहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोइज्जा जहा अण्णो जीवो अण्णं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं । जम्हा सा अज्जिया ममं आगंतुं णो एवं वदासी, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा—तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ।

२४६—केशी कुमारश्रमण के पूर्वोक्त कथन को सुनने के पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण के समक्ष नया तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा—हे भदन्त ! मेरी आजी—दादी थीं । वह इसी सेयविया नगरी में धर्मपरायण यावत् धार्मिक आचार-विचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करनेवाली, जीव-अजीव आदि तत्त्वों की ज्ञाता श्रमणोपासिका यावत् तप से आत्मा को भावित करती हुई अपना समय व्यतीत करती थीं इत्यादि समस्त वर्णन यहां समझ लेना चाहिए और आपके कथनानुसार वे पुण्य का उपार्जन कर कालमास में काल करके किसी देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुई हैं । उन आर्यिका ( दादी ) का मैं इष्ट, कान्त यावत् दुर्लभदर्शन पौत्र हूं । अतएव वे आर्यिका यदि यहां आकर मुझसे इस प्रकार कहें कि—हे पौत्र ! मैं तुम्हारी दादी थी और इसी सेयविया नगरी में धार्मिक जीवन व्यतीत करती हुई श्रमणोपासिका हो यावत् अपना समय बिताती थी । इस कारण मैं विपुल पुण्य का संचय करके यावत् देवलोक में उत्पन्न हुई हूं । हे पौत्र ! तुम भी धार्मिक आचार-विचारपूर्वक अपना जीवन बिताओ । जिससे तुम भी विपुल पुण्य का उपार्जन करके यावत् ( मरणसमय में मरण करके किसी एक देवलोक में देवरूप से ) उत्पन्न होओगे ।

इस प्रकार से यदि मेरी दादी आकर मुझसे कहें कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है किन्तु वही जीव वही शरीर नहीं अर्थात् जीव और शरीर एक नहीं हैं, तो हे भदन्त ! मैं आपके कथन पर विश्वास कर सकता हूं, प्रतीति कर सकता हूं और अपनी रुचि का विषय बना सकता हूं । परन्तु जब तक मेरी दादी आकर मुझसे ऐसा नहीं कहतीं तब तक मेरी यह धारणा सुप्रतिष्ठित एवं समीचीन है कि जो जीव है वही शरीर है । किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नहीं हैं ।

**विवेचन—** यहां राजा प्रदेशी ने अपनी धार्मिक दादी का उदाहरण देकर जो व्यक्त किया, उसे दीघनिकाय में राजा पायासि ने अपने धर्मपरायण मित्रों के उदाहरण द्वारा बताया है कि आप अपनी धर्मवृत्ति के कारण स्वर्ग जाने वाले हैं और ऐसा हो तो आप मुझे यह समाचार अवश्य देना ।

१. देखें सूत्र संख्या २२२

२. देखें सूत्र संख्या २४४

२४७— तए णं केसी कुमारसमणे पएसीरायं एवं वयासी—जति णं तुमं पएसी ! ण्हायं कायबलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्तं उल्लपडसाडगं भिंगारकडुच्छुयहत्थगयं देवकुलमणुप-विसमाणं केइ य पुरिसे वच्चघरंसि ठिच्चा एवं वदेज्जा—एह ताव सामी ! इह मुहुत्तगं आसयह वा, चिट्ठह वा, निसीयह वा तुयट्ठह वा, तस्स णं तुमं पएसी ! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठं पडिसुणिज्जासि ।

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

कम्हा णं ?

भंते ! असुई असुइ सामंतो ।

एवामेव पएसी ! तव वि अज्जिया होत्था, इहेव सेयवियाए णयरीए धम्मिया जाव विहरति, सा णं अम्हं वत्तव्वाए सुबहुं जाव उववन्ना, तीसे णं अज्जियाए तुमं णत्तुए होत्था इट्ठे० किमंग पुण पासणयाए ? सा णं इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए । चऊहिं ठाणेहिं पएसी! अहुणोववण्णाए देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए-गिन्दे-गट्ठिए-अज्जोववण्णे से णं माणसे भोगे नो आढाति, नो परिजाणाति, से णं इच्छिज्ज माणुसं० नो चेव णं संचाएति ।  
२. अहुणोववण्णाए देवे देवलोएसु दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्जोववण्णे, तस्स णं माणुस्से पेम्मे वोच्छिन्नए भवति, दिव्वे पेम्मे संकंते भवति, से णं इच्छेज्जा माणुसं० णो चेव णं संचाएइ ।

३. अहुणोववण्णे देवे दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्जोववण्णे, तस्स णं एवं भवइ—इयाणिं गच्छं मुहुत्तं जाव इह गच्छं, अप्पाउया णरा कालधम्मणा संजुत्ता भवन्ति, से णं इच्छेज्जा साणुस्सं० णो चेव णं संचाएइ ।

४. अहुणोववण्णे देवे दिव्वेहिं जाव अज्जोववण्णे, तस्स माणुस्सए उराले दुग्गंधे पडिकूले पडिलोमे भवइ, उट्ठं पि य णं चत्तारि पंच जोअणसए असुभे माणुस्सए गंधे अभिसमागच्छति, से णं इच्छेज्जा माणुसं० णो चेव णं संचाइज्जा ।

इच्चेएहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्व-मागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं सदहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्नं सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं ।

२४७— प्रदेशी राजा का उक्त तर्क सुनकर केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार पूछा—हे प्रदेशी ! यदि तुम स्नान, बलिकर्म और कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त करके गीली धोती पहन, झारी और धूपदान हाथ में लेकर देवकुल में प्रविष्ट हो रहे होओ और उस समय कोई पुरुष विष्णागृह (शौचालय) में खड़े होकर यह कहे कि— हे स्वामिन् ! आओ और क्षणमात्र के लिए यहां बैठो, खड़े होओ और लेटो, तो क्या हे प्रदेशी ! एक क्षण के लिए भी तुम उस पुरुष की बात स्वीकार कर लोगे ?

प्रदेशी—हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् उस पुरुष की बात स्वीकार नहीं करूंगा।

कुमारश्रमण केशीस्वामी—उस पुरुष की बात क्यों स्वीकार नहीं करोगे ?

प्रदेशी—क्योंकि भदन्त ! वह स्थान अपवित्र है और अपवित्र वस्तुओं से भरा हुआ—व्याप्त है।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार प्रदेशी ! इसी सेयविया नगरी में तुम्हारी जो दादी धार्मिक यावत् धर्मानुराग-पूर्वक जीवन व्यतीत करती थीं और हमारी मान्यतानुसार वे बहुत से पुण्य का संचय करके यावत् देवलोक में उत्पन्न हुई हैं तथा उन्हीं दादी के तुम इष्ट यावत् दुर्लभदर्शन जैसे पौत्र हो। वे तुम्हारी दादी भी शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की अभिलाषी हैं किन्तु आ नहीं सकतीं।

हे प्रदेशी ! अधुनोत्पन्न देव देवलोक से मनुष्यलोक में आने के आकांक्षी होते हुए भी इन चार कारणों से आ नहीं पाते हैं—

१. तत्काल उत्पन्न देव देवलोक के दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन हो जाने में मानवीय भोगों के प्रति आकर्षित नहीं होते हैं, न ध्यान देते हैं और न उनकी इच्छा करते हैं। जिससे वे मनुष्यलोक में आने की आकांक्षा रखते हुए भी आने में समर्थ नहीं हो पाते हैं।

२. देवलोक सम्बन्धी दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत् तल्लीन हो जाने से अधुनोत्पन्न देव का मनुष्य संबंधी प्रेम ( आकर्षण ) विच्छिन्न—समाप्त—सा हो जाता है—टूट जाता है और देवलोक सम्बन्धी अनुराग संक्रांत हो जाने से मनुष्य लोक में आने की अभिलाषा रखते हुए भी यहां आ नहीं पाते हैं।

३. अधुनोत्पन्न देव देवलोक में जब दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत् तल्लीन हो जाते हैं तब वे सोचते तो हैं कि अब जाऊं, अब जाऊं, कुछ समय बाद जाऊंगा, किन्तु उतने समय में तो उनके इस मनुष्यलोक में अल्प-आयुषी सम्बन्धी कालधर्म ( मरण ) को प्राप्त हो चुकते हैं। जिससे मनुष्यलोक में आने की अभिलाषा रखते हुए भी वे यहां आ नहीं पाते हैं।

४. वे अधुनोत्पन्न देव देवलोक के दिव्य कामभोगों में यावत् तल्लीन हो जाते हैं कि जिससे उनकी मर्त्यलोक सम्बन्धी अतिशय तीव्र दुर्गन्ध प्रतिकूल और अनिष्टकर लगती है एवं उस मानवीय कुत्सित दुर्गन्ध के ऊपर आकाश में चार-पांच सौ योजन तक फैल जाने से मनुष्यलोक में आने की इच्छा रखते हुए भी वे उस दुर्गन्ध के कारण आने में असमर्थ हो जाते हैं।

अतएव हे प्रदेशी ! मनुष्यलोक में आने के इच्छुक होने पर भी इन चार कारणों से अधुनोत्पन्न देव देवलोक से यहां आ नहीं सकते हैं। इसलिए प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर नहीं है और न शरीर जीव है।

विवेचन— यहां दिये गये देवकुल में प्रवेश करने के उदाहरण के स्थान पर दीघनिकाय में कुमार काश्यप ने दूसरा उदाहरण दिया है—जैसे कोई पुरुष दुर्गन्धमय कूप में पड़ा हो और उसका शरीर मल से लित हो और उस पुरुष को बाहर निकलकर स्नान, शरीर पर सुगंधित तेल आदि का विलेपन और माला आदि से शृंगारित करने के बाद पुनः उसे दुर्गन्धित कूप में घुसने के लिए कहा जाए तो क्या वह उसमें घुसेगा ?

प्रत्युत्तर में राजा ने कहा—नहीं घुसेगा।

काश्यप—तो इसी प्रकार दुर्गन्धित मनुष्यलोक से स्वर्ग में पहुंचे हुए देव पुनः दूसरी बार दुर्गन्धमय मर्त्यलोक में आयेंगे क्या इत्यादि ?

मनुष्यलोक में देवों के न आने के जो कारण यहां बताये हैं, इसी प्रकार दीघनिकाय में भी कहा है कि—

इस मनुष्यलोक के सौ वर्षों के बराबर त्रायस्त्रिंश देवों का एक दिन-रात होता है। ऐसे सौ-सौ वर्ष जितने समय वाले तीस दिन-रात होते हैं, तब देवों का एक मास और ऐसे बारह मास का एक वर्ष होता है। इन त्रायस्त्रिंश देवों का ऐसे दिव्य हजार वर्षों जितना दीर्घ आयुष्य होता है। ये देव भी विचार करते हैं कि दो-तीन दिन में इन दिव्य कामगुणों को भोगने के बाद अपने मानव-सम्बन्धियों को समाचार देने जाऊंगा इत्यादि।

यहां मनुष्यलोक सम्बन्धी दुर्गन्ध ऊपर आकाश में चार-सौ, पांच-सौ योजन तक पहुंचने का उल्लेख किया है, इसके बदले दीघनिकाय में कहा है कि देवों की दृष्टि में मनुष्य अपवित्र है, दुरभिगंध वाला है, घृणित है। मनुष्यलोक सम्बन्धी दुर्गन्ध ऊपर सौ योजन तक पहुंचकर देवों को बाधा उत्पन्न करती है।

प्रस्तुत में चार-सौ, पांच-सौ योजन तक दुर्गन्ध पहुंचने का जो उल्लेख किया है उसकी नौ योजन से अधिक दूर से आते सुगंध पुद्गल घ्राणेन्द्रिय के विषय नहीं हो सकते हैं—इस शास्त्रीय उल्लेख से किस प्रकार संगति बैठ सकती है ? क्योंकि नौ योजन से अधिक दूर से जो पुद्गल आते हैं उनकी गंध अत्यन्त मंद हो जाती है, जिससे वे घ्राणेन्द्रिय के विषय नहीं हो सकते हैं।

इसका समाधान करते हुए टीकाकार ने कहा है कि यद्यपि नियम तो ऐसा ही है किन्तु जो पुद्गल अति उत्कट गंध वाले होते हैं, उनके नौ योजन तक पहुंचने पर जो दूसरे पुद्गल उनसे मिलते हैं, उनमें अपनी गन्ध संक्रांत कर देते हैं और फिर वे पुद्गल भी आगे जाकर दूसरे पुद्गलों को अपनी गंध से वासित कर देते हैं। इस प्रकार ऊपर-ऊपर पुद्गल चार सौ, पांच-सौ योजन तक पहुंचते हैं। परन्तु यह बात लक्ष्य में रखने योग्य है कि ऊपर-ऊपर वह गंध मंद-मंद होती जाती है। इसी प्रकार से मनुष्यलोक सम्बन्धी दुर्गन्ध साधारणतया चार सौ योजन तक और यदि दुर्गन्ध अत्यन्त तीव्र हो तब पांच सौ योजन तक पहुंचती है, इसीलिए मूलशास्त्र में चार सौ, पांच सौ ये दो संख्यायें बताई हैं।

इस सम्बन्ध में स्थानांग के टीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि का मतव्य है कि इससे मनुष्यक्षेत्र के दुर्गन्धित स्वरूप को सूचित किया गया है। वस्तुतः देव अथवा दूसरा कोई नौ योजन से अधिक दूर से आगत पुद्गलों की गंध नहीं जानता है, जान नहीं सकता है। शास्त्र में इन्द्रियों का जो विषयप्रमाण बतलाया है, वह संभव है कि औदारिक शरीर सम्बन्धी इन्द्रियों की अपेक्षा कहा हो। भरतादि क्षेत्र में एकान्त सुखमा काल होने पर उसकी दुर्गन्ध चार सौ योजन तक और वह काल न हो तब पांच सौ योजन तक पहुंचती है, इसीलिए दो संख्याएं बताई हैं।

२४८— तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—

अन्थि णं भंते ! एस पण्णा उवमा, इमेणं पुण कारणेणं णो उवागच्छति, एवं खलु भंते ! अहं अन्नया कयाइं वाहिरियाए उवट्टाणसालाए अणेग गणणायक-दंडणायग-राय-ईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्टि-सेणावइ-सत्थवाह-मंति-महामंति, गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्-नगर-निगम-दूय-संधिवालेहिं सद्धिं संपरिवुडे विहरामि । तए णं मम णगरगुत्तिया ससक्खं सलोहं सगेवेज्जं अवउडबंधणबद्धं चोरं उवणेति ।

तए णं अहं तं पुरिसं जीवंतं चेव अउकुंभीए पक्खिवावेमि, अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि, अएण य तउएण य आयावेमि, आयपच्चइयएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि ।

तए णं अहं अण्णया कयाइं जेणामेव सा अउकुंभी तेणामेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता तं अउकुंभिं उगलच्छावेमि, उगलच्छावित्ता तं पुरिसं सयमेव पासामि, णो चेव णं तीसे अय-कुंभीए केइ छिड्डे इ वा विवरे वा अंतरे इ वा राई वा जओ णं से जीवे अंतोहिंतो बहिया णिग्गए ।

जइ णं भंते ! तीसे अउकुंभीए होज्जा केई छिड्डे वा जाव राई वा जओ णं से जीवे अंतोहिंतो बहिया णिग्गए, तो णं अहं सहहेज्जा-पत्तिएज्जा-रोएज्जा जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं जीवो तं सरीरं, जम्हा णं भंते ! तीसे अउकुंभीए णत्थि केइ छिड्डे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपतिट्ठिया मे पइन्ना जहा—तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ।

२४८—केशी कुमारश्रमण के इस उत्तर को सुनने के अनन्तर राजा प्रदेशी ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

हे भदन्त! जीव और शरीर की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए आपने देवों के नहीं आने के कारण रूप में जो उपमा दी, वह तो बुद्धि से कल्पित एक दृष्टान्त मात्र है और देव इन कारणों से मनुष्यलोक में नहीं आते हैं। परन्तु भदन्त ! किसी एक दिन मैं अपने अनेक गणनायक (समूह के मुखिया), दंडनायक (अपराध का विचार करने वाले), राजा (जागीरदार), ईश्वर (युवराज), तलवर (राजा की ओर से स्वर्णपट्ट प्राप्त करने वाले), मांडंबिक (पांच सौ गांव के स्वामी), कौटुम्बिक (ग्राम प्रधान), इब्भ (अनेक करोड़ धन-संपत्ति के स्वामी), श्रेष्ठी (प्रमुख व्यापारी), सेनापति, सार्थवाह (देश-देशान्तर जाकर व्यापार करने वाले), मंत्री, महामंत्री, गणक (ज्योतिषशास्त्रवेत्ता), दौवारिक (राजसभा का रक्षक), अमात्य, चेट (सेवक), पीठमर्दक (समवयस्क मित्र विशेष), नागरिक, व्यापारी, दूत, संधिपाल आदि के साथ अपनी बाह्य उपस्थानशाला (सभाभवन) में बैठा हुआ था। उसी समय नगर-रक्षक चुराई हुए वस्तु और साक्षी-गवाह सहित गरदन और पीछे दोनों हाथ बांधे एक चोर को पकड़ कर मेरे सामने लाये।

तब मैंने उसे जीवित ही एक लोहे की कुंभी में बंद करवा कर अच्छी तरह लोहे के ढक्कन से उसका मुख ढंक दिया। फिर गरम लोहे एवं रांगे से उस पर लेप करा दिया और देखरेख के लिए अपने विश्वासपात्र पुरुषों को नियुक्त कर दिया।

तत्पश्चात् किसी दिन मैं उस लोहे की कुंभी के पास गया। वहां जाकर मैंने उस लोहे की कुंभी को खुलवाया। खुलवा कर मैंने स्वयं उस पुरुष को देखा तो वह मर चुका था। किन्तु उस लोह कुंभी में राई जितना न कोई छेद था, न कोई विवर था, न कोई अंतर था और न कोई दरार थी कि जिसमें से उस (अंदर बंद) पुरुष का जीव बाहर निकल जाता।

यदि उस लोहकुंभी में कोई छिद्र यावत् दरार होती तो हे भदन्त! मैं यह मान लेता कि भीतर बंद पुरुष का जीव बाहर निकल गया है और तब उससे आपकी बात पर विश्वास कर लेता, प्रतीति कर लेता एवं अपनी रुचि का विषय बना लेता—निर्णय कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव शरीर रूप नहीं और शरीर जीव रूप नहीं है।

लेकिन उस लोहकुंभी में जब कोई छिद्र ही नहीं है यावत् जीव नहीं है तो हे भदन्त! मेरा यह मंतव्य ठीक है कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है, जीव शरीर से भिन्न नहीं और शरीर जीव से भिन्न नहीं है।

२४९— तए णं केशी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

पएसी ! से जहा नामए कूडागारसाला सिया दुहओ लित्ता-गुत्ता-गुत्तदुवारा-णिवाय-गंभीरा । अह णं केइ पुरिसे भेरिं च दंडं च गहाय कूडागारसालाए अंतो अंतो अणुप्प-विसति, तीसे कूडागारसालाए सव्वतो समंता घण-निचिय-निरंतर-णिच्छिड्डाइं दुवारवयणाइं पिहेइ, तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए ठिच्चा तं भेरिं दंडएणं महया-महया सहेणं तालेज्जा, से णूणं पएसी ! से सहे णं अंतोहितो बहिया निग्गच्छइ ?

हंता णिग्गच्छइ ।

अत्थि णं पएसी ! तीसे कूडागारसालाए केइ छिडे वा जाव राई वा जओ णं से सहे अंतोहितो बहिया णिग्गए ?

नो तिणट्टे समट्टे ।

एवामेव पएसी ! जीवे वि अप्पडिहयगई पुढविं भिच्चा, सिलं भिच्चा, पव्वयं भिच्चा अंतोहितो बहिया णिग्गच्छइ, तं सहहाहि णं तुमं पएसी ! अण्णो जीवो तं चेव ।

२४९— प्रदेशी राजा की इस युक्ति को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—

हे प्रदेशी ! जैसे कोई एक कूटाकारशाला (पर्वत के शिखर जैसी आकृति वाला भवन) हो और वह भीतर-बाहर चारों ओर लीपी हुई हो, अच्छी तरह से आच्छादित हो, उसका द्वार भी गुप्त हो और हवा का प्रवेश भी जिसमें नहीं हो सके, ऐसी गहरी हो। अब यदि उस कूटाकारशाला में कोई पुरुष भेरी और बजाने के लिए डंडा लेकर घुस जाये और घुसकर उस कूटाकारशाला के द्वार आदि को इस प्रकार चारों ओर से बंद कर दे कि जिससे कहीं पर भी थोड़ा-सा अंतर नहीं रहे और उसके बाद उस कूटाकारशाला के बीचों-बीच खड़े होकर डंडे से भेरी को जोर-जोर से बजाये तो हे प्रदेशी ! तुम्ही बताओ कि वह भीतर की आवाज बाहर निकलती है अथवा नहीं ? अर्थात् सुनाई पड़ती है या नहीं ?

प्रदेशी—हां भदन्त ! निकलती है।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी ! क्या उस कूटाकारशाला में कोई छिद्र यावत् दरार है कि जिसमें से वह शब्द बाहर निकलता हो ?

प्रदेशी—हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् वहां पर कोई छिद्रादि नहीं कि जिससे शब्द बाहर निकल सके।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार प्रदेशी ! जीव भी अप्रतिहत गति वाला है। वह पृथ्वी का भेदन कर, शिला का भेदन कर, पर्वत का भेदन कर भीतर से बाहर निकल जाता है। इसीलिए हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा—प्रतीति करो कि जीव और शरीर भिन्न-भिन्न (पृथक्-पृथक्) हैं, जीव शरीर नहीं है और शरीर जीव नहीं है।

२५०— तए णं पएसी राया केशि कुमारसमणं एवं वदासी—

अत्थि णं भंते ! एस पण्णा उवमा, इमेणं पुण कारणेणं णो उवागच्छइ, एवं खलु भंते ! अहं अन्नया कयाइ बाहिरियाए उवट्टाणसालाए जाव<sup>१</sup> विहरामि, तए णं ममं णगर-

गुत्तिया ससक्खं जाव<sup>१</sup> उवणोति, तए णं अहं (तं) पुरिसं जीवियाओ ववरोवेमि, जीवियाओ ववरोवेत्ता अयोकुंभीए पक्खिवावेमि, अउमएणं पिहावेमि जाव<sup>१</sup> पच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि ।

तए णं अहं अन्नया कयाइं जेणेव सा कुंभी तेणेव उवागच्छामि, तं अउकुंभिं उगलच्छा-वेमि, तं अउकुंभिं किमिकुंभिं पिव पासामि । णो चेव णं तीसे अउकुंभीए केइ छिड्डे इ वा जाव राई वा जता णं ते जीवा बहियाहिंतो अणुपविट्ठा, जति णं तीसे अउकुंभीए होज्ज केइ छिड्डे इ वा जाव अणुपविट्ठा, तेणं अहं सहहेज्जा तहा—अन्नो जीवो तं चेव, जम्हा णं तीसे अउकुंभीए नत्थि केइ छिड्डे इ वा जाव अणुपविट्ठा तम्हा सुपतिट्ठिआ मे पइण्णा जहा—तं जीवो तं सरिरं तं चेव ।

२५०— इस उत्तर को सुनने के पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

भदन्त ! यह आप द्वारा प्रयुक्त उपमा तो बुद्धिविशेष रूप है, इससे मेरे मन में जीव और शरीर की भिन्नता का विचार युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि हे भदन्त ! किसी समय मैं अपनी बाहरी उपस्थानशाला में गणनायक आदि के साथ बैठा हुआ था। तब मेरे नगररक्षकों ने साक्षी सहित यावत् एक चोर पुरुष को उपस्थित किया। मैंने उस पुरुष को प्राणरहित कर दिया अर्थात् मार डाला और मारकर एक लोहकुंभी में डलवा दिया, ढक्कन से ढांक दिया यावत् अपने विश्वासपात्र पुरुषों को रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया।

इसके बाद किसी दिन जहां वह कुंभी थी, मैं वहां आया। आकर उस लोहकुंभी को उघाड़ा तो उसे कृमिकुल से व्याप्त देखा। लेकिन उस लोहकुंभी में न तो कोई छेद था, न कोई दरार थी कि जिसमें से वे जीव बाहर से उसमें प्रविष्ट हो सकें। यदि उस लोहकुंभी में कोई छेद होता यावत् दरार होती तो यह माना जा सकता था—मान लेता कि वे जीव उनमें से होकर कुंभी में प्रविष्ट हुए हैं और तब मैं श्रद्धा कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है। लेकिन जब उस लोहकुंभी में कोई छेद आदि नहीं थे, फिर भी उसमें जीव प्रविष्ट हो गये। अतः मेरी यह प्रतीति सुप्रतिष्ठित-समीचीन है कि जीव और शरीर एक ही हैं अर्थात् जीव शरीर रूप है और शरीर जीव रूप है।

२५१— तए णं केसी कुमारसमणे पएसीं रायं एवं वयासी—

अत्थि णं तुमे पएसी ! कयाइ अए धंतपुव्वे वा धम्मावियपुव्वे वा ?

हंता अत्थि ।

से णूणं पएसी ! अए धंते समाणे सव्वे अगणिपरिणए भवति ?

हंता भवति ।

अत्थि णं पएसी ! तस्स अयस्स केइ छिड्डे इ वा जेणं से जोई बहियाहिंतो अंतो अणु-पविट्ठे ?

नो इणमट्ठे (इणट्ठे) समट्ठे ।

एवामेव पएसी ! जीवो वि अप्पडिहयगई पुढविं भिच्चा, सिलं भिच्चा बहियाहिंतो अणु-पविसइ, तं सहहाहि णं तुमं पएसी ! तहेव ।

२५१— तत्पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—हे प्रदेशी! क्या तुमने पहले कभी अग्नि से तपाया हुआ लोहा देखा है अथवा स्वयं लोहे को तपवाया है ?

प्रदेशी—हां भदन्त! देखा है।

केशी कुमारश्रमण—तब हे प्रदेशी! तपाये जाने पर वह लोहा पूर्णतया अग्नि रूप में परिणत हो जाता है. या नहीं ?

प्रदेशी—हां भदन्त ! हो जाता है।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी ! उस लोहे में कोई छिद्र आदि है क्या, जिससे वह अग्नि बाहर से उसके भीतर प्रविष्ट हो गई ?

प्रदेशी—भदन्त ! यह अर्थ तो समर्थ नहीं है। अर्थात् उस लोहे में कोई छिद्र आदि नहीं होता।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी! जीव भी अप्रतिहत गति वाला है, जिससे वह पृथ्वी, शिला आदि का भेदन करके बाहर से भीतर प्रविष्ट हो जाता है। इसीलिए हे प्रदेशी! तुम इस बात की श्रद्धा—प्रतीति करो कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है।

**विवेचन**— केशी कुमारश्रमण के कथन का यह आशय है कि ये जीव दूसरी गति से च्यवन कर इस मृतक शरीर में आकर उत्पन्न हुए हैं।

२५२— तए णं पएसी राया केसीकुमारसमणं एवं वयासी—

अत्थि णं भंते ! एस पण्णा उवमा, इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ, अत्थि णं भंते ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए पभू पंचकंडगं निसिरित्तए ?

हंता, पभू ।

जति णं भंते ! सो च्चेव पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे पभू होज्जा पंचकंडगं निसिरित्तए, तो णं अहं सहहेज्जा जहा—अन्नो जीवो तं चेव, जम्हा णं भंते ! स चेव से पुरिसे जाव मंदविन्नाणे णो पभू पंचकंडगं निसिरित्तए, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा—तं जीवो तं चेव ।

२५२— पूर्वोक्त युक्ति को सुनकर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—बुद्धि-विशेषजन्य होने से आपकी उपमा वास्तविक नहीं है। किन्तु जो कारण मैं बता रहा हूँ, उससे जीव और शरीर की भिन्नता सिद्ध नहीं होती है। वह कारण इस प्रकार है—

हे भदन्त! जैसे कोई एक तरुण यावत् (युगवान्, बलशाली, निरोग, स्थिर, संहनन वाला, सुदृढ़ पहुंचा वाला, हाथ-पैर-पीठ-जंघाओं आदि से संपन्न, सघन-सुदृढ़, गोल-गोल कंधे वाला, चमड़े के पट्टों, मुष्टिकाओं आदि के प्रहारों से सुगठित शरीर वाला, हृदय बल से संपन्न, सहोत्पन्न ताल वृक्ष के समान बाहु-युगल वाला, लांघने-कूदने-चलने में समर्थ, चतुर, दक्ष, कुशल, बुद्धिमान्) और अपना कार्य सिद्ध करने में निपुण पुरुष क्या एक साथ पांच वाणों को निकालने में समर्थ है ?

केशी कुमारश्रमण—हां वह समर्थ है।

प्रदेशी—लेकिन वही पुरुष यदि बाल यावत् मंदविज्ञान वाला होते हुए भी पांच वाणों को एक साथ निकालने

में समर्थ होता तो हे भदन्त ! मैं यह श्रद्धा कर सकता था कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, जीव शरीर नहीं है। लेकिन वही बाल, मंदविज्ञान वाला पुरुष पांच वाणों को एक साथ निकालने में समर्थ नहीं है, इसलिए भदन्त ! मेरी यह धारणा कि जीव और शरीर एक हैं, जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है, सुप्रतिष्ठित—प्रामाणिक, सुसंगत है।

२५३— तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवएणं घणुणा नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचकंडगं निसिरित्तए ?

हंता; पभू ।

सो चेव णं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगते कोरिल्लिएणं धणुणा कोरिल्लियाए जीवाए कोरिल्लिएणं इसुणा पभू पंचकंडगं निसिरित्तए ?

णो तिणट्टे समट्टे ।

कम्हा णं ?

भंते ! तस्स पुरिसस्स अपज्जत्ताइं उवगरणाइं हवंति ।

एवामेव पएसी ! सो चेव पुरिसे बाले जाव मंदविज्ञाने अपज्जत्तोवगरणे, णो पभू पंचकंडयं निसिरित्तए, तं सहहाहि णं तुमं पएसी ! जहा अन्नो जीवो तं चेव ।

२५३— राजा प्रदेशी के इस तर्क के प्रत्युत्तर में केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—जैसे कोई एक तरुण यावत् कार्य करने में निपुण पुरुष नवीन धनुष, नई प्रत्यंचा (डोरी) और नवीन बाण से क्या एक साथ पांच वाण निकालने में समर्थ है अथवा नहीं है ?

प्रदेशी—हां समर्थ है।

केशी कुमारश्रमण—लेकिन वही तरुण यावत् कार्य—कुशल पुरुष जीर्ण—शीर्ण, पुराने धनुष, जीर्ण प्रत्यंचा और वैसे ही जीर्ण बाण से क्या एक साथ पांच वाणों को छोड़ने में समर्थ हो सकता है ?

प्रदेशी—भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् पुराने धनुष आदि से वह एक साथ पांच वाण छोड़ने में समर्थ नहीं होगा।

केशी कुमारश्रमण—क्या कारण है कि जिससे यह अर्थ समर्थ नहीं है ?

प्रदेशी—भदन्त ! उस पुरुष के पास उपकरण (साधन) अपर्याप्त हैं।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! वह बाल यावत् मंदविज्ञान पुरुष योग्यता रूप उपकरण की अपर्याप्तता के कारण एक साथ पांच वाणों को छोड़ने में समर्थ नहीं हो पाता है। अतः प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा—प्रतीति करो कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् हैं, जीव शरीर नहीं और शरीर जीव नहीं है।

२५४— तए णं पएसी राया केसीकुमारसमणं एवं वयासी—

अत्थि णं भंते ! एस पण्णा उवमा, इमेण पुण कारणेणं नो उवागच्छइ, भंते ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगते पभू एणं महं अयभारगं वा तउयभारगं वा सीसग-भारगं वा परिवहित्तए ?

हंता पभू ।

सो चेव णं भंते ! पुरिसे जुन्ने जराजज्जरियदेहे सिढिलवलितयाविणट्टगत्ते दंडपरिग्गहियग्ग-हत्थे पविरलपरिसडियदंतसेढी आउरे किसिए पिवासिए दुब्बले किलंतंते नो पभू एगं महं अय-भारंगं वा जाव परिवहत्तए, जति णं भंते ! सच्चेव पुरिसे जुन्ने जराजज्जरियदेहे जाव परि-किलंतंते पभू एगं महं अयभारं वा जाव परिवहत्तए तो णं सहहेज्जा तहेव, जम्हा णं भंते ! से चेव पुरिसे जुन्ने जाव किलंतंते नो पभू एगं महं अयभारं वा जाव परिवहत्तए, तम्हा सुपतिट्ठिता मे पडण्णा तहेव ।

२५४— इस उत्तर को सुनकर प्रदेशी राजा ने पुनः केशी कुमारश्रमण से कहा—हे भदन्त ! यह तो प्रज्ञान्य उपमा है, वास्तविक नहीं है। किन्तु मेरे द्वारा प्रस्तुत हेतु से तो यही सिद्ध होता है कि जीव और शरीर में भेद नहीं है। वह हेतु इस प्रकार है—

भदन्त ! कोई एक तरुण यावत् कार्यक्षम पुरुष एक विशाल वजनदार लोहे के भार की, सीसे के भार को या रांगे के भार को उठाने में समर्थ है अथवा नहीं है ?

केशी कुमारश्रमण—हां समर्थ है।

प्रदेशी—लेकिन भदन्त ! जब वही पुरुष वृद्ध हो जाए और वृद्धावस्था के कारण शरीर जर्जरित, शिथिल, झुर्रियों वाला एवं अशक्त हो, चलते समय सहारे के लिए हाथ में लकड़ी ले, दंतपंक्ति में से बहुत से दांत गिर चुके हों, खांसी, श्वास आदि रोगों से पीड़ित होने के कारण कमजोर हो, भूख-प्यास से व्याकुल रहता हो, दुर्बल और क्लान्त—थका-मांदा हो तो उस वजनदार लोहे के भार को, रांगे के भार को अथवा सीसे के भार को उठाने में समर्थ नहीं हो पाता है। हे भदन्त ! यदि वही पुरुष वृद्ध, जरा-जर्जरित शरीर यावत् परिवक्लान्त होने पर भी उस विशाल लोहे के भार आदि को उठाने में समर्थ होता तो मैं यह विश्वास कर सकता था कि जीव शरीर से भिन्न है और शरीर जीव से भिन्न है, जीव और शरीर एक नहीं हैं। लेकिन भदन्त ! वह पुरुष वृद्ध यावत् क्लान्त हो जाने से एक विशाल लोहे के भार आदि को उठाने में समर्थ नहीं है। अतः मेरी यह धारणा सुसंगत—समीचीन है कि जीव और शरीर, दोनों एक ही हैं, किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

२५५— तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

से जहाणामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवियाए विहंगियाए, णवएहिं सिक्कएहिं, णवएहिं पच्छियपिंडएहिं पहू एगं महं अयभारं जाव (वा तउयभारं वा सीसगभारं वा) परिवहत्तए ?

हंता पभू ।

पएसी ! से चेव णं पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए जुन्नियाए दुब्बलियाए घुणक्खइयाए विहंगियाए जुण्णएहिं दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं सिढिलतयापिणद्धएहिं सिक्कएहिं, जुण्णएहिं दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं पच्छिपिंडएहिं पभू एगं महं अयभारं वा जाव परिवहत्तए ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

कम्ह्ण णं ?

भंते ! तस्स पुरिसस्स जुन्नाइं उवगरणाइं भवंति ।

पएसी ! से चेव से पुरिसे जुन्ने जाव<sup>१</sup> किलंते जुत्तोवगरणे नो पभू एगं महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए, तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ।

२५५— प्रदेशी राजा की इस बात को सुनकर केशी कुमारश्रमण ने राजा प्रदेशी से कहा—जैसे कोई एक तरुण यावत् कार्यनिपुण पुरुष नवीन कावड़ से, रस्सी से बने नवीन सींके से और नवीन टोकनी से एक बहुत बड़े, वजनदार लोहे के भार को यावत् (रांगे और सीसे के भार को) वहन करने में (उठाने, ढोने में) समर्थ है या नहीं है ?

प्रदेशी—हां समर्थ है ।

केशी कुमारश्रमण—अब मैं पुनः तुम से पूछता हूँ कि—हे प्रदेशी ! वही तरुण यावत् कार्यकुशल पुरुष क्या सड़ी-गली, पुरानी, कमजोर, घुन से खाई हुई कावड़ से, जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल, दीमक के खाये एवं ढीले-ढाले सींके से और पुराने, कमजोर और दीमक लगे टोकने से एक बड़े वजनदार लोहे के भार आदि को ले जाने में समर्थ है ?

प्रदेशी—हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । अर्थात् जीर्ण-शीर्ण कावड़ आदि से भार ले जाने में समर्थ नहीं है ।

केशी कुमारश्रमण—क्यों समर्थ नहीं है ।

प्रदेशी—क्योंकि भदन्त ! उस पुरुष के पास भारवहन करने के उपकरण—साधन जीर्ण-शीर्ण हैं ।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! वह पुरुष जीर्ण यावत् क्लान्त शरीर आदि उपकरणों वाला होने से एक भारी वजनदार लोहे के भार को यावत् (सीसे के भार को, रांगे के भार को) वहन करने में समर्थ नहीं है । इसीलिए प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर नहीं है और शरीर जीव नहीं ।

२५६— तए णं से पएसी केसिकुमारसमणं एवं वयासी—

अत्थि णं भंते ! जाव (एस पण्णा उवमा इमेण पुण कारणेणं) नो उवागच्छइ, एवं खलु भंते ! जाव<sup>२</sup> विहरामि । तए णं मम णगरगुत्तिया चोरं उवणेति । तए णं अहं तं पुरिसं जीवंतगं चेव तुलेमि, तुलेत्ता छविच्छेयं अकुव्वमाणे जीवियाओ ववरोवेमि, मयं तुलेमि, णो चेव णं तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स वा मुयस्स केइ आणत्ते वा, नाणत्ते वा, ओमत्ते वा, तुच्छत्ते वा, गुरुयत्ते वा, लहुयत्ते वा, जति णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स केइ अन्नत्ते वा जाव लहुयत्ते वा तो णं अहं सद्दहेज्जा तं चेव ।

जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ अन्नत्ते वा लहुयत्ते वा तम्हा सुपतिट्ठिया मे पइन्ना जहा—तं जीवो तं चेव ।

२५६— इसके बाद उस प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से ऐसा कहा—हे भदन्त ! आपकी यह उपमा वास्तविक नहीं है, इससे जीव और शरीर की भिन्नता नहीं मानी जा सकती है । लेकिन जो प्रत्यक्ष कारण मैं बताता हूँ, उससे यही सिद्ध होता है कि जीव और शरीर एक ही हैं । वह कारण इस प्रकार है—

१. देखे सूत्र संख्या २५४

२. देखें सूत्र संख्या २४८

हे भदन्त ! किसी एक दिन मैं गणनायक आदि के साथ बाहरी उपस्थानशाला में बैठा था। उसी समय मेरे नगररक्षक चोर को पकड़ कर लाये। तब मैंने उस पुरुष को जीवित अवस्था में तोला। तोलकर फिर अंगभंग किये बिना ही उसको जीवन रहित कर दिया—मार डाला और मार कर फिर मैंने उसे तोला। उस पुरुष का जीवित रहते जो तोल था उतना ही मरने के बाद था। जीवित रहने और मरने के बाद के तोल में मुझे किसी भी प्रकार का अंतर—न्यूनाधिकता दिखाई नहीं दी, न उसका भार बढ़ा और न कम हुआ, न वह वजनदार हुआ और न हल्का हुआ। इसलिए हे भदन्त ! यदि उस पुरुष के जीवितावस्था के वजन से मृतावस्था के वजन में किसी प्रकार की न्यूनाधिकता हो जाती, यावत् हलकापन आ जाता तो मैं इस बात पर श्रद्धा कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव और शरीर एक नहीं है।

लेकिन भदन्त ! मैंने उस पुरुष की जीवित और मृत अवस्था में किये गये तोल में किसी प्रकार की भिन्नता, न्यूनाधिकता यावत् लघुता नहीं देखी। इस कारण मेरा यह मानना समीचीन है कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

२५७— तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

अत्थि णं पएसी ! तुमे कयाइ वत्थी धंतपुव्वे वा धमावियपुव्वे वा ?

हंता अत्थि ।

अत्थि णं पएसी तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा तुलियस्स अपुण्णस्स वा तुलियस्स केइ अण्णत्ते वा जाव लहुयत्ते वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

एवामेव पएसी ! जीवस्स अगुरुलघुयत्तं पडुच्च जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ आणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा, तं सद्दाहि णं तुमं पएसी ! तं चेव ।

२५७— इसके बाद केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—हे प्रदेशी ! तुमने कभी धौंकनी में हवा भरी है अथवा किसी से भरवाई है ?

प्रदेशी—हां भदन्त ! भरी है और भरवाई है।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी ! जब वायु से भर कर उस धौंकनी को तोला तब और वायु को निकाल कर तोला तब तुमको उसके वजन में कुछ न्यूनाधिकता यावत् लघुता मालूम हुई ?

प्रदेशी—भदन्त ! यह अर्थ तो समर्थ नहीं है, यानी न्यूनाधिकता यावत् लघुता कुछ भी दृष्टिगत नहीं हुई।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! जीव के अगुरुलघुत्व को समझ कर उस चोर के शरीर के जीवितावस्था में किये गये तोल में और मृतावस्था में किये गये तोल में कुछ भी नानात्व यावत् लघुत्व नहीं है। इसलिए हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव-शरीर एक नहीं है।

२५८— तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी—

अत्थि णं भंते ! एसा जाव<sup>१</sup> नो उवागच्छइ, एवं खलु भंते ! अहं अन्नया जाव<sup>२</sup> चोरं

१. देखें सूत्र संख्या २५४

२. देखें सूत्र संख्या २४८

उवणेति । तए णं अहं तं पुरिसं सव्वतो समंता समभिलोएमि, नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि, तए णं अहं तं पुरिसं दुहा फालियं करेमि, करित्ता सव्वतो समंता समभिलोएमि, नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि, एवं तिहा चउहा संखेज्जफालियं करेमि, णो चेव णं तत्थ जीवं पासामि । जइ णं भंते ! अहं तं पुरिसं दुहा वा, तिहा वा, चउहा वा, संखेज्जहा वा फालियंमि वा जीवं पासंतो तो णं अहं सद्वहेज्जा नो तं चेव, जम्हा णं भंते ! अहं तंसि दुहा वा तिहा वा चउहा वा संखिज्जहा वा फालियंमि वा जीवं न पासामि तम्हा सुपतिट्ठिया मे पइण्णा जहा— तं जीवो तं सरिरं तं चेव ।

२५८— केशी कुमारश्रमण की उक्त बात को सुनने के पश्चात् प्रदेशी राजा ने पुनः केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—हे भदन्त! आपकी यह उपमा बुद्धिप्रेरित होने से वास्तविक नहीं है। इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् हैं। क्योंकि भदन्त! बात यह है कि किसी समय मैं अपने गणनायकों आदि के साथ बाह्य उपस्थानशाला में बैठा था। यावत् नगररक्षक एक चोर पकड़ कर लाये। तब मैंने उस पुरुष को सभी ओर से (सिर से पैर तक) अच्छी तरह देखा-भाला, परन्तु उसमें मुझे कहीं भी जीव दिखाई नहीं दिया। इसके बाद मैंने उस पुरुष के दो टुकड़े कर दिये। टुकड़े करके फिर मैंने अच्छी तरह सभी ओर से देखा। तब भी मुझे जीव नहीं दिखा। इसके बाद मैंने उसके तीन, चार यावत् संख्यात टुकड़े किये, परन्तु उनमें भी मुझे कहीं पर जीव दिखाई नहीं दिया। यदि भदन्त! मुझे उस पुरुष के दो, तीन, चार अथवा संख्यात टुकड़े करने पर भी कहीं जीव दिखता तो मैं यह श्रद्धा-विश्वास कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव और शरीर एक नहीं है। लेकिन हे भदन्त! जब मैंने उस पुरुष के दो, तीन, चार अथवा संख्यात टुकड़ों में भी जीव नहीं देखा है तो मेरी यह धारणा कि जीव शरीर है और शरीर जीव है, जीव-शरीर भिन्न-भिन्न नहीं हैं, स्रुजंगत—सुस्थिर है।

२५९— तए णं केसिकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

मूढतराए णं तुमं पएसी ! ताओ तुच्छतराओ ।

के णं भंते ! तुच्छतराए ?

पएसी ! से जहाणामए केइ पुरिसे वणत्थी वणोवजीवी वणगवेसणयाए जोइं च जोइभायणं च गहाय कट्ठाणं अडविं अणुपविट्ठा, तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए जाव किंचिदेसं अणुप्पत्ता समाणा एगं पुरिसं एवं वयासी— अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कट्ठाणं अडविं पविसामो, एत्तो णं तुमं जोइभायणाओ जोइं गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि । अहं तं जोइभायणे जोइं विज्झवेज्जा एत्तो णं तुमं कट्ठाओ जोइं गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि, त्ति कट्ठु कट्ठाणं अडविं अणुपविट्ठा ।

तए णं से पुरिसे तओ मुहुत्तन्तरस्स तेसिं पुरिसाणं असणं साहेमि त्ति कट्ठु जेणेव जोतिभायणे तेणेव उवागच्छइ । जोइभायणे जोइं विज्झायमेव पासति । तए णं से पुरिसे जेणेव से कट्ठे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं कट्ठं सव्वओ समंता समभिलोएति, नो चेव णं तत्थ जोइं पासति । तए णं से पुरिसे परियरं बंधइ, फरसुं गिण्हइ, तं कट्ठं दुहा फालियं करेइ, सव्वतो समंता समभिलोएइ, णो चेव णं तत्थ जोइं पासइ । एवं जाव संखेज्जफालियं

करेइ, सव्वतो समंता समभिलोएइ, नो चेव णं तत्थ जोइं पासइ ।

तए णं से पुरिसे तंसि कट्टंसि दुहाफालिए वा जाव संखेज्जफालिए वा जोइं अपासमाणे संते तंते परिसंते निव्विण्णे समाणे परसुं एगंते एडेइ, परियरं मुयइ एवं वयासी—अहो ! मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहिए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पे चिंत्तासोगसागरसंपविट्ठे करयल-पल्हत्थमुहे अट्टज्जाणोवगए भूमिगयदिट्ठिए झियाइ ।

तए णं ते पुरिसा कट्टाइं छिंदंति, जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छंति । तं पुरिसं ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासंति एवं वयासी—किं णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमण-संकप्पे जाव झियायसि ?

तए णं से पुरिसे एवं वयासी—तुज्जे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अडविं अणुपविसमाणा ममं एवं वयासी—अहे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अडविं जाव पविट्ठा, तए णं अहं तत्तो मुहुत्तंतरस्स तुज्जं असणं साहेमि त्ति कट्टु जेणेव जोइभायणे जाव झियामि ।

तए णं तेसिं पुरिसाणं एगे पुरिसे छेए, दक्खे, पत्तट्ठे जाव उवएसलद्धे, ते पुरिसे एवं वयासी—गच्छह णं तुज्जे देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव हव्वमागच्छेह, जा णं अहं असणं साहेमि त्ति कट्टु परियरं बंधइ, परसुं गिण्हइ सरं करेइं सरेण अरणिं महेइ जोइं पाडेइ, जोइं संधुक्खेइ, तेसिं पुरिसाणं असणं साहेइ ।

तए णं ते पुरिसा ण्हाया कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छंति, तए णं से पुरिसे तेसिं पुरिसाणं सुहासणवरगयाणं तं विउलं-असणं-पाणं-खाइमं-साइमं उवणेइ । तए णं ते पुरिसा तं विउलं असणं ४ (पाणं-खाइमं-साइमं) आसाएमाणा वीसाएमाणा जाव विहरंति । जिमियभुत्तुरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परम-सुइभूया तं पुरिसं एवं वयासी—अहो ! णं तुमं देवाणुप्पिया ! जट्ठे-मूढे-अपंडिए-णिव्विण्णाणे-अणुवएसलद्धे, जे णं तुमं इच्छसि कट्टंसि दुहाफालियंसि वा जोतिं पासित्तए ।

से एणट्ठेणं पएसी ! एवं वुच्चइ मुढतराए णं तुमं पएसी ! ताओ तुच्छतराओ ।

२५९—प्रदेशी राजा के इस कथन को सुनने के अनन्तर केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—हे प्रदेशी ! तुम तो मुझे उस दीन-हीन कठियारे (लकड़ी ढोने वाले) से भी अधिक मूढ—विवेकहीन प्रतीत होते हो ।

प्रदेशी—हे भदन्त ! कौनसा दीन-हीन कठियारा ?

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी ! वन में रहने वाले और वन से आजीविका कमाने वाले कुछ एक पुरुष वनोत्पन्न वस्तुओं की खोज में आग और अंगीठी लेकर लकड़ियों के वन में प्रविष्ट हुए । प्रविष्ट होने के पश्चात् उन पुरुषों ने दुर्गम वन के किसी प्रदेश में पहुंचने पर अपने एक साथी से कहा—देवानुप्रिय ! हम इस लकड़ियों के जंगल में जाते हैं । तुम यहां अंगीठी से आग लेकर हमारे लिए भोजन तैयार करना । यदि अंगीठी में आग बुझ जाये तो तुम इस लकड़ी से आग पैदा करके हमारे लिए भोजन बना लेना । इस प्रकार कहकर वे सब उस काष्ठ-वन में प्रविष्ट हो गए ।

उनके चले जाने पर कुछ समय पश्चात् उस पुरुष ने विचार किया—चलो उन लोगों के लिए जल्दी से भोजन

बना लूं। ऐसा विचार कर वह जहां अंगीठी रखी थी, वहां आया। आकर अंगीठी में आग को बुझा हुआ देखा। तब वह पुरुष वहां पहुंचा जहां वह काष्ठ पड़ा हुआ था। वहां पहुंचकर चारों ओर से उसने काष्ठ को अच्छी तरह देखा, किन्तु कहीं भी उसे आग दिखाई नहीं दी। तब उस पुरुष ने कमर कसी और कुल्हाड़ी लेकर उस काष्ठ के दो टुकड़े कर दिये। फिर उन टुकड़ों को भी सभी ओर से अच्छी तरह देखा, किन्तु कहीं आग दिखाई नहीं दी। इसी प्रकार फिर तीन, चार, पांच यावत् संख्यात टुकड़े किये परन्तु देखने पर भी उनमें कहीं आग दिखाई नहीं दी।

इसके बाद जब उस पुरुष को काष्ठ के दो से लेकर संख्यात टुकड़े करने पर भी कहीं आग दिखाई नहीं दी तो वह श्रान्त, क्लान्त, खिन्न और दुःखित हो, कुल्हाड़ी को एक ओर रख और कमर को खोलकर मन-ही-मन इस प्रकार बोला—अरे! मैं उन लोगों के लिए भोजन नहीं बना सका। अब क्या करूं। इस विचार से अत्यन्त निराश, दुःखी, चिन्तित, शोकातुर हो हथेली पर मुंह को टिकाकर आर्तध्यानपूर्वक नीचे जमीन में आंखें गड़ाकर चिंता में डूब गया।

लकड़ियों को काटने के पश्चात् वे लोग वहां आये जहां अपना साथी था और उसको निराश दुःखी यावत् चिन्ताग्रस्त देखकर उससे पूछा—देवानुप्रिय! तुम क्यों निराश, दुःखी यावत् चिन्ता में डूबे हुए हो ?

तब उस पुरुष ने बताया कि देवानुप्रियो ! आप लोगों ने लकड़ी काटने के लिए वन में प्रविष्ट होने से पहले मुझसे कहा था—देवानुप्रिय ! हम लोग लकड़ी लाने जंगल में जाते हैं, इत्यादि यावत् जंगल में चले गये। कुछ समय बाद मैंने विचार किया कि आप लोगों के लिए भोजन बना लूं। ऐसा विचार कर जहां अंगीठी थी, वहां पहुंचा यावत् (वहां जाकर मैंने देखा कि अंगीठी में आग बुझी हुई है। फिर मैं काष्ठ के पास आया। मैंने अच्छी तरह सभी ओर से उस काष्ठ को देखा किन्तु कहीं भी मुझे आग दिखाई नहीं दी। तब मैंने कुल्हाड़ी लेकर उस काष्ठ के दो टुकड़े किये और उन्हें भी इधर-उधर से अच्छी तरह देखा। परन्तु वहां भी मुझे आग दिखाई नहीं दी। इसके बाद मैंने उसके तीन, चार यावत् संख्यात टुकड़े किये। उनको भी अच्छी तरह देखा, परन्तु उनमें भी कहीं आग दिखाई नहीं दी। तब श्रान्त, क्लान्त, खिन्न और दुःखित होकर कुल्हाड़ी को एक ओर रखकर विचार किया कि मैं आप लोगों के लिए भोजन नहीं बना सका। इस विचार से मैं अत्यन्त निराश, दुःखी हो शोक और चिन्ता रूपी समुद्र में डूबकर हथेली पर मुंह को टिकाये) आर्तध्यान कर रहा हूं।

उन मनुष्यों में कोई एक छेक—अवसर को जानने वाला, दक्ष—चतुर, प्रार्थार्थ—कुशलता से अपने अभीप्सित अर्थ को प्राप्त करने वाला यावत् (बुद्धिमान्, कुशल, विनीत, विशिष्टज्ञानसंपन्न), उपदेशलब्ध—गुरु से उपदेश प्राप्त पुरुष था। उस पुरुष ने अपने दूसरे साथी लोगों से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! आप जाओ और स्नान, बलिकर्म आदि करके शीघ्र आ जाओ। तब तक मैं आप लोगों के लिए भोजन तैयार करता हूं। ऐसा कहकर उसने अपनी कमर कसी और कुल्हाड़ी लेकर सर बनाया, सर से अरणि-काष्ठ को रगड़कर आग की चिनगारी प्रगट की। फिर उसे धौंक कर सुलगाया और फिर उन लोगों के लिए भोजन बनाया।

इतने में स्नान आदि करने गये पुरुष वापस स्नान करके, बलिकर्म करके यावत् प्रायश्चित्त करके उस भोजन बनाने वाले पुरुष के पास आ गये।

तत्पश्चात् उस पुरुष ने सुखपूर्वक अपने-अपने आसनों पर बैठे उन लोगों के सामने उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चार प्रकार का भोजन रखा—परोसा। वे उस विपुल अशन आदि रूप चारों प्रकार के भोजन का स्वाद लेते हुए, खाते हुए यावत् विचरने लगे। भोजन के बाद आचमन-कुल्ला आदि करके स्वच्छ, शुद्ध होकर अपने

पहले साथी से इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! तुम जड़—अनभिज्ञ, मूढ़—मूर्ख (विवेकहीन), अपंडित (प्रतिभारहित), निर्विज्ञान (निपुणतारहित) और अनुपदेशलब्ध (अशिक्षित) हो, जो तुमने काठ के टुकड़ों में आग देखनी चाही।

इसी प्रकार की तुम्हारी भी प्रवृत्ति देखकर मैंने यह कहा—हे प्रदेशी ! तुम इस तुच्छ कठियारे से भी अधिक मूढ़ हो कि शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके जीव को देखना चाहते हो।

२६०— तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी—

जुत्तए णं भंते ! तुब्भं इय छेयाणं दक्खाणं बुद्धाणं कुसलाणं महामईणं विणीयाणं विण्णाणपत्ताणं उवएसलद्धाणं अहं इमीसाए महालियाए महच्च परिसाए मज्झे उच्चावएहिं आउसेहिं आउसित्तए ? उच्चावयाहि उद्धंसणाहिं उद्धंसित्तए ? एवं निब्भंछणाहिं निब्भंछणित्तए ? निच्छोडणाहिं निच्छोडित्तए ?

२६०— कुमारश्रमण केशीस्वामी की उक्त बात (उदाहरण) को सुनकर प्रदेशी राजा ने केशीस्वामी से कहा—भंते ! आप जैसे छेक—अवसरज्ञ, दक्ष—चतुर, बुद्ध—तत्त्वज्ञ, कुशल—कर्तव्याकर्तव्य के निर्णायक, बुद्धिमान्, विनीत—विनयशील, विशिष्ट ज्ञानी, सत्—असत् के विवेक से संपन्न (हेयोपादेय की परीक्षा करने वाले), उपदेशलब्ध—गुरु से शिक्षा प्राप्त पुरुष का इस अति विशाल परिषद् के बीच मेरे लिए इस प्रकार के निष्ठुर—आक्रोशपूर्ण शब्दों का प्रयोग करना, अनादरसूचक शब्दों से मेरी भर्त्सना करना, अनेक प्रकार के अवहेलना भरे शब्दों से मुझे प्रताडित करना, धमकाना क्या उचित है ?

२६१— तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

जाणासि णं तुमं पएसी ! कति परिसाओ पण्णत्ताओ ?

जाणामि, चत्तारि परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खत्तियपरिसा, गाहावइपरिसा, माहणपरिसा, इसिपरिसा ।

जाणासि णं तुमं पएसी राया ! एयासिं चउण्हं परिसाणं कस्स का दंडणीई पण्णत्ता ? हंता ! जाणामि । जे णं खत्तियपरिसाए अवरज्झइ से णं हत्थच्छिण्णए वा, पायच्छिण्णए वा, सीसच्छिण्णए वा, सूलाइए वा एगाहच्चे कूडाहच्चे जीवियाओ ववरोविज्जइ ।

जे णं गाहावइपरिसाए अवरज्झइ से णं तएण वा, वेढेण वा, पलालेण वा, वेढेत्ता अगणिकाएणं झामिज्जइ ।

जे णं माहणपरिसाए अवरज्झइ से णं अणिट्ठाहिं अकंताहिं जाव अमणामाहिं वग्गूहिं उवालंभित्ता कुंडियालंछणए वा सूणगलंछणए वा कीरइ, निव्विसए वा आणविज्जइ ।

जे णं इसिपरिसाए अवरज्झइ से णं णाइअणिट्ठाहिं जाव णाइअमणामाहिं वग्गूहिं उवालब्भइ ।

एवं च ताव पएसी ! तुमं जाणासि तहा वि णं तुमं ममं वामं वामेणं, दंडं दंडेणं, पडिकूलं पडिकूलेणं, पडिलोमं पडिलोमेणं, विविच्चासं विविच्चासेणं वट्टसि ।

२६१— प्रदेशी राजा के इस उपालंभ को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

हे प्रदेशी ! जानते हो कि कितनी परिषदायें कही गई हैं ?

प्रदेशी—जी हां जानता हूं, चार परिषदायें कही हैं—१. क्षत्रियपरिषदा, २. गाथापतिपरिषदा, ३. ब्राह्मणपरिषदा और ४. ऋषिपरिषदा।

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! तुम यह भी जानते हो कि इन चार परिषदाओं के अपराधियों के लिए क्या दंडनीति बनाई गई है ?

प्रदेशी—हां जानता हूं। जो क्षत्रिय-परिषद् का अपराध-अपमान करता है, उसके या तो हाथ काट दिये जाते हैं अथवा पैर काट दिये जाते हैं या शिर काट दिया जाता है, अथवा उसे शूली पर चढ़ा देते हैं या एक ही प्रहार से या कुचलकर प्राणरहित कर दिया जाता है—मार दिया जाता है।

जो गाथापति-परिषद् का अपराध करता है, उसे घास से अथवा पेड़ के पत्तों से अथवा पलाल-पुआल से लपेट कर अग्नि में झोंक दिया जाता है।

जो ब्राह्मणपरिषद् का अपराध करता है, उसे अनिष्ट, रोषपूर्ण, अप्रिय या अमणाम शब्दों से उपालंभ देकर अग्नितप्त लोहे से कुंडिका चिह्न अथवा कुत्ते के चिह्न से लांछित-चिह्नित कर दिया जाता है अथवा निर्वासित कर दिया जाता है, अर्थात् देश से निकल जाने की आज्ञा दी जाती है।

जो ऋषिपरिषद् का अपमान-अपराध करता है, उसे न अति अनिष्ट यावत् न अति अमनोज्ञ शब्दों द्वारा उपालंभ दिया जाता है।

केशी कुमारश्रमण—इस प्रकार की दंडनीति को जानते हुए भी हे प्रदेशी ! तुम मेरे प्रति विपरीत, परिताप-जनक, प्रतिकूल, विरुद्ध, सर्वथा विपरीत व्यवहार कर रहे हो !

२६२— तए णं पएसी राया केशिं कुमारसमणं एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणु-प्पिएहिं पढमिल्लुएणं चेव वागरणेण संलत्ते, तए णं ममं इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव संकप्पे समुपज्जत्था—जहा जहा णं एयस्स पुरिसस्स वामं वामेणं जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिस्सामि तहा तहा णं अहं नाणं च नाणोवलंभं च करणं च करणोवलंभं च दंसणं च दंसणोवलंभं च जीवं च जीवोवलंभं च उवलभिस्सामि, तं एएणं कारणेणं अहं देवाणु-प्पियाणं वामं वामेणं जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए ।

२६२— तब प्रदेशी राजा ने अपनी मनोभावना व्यक्त करते हुए केशी कुमारश्रमण से कहा—बात यह है— भदन्त ! मेरा आप देवानुप्रिय से जब प्रथम ही वार्तालाप हुआ तभी मेरे मन में इस प्रकार का विचार यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि जितना-जितना और जैसे-जैसे मैं इस पुरुष के विपरीत यावत् सर्वथा विपरीत व्यवहार करूंगा, उतना-उतना और वैसे-वैसे मैं अधिक-अधिक तत्त्व को जानूंगा, ज्ञान प्राप्त करूंगा, चारित्र को, चारित्रलाभ को, तत्त्वार्थश्रद्धा रूप दर्शन—सम्यक्त्व को, सम्यक्त्वलाभ को, जीव को, जीव के स्वरूप को समझ सकूंगा। इसी कारण आप देवानुप्रिय के प्रति मैंने विपरीत यावत् अत्यंत विरुद्ध व्यवहार किया है।

२६३— तए णं केशी कुमारश्रमणे पएसीरायं एवं वयासी—

जाणासि णं तुमं पएसी ! कइ ववहारगा पण्णत्ता ?

हंता जाणामि । चतारि ववहारगा पण्णत्ता—१ देइ नामेगे णो सण्णवेइ । २ सन्नवेइ नामेगे नो देइ । ३ एगे देइ वि सन्नवेइ वि । ४ एगे णो देइ णो सण्णवेइ ।

जाणासि णं तुमं पएसी ! एएसिं चउण्हं पुरिसाणं के ववहारी के अव्ववहारी ?

हंता जाणामि ! तत्थ णं जे से पुरिसे देइ णो सण्णवेइ, से णं पुरिसे ववहारी । तत्थ णं जे से पुरिसे णो देइ सण्णवेइ, से णं पुरिसे ववहारी । तत्थ णं जे से पुरिसे देइ सन्नवेइ वि से पुरिसे ववहारी । तत्थ णं जे से पुरिसे णो देइ णो सन्नवेइ से णं अव्ववहारी ।

एवामेव तुमं पि ववहारी, णो चेव णं तुमं पएसी अव्ववहारी ।

२६३— प्रदेशी राजा की इस भावना को सुनकर केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—

हे प्रदेशी ! जानते हो तुम कि व्यवहारकर्ता कितने प्रकार के बतलाए गए हैं ?

प्रदेशी—हां, भदन्त ! जानता हूं कि व्यवहारकों के चार प्रकार हैं—१. कोई किसी को दान देता है, किन्तु उसके साथ प्रीतिजनक वाणी नहीं बोलता । २. कोई संतोषप्रद बातें तो करता है, किन्तु देता नहीं है । ३. कोई देता भी है और लेने वाले के साथ सन्तोषप्रद वार्तालाप भी करता है और ४. कोई देता भी कुछ नहीं और न संतोषप्रद बात करता है ।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी ! जानते हो तुम कि इन चार प्रकार के व्यक्तियों में से कौन व्यवहारकुशल है और कौन व्यवहारशून्य है—व्यवहार को नहीं समझने वाला है ?

प्रदेशी—हां जानता हूं । इनमें से जो पुरुष देता है, किन्तु संभाषण नहीं करता, वह व्यवहारी है । जो पुरुष देता नहीं किन्तु सम्यग् आलाप (बातचीत) से संतोष उत्पन्न करता है (दिलासा देता है), धीरज बंधाता है, वह व्यवहारी है । जो पुरुष देता भी है और शिष्ट वचन भी कहता है, वह व्यवहारी है, किन्तु जो न देता है और न मधुर वाणी बोलता है, वह अव्यवहारी है ।

केशी कुमारश्रमण—उसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम भी व्यवहारी हो, अव्यवहारी नहीं हो । अर्थात् तुमने मेरे साथ यद्यपि शिष्टजनमान्य वाग्-व्यवहार नहीं किया, फिर भी मेरे प्रति भक्ति और संमान प्रदर्शित करने के कारण व्यवहारी हो ।

२६४— तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी—

तुज्जे णं भंते ! इय छेया दक्खा जाव उवएसलब्धा, समत्था णं भंते ! ममं करयलंसि वा आमलयं जीवं सरीराओ अभिनिवट्टित्ताणं उवदंसित्तए ?

तेणं कालेणं तेणं समएणं पएसिस्स रण्णो अदूरसामंते वाउयाए संवुत्ते, तणवणस्सइकाए एयइ वेयइ चलइ फंदइ घट्टइ उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ ।

तए णं केसी कुमारसमणे पएसिरायं एवं वयासी—

पाससि णं तुमं पएसी राया ! एयं तणवणस्सइं एयंतं जाव तं तं भावं परिणमंतं ?

हंता पासामि ।

जाणासि णं तुमं पएसी ! एयं तणवणस्सइकायं किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ,

णागो वा, किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधव्वो वा चालेइ ?  
हंता जाणामि—णो देवो चालेइ जाव णो गंधव्वो चालेइ, वाउयाए चालेइ ।

पाससि णं तुमं पएसी ! एतस्स वाउकायस्स सरूविस्स सकामस्स सरागस्स समोहस्स  
सवेयस्स सलेसस्स ससरीरस्स रूवं ?

णो तिणट्टे ( समट्टे ) ।

जइ णं तुमं पएसी राया ! एयस्स वाउकायस्स सरूविस्स जाव ससरीरस्स रूवं न  
पाससि तं कहं णं पएसी ! तव करयलंसि वा आमलगं जीवं उवदंसिस्सामी ? एवं खलु  
पएसी ! दसट्टाणाइं छउमत्थे मणुस्से सब्बभावेणं न जाणइ न पासइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं १,  
अधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकायं ३, जीवं असरीरबद्धं ४, परमाणुपोग्गलं ५, सइं ६, गंधं  
७, वायं ८, अयं जिणे भविस्सइ वा णो भविस्सइ ९, अयं सब्बदुक्खाणं अंतं करिस्सइ वा  
नो वा १० । एताणि चेव उप्पन्नानाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सब्बभावेणं जाणइ पासइ  
तं जहा—धम्मत्थिकायं जाव नो वा करिस्सइ, णं सइहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो  
जीवो तं चेव ।

२६४— तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—हे भदन्त! आप अवसर को जानने में निपुण  
हैं, कार्यकुशल हैं यावत् आपने गुरु से शिक्षा प्राप्त की है तो भदन्त! क्या आप मुझे हथेली में स्थित आंखों की तरह  
शरीर से बाहर जीव को निकालकर दिखाने में समर्थ हैं ?

प्रदेशी राजा ने यह कहा ही था कि उसी काल और उसी समय प्रदेशी राजा से अति दूर नहीं अर्थात् निकट  
ही हवा के चलने से तृण-घास, वृक्ष आदि वनस्पतियां हिलने-डुलने लगीं, कांपने लगीं, फरकने लगीं, परस्पर  
टकराने लगीं, अनेक विभिन्न रूपों में परिणत होने लगीं ।

तब केशी कुमारश्रमण ने राजा प्रदेशी से पूछा—हे प्रदेशी! तुम इन तृणादि वनस्पतियों को हिलते-डुलते यावत्  
उन-उन अनेक रूपों में परिणत होते देख रहे हो ?

प्रदेशी—हां देख रहा हूं ।

केशी कुमारश्रमण—तो प्रदेशी! क्या तुम यह भी जानते हो कि इन तृण-वनस्पतियों को कोई देव हिला रहा  
है अथवा असुर हिला रहा है अथवा कोई नाग, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गंधर्व हिला रहा है ।

प्रदेशी—हां, भदन्त! जानता हूं । इनको न कोई देव हिला-डुला रहा है, यावत् न गंधर्व हिला रहा है । ये वायु  
से हिल-डुल रही हैं ।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी! क्या तुम उस मूर्त, काम, राग, मोह, वेद, लेश्या और शरीर धारी वायु के रूप  
को देखते हो ?

प्रदेशी—यह अर्थ समर्थ नहीं है । अर्थात् भदन्त! मैं उसे नहीं देखता हूं ।

केशी कुमारश्रमण—जब राजन्! तुम इस रूपधारी (मूर्त) यावत् सशरीर वायु के रूप को भी नहीं देख  
सकते तो हे प्रदेशी ! इन्द्रियातीत ऐसे अमूर्त जीव को हाथ में रखे आंखों की तरह कैसे देख सकते हो ? क्योंकि  
प्रदेशी! छद्मस्थ (अल्पज्ञ) मनुष्य (जीव) इन दस वस्तुओं को उनके सर्व भावों-पर्यायों सहित जानते-देखते नहीं

हैं। यथा (उनके नाम इस प्रकार हैं—) १. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. अशरीरी (शरीर रहित) जीव, ५. परमाणु पुद्गल, ६. शब्द, ७. गंध, ८. वायु, ९. यह जिन (कर्म-क्षय करने वाला) होगा अथवा जिन नहीं होगा और १०. यह समस्त दुःखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा। किन्तु उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक (केवलज्ञानी, केवलदर्शी, सर्वज्ञ सर्वदर्शी) अर्हन्त, जिन, केवली इन दस बातों को उनकी समस्त पर्यायों सहित जानते-देखते हैं, यथा—धर्मास्तिकाय यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा। इसलिए प्रदेशी! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर एक नहीं हैं।

**विवेचन—** प्रस्तुत सूत्र में वायुकायिक जीवों के उल्लेख द्वारा संसारी जीवों का स्वरूप बताया है कि सभी संसारी जीव सूक्ष्म और बादर इन दो प्रकारों में से किसी-न-किसी एक प्रकार वाले हैं। इन प्रकारों के होने के कारण सूक्ष्म नाम और बादर नाम कर्म हैं। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से प्राप्त शरीर इन्द्रियग्राह्य नहीं हो पाता है और बादर नामकर्म के उदय से शरीर में ऐसा बादर परिणाम उत्पन्न होता है कि जिससे वे इन्द्रियग्राह्य हो सकते हैं। सूक्ष्म और बादर नामकर्म का उदय तिर्यचगति के जीवों में होता है और इनके एक पहली स्पर्शनेन्द्रिय होती है। सभी संसारी जीव नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव, इन चार गतियों में से किसी-न-किसी गति वाले हैं और स्वाभाविक चैतन्य गुण के साथ गतियों के अनुरूप प्राप्त इन्द्रियों, शरीर, वेद एवं रागद्वेष, मोह आदि वैभाविक भावों तथा लेश्या परिणाम वाले होते हैं।

वायुकाय के जीवों की गति तिर्यच है और उनके एक स्पर्शनेन्द्रिय, कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, नपुंसक वेद और औदारिक, वैक्रिय तैजस, कार्मण शरीर होते हैं।

२६५— तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—

से नूणं भंते ! हत्थिस्स कुंथुस्स य समे चेव जीवे ?

हंता पएसी ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ?

से णूणं भंते ! हत्थीउ कुंथू अप्पकम्मतराए चेव अप्पकिरियतराए चेव अप्पासवतराए चेव एवं आहार-नीहार-उस्सास-नीसास-इड्डीए महज्जुइअप्पतराए चेव, एवं च कुंथुओ हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरिय० जाव ?

हंता पएसी ! हत्थीओ कुंथू अप्पकम्मतराए चेव कुंथुओ वा हत्थी महाकम्मतराए चेव तं चेव ।

कम्हा णं भंते ! हत्थिस्स स कुंथुस्स य समे चेव जीवे ?

पएसी ! जहा णामए कूडागारसाला सिया जाव गंभीरा, अह णं केइ पुरिसे जोइं व दीवं व गहाय तं कूडागारसालं अंतो अंतो अणुपविसइ तीसे कूडागारसालाए सव्वतो समंता घणनिच्चियनिरंतराणि णिच्छिड्डाइं दुवारवयणाइं पिहेति, तीसे कूडागारसालाए बहुमज्जदेसभाए तं पईवं पलीवेज्जा, तए णं से पईवे तं कूडागारसालं अंतो अंतो ओभासइ उज्जोवेइ तवति पभासेइ, णो चेव णं बाहिं ।

अह णं से पुरिसे तं पईवं इड्डुरएणं पिहेज्जा, तए णं से पईवे तं इड्डुरयं अंतो ओभासेइ, णो चेव णं इड्डुरगस्स बाहिं, णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं, एवं गोकिलिंजेणं, पच्छि-

पिंडाणं गंडमाणियाए, आढतेणं, अद्धाढतेणं, पत्थएणं, अद्धपत्थएणं, कुलवेणं, अद्धकुलवेणं, चाउम्भाइयाए, अट्टुभाइयाए, सोलसियाए, बत्तीसियाए, चउसट्टियाए, दीवचंपएणं तए णं से पदीवे दीवचंपगस्स अंतो ओभासति, नो चेव णं दीवचंपगस्स बाहिं, नो चेव णं चउसट्टियाए बाहिं, णो चेव णं कूडागारसालं, णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं ।

एवामेव पएसी ! जीवे वि जं जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोदिं णिव्वत्तेइ तं असंखेज्जेहिं जीवपदेसेहि सचित्तं करेइ खुड्डियं वा महालियं वा, तं सदहाहि णं तुम पएसी ! जहा—अण्णो जीवो तं चेव णं ।

२६५— तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—भंते! क्या हाथी और कुंथु का जीव एक-जैसा है ?

केशी कुमारश्रमण—हां, प्रदेशी! हाथी और कुंथु का जीव एक-जैसा है, समान प्रदेश-परिमाण वाला है, न्यूनाधिक प्रदेश-परिमाण वाला नहीं है ।

प्रदेशी—हे भदन्त! हाथी से कुंथु अल्पकर्म (आयुष्यकर्म), अल्पक्रिया, अल्प प्राणातिपात आदि आश्रव वाला है, और इसी प्रकार कुंथु का आहार, निहार, श्वासोच्छ्वास, ऋद्धि—शारीरिकबल, द्युति आदि भी अल्प है और कुंथु से हाथी अधिक कर्मवाला, अधिक क्रियावाला यावत् अधिक द्युति संपन्न है ?

केशी कुमारश्रमण—हां प्रदेशी! ऐसा ही है—हाथी से कुंथु अल्प कर्मवाला और कुंथु से हाथी महाकर्मवाला है ।

प्रदेशी—तो फिर भदन्त! हाथी और कुंथु का जीव समान परिमाण वाला कैसे हो सकता है ?

केशी कुमारश्रमण—हाथी और कुंथु के जीव को समान परिमाण वाला ऐसे समझा जा सकता है—हे प्रदेशी! जैसे कोई कूटाकार (पर्वतशिखर के आकार-जैसी) यावत् विशाल एक शाला (घर) हो और कोई एक पुरुष उस कूटाकारशाला में अग्नि और दीपक के साथ घुसकर उसके ठीक मध्यभाग में खड़ा हो जाए। तत्पश्चात् उस कूटाकारशाला के सभी द्वारों के किवाड़ों को इस प्रकार सटाकर अच्छी तरह से बंद कर दे कि उनमें किंचिन्मात्र भी सांध—छिद्र न रहे। फिर उस कूटाकारशाला के बीचोंबीच उस प्रदीप को जलाये तो जलाने पर वह दीपक उस कूटाकारशाला के अन्तर्वर्ती भाग को ही प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करता है, किन्तु बाहरी भाग को प्रकाशित नहीं करता है ।

अब यदि वही पुरुष उस दीपक को एक विशाल पिटारे से ढंक दे तो वह दीपक कूटाकारशाला की तरह उस पिटारे के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करेगा किन्तु पिटारे के बाहरी भाग को प्रकाशित नहीं करेगा। इसी तरह गोकिलिंज (गाय को घास रखने का पात्र—डलिया), पच्छिकापिटक (पिटारी), गंडमाणिका (अनाज को मापने का बर्तन), आढक (चार सेर धान्य मापने का पात्र), अर्धाढक, प्रस्थक, अर्धप्रस्थक, कुलव, अर्धकुलव, चतुर्भागिका, अष्टभागिका, षोडशिका, द्वात्रिंशतिका, चतुष्पष्टिका अथवा दीपचम्पक (दीपक का ढकना) से ढंके तो वह दीपक उस ढक्कन के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करेगा, ढक्कन के बाहरी भाग को नहीं और न चतुष्पष्टिका के बाहरी भाग को, न कूटाकारशाला को, न कूटाकारशाला के बाहरी भाग को प्रकाशित करेगा ।

इसी प्रकार हे प्रदेशी ! पूर्वभवोपार्जित कर्म के निमित्त से जीव को क्षुद्र—छोटे अथवा महत्—बड़े जैसे भी

शरीर को निष्पत्ति—प्राप्ति होती है, उसी के अनुसार आत्मप्रदेशों को संकुचित और विस्तृत करने के स्वभाव के कारण वह उस शरीर को अपने असंख्यात आत्मप्रदेशों द्वारा सचित्त अर्थात् आत्मप्रदेशों से व्याप्त करता है। अतएव प्रदेशी! तुम यह श्रद्धा करो—इस बात पर विश्वास करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर नहीं और शरीर जीव नहीं है।

**विवेचन—** प्रस्तुत सूत्र में दीपक को ढंकने पर उन-उन के भीतरी भाग को प्रकाशित करने के लिए जिन पात्रों (बर्तनों) के नामों का उल्लेख किया है, वे सभी प्राचीनकाल में मगध देश में प्रचलित—गेहूँ, चावल आदि धान्य तथा घी, तेल आदि तरल पदार्थ मापने के साधन—माप हैं। गंडमाणिका से लेकर अर्धकुलव पर्यन्त के मापों से धान्य और चतुर्भागिका आदि चतुष्पष्टिका पर्यन्त के पात्रों से तरल पदार्थों को मापा जाता था।

वैदिक दर्शनों में आत्मा के आकार और परिमाण के विषय में अणुमात्र से लेकर सर्वदेशव्याप्त तक मानने की कल्पनायें हैं। वे प्रमाणसिद्ध नहीं हैं और न वैसा अनुभव ही होता है। इसीलिए उन सब कल्पनाओं का निराकरण और आत्मा के सही परिमाण का निर्देश सूत्र में किया गया है कि न तो आत्मा अणु-प्रमाण है और न सर्वलोक व्यापी आदि है। किन्तु कर्मोपार्जित शरीर के आकार के अनुरूप होकर जीव के असंख्यात प्रदेश उस समस्त शरीर में व्याप्त रहते हैं।

### प्रदेशी की परंपरागत मान्यता का निराकरण

२६६— तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—एवं खलु भंते ! मम अज्जगस्स एस सण्णा जाव समोसरणे जहा—तज्जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ! तयाणंतरं च णं ममं पिउणो वि एस सण्णा, तयाणंतरं मम वि एसा सण्णा जाव समोसरणं, तं नो खलु अहं बहुपुरिसपरंपरागयं कुलनिस्सियं दिट्ठिं छंडेस्सामि ।

२६६— तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—भदन्त! आपने बताया सो ठीक, किन्तु मेरे पितामह की यही ज्ञानरूप संज्ञा—बुद्धि थी यावत् समवसरण-सिद्धान्त था कि जो जीव है वही शरीर है, जो शरीर है वही जीव है। जीव शरीर से भिन्न नहीं और शरीर जीव से भिन्न नहीं है। तत्पश्चात् (पितामह के काल-कवलित हो जाने के बाद) मेरे पिता की भी ऐसी ही संज्ञा यावत् ऐसा ही समवसरण था और उनके बाद मेरी भी यही संज्ञा यावत् ऐसा ही समवसरण है। तो फिर अनेक पुरुषों (पीढ़ियों) एवं कुलपरंपरा से चली आ रही अपनी दृष्टि—मान्यता को कैसे छोड़ दूँ ?

**विवेचन—** लोक परंपराएं, मान्यताएं कैसे प्रचलित होती हैं, इसका सूत्र में संकेत है। हम मानवों में जो भी अनुपयोगी और मिथ्या रूढियां चालू हैं उनका आधार पूर्वजों का नाम, लोक—दिखावा और अहंकार का पोषण है। हम उनके साथ ऐसे जुड़े हैं कि छोड़ने में प्रतिष्ठाहानि और भय अनुभव करते हैं। इस कारण दिनोंदिन हिंसा, झूठ, छल-फरेब, चोरी-जारी बढ़ रही है और नैतिक पतन होने से मानवीय गुणों का कुछ भी मूल्य नहीं रहा है।

२६७— तए णं केसी कुमारसमणे पएसिरायं एवं वयासी—मा णं तुमं पएसी ! पच्छाणु-ताविए भवेज्जासि, जहा व से पुरिसे अयहारए ।

के णं भंते ! से अयहारए ?

पएसी ! से जहाणामए केइ पुरिसा अत्थत्थी, अत्थगवेसी, अत्थलुद्धगा, अत्थकंखिया, अत्थपिवासिया अत्थगवेसणयाए विउलं पणियभंडमायाए सुबहुं भत्तपाणपत्थयणं गहाय एणं महं अकामियं (अगामियं) छिन्नावायं दीहमद्धं अडविं अणुपविट्ठा ।

तए णं ते पुरिसा तीसे अकामियाए अडवीए कंचि. देसं अणुप्पत्ता समाणा एगमहं अयागरं पासंति, अएणं सव्वतो समंता आइणणं विच्छिण्णं सच्छडं उवच्छडं फुडं गाढं पासंति हट्टुत्तु—जाव—हियया अन्नमन्नं सहावेत्ति एवं वयासी—एस णं देवाणुप्पिया ! अयभंडे इट्ठे कंते जाव मणामे, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अमहं अयभारए बंधित्तए त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणोत्ति अयभारं बंधंति, अहाणुपुव्वीए संपत्थिया ।

तए णं ते पुरिसा अकामियाए जाव अडवीए किंचि देसं अणुपत्ता समाणा एणं महं तउआगरं पासंति, तउएणं आइणणं तं चेव जाव सहावेत्ता एवं वयासी—एस णं देवाणुप्पिया ! तउयभंडे जाव मणामे, अप्पेणं चेव तउएणं सुबहुं अए लब्भति, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अयभारए छडुत्ता तउयभारए बंधित्तए त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणोत्ति, अयभारं छडुत्ति तउयभारं बंधंति । तत्थ णं एगे पुरिसे णो संचाएइ अयभारं छडुत्तए तउयभारं बंधित्तए ।

तए णं से पुरिसा तं पुरिसं एवं वयासी—एस णं देवाणुप्पिया ! तउयभंडे जाव सुबहुं अए लब्भति, तं छडुत्ति णं देवाणुप्पिया ! अयभारणं, तउयभारणं बंधाहि ।

तए से पुरिसे एवं वयासी—दूराहडे मे देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मे देवाणुप्पिया ! अए, अइगाढबंधणबद्धे मे देवाणुप्पिया ! अए, असिद्धिलबंधणबद्धे देवाणुप्पिया ! अए, घणियबंधणबद्धे देवाणुप्पिया ! अए, णो संचाएमि अयभारणं छडुत्ता तउयभारणं बंधित्तए ।

तए णं ते पुरिसा तं पुरिसं जाहे णो संचायंति बहूहिं आघवणाहि य पन्नवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा तथा अहाणुपुव्वीए संपत्थिया, एवं तंबागरं रुप्पागरं सुवण्णागरं रयणागरं वइरागरं ।

तए णं ते पुरिसा जेणेव सया जणवया, जेणेव साइं साइं नगराइं, तेणेव उवागच्छन्ति वयरविक्कणणं करेत्ति, सुबहुदासीदासगोमहिसगवेलगं गिणहंति, अट्टतलमूसियवडंसगे कारावेत्ति, णहाया कयबलिकम्मा उप्पिं पासायवरगया फुट्टमाणेहिं मुड्ढंगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धएहिं नाडएहिं वरतरुणीसपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणा उवलालिज्जमाणा इट्ठे सद्-फरिस-जाव विहरंति ।

तए णं से पुरिसे अयभारेण जेणेव सए नगरे तेणेव उवागच्छइ, अयभारेणं गहाय अयविक्कणणं करेत्ति, तंसि अप्पमोल्लंसि निहियंसि झीणपरिव्वए, ते पुरिसे उप्पिं पासायवरगए जाव विहरमाणे पासति, पासित्ता एवं वयासी—अहो ! णं अहं अधन्नो अपुत्तो अकयत्थो अकयलक्खणो हिरिसिरिवज्जिए हीणपुण्णचाउद्दसे दुरंतपंतलक्खणे । जति णं अहं मित्ताण वा णाईण वा नियगाण वा सुणोत्तओ तो णं अहं पि एवं चेव उप्पिं पासायवरगए जाव विहरंतो ।

से तेण्ड्रेणं पएसी एवं वुच्चइ—मा तुमं पएसी पच्छाणुताविए भविज्जासि, जहा व से पुरिसे अयभारिए ।

२६७— प्रदेशी राजा की बात सुनकर केशी कुमारश्रमण ने इस प्रकार कहा—प्रदेशी! तुम उस अयोहारक (लोहे के भार को ढोने वाले लोहवणिक) की तरह पश्चात्ताप करने वाले मत होओ। अर्थात् जैसे अयोहारक—लोहवणिक पछताया उसी तरह तुम्हें भी अपनी कुलपरम्परागत अन्धश्रद्धा के कारण पछताना पड़ेगा।

प्रदेशी—भदन्त! वह अयोहारक कौन था और उसे क्यों पछताना पड़ा ?

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी! कुछ अर्थ (धन) के अभिलाषी, अर्थ की गवेषणा करने वाले, अर्थ के लोभी, अर्थ की कांक्षा और अर्थ की लिप्सा वाले पुरुष अर्थ-गवेषणा करने (धनोपार्जन करने) के निमित्त विपुल परिमाण में बिक्री करने योग्य पदार्थों और साथ में खाने-पीने के लिए पुष्कल—पर्याप्त पार्थेय (नाश्ता) लेकर निर्जन, हिंसक प्राणियों से व्याप्त और पार होने के लिए रास्ता न मिले, ऐसी एक बहुत बड़ी अटवी (वन) में जा पहुंचे।

जब वे लोग उस निर्जन अटवी में कुछ आगे बढ़े तो किसी स्थान पर उन्होंने इधर-उधर सारयुक्त लोहे से व्याप्त लम्बी-चौड़ी और गहरी एक विशाल लोहे की खान देखी। वहां लोहा खूब बिखरा पड़ा था। उस खान को देखकर हर्षित, संतुष्ट यावत् विकसितहृदय होकर उन्होंने आपस में एक दूसरे को बुलाया और कहा, यह सलाह की—देवानुप्रियो! यह लोहा हमारे लिए इष्ट, प्रिय यावत् मनोज्ञ है, अतः देवानुप्रियो! हमें इस लोहे के भार को बांध लेना चाहिए। इस विचार को एक दूसरे ने स्वीकार करके लोहे का भारा बांध लिया। बांधकर उसी अटवी में आगे चल दिये।

तत्पश्चात् आगे चलते-चलते वे लोग जब उस निर्जन यावत् अटवी में एक स्थान पर पहुंचे तब उन्होंने सीसे से भरी हुई एक विशाल सीसे की खान देखी, यावत् एक दूसरे को बुलाकर कहा—हे देवानुप्रियो! हमें इस सीसे का संग्रह करना यावत् लाभदायक है। थोड़े से सीसे के बदले हम बहुत-सा लोहा ले सकते हैं। इसलिए देवानुप्रियो! हमें इस लोहे के भार को छोड़कर सीसे का पोटला बांध लेना योग्य है। ऐसा कहकर आपस में एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया और लोहे को छोड़कर सीसे के भार को बांध लिया। किन्तु उनमें से एक व्यक्ति लोहे को छोड़कर सीसे के भार को बांधने के लिए तैयार नहीं हुआ।

तब दूसरे व्यक्तियों (साथियों) ने अपने उस साथी से कहा—देवानुप्रियो! हमें लोहे की अपेक्षा इस सीसे का संग्रह करना अधिक अच्छा है, यावत् हम इस थोड़े से सीसे से बहुत-सा लोहा प्राप्त कर सकते हैं। अतएव देवानुप्रियो! इस लोहे को छोड़कर सीसे का भार बांध लो।

तब उस व्यक्ति ने कहा—देवानुप्रियो! मैं इस लोहे के भार को बहुत दूर से लादे चला आ रहा हूं। देवानुप्रियो! मैंने इस लोहे को बहुत ही कसकर बांधा है। देवानुप्रियो! मैंने इस लोहे को अश्लिथल बंधन से बांधा है। देवानुप्रियो! मैंने इस लोहे को अत्यधिक प्रगाढ़ बंधन से बांधा है। इसलिए मैं इस लोहे को छोड़कर सीसे के भार को नहीं बांध सकता हूं।

तब दूसरे व्यक्तियों ने उस व्यक्ति को अनुकूल-प्रतिकूल सभी तरह की आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली—समझाने वाली—वाणी) से समझाया। लेकिन जब वे उस पुरुष को समझाने-बुझाने में समर्थ नहीं हुए तो अनुक्रम से आगे-आगे चलते गये और वहां-वहां

पहुंचकर उन्होंने तांबे की, चांदी की, सोने की, रत्नों की और हीरों की खानें देखीं एवं इनको जैसे-जैसे बहुमूल्य वस्तुएं मिलती गईं, वैसे-वैसे पहले-पहले के अल्प मूल्य वाले तांबे आदि को छोड़कर अधिक-अधिक मूल्यवाली वस्तुओं को बांधते गये। सभी खानों पर उन्होंने अपने उस दुराग्रही साथी को समझाया किन्तु उसके दुराग्रह को छुड़ाने में वे समर्थ नहीं हुए।

इसके बाद वे सभी व्यक्ति जहां अपना जनपद-देश था और देश में जहां अपने-अपने नगर थे, वहां आये। वहां आकर उन्होंने हीरों को बेचा। उससे प्राप्त धन से अनेक दास-दासी, गाय, भैंस और भेड़ों को खरीदा, बड़े-बड़े आठ-आठ मंजिल के ऊंचे भवन बनवाये और इसके बाद स्नान, बलिकर्म आदि करके उन श्रेष्ठ प्रासादों के ऊपरी भागों में बैठकर बजते हुए मृदंग आदि वाद्यों—निन्नादों एवं उत्तम तरुणियों द्वारा की जा रही नृत्य-गान युक्त बत्तीस प्रकार की नाट्य लीलाओं को देखते तथा साथ ही इष्ट शब्द, स्पर्श यावत् (रस, रूप और गंध मूलक मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों के भोगते हुये अपना-अपना समय) व्यतीत करने लगे।

वह लोहवाहक पुरुष भी लोहभार को लेकर अपने नगर में आया। वहां आकर उस लोहभार के लोहे को बेचा। किंतु अल्प मूल्य वाला होने से उसे थोड़ा-सा धन मिला। उस पुरुष ने अपने साथियों को श्रेष्ठ प्रासादों के ऊपर रहते हुए यावत् (भोग-विलास में) अपना समय बिताते हुए देखा। देखकर अपने आपसे इस प्रकार कहने लगा—अरे! मैं अधन्य, पुण्यहीन, अकृतार्थ, शुभलक्षणों से रहित, श्री-ही से वर्जित, हीनपुण्य चातुर्दशिक (कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को जन्मा हुआ), दुरंत-प्रान्त लक्षण वाला कुलक्षणी हूं। यदि उन मित्रों, ज्ञातिजनों और अपने हितैषियों की बात मान लेता तो आज मैं भी इसी तरह श्रेष्ठ प्रासादों में रहता हुआ यावत् अपना समय व्यतीत करता।

इसी कारण हे प्रदेशी! मैंने यह कहा कि यदि तुम अपना दुराग्रह नहीं छोड़ोगे तो उस लोहभार को ढोने वाले दुराग्रही की तरह तुम्हें भी पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

### प्रदेशी की प्रतिक्रिया एवं श्रावकधर्म-ग्रहण

२६८— एत्थ णं से पएसी राया संबुद्धे केसिकुमारसमणं वंदइ जाव एवं वयासी—गो खलु भंते ! अहं पच्छाणुताविए भविस्सामि जहा व से पुरिसे अयभारिए, तं इच्छामि णं देवानुप्पियाणं अंतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए ।

अहासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

धम्मकहा जहा चित्तस्स । तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ जेणेव सेयविया नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

२६८— इस प्रकार समझाये जाने पर यथार्थ तत्त्व का बोध प्राप्त कर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण को वन्दना की यावत् निवेदन किया—भदन्त! मैं वैसा कुछ नहीं करूंगा जिससे उस लोहभारवाहक पुरुष की तरह मुझे पश्चात्ताप करना पड़े। अतः आप देवानुप्रिय से केवलिप्रज्ञत धर्म सुनना चाहता हूं।

केशी कुमारश्रमण—देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख उपजे वैसा करो, परंतु विलंब मत करो।

इसके पश्चात् प्रदेशी की जिज्ञासा-वृत्ति देखकर केशी कुमारश्रमण ने जैसे चित्त सारथी को धर्मोपदेश देकर श्रावकधर्म समझाया था उसी तरह राजा प्रदेशी को भी धर्मकथा सुनाकर गृहिधर्म का विस्तार से विवेचन किया। राजा गृहस्थधर्म स्वीकार करके सेयविया नगरी की ओर चलने को तत्पर हुआ।

२६९— तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—जाणासि तुमं पएसी ! कइ आयरिया पन्नत्ता ?

हंता जाणामि, तओ आयरिआ पणत्ता, तं जहा—कलायरिए, सिप्पायरिए, धम्मायरिए । जाणासि णं तुमं पएसी ! तेसिं तिण्हं आयरियाणं कस्स का विणयपडिवत्ती पंजियव्वा ?

हंता जाणामि, कलायरियस्स सिप्पायरिस्स उवलेवणं संमज्जणं वा करेज्जा, पुरओ पुप्फाणि वा आणवेज्जा, मज्जावेज्जा, मंडावेज्जा, भोयाविज्जा वा विउलं जीवितारिहं पीइदाणं दलएज्जा, पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेज्जा । जत्थेव धम्मायरियं पासिज्जा तत्थेव वंदेज्जा णमंसेज्जा सक्कारेज्जा सम्माणेज्जा, कल्लाणं मंगलं चेइयं पज्जुवासेज्जा, फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेज्जा, पाडिहारिणं पीढ-फलग-सिज्जा संथारणं उवनिमंतेज्जा ।

एवं च ताव तुमं पएसी ! एवं जाणासि तहावि णं तुमं ममं वामं वामेणं जाव वट्टित्ता ममं एयमट्ठं अखामित्ता जेणेव सेयविया नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ?

२६९— तब केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—प्रदेशी ! जानते हो कितने प्रकार के आचार्य होते हैं ?

प्रदेशी—हां, भदन्त ! जानता हूं, तीन (प्रकार के) आचार्य होते हैं—१. कलाचार्य, २. शिल्पाचार्य, ३. धर्माचार्य ।

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! तुम जानते हो कि इन तीन आचार्यों में से किसकी कैसी विनयप्रतिपत्ति करनी चाहिए ?

प्रदेशी—हां, भदन्त ! जानता हूं । कलाचार्य और शिल्पाचार्य के शरीर पर चन्दनादि का लेप और तेल आदि का मर्दन (मालिश) करना चाहिए, उन्हें स्नान कराना चाहिए, उनके सामने पुष्प आदि भेंट रूप में रखना चाहिए, उनके कपड़ों आदि को सुरभि गन्ध से सुगन्धित करना चाहिए, आभूषणों आदि से उन्हें अलंकृत करना चाहिए, आदर-पूर्वक भोजन कराना चाहिए और आजीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देना चाहिए, एवं उनके लिए ऐसी आजीविका की व्यवस्था करना चाहिए कि पुत्र—पौत्रादि परम्परा भी जिसका लाभ ले सके । धर्माचार्य के जहां भी दर्शन हों, वहीं उनको वन्दना—नमस्कार करना चाहिए, उनका सत्कार—सन्मान करना चाहिए और कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप एवं ज्ञानरूप उनकी पर्युपासना करनी चाहिए तथा अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन—पान से उन्हें प्रतिलाभित करना चाहिए, पडिहारी पीठ, फलक, शय्या—संस्तारक आदि ग्रहण करने के लिए उनसे प्रार्थना करनी चाहिए ।

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! इस प्रकार की विनयप्रतिपत्ति जानते हुए भी तुम अभी तक मेरे प्रति जो प्रतिकूल व्यवहार एवं प्रवृत्ति करते रहे, उसके लिए क्षमा मांगे बिना ही सेयविया नगरी की ओर चलने के लिए उद्यत हो रहे हो ?

२७०— तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वदासी—एवं खलु भंते ! मम एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं देवाणुप्पियाणं वामं वामेणं जाव वट्टिए, तं सेयं खलु मे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अहा-

पंडुरे पभाए रत्तासोग-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धरागसरिसे कमलागरनलिणिसंडबोहए उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडस्स देवाणुप्पिए वंदित्तए नमंसित्तए एतमट्ठं भुज्जो-भुज्जो सम्मं विणएणं खामित्तए-त्ति-कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूते तामेव दिसिं पडिगए ।

तए णं से पएसी राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते हट्टुट्टु-जाव-हियए जहेव कूणिए<sup>१</sup> तहेव निग्गच्छइ अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे पंचविहेणं अभिगमेणं वंदइ नमंसइ एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएणं खामेइ ।

२७०— केशी कुमारश्रमण के इस संकेत को सुनकर प्रत्युत्तर में प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से यह निवेदन किया—हे भदन्त! आपका कथन योग्य है किन्तु मेरा इस प्रकार यह आध्यात्मिक—आन्तरिक यावत् विचार—संकल्प है कि अभी तक आप देवानुप्रिय के प्रति मैंने जो प्रतिकूल यावत् व्यवहार किया है, उसके लिए आगामी कल, रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने, उत्पलों और कमनीय कमलों के उन्मीलित और विकसित होने, प्रभात के पांडुर (पीलाश लिए श्वेत वर्ण का) होने, रक्ताशोक, पलाशपुष्प, शुकमुख (तोते की चोंच), गुंजाफल के अर्धभाग जैसे लाल, सरोवर में स्थित कमलिनीकुलों के विकासक सूर्य का उदय होने एवं जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्तरश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अन्तःपुर-परिवार सहित आप देवानुप्रिय की वन्दना-नमस्कार करने और अवमानना रूप अपने अपराध की बारंबार विनयपूर्वक क्षमापना के लिए सेवा में उपस्थित होऊँ।

ऐसा निवेदन कर वह जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया।

दूसरे दिन जब रात्रि के प्रभात रूप में रूपान्तरित होने यावत् जाज्वल्यमान तेज सहित दिनकर के प्रकाशित होने पर प्रदेशी राजा हृष्ट-तुष्ट यावत् विकसितहृदय होता हुआ कोणिक राजा की तरह दर्शनार्थ निकला। उसने अन्तःपुर-परिवार आदि के साथ पांच प्रकार के अभिगमपूर्वक वन्दन-नमस्कार किया और यथाविधि विनयपूर्वक अपने प्रतिकूल आचरण के लिए वारंवार क्षमायाचना की।

विवेचन— पांच अभिगमों के नाम इस प्रकार हैं—

१. सचित्त द्रव्यों (पुष्प, पान आदि) का त्याग।
२. अचित्त द्रव्यों (वस्त्र, आभूषण आदि) का अत्याग।
३. एक शाटिका (दुपट्टा) का उत्तरासंग करना।
४. दृष्टि पड़ते ही दोनों हाथ जोड़ना।
५. मन को एकाग्र करना।

२७१— तए णं केसी कुमारसमणे पएसिस्स रण्णो सूरियकंतप्पमुहाणं देवीणं तीसे य महत्तिमहालियाए महच्चपरिसाए जाव धम्मं परिकहेइ ।

तए णं से पएसी राया धम्मं सोच्चा निसम्म उट्टाए उट्टेति, केसिकुमारसमणं वंदइ नमंसइ जेणेव सेयविद्या नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

१. देखिए समिति द्वारा प्रकाशित औपपातिकसूत्र

२७१— तत्पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा, सूर्यकान्ता आदि रानियों और उस अति विशाल परिषद् को यावत् धर्मकथा सुनाई।

इसके बाद प्रदेशी राजा धर्मदेशना सुन कर और उसे हृदय में धारण करके अपने आसन से उठा एवं केशी कुमारश्रमण को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके सेयविया नगरी की ओर चलने के लिए उद्यत हुआ।

२७२— तए णं केशी कुमारसमणे पएसिरायं एवं वदासी—मा णं तुमं पएसी ! पुव्विं रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि, जहा से वणसंडे इ वा, णट्टसाला इ वा इक्खुवाडए इ वा, खलवाडए इ वा ।

कहं णं भंते ! ?

वणसंडे पत्तिए पुप्फिए फलिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अतीव अतीव उवसोभमाणे चिट्ठइ, तथा णं वणसंडे रमणिज्जे भवति । जया णं वणसंडे नो पत्तिए, नो पुप्फिए, नो फलिए नो हरियगरेरिज्जमाणे णो सिरीए अईव अईव उवसोभमाणे चिट्ठइ तथा णं जुन्ने झडे परिसडिय पंडुपत्ते सुक्करुक्खे इव मिलायमाणे चिट्ठइ तथा णं वणे णो रमणिज्जे भवति ।

जया णं णट्टसाला वि गिज्जइ वाइज्जइ नच्चिज्जइ हसिज्जइ रमिज्जइ तथा णं णट्ट-साला रमणिज्जा भवइ, जया णं नट्टसाला णो गिज्जइ जाव णो रमिज्जइ तथा णं णट्टसाला अरमणिज्जा भवति ।

जया णं इक्खुवाडे छिज्जइ भिज्जइ सिज्जइ पिज्जइ दिज्जइ तथा णं इक्खुवाडे रमणिज्जे भवइ, जया णं इक्खुवाडे णो छिज्जइ जाव तथा इक्खुवाडे अरमणिज्जे भवइ ।

जया णं खलवाडे उच्छुब्भइ उदुइज्जइ मलइज्जइ मुणिज्जइ खज्जइ पिज्जइ दिज्जइ तथा णं खलवाडे रमणिज्जे भवति जया णं खलवाडे नो उच्छुब्भइ जाव अरमणिज्जे भवति ।

से तेणट्टेण पएसी ! एवं वुच्चइ मा णं तुमे पएसी ! पुव्विं रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि जहा वणसंडे इ वा ।

२७२— राजा प्रदेशी को सेयविया नगरी की ओर चलने के लिए उद्यत देखकर केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—जैसे वनखण्ड अथवा नाट्यशाला अथवा इक्षुवाड (गन्ने का खेत) अथवा खलवाड (खलिहान) पूर्व में रमणीय होकर पश्चात् अरमणीय हो जाते हैं, उसी प्रकार तुम पहले रमणीय (धार्मिक) होकर बाद में अरमणीय (अधार्मिक) मत हो जाना।

प्रदेशी—भदन्त ! यह कैसे कि वनखण्ड आदि पूर्व में रमणीय (मनोरम, सुन्दर) होकर बाद में अरमणीय हो जाते हैं ?

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! वनखण्ड आदि पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय ऐसे हो जाते हैं कि—

वनखण्ड जब तक हरे-भरे पत्तों, पुष्पों, फलों से सम्पन्न और अतिशय सुहावनी सघन छाया एवं हरियाली से व्याप्त होता है तब तक अपनी शोभा से अतीव-अतीव सुशोभित होता हुआ रमणीय लगता है। लेकिन वही वनखण्ड पत्तों, फूलों, फलों और नाममात्र की भी हरियाली नहीं रहने से हराभरा, देदीप्यमान न होकर कुरूप, भयावना दिखने लगता है तब सूखे वृक्ष की तरह छाल-पत्तों के जीर्ण-शीर्ण हो जाने, झर जाने, सड़ जाने, पीले और म्लान हो जाने

से रमणीय नहीं रहता है।

इसी प्रकार नाट्यशाला भी जब तक संगीत-गान होता रहता है, बाजे बजते रहते हैं, नृत्य होते रहते हैं, लोगों के हास्य से व्याप्त रहती है और विविध प्रकार की रमते—क्रीडायें होती रहती हैं तब तक रमणीय-सुहावनी लगती है, किन्तु जब उसी नाट्यशाला में गीत नहीं गाये जा रहे हों यावत् क्रीडायें नहीं हो रही हों, तब वही नाट्यशाला असुहावनी हो जाती है।

इसी तरह प्रदेशी ! जब तक इक्षुवाड़ (ईख के खेत) में ईख कटती हो, टूटती हो, पेरी जाती हो, लोग उसका रस पीते हों, कोई उसे लेते-देते हों, तब तक वह इक्षुवाड़ रमणीय लगता है। लेकिन जब उसी इक्षुवाड़ में ईख न कटती हो आदि तब वही मन को अरमणीय—अप्रिय, अनिष्टकर लगने लगती है।

इसी प्रकार प्रदेशी ! जब तक खलवाड़ (खलिहान) में धान्य के ढेर लगे रहते हैं, उड़ावनी होती रहती है, धान्य का मर्दन (दांय) होता रहता है, तिल आदि पेरे जाते हैं, लोग एक साथ मिलकर भोजन खाते-पीते, देते-लेते हैं, तब तक वह रमणीय मालूम होता है, लेकिन जब धान्य के ढेर आदि नहीं रहते तब वही अरमणीय दिखने लगता है।

इसीलिए हे प्रदेशी ! मैंने यह कहा है कि तुम पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय मत हो जाना, जैये कि वनखंड आदि हो जाते हैं।

**विवेचन**— प्रस्तुत सूत्रगत—‘मा णं तुमं पएसी ! पुव्विं रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि’ वाक्य का टीकाकार आचार्य ने इस प्रकार आशय स्पष्ट किया है—केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा कि हे राजन् ! जब तुम धर्मानुगामी नहीं थे तब दूसरे लोगों को दान देते थे तो दान देने की यह प्रथा अब भी चालू रखना। अर्थात् पूर्व में जैसे रमणीय-दानी थे उसी तरह अब भी रमणीय-दानी रहना किन्तु अरमणीय न होना। यदि अरमणीय हो जाओगे—संकुचित दृष्टि वाले हो जाओगे तो इससे निर्ग्रन्थप्रवचन की अपकीर्ति फैलेगी और हमें अन्तराय कर्म का बंध होगा।

२७३— तए णं पएसी केषिं कुमारसमणं एवं वयासी—णो खलु भंते ! अहं पुव्विं रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविस्सामि, जहा वणसंडे इ वा जाव खलवाड़े इ वा । अहं णं सेयवियानगरीपमुक्खाइं सतगामसहस्साइं चत्तारि भागे करिस्सामि, एगं भागं बलवाहणस्स दलइस्सामि, एगं भागं कोट्टागारे छुभिस्सामि, एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि, एगेणं भागेणं महत्तमहलयं कूडागारसालं करिस्सामि, तथ्य णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्नभइभत्तवेयणेहिं विउलं असणं० ( पानं-खाइमं-साइमं ) उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-भिक्खुयाणं-पंथियपहियाणं परिभाए-माणे बहूहिं सीलव्वयगुणव्वयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासस्स जाव विहरिस्सामि त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगाए ।

२७३— तब प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार निवेदन किया—भदन्त ! आप द्वारा दिये गये वनखण्ड यावत् खलवाड़ के उदाहरणों की तरह मैं पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय नहीं बनूंगा। क्योंकि मैंने यह विचार किया है कि सेयवियानगरी आदि सात हजार ग्रामों के चार विभाग करूंगा। उनमें से एक भाग राज्य की व्यवस्था और रक्षण के लिए बल (सेना) और वाहन के लिए दूंगा, एक भाग प्रजा के पालन हेतु कोठार में अन्न आदि

के लिए रखूंगा, एक भाग अंतःपुर के निर्वाह और रक्षा के लिए दूंगा और शेष एक भाग से एक विशाल कूटाकारशाला बनवाऊंगा और फिर बहुत से पुरुषों को भोजन, वेतन और दैनिक मजदूरी पर नियुक्त कर प्रतिदिन विपुल मात्रा में अशन, पान, खादिम स्वादिम रूप चारों प्रकार का आहार बनवाकर अनेक श्रमणों, माहनों, भिक्षुओं यात्रियों और पथिकों को देते हुए एवं शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास आदि यावत् (तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए) अपना जीवनयापन करूंगा, ऐसा कहकर जिस दिशा से आया था, वापस उसी ओर लौट गया।

### प्रदेशी द्वारा कृत राज्यव्यवस्था

२७४— तए णं से पएसी राया कल्लं जाव तेयसा जलंते सेयवियापामोक्खाइं सत्त गामसहस्साइं चत्तारि भाए करेइ, एगं भागं बलवाहणस्स दलइ जाव कूडागारसालं करेइ, तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं जाव उवक्खडावेत्ता बहूणं समण जाव परिभाएमाणे विहरइ ।

२७४— तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने अगले दिन यावत् जाज्वल्यमान तेजसहित सूर्य के प्रकाशित होने पर सेयविया प्रभृति सात हजार ग्रामों के चार भाग किये। उनमें से एक भाग बल-वाहनों को दिया यावत् कूटाकारशाला का निर्माण कराया। उसमें बहुत से पुरुषों को नियुक्त कर यावत् भोजन बनवाकर बहुत से श्रमणों यावत् पथिकों को देते हुए अपना समय बिताने लगा।

२७५— तए णं से पएसी राया समणोवासए जाव अभिगयजीवाजीवे० विहरइ ।

जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाव तप्पभिइं च णं रज्जं च, रट्टं च, बलं च, वाहणं च, कोट्टागारं च, पुरं च, अंतेउरं च, जणवयं च, अणाढायमाणे यावि विहरति ।

२७५— प्रदेशी राजा अब श्रमणोपासक हो गया और जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञात होता हुआ धार्मिक आचार-विचारपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

जबसे वह प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हुआ तब से राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोठार, पुर, अन्तःपुर और जनपद के प्रति भी उदासीन रहने लगा।

### सूर्यकान्ता रानी का षड्यंत्र

२७६— तए णं तीसे सूरियकंताए देवीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था— जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाव तप्पभिइं च णं रज्जं च रट्टं जाव अंतेउरं च ममं जणवयं च अणाढायमाणे विहरइ; तं सेयं खलु मे पएसिं रायं केणवि सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा मंतप्पओगेण वा विसप्पओगेण वा उह्वेत्ता सूरियकंतं कुमारं रज्जे ठवित्ता सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणीए पालेमाणीए विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता सूरियकंतं कुमारं सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी—

जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइं च णं रज्जं च जाव अंतेउरं च णं जणवयं च माणुस्सए य कामभोगे अणाढायमाणे विहरइ, तं सेयं खलु तव पुत्ता ? पएसिं रायं केणइ सत्थप्पओगेण वा जाव उह्वित्ता सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणे पालेमाणे विहरित्तए ।

तए णं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवं वुत्ते समाणे सूरियकंताए देवीए एयमदुं णो आढाइ नो परियाणाइ, तुसिणीइ संचिदुइ ।

तए णं तीसे सूरियकंताए देवीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—मा णं सूरियकंते कुमारे पएसिस्स रत्तो इमं रहस्सभेयं करिस्सइ त्ति कट्टु पएसिस्स रण्णो छिद्दाणि य मम्माणि य रहस्साणि य विवराणि य अंतराणि य पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

२७६— राजा प्रदेशी को राज्य आदि के प्रति उदासीन देखकर सूर्यकान्ता रानी को यह और इस प्रकार का आन्तरिक यावत् विचार उत्पन्न हुआ कि—जब से राजा प्रदेशी श्रमणोपासक हुआ है, उसी दिन से राज्य, राष्ट्र, यावत् अन्तःपुर, जनपद और मुझेसे विमुख हो गया है। अतः मुझे यही उचित है कि शस्त्रप्रयोग, अग्निप्रयोग, मंत्रप्रयोग अथवा विषप्रयोग द्वारा राजा प्रदेशी को मारकर और सूर्यकान्त कुमार को राज्य पर आसीन करके अर्थात् राजा बनाकर स्वयं राज्यलक्ष्मी का भोग करती हुई, प्रजा का पालन करती हुई आनन्दपूर्वक रहूं। ऐसा उसने विचार किया। विचार करके सूर्यकान्त कुमार को बुलाया और बुलाकर अपनी मनोभावना बताई—

हे पुत्र! जब से प्रदेशी राजा ने श्रमणोपासक धर्म स्वीकार कर लिया है, तभी से राज्य यावत् अन्तःपुर, जनपद और मनुष्य संबंधी कामभोगों की ओर ध्यान देना बंद कर दिया है। इसलिए पुत्र ! तुम्हें यही श्रेयस्कर है कि शस्त्रप्रयोग आदि किसी-न-किसी उपाय से प्रदेशी राजा को मारकर स्वयं राज्यलक्ष्मी का भोग एवं प्रजा का पालन करते हुए अपना जीवन बिताओ।

सूर्यकान्ता देवी के इस विचार को सुनकर सूर्यकान्त कुमार ने उसका आदर नहीं किया, उस पर ध्यान नहीं दिया किन्तु शांत-मौन ही रहा।

तब सूर्यकान्ता रानी को इस प्रकार का आन्तरिक यावत् विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि सूर्यकान्त कुमार प्रदेशी राजा के सामने मेरे इस रहस्य को प्रकाशित कर दे। ऐसा सोचकर सूर्यकान्ता रानी प्रदेशी राजा को मारने के लिए उसके दोष रूप छिद्रों को, कुकृत्य रूप आन्तरिक मर्मों को, एकान्त में सेवित निषिद्ध आचरण रूप रहस्यों को, एकान्त निर्जन स्थानों को और अनुकूल अवसर रूप अन्तरों को जानने की ताक में रहने लगी।

२७७— तए णं सूरियकंता देवी अन्नया कयाइ पएसिस्स रण्णो अंतरं जाणइ, असणं जाव खाइमं सव्वं वत्थ-गंध-मल्लालंकारं विसप्पओगं पउंजइ, पएसिस्स रण्णो प्हायस्स जाव पायच्छित्तस्स सुहासणवरगयस्स तं विससंजुत्तं असणं वत्थं जाव-अलंकारं निसिरेइ, घातइ ।

तए णं तस्स पएसिस्स रण्णो तं विससंजुत्तं असणं आहारेमाणस्स सरीरगंमि वेयणा पाउब्भूया उज्जला विपुला पगाढा कक्कसा कडुया फरुसा निट्ठुरा चंडा तिक्वा दुक्खा दुग्गा दुरहियासा पित्तजरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतिया वि विहरइ ।

२७७— तत्पश्चात् किसी एक दिन अनुकूल अवसर मिलने पर सूर्यकान्ता रानी ने प्रदेशी राजा को मारने के लिए अशन-पान आदि भोजन में तथा शरीर पर धारण करने योग्य सभी वस्त्रों, सूंघने योग्य सुगन्धित वस्तुओं, पुष्पमालाओं और आभूषणों में विष डालकर विषैला कर दिया। इसके बाद जब वह प्रदेशी राजा स्नान यावत् मंगल प्रायश्चित्त कर भोजन करने के लिए सुखपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर बैठा तब वह विषमिश्रित घातक अशन आदि रूप आहार परोसा तथा विषमय वस्त्र पहनाये यावत् विषमय अलंकारों से उसको शृंगारित किया।

तब उस विषमिले आहार को खाने से प्रदेशी राजा के शरीर में उक्तकट, प्रचुर, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, परुष, निष्ठुर, रौद्र, दुःखद, विकट और दुस्सह वेदना उत्पन्न हुई। विषम पित्तज्वर से सारे शरीर में जलन होने लगी।

### प्रदेशी का संलेखना-मरण

२७८— तए णं से पएसी राया सूरियकंताए देवीए अत्ताणं संपलद्धं जाणित्ता सूरिय-कंताए देवीए मणसावि अप्पदुस्समाणे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, पोसहसालं पमज्जइ, उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, दब्भसंधारगं संथरेइ, दब्भसंधारगं दुरूहइ, पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसन्ने करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं अंजलिं मत्थए त्ति कट्टु एवं वयासी—

नमोऽत्थु णं अरहंताणं जावं संपत्ताणं । नमोऽत्थु णं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मोवदेसगस्स धम्मायरियस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थ गयं इह गए, पासउ मे भगवं तत्थ गए इह गयं ति कट्टु वंदइ नमंसइ । पुव्विं पि णं मए केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए थूलपाणाइवाए पच्चक्खाए जाव परिग्गहे, तं इयाणिं पि णं तस्सेव भगवतो अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव परिग्गहं, सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं, अकरणिज्जं जोयं पच्चक्खामि, सव्वं असणं चउव्विहं पि आहारं जावज्जीवाए पच्चक्खामि ।

जं पि य मे सरीरं इट्ठं जाव फुसंतु त्ति एयं पि य णं चरिमेहिं ऊसासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सूरियाभे विमाणे उववायसभाए जाव वण्णओ ।

२७८— तत्पश्चात् प्रदेशी राजा सूर्यकान्ता देवी के इस उत्पात (षड्यन्त्र, धोखे) को जानकर भी उस के प्रति मन में लेशमात्र भी द्वेष-रोष न करते हुए जहां पौषधशाला थी, वहां आया। आकर उसने पौषधशाला की प्रमार्जना की, उच्चारप्रस्रवणभूमि (स्थंडिल भूमि) का प्रतिलेखन किया। फिर दर्भ का संधारा बिछाया और उस पर आसीन हुआ। आसीन होकर उसने पूर्व दिशा की ओर मुख कर पर्यकासन (पद्मासन) से बैठकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

अरिहंतों यावत् सिद्धगति को प्राप्त भगवन्तों को नमस्कार हो! मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक केशी कुमार-श्रमण को नमस्कार हो। यहां स्थित मैं वहां विराजमान भगवान् की वन्दना करता हूं। वहां पर विराजमान वे भगवन् यहां रहकर वन्दना करने वाले मुझे देखें। पहले भी मैंने केशी कुमारश्रमण के समक्ष स्थूल प्राणातिपात यावत् स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया है। अब इस समय भी मैं उन्हीं भगवन्तों की साक्षी से (यावज्जीवन के लिए) सम्पूर्ण प्राणातिपात यावत् समस्त परिग्रह, क्रोध यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का (अठारह पापस्थानों का) प्रत्याख्यान करता हूं। अकरणीय (नहीं करने योग्य जैसे) समस्त कार्यों एवं मन-वचन-काय योग का प्रत्याख्यान करता हूं और जीवन-पर्यंत के लिए सभी अशन-पान आदि रूप चारों प्रकार के आहार का भी त्याग करता हूं।

परन्तु मुझे यह शरीर इष्ट—प्रिय रहा है, मैंने यह ध्यान रखा है कि इसमें कोई रोग आदि उत्पन्न न हों, परन्तु अब अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक के लिए इस शरीर का भी परित्याग करता हूं।

इस प्रकार के निश्चय के साथ पुनः आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक मरण समय के प्राप्त होने पर काल करके सौधर्मकल्प के सूर्याभविमान की उपपात सभा में सूर्याभदेव के रूप में उत्पन्न हुआ, इत्यादि पूर्व में किया गया समस्त वर्णन यहां कर लेना चाहिए।

### सूर्याभदेव का भावी जन्म

२७९— तए णं से सूरियाभे देवे अहुणोववन्नए चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्ति-भावं गच्छति, तं०—आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंद्रियपज्जत्तीए आणपाणपज्जत्तीए भास-मणपज्जत्तीए, तं एवं खलु भो ! सूरियाभेणं देवेणं दिव्वा देविद्धी दिव्वा देवजुती दिव्वे देवाणु-भावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए ।

सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ।

गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

से णं सूरियाभे देवे ताओ लोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिति कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलाणि भवंति, तं०—अट्ठाइं दित्ताइं विउलाइं विच्छिणविपुलभवण-सयणासण-जाण-वाहणाइं बहुधण-बहुजातरूव-रययाइं आओग-पओगसंपउत्ताइं विच्छिड्डियपउरभत्तपाणाइं बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूयाइं बहुजणस्स अपरिभूताइं, तत्थ अन्नयरेसु कुलेसु पुत्तत्ताए पच्चाइस्सइ ।

२७९— तत्काल उत्पन्न हुआ वह सूर्याभदेव पांच पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ। वे पर्याप्तियां इस प्रकार हैं—

१. आहारपर्याप्ति, २. शरीरपर्याप्ति, ३. इन्द्रियपर्याप्ति, ४. श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, ५. भाषा-मनःपयाप्ति।

इस प्रकार से हे गौतम! उस सूर्याभदेव ने यह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव—देवप्रभाव उपार्जित किया है, प्राप्त किया है और अधिगत—अधीन किया है।

गौतम—भदन्त! उस सूर्याभदेव की आयुष्यमर्यादा कितने काल की है ?

भगवान्—गौतम! उसकी आयुष्यमर्यादा चार पल्योपम की है।

गौतम—भगवन्! आयुष्य पूर्ण होने, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर सूर्याभदेव उस देवलोक से च्यवन करके कहां जायेगा ? कहां उत्पन्न होगा ?

भगवन्—गौतम! महाविदेह क्षेत्र में जो कुल आढ्य-धन-धान्यसमृद्ध, दीप्त-प्रभावक, विपुल-बड़े कुटुम्ब परिवारवाले, बहुत से भवनों, शय्याओं, आसनों और यानवाहनों के स्वामी, बहुत से धन, सोने-चांदी के अधिपति, अर्थोपार्जन के व्यापार-व्यवसाय में प्रवृत्त एवं दीनजनों को जिनके यहां से प्रचुर मात्रा में भोजनपान प्राप्त होता है, सेवा करने के लिए बहुत से दास-दासी रहते हैं, बहुसंख्यक गाय, भैंस, भेड़ आदि पशुधन है और जिनका बहुत से लोगों द्वारा भी पराभव—तिरस्कार नहीं किया जा सकता, ऐसे प्रसिद्ध कुलों में से किसी एक कुल में वह पुत्र रूप से उत्पन्न होगा।

## माता-पिता द्वारा कृत जन्मादि संस्कार

२८०— तए णं तंसि दारगंसि गब्भगयंसि चेव समाणंसि अम्मापिउणं धम्मे दढा पइण्णा भविस्सइ ।

तए णं तस्स दारयस्स नवण्हं मासाणं बहुपडिपुत्राणं अब्बट्टमाणं राइंदियाणं वितिवकंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणपमाण-पडिपुत्रसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिसि ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठितिवडियं करेहिंति, ततियदिवसे चंदसूरदंसणिगं करिस्संति, छट्टे दिवसे जागरियं जागरिस्संति, एक्कारसमे दिवसे वीड्कंते संपत्ते बारसाहे दिवसे णिव्वित्ते असुइजायकम्मकरणे चोक्खे संमज्जिओवलित्ते विउलं असणपाण-खाइमसाइमं उवक्खडावेस्संति, मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणं आमंतेत्ता तओ पच्छा पहाया कयबलिकम्मा जाव अलंकिया भोयणमंडवंसि सुहासणवरगया ते मित्तणाइ-जाव परिजणेण सद्धिं विउलं असणं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुंजेमाणा परिभाएमाणा एवं चेव णं विहरिस्संति, जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया तं मित्तणाइ-जाव परिजणं विउलेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेस्संति सम्माणिस्संति तस्सेव मित्त-जाव-परिजणस्स पुरतो एवं वइस्संति—

जम्हा णं देवाणुप्पिया ! इमंसि दारगंसि गब्भगयंसि चेव समाणंसि धम्मे दढा पइण्णा जाया, तं होउ णं अम्हं एयस्स दारयस्स दढपइण्णे णामेणं । तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करिस्संति—दढपइण्णे य दढपइण्णे य ।

तए णं तस्स अम्मापियरो आणुपुव्वेणं ठितिवडियं च चंदसूरियदरिसणं च धम्मजागरियं च नामधिज्जकरणं च पजेमणगं च पडिवद्धावणगं च पचंकमणगं च कन्नवेहणं च संवच्छर-पडिलेहणगं च चूलोवणयं च अन्नाणि य बहूणि गब्भाहाणजम्मणाइयाइं महया इड्डीसक्कार-समुदएणं करिस्संति ।

२८०— तत्पश्चात् उस दारक के गर्भ में आने पर माता-पिता की धर्म में दृढ़ प्रतिज्ञा—श्रद्धा होगी ।

उसके बाद नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिन बीतने पर दारक की माता सुकुमार हाथ-पैर वाले शुभ लक्षणों एवं परिपूर्ण पांच इन्द्रियों और शरीर वाले, सामुद्रिक शास्त्र में बताये गये शारीरिक लक्षणों, तिल आदि व्यंजनों और गुणों से युक्त, माप, तोल और नाप में बराबर, सुजात, सर्वांगसुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकार वाले, कमनीय, प्रियदर्शन एवं सरूपवान् पुत्र को जन्म देगी ।

तब उस दारक के माता-पिता प्रथम दिवस स्थितिपतिता (कुलपरंपरागत क्रियाओं से पुत्रजन्मोत्सव) करेंगे । तीसरे दिन चन्द्रदर्शन और सूर्यदर्शन सम्बन्धी क्रियायें करेंगे । छठे दिन रात्रिजागरण करेंगे । ग्यारह दिन बीतने के बाद बारहवें दिन जातकर्म सम्बन्धी अशुचि की निवृत्ति के लिए घर झाड़बुहार और लीप-पोत कर शुद्ध करेंगे । घर की शुद्धि करने के बाद अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य रूप विपुल भोजनसामग्री बनवायेंगे और मित्रजनों, ज्ञातिजनों, निजजनों,

स्वजन-सम्बन्धियों एवं दास-दासी आदि परिजनों, परिचितों को आमंत्रित करेंगे। इसके बाद स्नान, बलिकर्म, तिलक आदि कौतुक-मंगलप्रायश्चित्त यावत् आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके भोजनमंडप में श्रेष्ठ आसनों पर सुखपूर्वक बैठकर मित्रों यावत् परिजनों के साथ विपुल अशनादि रूप भोजन का आस्वादन, विशेष रूप में आस्वादन करेंगे, उसका परिभोग करेंगे, एक दूसरे को परोसेंगे और भोजन करने के पश्चात् आचमन-कुल्ला आदि करके स्वच्छ, परम शुचिभूत होकर उन मित्रों, ज्ञातिजनों यावत् परिजनों का विपुल वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों आदि से सत्कार-सन्मान करेंगे और फिर उन्हीं मित्रों यावत् परिजनों से कहेंगे—

देवानुप्रियो! जब से यह दारक माता की कुक्षि में गर्भ रूप से आया था। तभी से हमारी धर्म में दृढ प्रतिज्ञा—श्रद्धा हुई है, इसलिए हमारे इस बालक का 'दृढप्रतिज्ञ' यह नाम हो। इस तरह उस दारक के माता-पिता 'दृढप्रतिज्ञ' यह नामकरण करेंगे।

इस प्रकार से उसके माता-पिता अनुक्रम से १. स्थितिपतिता, २. चन्द्र-सूर्यदर्शन, ३. धर्मजागरण, ४. नामकरण, ५. अन्नप्राशन, ६. प्रतिवर्धापन (आशीर्वाद, अभिनंदन-सन्मान समारोह), ७. प्रचक्रमण (पैरों चलना—डग भरना और शब्दोच्चारण करना), ८. कर्णवेधन, ९. संवत्सर प्रतिलेख (प्रथम वर्ष का जन्मोत्सव) और १०. चूलोपनयन (मुंडनोत्सव—झड़ूला उतारना) आदि तथा अन्य दूसरे भी बहुत से गर्भाधान, जन्मादि सम्बन्धी उत्सव भव्य समारोह के साथ प्रभावक रूप में करेंगे।

### दृढप्रतिज्ञ का लालन-पालन

२८१— तए णं दढपतिण्णे दारगे पंचधाईपरिक्खित्ते—खीरधाईए-मंडणधाईण-मज्जण-धाईए-अंकधाईए-कीलावणधाईए, अन्नाहि बहूहिं खुज्जाहिं, चिलाइयाहिं, वामणियाहिं, वडभियाहिं, बब्बराहिं बउसियाहिं, जोण्हियाहिं, पण्णवियाहिं, ईसिणियाहिं, वारुणियाहिं, लासियाहिं, लाउसियाहिं, दमिलीहिं, सिंहलीहि, पुलिंदीहिं, आरबीहिं, पक्कणीहिं, बहलीहिं, मुरंडीहिं, सबरीहिं, पारसीहिं, णाणादेसी-विदेस-परिमंडियाहिं इंगियचिंतियपत्थियवियाणाहिं सदेसणेवंत्थगहियवेसाहिं निउणकुसलाहिं विणीयाहिं चेडियाचक्कवालतरुणिवंदपरियालपरिवुडे वरिसधरकंचुडुमहयरवंदपरिक्खित्ते हत्थाओ हत्थं साहरिज्जमाणे उवनचिज्जमाणे अंकाओ अंकं परिभुज्जमाणे उवगिज्जेमाणे उवलालिज्जमाणे उवगूहिज्जमाणे अवतासिज्जमाणे परियंदिज्जमाणे परिचुंबिज्जमाणे रम्मेसु मणिक्कोट्टिमतलेसु परंगमाणे गिरिकंदरमल्लीणे विव चंपगवरपायवे णिव्वाघायंसि सुहंसुहेण परिवट्ठिस्सइ ।

२८१— उसके बाद वह दृढप्रतिज्ञ शिशु १. क्षीरधात्री—दूध पिलानेवाली धाय, २. मंडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय, ३. मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली धाय, ४. अंकधात्री—गोद में लेने वाली धाय और ५. क्रीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय—इन पांच धायमाताओं की देखरेख में तथा इनके अतिरिक्त इंगित (मुख आदि की चेष्टा), चिन्तित (मानसिक विचार), प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने-अपने देश के वेष को पहनने वाली, निपुण, कुशल-प्रवीण एवं प्रशिक्षित ऐसी कुब्जा (कुबड़ी), चिलातिका (चिलात-किरात नामक देश में उत्पन्न), वामनी (चीनी), वडभी (बड़े पेट वाली), बर्बरी (बर्बर देश की), बकुश देश की, योनक देश की, पल्हविका (पल्हव देश की), ईसिनिका, वारुणिका (वरुण देश की), लासिका (तिब्बत देश की), लाकुसिका

(लकुस देश की), द्रावड़ी (द्रविड़ देश की), सिंहली (सिंहल देश, लंका की), पुलिंदी (पुलिंद देश की), आरबी (अरब देश की), पक्कणी (पक्कण देश की), बहली (बहल देश की), मुरण्डी (मुरण्ड देश की), शबरी (शबर देश की), पारसी (पारस देश की) आदि अनेक देश-विदेशों की तरुण दासियों एवं वर्षधरों (प्रयोग द्वारा नपुंसक बनाये हुए पुरुषों), कंचुकियों और महत्तरकों (अन्तपुर के कार्य की चिन्ता रखने वालों) के समुदाय से परिवेष्टित होता हुआ, हाथों ही हाथों में लिया जाता, दुलराया जाता, एक गोद से दूसरी गोद में लिया जाता, गा-गाकर बहलाया जाता, क्रीड़ा आदि द्वारा लालन-पालन किया जाता, लाड़ किया जाता, लोरियां सुनाया जाता, चुम्बन किया जाता और रमणीय मणिजटित प्रांगण में चलाया जाता हुआ व्याघातरहित गिरि-गुफा में स्थित श्रेष्ठ चम्पक वृक्ष के समान सुखपूर्वक दिनोंदिन परिवर्धित होगा—बढ़ेगा।

### दृढप्रतिज्ञ का कलाशिक्षण

२८२— तए णं तं दढपतिण्णं दारगं अम्मापियरो सातिरेगअट्टवासजायगं जाणित्ता सोभर्णासि तिहिकरणणक्खत्तमुहुत्तंसि प्हायं कयबलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्तं सव्वालंकार-विभूसियं करेत्ता महया इड्डीसक्कारसमुदएणं कलायरियस्स उवणेहिंति ।

तए णं से कलायरिए तं दढपतिण्णं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-रुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अत्थओ य गंथओ य करणओ य सेहावेहि य पसिक्खावेहि य ।

तं जहा—लेहं गणियं रूवं नट्टं गीयं वाइयं सरगयं पुक्खरगयं समतालं जूयं जणवयं पासगं अट्टावयं पारेकव्वं दगमट्टियं अन्नविहिं पाणविहिं वत्थविहिं विलेवणविहिं सयणविहिं अज्जं पहेलियं मागहियं णिदाइयं गाहं गीइयं सिलोगं हिरण्णजुत्तिं सुवण्णजुत्तिं आभरणविहिं तरुणीपडिकम्मं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं हयलक्खणं गयलक्खणं कुक्कुडलक्खणं छत्तलक्खणं चक्कलक्खणं दंडलक्खणं असिलक्खणं मणिलक्खणं कागणिलक्खणं वत्थुविज्जं णगरमाणं खंधवारं माणवारं पडिचारं वूहं चक्कवूहं गरुलवूहं सगडवहं जुद्धं नियुद्धं जुद्धजुद्धं अट्टिजुद्धं मुट्टिजुद्धं बाहुजुद्धं लयाजुद्धं ईसत्थं छरुप्पवायं धणुवेयं हिरण्णपागं सुवण्णपागं मणिपागं धाउ-पागं सुत्तखेडुं वट्टखेडुं णालियाखेडुं पत्तच्छेज्जं कडगच्छेज्जं सज्जीवनिज्जीवं सउणरुयं-इति ।

२८२— तत्पश्चात् दृढप्रतिज्ञ बालक को कुछ अधिक आठ वर्ष का होने पर कलाशिक्षण के लिए माता-पिता शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में स्नान, बलिकर्म, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त कराके और अलंकारों से विभूषित कर ऋद्धि-वैभव, सत्कार, समारोहपूर्वक, कलाचार्य के पास ले जायेंगे।

तब कलाचार्य उस दृढप्रतिज्ञ बालक को गणित जिनमें प्रधान है ऐसी लेख (लिपि) आदि शकुनिरुत (पक्षियों के शब्द—बोली) तक की बहतर कलाओं को सूत्र से, अर्थ से (विस्तार से व्याख्या करके), ग्रन्थ से तथा प्रयोग से सिद्ध करायेंगे, अभ्यास करायेंगे। वे कलायें इस प्रकार हैं—

१. लेखन, २. गणित, ३. रूप सजाने की कला, ४. नाट्य (अभिनय) अथवा नृत्य करने की कला, ५. संगीत, ६. वाद्य बजाना, ७. स्वर जानना, ८. वाद्य सुधारना अथवा ढोल आदि बजाने की कला, ९. संगीत में गीत और वाद्यों

की सुर-ताल की समानता को जानना, १०. द्यूत-जुआ खेलना, ११. लोगों के साथ वार्तालाप और वाद-विवाद करना, १२. पासों से खेलना, १३. चौपड़ खेलना, १४. तत्काल काव्य—कविता की रचना करना, १५. जल और मिट्टी को मिलाकर वस्तु निर्माण करना, अथवा जल और मिट्टी के गुणों की परीक्षा करना, १६. अन्न उत्पन्न करने अथवा भोजन बनाने की कला, १७. नया पानी उत्पन्न करना अथवा औषधि आदि के संयोग-संस्कार से पानी को शुद्ध करना, स्वादिष्ट पेय पदार्थों का बनाना, १८. नवीन वस्त्र बनाना, वस्त्रों को रंगना, सीना और पहनना, १९. विलेपनविधि—शरीर पर लेप करने की विधि, २०. शय्या बनाना और शयन करने की विधि जानना, २१. मात्रिक छन्दों को बनाना और पहचानना, २२. पहेलियां बनाना और बुझाना, २३. मागधिक—मागधी भाषा में गाथा-छन्द आदि बनाना, २४. निद्रायिका—नींद में सुलाने की कला, २५. प्राकृत भाषा में गाथा आदि बनाना, २६. गीति-छंद बनाना, २७. श्लोक (अनुष्टुप छंद) बनाना, २८. हिरण्ययुक्ति—चांदी बनाना और चांदी शुद्ध करना, २९. स्वर्ण-युक्ति—स्वर्ण बनाना और स्वर्ण शुद्ध करना, ३०. आभूषण-अलंकार बनाना, ३१. तरुणीप्रतिकर्म—स्त्रियों का शृंगार-प्रसाधन करना, ३२. स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों को जानना, ३३. पुरुष के लक्षण जानना, ३४. अश्व के लक्षण जानना, ३५. हाथी के लक्षण जानना, ३६. मुर्गों के लक्षण जानना, ३७. छत्र लक्षण जानना, ३८. चक्र-लक्षण जानना, ३९. दंड-लक्षण जानना, ४०. असि-(तलवार) लक्षण जानना, ४१. मणि-लक्षण जानना, ४२. काकणी-(रत्न-विशेष) लक्षण जानना, ४३. वास्तुविद्या—गृह, गृहभूमि के गुण-दोषों को जानना, ४४. नया नगर बसाने आदि की कला, ४५. स्कन्धावार—सेना के पड़ाव की रचना करने की कला, ४६. मापने-नापने-तोलने के साधनों को जानना, ४७. प्रतिचार—शत्रु सेना के सामने अपनी सेना को चलाना, ४८. व्यूह—युद्ध में शत्रु सेना के समक्ष अपनी सेना का मोर्चा बनाना, ४९. चक्रव्यूह—चक्र के आकार की मोर्चाबन्दी करना, ५०. गरुडव्यूह—गरुड के आकार की व्यूह रचना करना, ५१. शकटव्यूह रचना, ५२. सामान्य युद्ध करना, ५३. नियुद्ध—मल्लयुद्ध करने की कला, कुशती लड़ना, ५४. युद्ध-युद्ध—शत्रु सेना की स्थिति को जानकर युद्धविधि को बदलने की कला अथवा घमासान युद्ध करना, ५५. अट्टि (यष्टि—लाठी या अस्थि—हड्डी) से युद्ध करना, ५६. मुष्ठियुद्ध करना, ५७. बाहुयुद्ध करना, ५८. लतायुद्ध करना, ५९. इष्वस्त्र—शस्त्र-बाण बनाने की कला अथवा नागबाण आदि विशिष्ट बाणों के प्रक्षेपण की विधि, ६०. तलवार चलाने की कला, ६१. धनुर्वेद—धनुष-बाण सम्बन्धी कौशल, ६२. चांदी का पाक बनाना, ६३. सोने का पाक बनाना, ६४. मणियों के निर्माण की कला अथवा मणियों की भस्म आदि औषधि बनाना, ६५. धातुपाक—औषधि के लिए स्वर्ण आदि धातुओं की भस्म बनाना, ६६. सूत्रखेल—रस्सी पर खेल-तमाशे, क्रीडा करने की कला, ६७. वृत्तखेल—क्रीडाविशेष, ६८. नालिकाखेल—द्यूत—जुआविशेष, ६९. पत्र को छेदने की कला, ७०. पार्वतीय भूमि छेदने की कला, ७१. मूर्च्छित को होश में लाने और अमूर्च्छित को मृततुल्य करने की कला, ७२. काक, घूक आदि पक्षियों की बोली और उससे अच्छे-बुरे शकुन का ज्ञान करना।

## कलाचार्य का सम्मान

२८३— तए णं से कलायरिए तं दढपइण्णं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गंथओ य करणओ य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेहिंति ।

तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाण-

खाइमसाइमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारिस्संति सम्माणिस्संति विउलं जीवियारिहं पीति-  
दाणं दलइस्संति विउलं जीवियारिहं पीतिदाणं दलइत्ता पडिविस्सज्जेहिंति ।

२८३— तत्पश्चात् कलाचार्य उस दृढप्रतिज्ञ बालक को गणित प्रधान, लेखन (लिपि) से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाओं को सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ (व्याख्या) से, ग्रन्थ एवं प्रयोग से सिखला कर, सिद्ध कराकर माता-पिता के पास ले जायेंगे।

तब उस दृढप्रतिज्ञ बालक के माता-पिता विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार, वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से कलाचार्य का सत्कार, सम्मान करेंगे और फिर जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान (भेंट) देंगे। जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देकर विदा करेंगे।

### दृढप्रतिज्ञ की भोगसमर्थता

२८४— तए णं से दढपत्तिण्णे दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते ज्जेव्वण-  
गमणुपत्ते बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपडिबोहए अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए गीयरई  
गंधव्वणट्टकुसले सिंगारागारचारुवेसे संगयगयहसियभणियच्चिट्ठियविलासनिउणजुत्तोवथारकुसले हयजोही  
गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्पमही अलंभोगसमत्थे साहस्सीए वियालचारी यावि भविस्सइ ।

२८४— इसके बाद वह दृढप्रतिज्ञ बालक बालभाव से मुक्त हो परिपक्व विज्ञानयुक्त, युवावस्थासंपन्न हो जायेगा। बहत्तर कलाओं में पंडित होगा, बाल्यावस्था के कारण मनुष्य के जो नौ अंग—दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन सुप्त-से अर्थात् अव्यक्त चेतना वाले रहते हैं, वे जागृत हो जायेंगे। अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में कुशल हो जायेगा, वह गीत का अनुरागी, गीत और नृत्य में कुशल हो जायेगा। अपने सुन्दर वेष से शृंगार का आगार-जैसा प्रतीत होगा। उसकी चाल, हास्य, भाषण, शारीरिक और नेत्रों की चेष्टायें आदि सभी संगत होंगी। पारस्परिक आलाप-संलाप एवं व्यवहार में निपुण-कुशल होगा। अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध, बाहुयुद्ध करने एवं अपनी भुजाओं से विपक्षी का मर्दन करने में सक्षम एवं भोग भोगने की सामर्थ्य से संपन्न हो जायेगा तथा साहसी ऐसा हो जायेगा कि विकालचारी (मध्यरात्रि में इधर-उधर जाने-आने में भी) भयभीत नहीं होगा।

**विवेचन**— प्रस्तुत सूत्रगत 'बावत्तरिकलापंडिए' और 'अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए' इन दो पदों का विचार करते हैं।

कला का अर्थ है—कार्य को भलीभांति करने का कौशल। व्यक्ति के उन संस्कारों को सबल बनाना जो स्वयं उसके एवं सामाजिक जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं। यदि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण न हो, चारित्र्य का विकास न हो और संस्कृति की सुरक्षा के लिए सामाजिक तथा धार्मिक कर्तव्यों एवं दायित्वों का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं किया जाये तो मानव का कुछ भी महत्त्व नहीं है। मानव और दानव, पशु में कुछ भी अन्तर नहीं रहेगा। यही कारण है कि प्रत्येक युग में मानव को सुसंस्कारी बनाने, शारीरिक, मानसिक दृष्टि से विकसित करने और आजीविका के प्रामाणिक साधनों की योग्यता अर्जित करने के लिए कलाओं के शिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है।

यद्यपि कलाओं के विषय में प्रत्येक देश के साहित्य में विचार किया गया है, तथापि हम अपने देश को ही

मुख्य धर्मपरंपराओं के साहित्य को देखें तो सर्वत्र विस्तार के साथ कलाओं का विवरण उपलब्ध है। वैदिक परंपरा के रामायण, महाभारत, शुकनीति, वाक्यपदीय आदि ग्रन्थों में, बौद्ध-परंपरा के ललितविस्तरा में और जैन परंपरा के समवायांगसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ज्ञातासूत्र, औपपातिकसूत्र, कल्पसूत्र और इनकी व्याख्याओं में वर्णन किया गया है। किन्तु संख्या और नामों में अन्तर है। कहीं कलाओं की संख्या चौसठ बताई है तो क्षेमेन्द्र के कलाविलास ग्रन्थ में सौ से अधिक कलाओं का वर्णन किया है। बौद्धसाहित्य में इनकी संख्या छियासी कही है। जैनसाहित्य में पुरुष योग्य बहत्तर और महिलाओं के लिए चौसठ कलाओं का उल्लेख है। लेकिन जैनसाहित्यगत पुरुषयोग्य कलायें बहत्तर मानने की परंपरा सर्वमान्य है। जिसकी पुष्टि जनसाधारण में प्रचलित इस दोहे से हो जाती है—

कला बहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार ।

एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार ॥

जीवन धारण करने के लिए मानव को जैसे रोटी, कपड़ा और मकान जरूरी है, उसी प्रकार जीवन की सुरक्षा के लिए शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शुद्धि और आजीविका के साधनों की व्यवस्था, ये तीन भी आवश्यक हैं। अतएव पूर्व सूत्र में उल्लिखित बहत्तर कलाओं के नामों में ध्यान देने योग्य यह है कि उनके चयन में दीर्घदृष्टि से काम लिया गया है। उनमें जीवन की सुरक्षा के तीनों अंगों के साधनों का समावेश करने के साथ लोकव्यवहारों के निर्वाह करने की क्षमता और प्राकृतिक पदार्थों को अपने लिए उपयोगी बनाने और उनका समीचीन उपयोग करने की योग्यता अर्जित करने का लक्ष्य रखा गया है।

कलाओं के शिक्षण की प्राचीन पद्धति पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय शिक्षणपद्धति का स्तर क्या था ? मात्र पुस्तकीय ज्ञान करा देना अथवा ग्रंथ रटा देना और वाणी द्वारा व्याख्या कर देना ही पर्याप्त नहीं माना जाता था, किन्तु प्रयोग द्वारा वैसा कार्य भी कराया जाता था। यदि उन कलाओं और शिक्षणपद्धति को सन्मुख रखकर आज की शिक्षा-नीति निर्धारित की जाये तो उपयोगी रहेगा।

विद्वत्ता के लिए जैसे आज अनेक देशों की बोलियों और भाषाओं को जानना आवश्यक है, उसी तरह प्राचीन काल में भी कलाओं के अध्ययन के साथ प्रत्येक व्यक्ति और विशेषकर समृद्ध परिवारों में जन्मे व्यक्तियों और देश-विदेश में व्यापार के निमित्त जाने वालों के लिए अनेक भाषाओं का ज्ञाता होना अनिवार्य था। जो दृढप्रतिज्ञ के उत्पन्न होने के कुलों के लिए दिये विशेषणों से स्पष्ट है।

यद्यपि यहां की तरह अन्य आगम-पाठों में भी 'अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए' पद आया है। वह वर्ण्य व्यक्ति की विशेषता बताने के लिए प्रयुक्त हुआ है। किन्तु वे अठारह भाषायें कौनसी थीं, इसका उल्लेख मूल पाठों में कहीं भी देखने में नहीं आया है। हां समवायांग, प्रज्ञापना, विशेषावश्यकभाष्य और कल्पसूत्र की टीकाओं में अठारह लिपियों के नाम मिलते हैं। परन्तु इन नामों में भी भिन्नता है। इस स्थिति में यही माना जा सकता है कि उस समय बहुमान्य प्रचलित बोलियों को एक-एक भाषा माना जाता हो और उनको बोलने-समझने में निष्णात होने का बोध कराने के लिए ही 'अठारह भाषाविशारद' पद ग्रहण किया गया हो।

२८५— तए णं तं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो उम्मुक्कबालभावं जाव वियालचारि च वियाणित्ता विउलेहिं अन्नभोगेहि य पाणभोगेहि य लेणभोगेहि य वत्थभोगेहि य सयण-भोगेहि य उवनिमतिहिंति ।

२८५— तब उस दृढप्रतिज्ञ बालक को बाल्यावस्था से मुक्त यावत् विकालचारी जानकर माता-पिता विपुल अन्नभोगों, पानभोगों, प्रासादभोगों, वस्त्रभोगों और शय्याभोगों के योग्य भोगों को भोगने के लिए आमंत्रित करेंगे। अर्थात् माता-पिता उसे भोगसमर्थ जानकर कहेंगे कि हे चिरंजीव ! तुम युवा हो गये हो अतः अब कामभोगों की इस विपुल सामग्री का भोग करो।

### दृढप्रतिज्ञ की अनासक्ति

२८६— तए णं दढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अन्नभोएहिं जाव सयणभोगेहिं णो सज्जिहिति, णो गिञ्जिहिति, णो मुच्छिहिति, णो अञ्जोववज्जिहिति, से जहा णामए पउमुण्यले ति वा पउमे इ वा जाव सयसहस्सपत्तेति वा पंके जाते जले संवुद्धे णोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव दढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाते भोगेहिं संवड्ढिए णोवलिप्पिहिति० मित्तणाइणियगसयण संबंधिपरिजणेणं ।

से णं तथारूवाणं शेरणं अंतिए केवलं बोहिं बुञ्जिहिति, केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सति, से णं अणगारे भविस्सइ ईरियासमिए जाव सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते ।

तस्स णं भगवतो अणुत्तरेणं णाणेणं एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्जवेणं महवेणं लाघवेणं खन्तीए गुत्तीए मुत्तीए अणुत्तरेणं सव्वसंजमसुचरियतवफलणिव्वाणमग्गेण अप्पाणं भावमाणस्स अणंते अणुत्तरे कसिणे पडिपुण्णे निरावरणे णिव्वाघाए केवलवरनाणदंसणे समुप्पज्जिहिति ।

तए णं से भगवं अरहा जिणे केवली भविस्सइ सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स परियायं जाणहिति तं०—आगतिं गतिं ठितिं चवणं उववायं तक्कं कडं मणोमाणसियं खइयं भुत्तं पडिसेवियं आवीक्कम्मं रहोकम्मं अरहा अरहस्सभागी तं तं मणवयकायजोगे वट्टमाणणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरिस्सइ ।

तए णं दढपइन्ने केवली एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता अप्पणो आउसेसं आभोएत्ता बहूइं भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ, बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेइस्सइ, जस्सट्टाए कीरइ णग्गभावे केसलोचबंभचेरवासे अण्हाणगं अदंतवणं अणुवहाणगं भूमिसेज्जाओ फलहसेज्जाओ परघरपवसे लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं परेसिं हीलणाओ निंदणाओ खिंसणाओ तज्जणाओ ताडणाओ गरहणाओ उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा गामकंटगा अहियासिज्जंति तमट्टं आराहेइ, चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं सिञ्जिहिति मुच्चिहिति परिनिव्वाहिति सव्वदुक्खाणमंतं करेहिति ।

२८६— तब वह दृढप्रतिज्ञ दारक उन विपुल अन्न रूप भोग्य पदार्थों यावत् शयन रूप भोग्य पदार्थों में आसक्त नहीं होगा, गृद्ध नहीं होगा, मूर्च्छित नहीं होगा और अनुरक्त नहीं होगा। जैसे कि नीलकमल, पद्मकमल (सूर्यविकासी कमल) यावत् शतपत्र या सहस्रपत्र कमल कीचड़ में उत्पन्न होते हैं और जल में वृद्धिगत होते हैं, फिर भी पंकरज

और जलरज से लिप्त नहीं होते हैं, इसी प्रकार वह दृढप्रतिज्ञ दारक भी कामों में उत्पन्न हुआ, भोगों के बीच लालन-पालन किये जाने पर भी उन कामभोगों में एवं मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी-स्वजन-सम्बन्धियों और परिजनों में अनुरक्त नहीं होगा।

किन्तु वह तथारूप स्थविरो से केवलबोधि—सम्यग्ज्ञान अथवा सम्यक्त्व का लाभ प्राप्त करेगा एवं मुंडित होकर, गृहत्याग कर अनगार-प्रब्रज्या अंगीकार करेगा। अनगार होकर ईर्यासमिति आदि अनगार धर्म का पालन करते हुए सुहुत (अच्छी तरह से होम की गई) हुताशन (अग्नि) की तरह अपने तपस्तेज से चमकेगा, दीप्तमान होगा।

इसके साथ ही अनुत्तर (सर्वोत्तम) ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अप्रतिबद्ध विहार, आर्जव, मार्दव, लाघव, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति (निर्लोभता) सर्व संयम एवं निर्वाण की प्राप्ति जिसका फल है ऐसे तपोमार्ग से आत्मा को भावित करते हुए भगवान् (दृढप्रतिज्ञ) को अनन्त, अनुत्तर, सकल, परिपूर्ण, निरावरण, निर्व्याघात, अप्रतिहत, सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होगा।

तब वे दृढप्रतिज्ञ भगवान् अर्हत, जिन, केवली हो जायेंगे। जिसमें देव, मनुष्य तथा असुर आदि रहते हैं ऐसे लोक की समस्त पर्यायों को वे जानेंगे। अर्थात् वे प्राणिमात्र की आगति—एक गति से दूसरी गति में आगमन को, गति—वर्तमान गति को छोड़कर अन्यगति में गमन को, स्थिति, च्यवन, उपपात (देव या नारक जीवों की उत्पत्ति—जन्म), तर्क (विचार), क्रिया, मनोभावों, क्षयप्राप्त (भोगे जा चुके), प्रतिसेवित (भोग-परिभोग की वस्तुओं), आविष्कर्म (प्रकट कार्यों), रहःकर्म (एकान्त में किये गुप्त कार्यों) आदि, प्रकट और गुप्त रूप से होने वाले उस—उस मन, वचन और कायभोग में विद्यमान लोकवर्ती सभी जीवों के सर्वभावों को जानते-देखते हुए विचरण करेंगे।

तत्पश्चात् वे दृढप्रतिज्ञ केवली इस प्रकार के विहार से विचरण करते हुए अनेक वर्षों तक केवलपर्याय का पालन कर, आयु के अंत को जानकर अपने अनेक भक्तों-भोजनों का प्रत्याख्यान व त्याग करेंगे और अनशन द्वारा बहुत से भोजनों का छेदन करेंगे और जिस साध्य की सिद्धि के लिए नग्नभाव, केशलोच, ब्रह्मचर्यधारण, स्नान का त्याग, दंतधावन का त्याग, पादुकाओं का त्याग, भूमि पर शयन करना, काष्ठासन पर सोना, भिक्षार्थ पर गृहप्रवेश, लाभ-अलाभ में सम रहना, मान-अपमान सहना, दूसरों के द्वारा की जानेवाली हीलना (तिरस्कार), निन्दा, खिंसना (अवर्णवाद), तर्जना (धमकी), ताड़ना, गर्हा (घृणा) एवं अनुकूल-प्रतिकूल अनेक प्रकार के बाईस परीषह, उपसर्ग तथा लोकापवाद (गाली-गलौच) सहन किये जाते हैं, उस साध्य—मोक्ष की साधना करके चरम श्वासोच्छ्वास में सिद्ध हो जायेंगे, मुक्त हो जायेंगे, सकल कर्ममल का क्षय और समस्त दुःखों का अंत करेंगे।

## उपसंहार

२८७— सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति ।

२८७— इस प्रकार से सूर्याभदेव के अतीत, अनागत और वर्तमान जीवन-प्रसंगों को सुनने के पश्चात् गौतम स्वामी ने कहा—

भगवन्! वह ऐसा ही है जैसा आपने प्रतिपादन किया है, हे भगवन्! वह इसी प्रकार है, जैसा आप फरमाते हैं, इस प्रकार कहकर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

२८८— णमो जिणाणं जियभयाणं । णमो सुयदेवयाए भगवतीए । णमो पण्णत्तीए भगवईए । णमो भगवओ अरहओ पासस्स । पस्से सुपस्से पस्सवणा णमो । ग्रन्थाग्रम्—२१२०।

॥ रायपसेणइयं समत्तं ॥

२८८— भयों के विजेता भगवान् को नमस्कार हो। भगवती श्रुत देवता को नमस्कार हो। प्रज्ञति भगवती को नमस्कार हो। अर्हत् भगवान् पार्श्वनाथ को नमस्कार हो। प्रदेशी राजा के प्रश्नों के प्रदर्शक को नमस्कार हो।

॥ राजप्रश्नीयसूत्र समाप्त ॥

## परिशिष्ट-१

# नृत्य-संगीत-नाट्य-वाद्य से सम्बन्धित

## शब्दसूची

अइमुत्तयलयापविभत्ती	५६	उद्धुमंत	५१
अच्छिज्जंती	५१	उप्पयनिवयपवत्त	५६
अट्टुगुण	७७	उप्पायनिवायपवत्त	११०
अत्थमणत्थमण	५४	उप्पिंजलभूत	५२
अप्फालिज्जमाण	५१	उसभ	५३
अभिणय	५८, ११०	उसभमंडल	५४
अभिसेयचरिय	५७	एक्कारसालंकार	७७
असोगलयापविभत्ती	५६	एगओचक्कवाल	५३
असोयपल्लवपविभत्ती	५६	एगतोवंक	५३
अंचिअ	५६, ५८, ११०	एगावली	५३
अंचियरिभिअ	५६	एगुणपण्णआउज्जविहाण	४८
अंतो-मज्झावसाणिय	५८	ककारपविभत्ति	५५
अंबपल्लवप०	५६	कच्छभी	५१
आउज्जविहाण	४८, ५०	कणगावली	५३
आगमणागमण	५४	कडंब	५१
आताडिज्जंत	५१	कत्थ	७७
आमोडिज्जंत	५१	करडा	५१
आमोत	५१	करणसुद्ध	५०
आरभड	५६, ५८, ११०	कलस	५२
आरभडभसोल	५६, ११०	कलंसिया	५१
आलवंत	५१	कहकहभूअ	५२
आलिंग	५१	कामभोगचरिय	५७
आवड	५२	किणिअ	५१
आवरणावरण	५४	किन्नर	५३
आहम्मंत	५१	कुट्टिज्जंत	५१
ईहामिअ	५३	कुतुंब	५१
उक्खित्त	५७, ११०	कोसंबपल्लव	५६
उक्खित्ताय	११०	कंसताल	५१
उग्गमणुग्गमण	५३	कुंजर	५३
उत्तालिज्जंत	५१	कुंतुंब	५१

कुंदलयापविभक्ति	५६	छब्भाभरी	५१
खकारपविभक्ति	५५	छिप्पन्ती	५१
खरमुही	४८, ५१	जक्खमंडल	५४
खरमुहीवाय	४८	जम्मणचरिय	५७
गकारपविभक्ति	५५	जार	५२
गज्ज	७७	जारपविभक्ति	५५
गयविलसिअ	५४	जोव्वणचरिय	५७
गयविलंविअ	५४	जंबूपल्लव	५६
गीअ	५२	झल्लरी	५१
गेय	५१, ७७	झुसिर	५७
गोमुही	५१	झंझा	५१
गंधव्वणट्टुकुसल	५०	टकारवग्ग	५५
गंधव्वमंडल	५४	डिंडिम	५१
गुंजाऽवंककुहरोवगूढ	५०	णट्टविह	५७
घकारपविभक्ति	५५	णट्टविहि	५७
घट्टिज्जंत	५१	तकारवग्ग	५५
घण	५७, १११	तत	५७, १११
ङकारपविभक्ति	५५	तल	५०
चकारवग्ग	५५	तवचरणचरिअ	५७
चक्कद्धचक्कवाल	५३	ताडिज्जंत	५१
चमर	५३	तार	५१
चरिमचरिअ	५७	तारावलि	५३
चवणचरिअ	५७	ताल	५०
चूयलयाप०	५६	तालिज्जंत	५१
चंदणसार	७६	तिट्टाणकरणसुद्ध	५०, ७७
चंदमंडल	५४	तिठाण	५०
चंदागमण	५४	तित्थपवत्तणचरिअ	५७
चंदावलिपविभक्ति	५३	तिसमयरेयगरइय	५०
चंदावरण	५४	तुरग	५३
चंदुग्गमण	५३	तूण	५१
चंदत्थमण	५४	तंती	५०
चंपगलयाप०	५६	तुंबवीणा	५१
चंपापविभक्ति	५५	थिमियामेव उन्नमंति	५०
चित्तवीणा	५१	थिमियामेव ओन्नमंति	५०
छद्दोस	७७	दहरग	५१

दहरिका	५१	पयबद्ध	७७
दम्पण	५२	पयसंचार	५०
दिट्टंतिअ	५८, ११०	परिनिव्वाणचरिअ	५७
दुत (य) विलंबित	५६, १११	परिल्ली	५१
दुय	११०	परिवायणी	५१
दुयणाम	५६	पल्लवपविभत्ति	५६
दुहओचक्कवाल	५३	पवाएंसु	५०
दुंदुभी-दुंदुही	५१	पविभत्ति	५३
नउल	५१	पसारिअ	५६
नट्ट	५१	पसेढी	५२
नट्टविधि	५२	पाडंतिअ	११०
नट्टविहि	११०	पाडिंतिअ	५८
नट्टसज्ज	४७	पायबद्ध	७७
नट्टसज्जा	४८	पायत्ताण	११८
नर	५३	पायंत	५७, ११०
नागमंडल	५४	पिरिपिरिया	५१
नागरपविभत्ति	५५	पिरीपिरीया	४८
नागलयाप०	५६	पिरीपिरीयावायग	४८
नाडय	५८	पुव्वभवचरिअ	५७
नाणुप्पायचरिअ	५७	पूस	५२
निक्खमणचरिअ	५७	पेया	४८, ५१
नंदापविभत्ति	५५	पेयावायग	४८
नंदिघोसा	५१	फुट्टिज्जंती	५१
नंदियावत्त	५२	फुल्लावलि	५२
नंदीमुइंग	५१	फूमिज्जंत	५१
पउमपत्त	५२	बत्तीसइबद्धनट्टविहि	४५, ४९
पउमलया	५३	बत्तीसइबद्धनाडय	५८
पउमलयापविभत्ति	५६	बद्धग	५१
पकारवग्ग	५५	बद्धीस	५१
पगाइंसु	५०	बालभावचरिअ	५७
पच्चावड	५२	भद्दासण	५२
पज्ज	७७	भसोल	५६, ५८, ११०
पडह	५१	भामरी	५१
पणच्चिसु	५०	भूतमंडल	५४
पणव	५१	भेरी	५१

भंत	५६	रयारइअ	५६
भंतसंभंतणाम	११०	रिभिअ	५६
भंभा	५१	रियारिय	११०
मगर	५३	रुरु	५३
मगरिया	५१	रेयग	५०
मगरंड	५२	रोइतावसाण	५७
मच्छ	५२	रोइयावसाण	५७, ७७, ११०
मच्छंड	५२	रिंगिरिसया	५१
मच्छंडापविभत्ति	५५	लत्तिया	५१
मडुया	५१	लय	५०
मत्तगजविलसिअ	५४	लया	५६
मत्तगयविलंबिअ	५४	लोअंतोमञ्जावसाणिअ	११०
मत्तहयविलसिअ	५४	वणलया	५३
मत्तहयविलंबिअ	५४	वणलयाप०	५६
मदल	५१	वद्धमाणग	५२
मयरंडापविभत्ति	५५	वलियावलिपविभत्ति	५३
महुर	५१	वल्लकी	५१
महोरग	५४	वसंतलया	५२
महंती	५१	वाइअ	५१
माणवय	५२	वाइज्जंत	५१
मार	५२	वाइत्त	५७, ११०
मारपविभत्ति	५५	वातिअ	५२
मिउरिभिय	५०	वालग	५३
मुइंग	५१	वाली	५१
मुगुंद	५१	वासंतियलयाप०	५६
मुच्छिज्जंत	५१	विचिक्की	५१
मुत्तावली	५३	वितत	५७, ११०
मुरय	५१	वितार	५०
मंगलभत्तिचित्त	५२	विपंची	५१
मंडलमंडल	५४	विलंबिय	५६
मंद	५०	विलंबियनट्टविहि	५६, ११०
मंदाय	५७, ११०	विहग	५३
रक्खस	५४	वीणा	५१
रत्त	७७	वेयालियवीणा	७६
रयणावली	५१	वेलु	५१

वंस	५१	सूरावलिपविभक्ति	५३
सत्तसर	७७	सूरावलिपविभक्ति	५३
सम	५१	सूरुग्गमण	५३
समामेव अवणमंति	५०	सेढी	५२
समामेव उन्नमंति	५०	सोत्थिय	५२
समामेव पसरंति	५०	सोवत्थिय	५२
समामेव समोसरण	५०	संकुचिय	५६
सरभ	५३	संकुचियपसारिय	११०
सललिअ	५०	संख	४८, ५१
सहितामेव उन्नमंति	५०	संखवाय	४८
सहितामेव ओनमंति	५०	संखियवाय	४८
सागरतरंग	५२	संखिया	४८, ५१
सागरपविभक्ति	५५	संगयामेव उन्नमंति	५०
सामन्नोविणिवाइय	५८	संगयामेव ओनमंति	५०
सामलयापविभक्ति	५६	संभंत	५६
सामंतोवणिवाइअ	११२	संहरणचरिअ	५७
सारिज्जंत	५१	सिंग	४८, ५१
सिरिवच्छ	५२	सिंगवाय	४४
सीहमंडल	५४	सिंगार	५१
सुबोसा	५१	सुंसुमारिया	५१
सुणइ	५०	हयविलसिय	५४
सुरइ	५०	हयविलंबिय	५४
सूरत्थमण	५४	हुडुक्की	५१
सूरमंडल	५४	होरंभ	५१
सूरागमण	५४	हंसावलिपविभक्ति	५३
सूरावरण	५४		

## विशिष्ट शब्दों की अनुक्रमणिका

अइमुत्तयलया	६९	अणगारसय	१३५
अयकुंभी	१७२	अणिय	११
अकखय	१३, ११७	अणियाहिवई	११, ३८, १२६
अकखर	१०२	अणुवहाणय	२०८
अकखाडग	३३, ४७, ९१, ११८, ११९	अणेग	१७३
अगड	३	अणंत	१३, ११७
अगडमह	१३८	अण्णजीविअ	१५८
अगणिपरिणय	१७५	अण्हाणग	२०८
अग्गमहिंसी	११, १२६	अतिमुत्तयलयामंडव	८०
अग्गलपासाय	६३	अत्थ	२०४
अग्गला	६३	अत्थजुत्त	११६
अग्गिपओग	१९८	अत्थत्थी	१९१
अच्चणिज्ज	९६	अत्थरग	३३
अच्चणिय	१२३	अत्थसत्थ	१३०
अच्छणघरग	८०	अदंतवण	२०८
अच्छरगण	३२	अहरिदु	२८
अच्छरसातंदुल	११६	अद्धकुलव	१८९
अच्छायण	८५	अद्धपत्थय	१८९
अच्छि	९९	अद्धहार	११३
अच्छिपत्त	९९	अद्धाढत	१८९
अज्ज	२०४	अधम्मत्थिकाय	१८७
अज्जग (य)	१६५	अधोऽवहिअ	१५७
अज्जिय	१७०	अन्नविहि	२०४
अज्झत्थित	१४	अपुणरावित्ति	१३, ११७
अट्टालय	३	अपुणसत्त	११६
अट्टतलमसियवडंसग	१९१	अपंडिअ	१५६
अट्टभाइआ	१८९	अप्पकम्मतर	१८८
अट्टसय	९९	अप्पकिरियतर	१८८
अट्टसयविसुद्धगंथजुत्त	११६	अप्पासवतर	१८८
अट्टावय	२०४	अप्फोयामंडवग	८०
अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारअ	२०६	अब्भवह्लग	१९
अट्टिजुद्ध	२०४	अब्भिंतरपरिसा	३५

परिशिष्ट-२ : विशिष्ट शब्दों की अनुक्रमणिका

२१७

अब्धंतरियपरिसा	१२४	अंकवाणिअ	१५८
अभिगम	१०, १९८	अंकधार्ई	२०३
अभिगमणिज्ज	१५९	अंकुस	३४
अभिसेग(य)समा	१२०	अंगपविट्टु	१५९
अभिसेयभंड	१०१	अंगबाहिर	१५९
अमच्च	१७२	अंचिय नट्टविहि	११०
अय	१७२	अंजण	१७
अयभंड	१९१	अंजणपुलग	१७
अयभारग (य)	१७७	अंजणसमुग्ग	७१, १००, १०६
अयभारिय	१९२	अंतर	१९९
अयल	११७	अंतेउर	१९८
अयविकिणण	१९२	अंदोलग	७९
अयहारय	१९१	अंबसालवण	६, १४
अयागर	१९१	अंबसालवण-चेइअ	६, १२, १४, १५, २३, ३९
अरमणिज्ज	१९७	आइक्खग	६
अरहस्सभागी	२०८	आईणग	३३
अरिहंत	१३, ११८	आओग	८, २०५
अरुअ	१३, ११७	आगर	१२६
अलंकारियभंड	११३	आगासत्थिकाय	१८७
अलंकारियसभा	११३	आढत (य)	१८८
अलंभोगसमत्थ	२०६	आणपाणपज्जत्ति	१०२
अवलंबण	२६	आभरणविहि	२०४
अवलंबणबाहा	२६	आभरणारुहण	११६, ११८
अवाय	१५८	आभिनिबोहियनाण	१५८
अवंगुयदुवार	१४३	आभियोगदेव	१४
अव्वाबाह	१३, ११७	आमलकप्पा	३, ६, ८, १२, १४, १५, १७, २२, २३, ३९
अव्ववहारी	१८६		
असण	१४३, १८४	आमलग (य)	१८३
असिलक्खण	२०४	आमेलग	६६
असुर	१८७	आययण	१२०
असोग	७	आयरक्ख	११, १२६
असोगलया	६९	आयरिय	१९७
असोगवण	७४	आयंस	६९, १००, १०६
अहिगरण	१४२	आयंसघरग	८०
अंक	१७	आरबी	२०३

आराहए	४३	उगह	१२, १५८
आलियघरग	८०	उच्चारपासवणभूमि	२००
आलिंगपुक्खर	२७, ४७, ७६	उच्छु	३
आवत्तणपेढिया	६३	उज्जाण	१२९, १४९, १५१, १५५
आवास	१३२	उज्जाणपालग (य)	१४७, १५०
आवीकम्म	२०८	उज्जाणभूमि	१६४
आस	१५५	उज्जुमई	१५९
आसम	१२७	उण्णयासण	७९
आसरह	१३२, १५७	उत्तप्पसरीर	१५६
आसव	१४२	उत्तरासंग	१०
आसवोयग	७८	उत्तरंग	६३
आहार	१३०	उप्पत्तिया	१३०
आहारपज्जत्ति	१०२	उप्पल	८६
इक्खाग	१३७	उप्पलहत्यए	२६
इक्खुवाड	१९६	उप्पायपव्वयग	७९
इड्डुरग (य)	१८८	उप्फेस	१०
इत्थिलक्खण	२०४	उयगरस	७८
इसिपरिसा	४१, १८४, १८५	उरू	९९
इसु	१७७	उल्लोय	३२, ४७, ६३
इब्भ	१३७, १७२	उवएस	१६४
इब्भपुत्त	१३७	उवगाइज्जमाण	१३४
इंदकील	३, ६३	उवगारियालयण	८४
इंदकुंभ	६४	उवट्टाणसाला	१३२
इंदमह	१३७, १९८	उवनच्चिज्जमाण	१३४
इंदाभिसेय	१०९, ११०	उवप्पयाण	१३०
इंदियपज्जत्ति	१०२	उवरिपुंछणी	६३
ईसत्थ	२०४	उवलेवण	१९४
ईसर	१३७, १७२	उववाइअ	७, १३९
ईसिणिया	२०३	उववाय	२०८
ईहा	१५८	उववायसभा	१००, १०२
ईहामिय	२५, ३२, ६३	उसड्डु	७९
उक्कीडिय	३	उसभ	२५, ३२, ६३, ९३
उक्खत्त	७७, ११०	उसभकंठ	७०, १००
उग	१३७	उसभसंघाड	६९
उगपुत्त	१३७	उसभासण	७९

उंबरपुष्प	१६५	कागणिलक्खण	२०४
ऊसियफलह	१४३	कामभोग	९, १३०
एरवय	१०६	कारण	१३०
एला	३०, ७१	कालागुरु	६, १६, २१, ३२, ६६, ११६
एलासमुग	७१	किण्हसुत्त	६५
एलुय	६३	किन्नर	२५, ३२, ६३, ७७
ओट्टु	९९	किन्नरकंठ	७०
ओमत्त	१८२	किन्नरसंघाड	६९
ओरोह	३	किमिकुंभी	१७५
ओसह	१४३	किरिया	१४२
ओहाडणी	६३	किलावणघाई	२०३
ओहि	११	कुक्कुड	३
ओहिणाण	१५८	कुक्कुडलक्खण	२०४
कज्ज	१३०	कोट्टागार	१९८
कट्टु	१५	कुणाल (जणवय)	१३१, १३३
कडग	१२	कप्पूरपुड	३०
कडगच्छेज्ज	२०४	कुमुअ	८६
कडिसुत्त	११४	कुलनिस्सिय	१९०
कडुच्छुय	११६	कुलव	१८९
कत्थ	७७	कुलसंपण्ण	१३४
कन्नवेहण	२०२	कुसुमघरग	८०
कब्बड	१२६	कुहंडिया	२९
कम्मया	१३०	कूड	६३
कयबलिकम्म	१३२, १३९, १४१, १५३, १६९, १७२, २०४	कूडागारसाला	१८८, ६१, १७६, १९२, २०१
कयलिघरग	८०	कूडाहच्च	१६६
करण	२०४	केइयअद्ध (जणवय)	१२७, १३२
करभरवित्ति	१६५	केउकर	८
करयल	९, १२, १७	केऊर	१२
कलस	६, २७, ३७, ७०, १०६	केवलकप्प	११
कलेवरसंघाडग	८६	केवलनाण	१५८
कवाड	६३	केवलिपरियाय	२०८
कविसीसय (ग)	६, ६३	केवली	१८७
कवोल	९९	केसरिद्ध	१०७
कहग	३, ६	केसि कुमारसमण	१३४, १३८, १४०, १४१, १४२
		केसि कुमारसमण	१३४, १४०, १४२, १७५

केसंत केसभूमि	९९	खीरधाई	२०३
कोट्टिमतल	६३	खीरोदयसमुद्	७९, १०६
कोट्ट	३०	खेड	१२६
कोट्टयचेइअ	१३१, १३३, १३५, १३६	खोदोयग	७८
कोट्टागार	८, १३१, २०२	खंडरक्ख	३
कोडुंबिय	३, १३७, १७५	खंदमह	१३७
कोडुंबियपुरिस	१३२	खंधवार	२०४
कोरव्व	१३७	खंभ	२६, ६३, ७०, ८६
कोरिल्लिअ	१७७	खंभपुडंतर	८६
कोस	८, १३०	खंभबाहा	८६
कंचुई	१३८, २०३	खंभसीस	८६
कंचुइज्जपुरिस	१३८	खिंखणीजाल	६५, ८५
कंबल	१४३	गज्ज	७७
कंबिआ	१०२	गणग	१७२
कंबोअ	१५५	गणनायग	१७२
कुंकुम	३०	गणिय	२०४
किंपुरिस	१८७	गणियप्पहाण	२०४
किंपुरिसकंठ	७०	गति	२०८
किंपुरिससंघाड	७०	गत	३३
कुंजर	३, २५, ३२, ३३, ६३	गतग	९७
कुंडधारपडिमा	१००	गब्भघरग	८०
कुंडल	९, १२	गब्भाहाण	२०२
कुंडियालंछण	१८४	गयकंठ	७०
कुंदलया	६९	गयलक्खण	२०४
कुंदुरुक्क	६, १६, २१, ३२, ६६, ११६	गयसंघाड	६९
कुंथु	१८८, १८९	गया	३, ९८
कौंचासण	७९	गरलवूह	२०४
खइअ	२०८	गरुलालन	७९
खओवसमिय	१५९	गवक्खजाल	८५
खग्ग	९८	गाम	१२६
खत्तिय	१३७	गामकंटक	२०८
खत्तियपरिसा	१८४, १८५	गामसहस्स	१९८
खयरिगाल	३५	गायलट्टी	९९
खलवाड	१९६	गाहा	२०४
खात	३	गाहावइपरिसा	१८४, १८५

परिशिष्ट-२ : विशिष्ट शब्दों की अनुक्रमणिका

२२१

गिरिमह	१३७	गंधारुहण	११६
गिहिधम्म	१४१, १४२	गंधोवाइ	१०६
गीइय	२०४	गंधोदय	१६, ११६
गीय	११, २०४	गुंजालिया	७७
गीयरइ	७७	घओयग	७८
गुणव्वय	१९७	घणघणाइय	११०
गुञ्ज	१३०	घणमुइंग	११
गुत्त	१७४	घोसेडिय	२९
गेय	७७	घंटा	६, ३२, ६७, १००
गो	३	घंटाजाल	८५
गोकलिंजर	७०	घंटापास	६७
गोकलिंज	१८८	चउक्क	३, १२३
गोपुच्छ	६२	चउद्दसपुव्वी	१३५
गोपुर	३	चउनाणोवगय	१३५, १५९
गोमाणसिया	६३, ९५	चक्क	३
गोयम	५९, ६०	चक्कल	३३
गोयमाइ (दि) य	४५, ४९, ५८	चक्कलक्खण	२०४
गोल	११९	चक्कवट्टिविजय	१०६
गोलवट्टसमुग्गय	१०४, ११९	चक्कवूह	२०४
गोसीस	३२	चच्चर	३, १२३
गोसीसचंदण	११५, ११६, ११८, ११९	चमर	२५, ३२, ३३, ६३
गंगा	९८, १०६	चम्मेट्टुग	१९
गंठिभेद	३	चरिम	४३, ४५
गंठी	१०२	चरिय	३, १२३
गंडमाणिया	१८८	चवण	२०८
गंडलेहा	९	चवल	१२
गंडोवट्टाणय	९७	चाउज्जाम	१४०
गंथ	२०४	चाउब्भाइया	१८९
गंध	९, १०८, १८७	चामर	७१, १०६
गंधकासाइय	११३	चामरधारपडिम्म	९९
गंधपज्जव	८६	चित्तगर	१००
गंधव्व	१३४, १९०	चित्तघरग	८०
गंधव्वकंठ	७०	चित्तसारहि	१३०, १३२, १३३
गंधव्वघरग	८०	चिलाइया	२०३
गंधव्वसंघाड	६९	चुचुअ	९९

चुण्णारुहण	११६	छंदण	१०२
चुल्लहिमवंत	१०६	जइपरिसा	४१
चूयलया	६९	जक्खपडिमा	१००
चूयगवण	७४	जक्खमह	१३७
चूलोवणय	२०२	जगईपव्वय	७९
चेइअ	३, ६, १४, २२, १९७	जड्डु	१५८
चेइयखंभ	११९	जणवय	१३१, १५६, १६५, १९८
चेइयथूभ	११९	जल्ल	३, ६
चेइयमह	१३७	जव	३
चेइयरुक्ख	११९	जाग	६
चेड	१७२	जागरिया	२०२
चेडा	६३	जाण	५
चेतित	२१	जाणवय	६
चेतिय	१५	जाणविमाण	२५, २६, २७
चोक्ख	१०६, ११६, १८५, २०१, २०३	जाणु	१२, ११६
चोप्पाल	११९	जाणू	९९
चोय	३०	जातिमंडवग	८०
चोयगसमुग्ग	७१	जातिसंपण्ण	१३४
चोर	१७२	जायरूव	८, १७
चंगेरी	७०	जार	२७
चंदणकलस	३२, ६५, ६९, १००	जालकडग	६७
चंदसूरिदंसणिग	२०२	जालघरग	८०
चंदसूरियदरिसण	२०३	जिण	११७
चंदाणण	९२	जिणपडिमा	१००, ११६, ११७
चंपछल्ली	२९	जिणवर	११६
चंपगलया	६९	जिणसकहा	९६, ११९
चंपगवण	७४	जिणिंदाभिगमणजोग्ग	३६
छत्त	६, ७१, १०६	जियसत्तू	१३३, १३४, १४३
छत्तधारगपडिमा	९९	जीव	१६४, १६५
छत्तलक्खण	२०४	जीवा	१७७
छरुप्पवाय	२०४	जीविया (ता) रिह	१५१, १९७
छविच्छेय	१८२	जीहा	९९
छायण	६३	जुवइसन्निविट्ट	३
छिवाडी	३०	जुद्ध	२०४
छेयायरिय	३	जुद्धजुद्ध	२०४

परिशिष्ट-२ : विशिष्ट शब्दों की अनुक्रमणिका

२२३

जुद्धसज्ज	१३२	णाय	१३७
जुवराय	१२९	णालियाखेड	२०४
जूय	२०४	णिगंथ	१४४, १६५
जूहियामंडव	८०	णिडालपट्टिया	९९
जोइ	१८१, १८२	णिदाइय	२०४
जोइसिय	१८	णिम्मा	२६, ६३
जोइ (ति) भायण	१८१, १८२	णियग	१६७
जोई	१७५	णिव्विण्णाण	१८२
जोईरस	१७	णिसढ	१०६
जोग्ग	३	णीलवंत	१०६
जोणिहया	२०३	णीली	२८
जोय	२००	णेज्जाय	३८
जोह	१३७	णेइयत्त	१६५
जंघा	९९	णंदणवण	१०७
जंत	८	तउअ	१९१
जंबुदीव	११, १४, १५, १६५	तउयआगर	१९१
जंबूफल	२८	तउयभारअ	१९१
झय	६, १००, १०६	तउयभारग	१८०, १९१
झुसिर	११०	तउयभंड	१९१
ठितिवडिय	२०२	तक्क	२०८
डिंबडमर	८	तगर	३०
णगरगुत्तिय	१७२	तगरसमुग्ग	७१
णगरमाण	२०४	तज्जीव	१९०
णगगभाव	२०८	तण	१५
णट्टग	६	तडवडा	२९
णट्टसाला	१९६	तणवणस्सइकाय	१८६
णड	६	तत	११०
णत्तुअ	१६५, १६७	तरुण	१७५
णवणीय	९७	तरुणीपडिकम्म	२०४
णवमालियामंडवग	८०	तल	११
णाइ	१६७	तलवर	१३७, १७२
णाग	१८७	तलाग	३
णागलयामंडवग	८०	ताण	१३
णाडग	१३४	तारा	९९
णाणादेसी	२०३	ताल	११

तालाचर	३	दगमंडव	७९
तालु	९९	दढपइण्ण	२०२
तिगिच्छिद्दह	१०७	दप्पण	२६
तिच्छडिय		दब्भसंथारग	२००
तित्थयराइसेस	१०	दमणापुड	३०
तिय	३, १३८	दमिली	२०३
तिसोपाण	३६	दरिमह	१३७
तिसोवाण	२६, ३६, ३७, ३९, १२०	दव्वट्टया	८६
तुडिय	११, १२	दसद्धवन्न	१६, २१, ११६
तुरग	३, २५, ३२, ६३	दहिवासुयमंडवग	८०
तुरिय	१२	दार	३, ६३
तुरुक्क	१६, ३३, ६६, ११६	दारग	२०२, २०३, २०४, २०५
तुला	१६४	दारचेडी	११८
तूणइल्ल	३६	दारुइज्जपव्वयग	७९
तूली	९७	दाहवक्कंतिया	१९९
तेल्लसमुग	७१, १००, १०६	दाहिण	१२
तोरण	६, २६, ३२, ६९, ७१	दिट्ठिवाय	१५९
तंती	११	दिट्ठी	१६४
तंबागर	१९१	दिसासोवत्थिअ	६९
तंबोलिमंडवग	८०	दिसासोवत्थिआसण	८०
तुंबवीणिय	३, ६	दीव	१३, १९२
थाल	१००, १०६	दीवचंपअ	१८९
थूभ	९२	दीवचंपग	१८९
थूभमह	१३७	दीहासण	७९
थूभाभिमुही	९२	दीहिया	३, ७८
थूभिया		दुगुल्ल	९७
थेज्ज	१६५	दुघण	१९
थेर	२०८	दुतविलंबियनट्टविहि	११०
दक्ख	१८४, १८६	दुयनट्टविहि	११०
दगथालग	१९	दूय	१७२
दगधारा	११७	देव	१८६
दगपासायग	७९	देवच्छंदय	९९, ११६, ११७
दगमट्टिय	२०४	देवपरिसा	४१
दगमालग	७९	देवदूसजुयल	११५, ११६
दगमंचग	७९	देवसयणिज्ज	१००

देवाइ	१८	नयप्पहाण	१३५
दोणमुह	१२६	नरकंठ	७०
दोर	१०२	नरय	१६५, १६६, १६७, १७१
दोवारिय	१७२	नरवइ	३
दंड	१७, १३०	नरसंघाड	६९
दंडणायग	१७२	नागदन्त	६५, ६६, ६९, ९६
दंडलक्खण	२०४	नागपडिमा	१००
दंडसंपुच्छणी	१९	नागमह	१३७
दंत	९९	नागलया	६९
दंतवाणिअ	१५८	नाडय	१४९
दंसण	१५८	नाण	१५८
धणु	९८, १८०	नाणत्त	१७९
धणुवेय	२०४	नाणसंपण्ण	१३४
धम्म	१५६, १९५, १९६	नाभी	९९
धम्मकहा	१९३	नामगोअ	१५
धम्मजागरिय	२०२	नामधिज्जकरण	२०२
धम्मत्थिकाय	१८७	नारिकंत	१०७
धम्मायरिअ	१९४, २००	नासिगा	९९
धम्मावियपुव्व	१७५	निचिय	१७४
धम्मिअ	१६९	निगम	१२७, १७२
धम्मोवदेसग	२००	निगंथ	१४०
धाउपाग	२०४	निगंथपावयण	१४०
धारणा	१५८	निच्छोडण	१८४
धारिणी	९	निज्जर	१४२
धूव	१६, ११८	निब्भंछण	१८४
धूवकडुच्छुय	१०६	नियइपव्वयग	७९
धूवघडी	६५, ९५	नियुद्ध	२०४
धंतपुव्व	१७५	निरयपाल	१६७
नईमह	१३७	निव्विण्ण	१८३
नक्ख	९९	निव्विण्णाण	१८३
नगर	१७२	निव्विसय	१८४
नट्ट	३, ११, २०४	निसीहिया	६४
नड	३	नंदणवण	७७
नत्तुअ	१६५	नंदा	९४, ९५, १०४
नयणमाला	१०	नंदि (सूत्र)	१५९

नंदियावत्त	२६, ३७	पडागा	६
नंदीसरवर	३९	पडिगह	१४३
पइ (ति) ट्वाण	६३, ६५, ८६	पडिचार	२०४
पइण्णा (त्ता)	१६४, १६५	पडिपाय	९७
पईव	१८८	पडिवद्धावणग	२०२
पउम	८६	पण्णविया	२०३
पउमपुंडरीयदह	१०६	पण्णा	१६८, १७२, १७४, १७६, १७७, १७९
पउमलया	६९	पणयासण	७९
पउमवरवेदिया	८५, ८६, ८७	पणिय	३
पउमासण	७९	पतिट्वाण	२६
पएसी	१७५, १९८	पत्त	१५
पओग	८	पत्तग	१०२
पओहर	६७	पत्तच्छेज्ज	२०४
पकाम	१५६	पत्तसमुग्ग	७९
पक्कणी	२०३	पत्थय	१८९
पक्ख	८६, ८७	पभास	१०६
पक्खपुडंतर	८६	पभु	१७६, १७७, १७८
पक्खपेरंत	८६	पमाण	१६४
पक्खबाह	८६, ८७	पयबद्ध	७७
पक्खासण	७९	पयरग	६५
पक्खंदोलग	७९	परघरपवेस	२०८
पगंठग	६८, ७०	परपुट्ट	२८
पच्चक्खाण	१९७	परमाणुपोग्गल	१८७
पच्छाणुताविअ	१९०, १९३	परसु	१८१
पच्छिपिंडय	१८८	परत्तिसंसारित	४३
पचंकमणग	२०२	परियर	१८१
पच्छियपिंडय	१७८	परियाय	१०६
पजेमणग	२०२	परिसहोवसग्ग	२०८
पज्ज	७७	परिसा	१०, ११
पज्जत्ति	२०१	पलिओवम	११२, १२६, २०१
पज्जुवासण	१०	पवग	३, ६
पज्जुवासणिज्ज	९६	पवेसण	९०
पट्टण	१२६	पसाहणघरग	८०
पट्टिआ	६३, ८६	पहरणकोस	११९
पडलग	७०	पहू	१७८

पहेलिअ	२०४	पीइदाण	१५१, १९४
पाई	७०, १००, १०६	पीढ	१४३, १४६, १४७, १४९
पाउया	१२, १५२	पीढमद्	१७३
पागार	३	पुक्खरगय	२०४
पाडिहारिअ	१४७, १४८	पुक्खरिणी	१२०
पाणविहि	२०४	पुक्खरोदय	१०६
पाणाइवाअ	२००	पुगगल	१७
पाय	३३	पुढवी	१७४, १७५
पायचार	१४४	पुढवीसिलापट्टग	७
पायच्छिण्ण	१८४	पुत्त	१९८
पायच्छिन्नग	१६६	पुप्फचंगेरी	२०, ७०, १००
पायतल	९९	पुप्फछिज्जिय	२०
पायत्त	११०	पुप्फपडलग	२०, ७०, १०६
पायत्ताणीयाहिवइ	२२, २३	पुप्फवद्दल	२०
पायपीढ	१२, ३३, १५२	पुप्फारुहण	१९८
पायपुंछण	१४३	पुर	१९८
पायबद्ध	७७	पुरिस	१५६, १५७, १७६, १७७, १७८, १७९
पायरास	१३२	पुरिसआसीविस	८
पायसीसग	३३, ९७	पुरिसलक्खण	२०४
पारसी	२०३	पुरिसवरगंधहत्थी	८, १३, ११७
पारिणामिया	१३०	पुरिसवरपुंडरीअ	८, १३, ११७
पारेकच्च	२०४	पुरिससीह	८, १३, ११७
पालियाय	२९	पुरोहिअ	८
पालंब	१२	पुलग	१७
पावसउण	१४५	पुलिंदी	२०३
पासग	२०४	पेच्छाघरमंडव	९२, ९३, ११८, ११९
पासावच्चिज्ज	१३४, १३६, १३८, १४७, १५७	पोत्थयरयण	१०३, ११६, १२०
पाहुड	१३१, १३२, १४५	पोसह	१४३
पिअ	१६५	पोसहमाला	२००
पिउ	१९०	पोसहोववास	१९७
पिच्छणघरग	८०	पंचकंडग	१७६, १७७
पिच्छाघर	३२	पंचविहनाण	१५८
पिच्छाघरमण्डव	३१	पंचाणुवइअ	१४१
पित्तजर	१९९	पंडगवण	७७, १०७
पिहुणमिंजिया	३०	पंथ	१५८

पंथियपहिअ	१९७	भमुहा	९९
पुंडरीय	१०६	भरह	१०६
पोंडरीय	२७	भवण	३
फरसु	१८१	भवणवइ	१८
फरिस	९, १३६, १६७	भवपच्चइय	१५९
फलग	९५	भवसिद्धित	४३
फलहसेज्जा	२०८	भाउयवयंस	१३०
फलह	३, १७	भारहवास	१४, १५, १७, ३९, १२७
फलहरयण	९८	भासमणपज्जत्ति	१०२, २०१
फलहा	३	भिक्खुअ	१५२, १९७
फालिअ	१८१	भित्ति	६३
फासपज्जव	८६	भित्तिगुलिता	६३
फुड	१९१	भिलुंग	१४५
बउसिया	२०३	भुयग	६
बत्तीसिया	१८९	भुसुंढि	३
बब्बरा	२०३	भूमिचवेड	११२
बल	१९८	भूमिसेज्जा	२०८
बलवाहण	१९७, १९८	भूयपडिमा	१००
बलिपीढ	१२०	भूयमह	१३७
बलिविसज्जण	१२०	भेय	१३०
बहली	२०३	भेरि	१७४
बाल	१७६	भेसज्ज	१४३
बावत्तरिकलापंडिय	२०६	भोग	१३७
बाहिरपरिसा	३५	भोम	६३
बाहिरियपरिसा	१२५	भंड	
बाहुजुद्ध	२०४	भिंगार	६९, १०१, १०७, ११६
बिब्बोयण	९७	मउड	१२, ११५
बिलपंति	७३	मउंदमह	१३७
बूर	३३, ८२, ९७	मगर	२५, ३२, ६३
बौंदि	१८९	मगरासण	७९
बंध	१४२	मगरंडग	२७
भइयदारअ	१९, २०	मच्छ	२७
भत्त	२०८	मज्जणघरग	८०
भद्दसालवण	७७, १०७	मज्जणधाई	२०३
भद्दासण	२६, ३५, ३७, ७९	मज्झिमपरिसा	३५, १२४

मट्टिय	१०६	महाविदेह	१०७, २०५
मडंब	१२६	महावीर	१३, १४, १५, १७, २०, २२, ३९, ४०, ४१, ४४, ४५, ४६, ६०
मणपज्जवाण	१५८, १५९		
मणाम	१६५, १९१	महाहिमवंत	१०६
मणिपाग	२०४	महिस	८
मणिपेढिया	३३, ४७, ९३, ९४, ९५, ९७, ९८, ९९, १०१, ११९, १२१	महिंदज्जय	३७, ३८, ९४, ९७
मणिलक्खण	२०४	महोरग	७६
मणुण्ण	१६५	महोरगकंठ	७०
मणोगुलिया	७०, ९५, १००	महोरगसंघाड	६९
मणोमाणसिय	२०८	मागह	६, १०८
मणोरहमाला	१०	मागहिय	२०४
मणोसिलासमुग्ग	७१	माडंबिअ	१३७, १७२
मम्म	१९९	माण	१६४
मरीडुकवय	३२	माणउम्माणपमाण	८
मरुआपुड	३०	माणवग	९६
मल्ल	३, ६	माणवय	९६, १०४
मल्लइ	१३७	माणवार	२०४
मल्लारुहण	११६	मार	२७
मल्लियामंडवग	८०	मालवन्त	१०६
मसारगल्ल	१७	मालागारदारअ	२०
मसी	१०२	मालियघरग	८०
मसूरग	३३	मालुयामंडवग	८०
महग्घ	१०९, १३१	माहण	१३७, १५३, १५४, २०१
महतथ	१०९, १३१, १३२, १४५, १४६, १५०	माहणपरिसा	१८४, १८५
महयर	२०३	मिगवण	१२७
महरिह	१०९, १३१	मिच्छादंसणसल्ल	२००
महाणई	१०६	मियवण	१४९, १५१, १५५, १५६
महाणदी	१०६	मुइंगपुक्खर	२७
महानई	१०६	मुइंगमत्थय	१४८
महापउमद्दह	१०६	मुट्टिजुद्ध	२०४
महापुंडरीय	८६	मुट्टिय	३, ६
महापुंडरीयद्दह	१०६	मुणिपरिसा	४१
महापोंडरीय	२७	मुत्तादाम	३४
महामंति	१७२	मुदियामंडवग	८०
		मुद्धय	९९

मुद्धाभिसित्त	८	रसपज्जव	८६
मुरवि	११४	रह	३
मुरंडी	२०३	रहवाअ	१५५
मुहमंडव	९१, ११८, ११९	रहस्स	१९९
मूढ	१५६, १८५	रहस्सभेअ	१९९
मेढी	१३०	रहोकम्म	२०८
मोक्ख	१४२	राइण्ण (न्)	१३७
मोहणघरग	८०	राई	१७५
मंख	३, ६	रायकुल	८
मंगल	६, १७	रायारिह	१३१
मंडणधार्ई	२०३	रायमग्ग	३
मंडल	७०	रायववहार	१४४
मंत	१३१	रायहाणी	१२६
मंतपओग	१९८	रिट्ठ	१७
मंति	१७२	रुइ	१६४
मंद	११०	रुक्खमह	१३७
मंदरपव्वत	८	रुद्धमह	१३७
मंदरपव्वय	१०७	रुप्पकुलअ	१०६
मुंड	१५६	रुप्पागार	१९१
रज्ज	१९८	रुप्पि	१०६
रज्जसिरि	१९८	रुरु	२५, ३२, ६३
रज्जु	६७	रुव	९, १३४, १६६, २०४
रट्ठ	१९८	रुवसंघाडग	
रतिकरपव्वत	३९	रुवसंपण्ण	१३४
रत्तवई	१०६	रोइया (ता) वसाण	७७, ११०
रत्ता	१०६	रोमराई	९९
रमणिज्ज	१९६	रोहिअ	१०६
रम्मगवास	१०६	रोहियंस	१०६
रयण	१७	लक्खण	९
रयणकरंडग	७०, १००, १०६	लद्धावलद्ध	२०८
रयणप्पभापुढवी	६१	लयाघरग	८०
रयणागर	१९१	लयजुद्ध	२०४
रयत्ताण	३३	लाउसिया	२०३
रयय	१७	लाला	६७
रस	९, १३६, १६७	लावण्ण	९

परिशिष्ट-२ : विशिष्ट शब्दों की अनुक्रमणिका

२३१

लासग	३, ६	वन्नपज्जव	८६
लासिया	२०३	वन्नारुहण	११६
लित्त	१७४	वप्पिण	३
लिप्पासण	१०२	वयणमाला	१०
लेक्ख	१०२	वयर	१७
लेच्छइ	१३७	वयरविव्कमाण	१९१
लेणभोग	२०७	वरदाम	१०६
लेह	२०४	वरिसधर	२०३
लेहणी	१०२	ववसाय	११४
लेहाइया	२०४	ववसायसभा	१०२, ११३, १२०
लोमहत्थ	६, ११६, ११८	ववहारग	१८६
लोमहत्थग	११८, ११९, १२०	ववहारी	१८६
लोमहत्थचंगेरी	७०, १००	वाइअ	११, २०४
लोहियक्ख	१७	वाउकाय	१८७
लंख	३, ६	वाउयाय	१८७
लंबूसग	३४, ६५	वाणमंतर	१८, ४०
वइर	२६	वाम	१८५, १९४
वइरागर	१९१	वामणिया	२०३
वक्खारपव्वय	१०६	वाय	१८७
वग्घारिय	६, ३२	वायकरग	७०, १००, १०६
वच्चघर	१७०	वारिसेण	९२
वट्टुखेडु	२०४	वारुणिया	२०३
वट्टुवेयडुपव्वय	१०६	वारुणोयग	७८
वडभिया	२०३	वालग	२५, ३२, ६३
वडिंसय	६१	वालरूवय	११८
वणत्थि	१८१	वालुया	९७
वणसंड	८८, ९६, १४७, १९६	वाविया	७७
वणिच्छित्त	३	वासवद्दलग	६०
वणोवजीवी	१८१	वासहंरपव्वय	१०६
वत्थ	१४३, १९६	वासंतिमंडवग	८०
वत्थविहि	२०४	वासंतियलया	६९
वत्थी	१८०	वासिक्कच्छत्त	८६
वत्थुविज्जा	२०४	वाहण	१९८
वद्धमाण	९२	विउलमई	१५९
वद्धमाणग	२७, ६३	विच्च	९७
वन(ण)लया	६९	विजयदूस	३४

विज्ञाहर	२५, ३२, ६३	वंसकवेल्लुया	६३, ८६
विडिमा	९३	सउणरुय	२०४
वितत	११०	सउणरुयपज्जवसाणा	२०४
वियडावाति	१०६	सक्कर	१५
वियालचारी	२०६	सगडवूह	२०४
विलास	९	सागरोवम	११२
विलेवणविहि	२०४	सचित्त	१८९
विलंबियनट्टविहि	११०	सज्जीवनिज्जीव	२०४
विवच्चास	१८५	सण्णा	१६४, १६५
विवणि	३	सतपत्त	२७
विवर	१९९	सत्तवन्नवण	७४
विसप्पओग	१९८	सत्तसर	७७
विसप्पजोग	१९९	सत्तसिक्खावइअ	१४१
विससंजुत्त	१९९	सत्थपओग	१९८
विहग	२५, ३२, ६३	सत्थवाह	१३७, १७२
विहंगिया	१७८	सद्	९, १३६, १६९, १८७
वूह	२०४	सद्दावाति	१०६
वेइयपुडंतर	८६	सन्निवेस	१२६
वेइयफलत	८६	सबरी	२०३
वेइया	८६	समण	१२, १४, १५, १७, १३८, १५३, १५४, १६४, १६५
वेइयाबाहा	८६	समणोवासय	१९८
वेउच्चियसमुग्घाय	१७, १९, २०, ४६, ४७, १०७	समणोवासिआ	१६९
वेच्च	३३	समताल	२०४
वेणतिया	१३०	समयखेत्त	१०६
वेणुसलागिगा	१९	समुग्गय	६३
वेमाणिअ	१८	समोसरण	१६४, १६५
वेयण	१६७	सयग्घी	३
वेयप्पहाण	१३५	सयणविहि	२०४
वेयालियवीणा	७६	सयवत्त	८६
वेरमण	१४०	सर	१८२
वेरुलिय	१७	सरगय	२०४
वेलंवग	३, ६	सरपंतिया	७७
वेसमणमह	१३७	सरभ	२५, ३२, ६३
वेसासिअ	१६५	सरमह	१३७, १३८
वंजण	९	सरसरपंतिया	७७
वंस	६३, ८६		

परिशिष्ट-२ : विशिष्ट शब्दों की अनुक्रमणिका

२३३

सरीर	६१, १५३, १५७, १६४	सिलोग	२०४
सरीरपञ्जती	१०४, २०४	सिव	८, १३, ११८
सलागाहत्थग	१९	सिवमह	१३७
सवण	९९	सिहर	३२
सव्वण्णू (त्रू)	१३, ११७	सिहरी	१०६
सव्वदरिसी	१३, ११७	सीता	१०६
सव्वोसहि	१०७	सीतोदा	१०६
सहस्सपत्त	२७	सीमंकर	८
सहस्सवत्त	८६	सीमंधर	८
सागरमह	१३७	सीय	३, ७३
साम	१३०	सीलव्वय	१९७
सामलया	६९	सीसघडि	९९
सामाय	२८	सीसच्छिण्ण	
सामी	१०, १६६	सीसगभारग	१८७
सायिसंजोग	१२७	सीहासण	१२, १३, ३३, ४७, ७०, ९६, ११४, ११८, १२०
सारहि	१३०	सुत्त	२०४
सालघरग	८०	सुत्तखेड्डु	२०४
सालभंजिया	२५, ३२, ६३, ६६, ६९, ११९	सुपइट्ट	७०
सालि	३	सुपइट्टाण	१००, १०६
सालितंदुल	७०	सुभग	२७, ८६
सालिंगणवट्टिय	९७	सुयनाण	१५८, १५९
सालीपिट्ट	३०	सुरभिगंधकासाइय	११३
सावत्थीनगरी	१३१, १३२, १३८, १४१, १४९, १५१	सुवण्णकूला	१०६
सासया	८६	सुवण्णजुत्ति	२०४
सिक्कग (य)	६५, ७०, ९६, ९७	सुवण्णपाग	२०४
सिग्घगमण	२५	सुवण्णागार	१९१
सिज्जा	१९४	सुसरा	२२, २३
सिद्धत्थय	१०७	सुहम्मा-सभा	११, २१, २२, ९१, ९७, १०२, ११८
सिद्धायतण	९८, ९९, १००, ११७	सूर्ई	२६, ६३, ८६
सिद्धिगइनामधेय-ठाण	१३	सूर्ईपुडंतर	८६
सिप्पायरिय	१९४	सूर्ईफलय	८६
सिप्पी	३	सूर्ईमुख	८६
सिरिवच्छ	२७, ३७, ९९	सूणगलंछण	१८४
सिरीसिव	१२७, १४५	सूरियकंत-कुमार	१९८
सिल	१७४		

सूरिकंता-देवी	१६६, १९८	संवट्टयवाय	१९
सूरियाभदेव	११, २१, २२, ४०, १०९, २०४	संवर	१४२
सूरियाभविमाण	११, २१, ६२, १०८, ११०, २००	सिंगार	९
सूरियाभा	४०	सिंघाडग	३, १३८, १५१
सूरिल्लियमंडवग	८	सिंधु	१०६
सूलभिन्नग	१६६	सिंहली	२०३
सूलाइग	१६६	सुंक	१५८
सेयराया	८	हत्थ	२०३
सेज्जा	१४३, १४७	हत्थच्छिण्णअ	१८४
सेट्टि	१३७, १७२	हत्थच्छिण्णग	१६६
सेणावइ	१३७, १७२	हत्थतल	९९
सेय	१०२	हत्थि	१८८
सेयविया-नयरी	१२८, १४५, १४६, १४७, १४९, १५०, १५१, १५७, १६५, १६८, १६९, १९७, १९८	हयकंठ	७०, १००
सोगंधिअ	२७	हयजोही	२०६
सोत्थिय	२७	हयलक्खण	२०४
सोमणसवण	७७, १०७	हयसंघाड	६९, ८६
सोलसिअ	१८९	हरय	१२०
सोहम्मकप्प	१०७, २००	हरिकंत	१०६
संकप्प	१६४	हरियाल	२९
संकला	१०२	हरियालसमुग्ग	७१
संखला	६७	हरियालिया	२९
संखवाणिअ	१५८	हरिवास	१०६
संखेज्जफालिअ	१८१	हल	३
संडेय	३	हलधर	२८
संदमाणी	३, ७५	हलिद्दा	२९
संथारअ	१४३, १४७, १९५	हिमवंत	८, ७७
संधि	२६, ३३, ६३, ९८	हिययमाला	१०
संधिवाल	१७२	हिरण्णजुत्ति	२०४
संपलद्ध	२००	हिरण्णपाग	२०४
संपलियंकनिसन्न	९२, २००	हेउ	१६४
संबाह	१२६	हेमजाल	८५
संभम	१२	हेमवय	१०६
संमअ	१६५	हंसगब्भ	१७, ६३
संमज्जण	१९४	हंसगब्भतुलिया	३१
संवच्छरपडिलेहणग	२०२	हंसासण	७९
		हिंगुलयसमुग्ग	७१

## अनध्यायकाल

[ स्व. आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म. द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत ]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असञ्जाए पण्णत्ते, तं जहा — उक्कावाते, दिसिदाधे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविधे ओरालित्ते असञ्जातित्ते, तं जहा — अट्ठी, मंसं, सोणित्ते, असुचिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सुरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे। — स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सञ्जायं करित्तए, तं जहा — आसाढपाडिवए, इंदमहापाडिवए कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सञ्जायं करेत्तए, तं जहा — पढिमाते, पच्छिमाते, मञ्जण्हे अड्डरत्ते। कप्पई निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सञ्जायं करेत्तए, तं जहा — पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे। — स्थानाङ्गसूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे —

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन — यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. दिग्दाह — जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. गर्जित — बादलों के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत् — बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह गर्जन और विद्युत् प्रायः ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. निर्घात — बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक — शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया की सन्ध्या, चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त — कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. धूमिका-कृष्ण — कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत — शीतकाल में श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज-उद्घात — वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

**औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय**

११-१२-१३. हड्डी, मांस और रुधिर — पंचेन्द्रिय तिर्यच की हड्डी, मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से वह वस्तुएँ उठाई न जाएँ, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि — मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान — श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण — चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण — सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन — किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह — समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. औदारिक शरीर — उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा — आषाढपूर्णिमा, आश्विनपूर्णिमा, कार्तिकपूर्णिमा और चैत्रपूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः सायं मध्याह्न और अर्धरात्रि — प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

## अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

### महाराष्ट्र

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस. किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७. श्री कंवरलालजी बैताला, गोहाटी
८. श्री सेठ खींवरराजजी चोरडिया मद्रास
९. श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१०. श्री एस. बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२. श्री एस. रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३. श्री जे. अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५. श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६. श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७. श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

### सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचन्दजी सागरमलजी संचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचन्दजी सुराणा, कटंगी
५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटंगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

### संस्कृत

१. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
२. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
४. श्री श. जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चांगाटोला
७. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोधरा, चांगाटोला
९. श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपती स्व. श्री सुगनचन्दजी झामड़, मद्रुरान्तकम्
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (KGF) जाड़न
११. श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२. श्री भैरूदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
१५. श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनांदगांव
१६. श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७. श्री गणेशमलजी धर्माचन्दजी कांकरिया, टंगला
१८. श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९. श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढ़ा, चांगाटोला
२१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
  २३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
  २४. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तलेसरा, पाली
  २५. श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
  २६. श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
  २७. श्री छोगामलजी हेमराजजी लोढा डोंडीलोहारा
  २८. श्री गुणचंदजी दलीचंदजी कटारिया, बेळारी
  २९. श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी संचेती, जोधपुर
  ३०. श्री सी. अमरचन्दजी बोधरा, मद्रास
  ३१. श्री भंवरलालजी मूलचन्दजी सुराणा, मद्रास
  ३२. श्री बादलचंदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
  ३३. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
  ३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, अजमेर
  ३५. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
  ३६. श्री भंवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
  ३७. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
  ३८. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
  ३९. श्री घेवरचंदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
  ४०. श्री जबरचन्दजी गेलडा, मद्रास
  ४१. श्री जड़ावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
  ४२. श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
  ४३. श्री चैनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
  ४४. श्री लूणकरणजी रिखबचंदजी लोढा, मद्रास
  ४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल
- सहयोगी सदस्य**
१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़तासिटी
  २. श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
  ३. श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
  ४. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, चिछीपुरम्
  ५. श्री भंवरलालजी चौपड़ा, ब्यावर
  ६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
  ७. श्री बी. गजराजजी बोकडिया, सेलम
  ८. श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांटेड, पाली
  ९. श्री के. पुखराजजी बाफणा, मद्रास
  १०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
  ११. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
  १२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
  १३. श्री भंवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
  १४. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
  १५. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
  १६. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
  १७. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
  १८. श्री उदयरजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
  १९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
  २०. श्रीमती सुन्दरबाई गोठी धर्मपत्नीश्री ताराचंदजी गोठी, जोधपुर
  २१. श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
  २२. श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
  २३. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
  २४. श्री जंवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
  २५. श्री माणकचंदजी किशनलालजी, मेड़तासिटी
  २६. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
  २७. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
  २८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
  २९. श्री नेमीचंदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
  ३०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
  ३१. श्री आसूमल एण्ड कं. , जोधपुर
  ३२. श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
  ३३. श्रीमती सुगनीबाई धर्मपत्नी श्री मिश्रीलालजी सांड, जोधपुर

३४. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर  
 ३५. श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर  
 ३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर  
 ३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर  
 ३८. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर  
 ३९. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा  
 ४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई  
 ४१. श्री ओकचंदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग  
 ४२. श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास  
 ४३. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग  
 ४४. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं.)-  
 जोधपुर  
 ४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना  
 ४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर  
 ४७. श्री भंवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर  
 ४८. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर  
 ४९. श्री भंवरलालजी नवरत्नमलजी सांखला,  
 मेट्टूपलियम  
 ५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली  
 ५१. श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग  
 ५२. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई  
 ५३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता,  
 मेड़तासिटी  
 ५४. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर  
 ५५. श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर  
 ५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचंदजी गुलेच्छा, जोधपुर  
 ५७. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर  
 ५८. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता-  
 सिटी  
 ५९. श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर  
 ६०. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी रूपवाल,  
 मैसूर  
 ६१. श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कलां  
 ६२. श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर  
 ६३. श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई  
 ६४. श्री भींवरराजजी बाघमार, कुचेरा  
 ६५. श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर  
 ६६. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गुलेच्छा  
 राजनांदगाँव  
 ६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई  
 ६८. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया,  
 भिलाई  
 ६९. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा,  
 भिलाई  
 ६०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ,  
 दल्ली-राजहरा  
 ७१. श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर  
 ७२. श्री गंगारामजी इन्द्रचंदजी बोहरा, कुचेरा  
 ७३. श्री फतेहराजजी नेमीचंदजी कर्णावट,  
 कलकत्ता  
 ७४. श्री बालचंदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता  
 ७५. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर  
 ७६. श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम  
 ७७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया  
 ७८. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली  
 ७९. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला  
 ८०. श्री चिम्पनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर  
 ८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी  
 ८२. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन  
 ८३. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल,  
 कुचेरा  
 ८४. श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया,  
 भैरूदा  
 ८५. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा  
 ८६. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी  
 कोठारी, गोठन  
 ८७. श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर  
 ८८. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागारेचा,  
 जोधपुर

८९. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
९१. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३. श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भंडारी, बैंगलोर
९५. श्रीमती कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी स्व.  
श्री पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचन्दजी लूणकरणजी भण्डारी,  
कलकत्ता
९७. श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनांदगाँव
९८. श्री प्रकाशचंदजी जैन, नागौर
९९. श्री कुशालचंदजी रिखबचन्दजी सुराणा,  
बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल,  
कुचेरा
१०१. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराजजी कोठारी, मांगलियावास
१०३. श्री सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास
१०४. श्री अमरचंदजी छाजेड़, पादु बड़ी
१०५. श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७. श्रीमती कंचनदेवी व निर्मला देवी, मद्रास
१०८. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशाल-  
पुरा
१०९. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी बेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भंवरलालजी चोरड़िया, भैरून्दा
१११. श्री मांगीलालजी शांतिलालजी रूणवाल,  
हरसोलाव
११२. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४. श्री भूरमलजी दुलीचंदजी बोकड़िया, मेड़ता-  
सिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६. श्रीमती रामकुंवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी  
लोढा, बम्बई
११७. श्री मांगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बैंगलोर
११८. श्री सांचालालजी बाफणा, औरंगाबाद
११९. श्री भीखमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया,  
(कुडालोर)मद्रास
१२०. श्रीमती अनोपकुंवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी  
संघवी, कुचेरा
१२१. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीखमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी,  
धूलिया
१२४. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़,  
सिकन्दराबाद
१२५. श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया,  
सिकन्दराबाद
१२६. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ,  
बगड़ीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी,  
बिलाड़ा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड  
कं., बैंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़



## युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म.सा. 'मधुकर' मुनि का

### जीवन परिचय



जन्म तिथि	-	वि.सं. १९७० मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी
जन्म-स्थान	-	तिंवरी नगर, जिला-जोधपुर (राज.)
माता	-	श्रीमती तुलसीबाई
पिता	-	श्री जमनालालजी धाड़ीवाल
दीक्षा तिथि	-	वैशाख शुक्ला १० वि.सं. १९८०
दीक्षा-स्थान	-	भिणाय ग्राम, जिला-अजमेर
दीक्षागुरु	-	श्री जोरावरमलजी म.सा.
शिक्षागुरु (गुरुभ्राता)	-	श्री हजारीमलजी म.सा.
आचार्य परम्परा	-	पूज्य आचार्य श्री जयमल्लजी म.सा.
आचार्य पद	-	जय गच्छ-वि.सं. २००४
श्रमण संघ की एकता हेतु आचार्य पद का त्याग	-	वि.सं. २००९
उपाध्याय पद	-	वि.सं. २०३३ नागौर (वर्षावास)
युवाचार्य पद की घोषणा	-	श्रावण शुक्ला १ वि.स. २०३६ दिनांक २५ जुलाई १९७९ (हैदराबाद)
युवाचार्य पद-चादर महोत्सव	-	वि.सं. २०३७ चैत्र शुक्ला १० दिनांक २३-३-८०, जोधपुर
स्वर्गवास	-	वि.सं. २०४० मिंगसर वद ७ दिनांक २६-११-१९८३, नासिक (महाराष्ट्र)

#### आपका व्यक्तित्व एवं ज्ञान :

- गौरवपूर्ण भव्य तेजस्वी ललाट, चमकदार बड़ी आँखें, मुख पर स्मित की खिलती आभा और स्नेह तथा सौजन्य वर्षाति कोमल वाणी, आध्यात्मिक तेज का निखार, गुरुजनों के प्रति अगाध श्रद्धा, विद्या के साथ विनय, अधिकार के साथ विवेक और अनुशासित श्रमण थे।
- प्राकृत, संस्कृत, व्याकरण, प्राकृत व्याकरण, जैन आगम, न्याय दर्शन आदि का प्रौढ़ ज्ञान मुनिश्री को प्राप्त था। आप उच्चकोटि के प्रवचनकार, उपन्यासकार, कथाकार एवं व्याख्याकार थे।

#### आपके प्रकाशित साहित्य की नामावली

प्रवचन संग्रह : १. अन्तर की ओर, भाग १ व २, २. साधना के सूत्र, ३. पर्युषण पर्व प्रवचन, ४. अनेकान्त दर्शन, ५. जैन-कर्मसिद्धान्त, ६. जैनतत्त्व-दर्शन, ७. जैन संस्कृत-एक विश्लेषण, ८. गृहस्थधर्म, ९. अपरिग्रह दर्शन, १०. अहिंसा दर्शन, ११. तप एक विश्लेषण, १२. आध्यात्म-विकास की भूमिका।

कथा साहित्य : जैन कथा माला, भाग १ से ५१ तक

उपन्यास : १. पिंजरे का पंछी, २. अहिंसा की विजय, ३. तलाश, ४. छाया, ५. आन पर बलिदान।

अन्य पुस्तकें : १. आगम परिचय, २. जैनधर्म की हजार शिक्षाएँ, ३. जियो तो ऐसे जियो।

विशेष : आगम बत्तीसी के संयोजक व प्रधान सम्पादक।

शिष्य : आपके एक शिष्य हैं- १. मुनि श्री विनयकुमारजी 'भीम'